

जानकवि के प्रेमाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए
हिन्दी विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत
शोध - प्रबंध

निर्देशक

डॉ० व्रजेश्वर वर्मा

निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

शोधकर्ता

रामकिशोर मौय्य

१९६४ ई०

भूमिका

हिन्दी के प्राचीन साहित्य पर अन्वेषण का कार्य अभी पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका । शिवसिंह सरोज, मिश्रबन्धु विनोद तथा इतिहास की सैकड़ों भरी भुलें अभी तक ज्यों की त्यों बनी बली जा रही हैं । समस्त प्राचीन साहित्य मौखिक, हस्तलिखित और प्रकाशित तीनों रूपों में विद्यमान है, पर प्रकाशित साहित्य की अपेक्षा अभी बहुत कुछ प्रकाशित होने को है । यदि प्रकाशित साहित्य की तुलना कितो द्वीप से की जाय तो प्रथम दोनों प्रकार के साहित्य उसके अतमगुन विशाल भाग हैं । अन्वेषण का कार्य अभी सभी क्षेत्रों में न हो पाने से न जाने कितने संग्रहालयों और ज्ञान-भांडारों के उत्तमोत्तम ग्रंथ तथा उनके रचयिताओं के हमें नाम तक नहीं ज्ञात हैं । न जाने कितने महाकवि और प्रतिभाशाली कलाकार विस्मृति के आवरण तले जो भूल पड़े हैं, न जाने कितने काल के प्रवाह में सड़-गल रहे हैं या दीपक के अतार बने अपने सर्वनाश की प्रतीक्षा कर रहे हैं । हमारों हस्तलिखित ग्रंथ अपने संस्कार और सम्पादन करने वालों की बाट बँट रहे हैं । अतः इनके संरक्षण एवं प्रकाशन की दृष्टि से अनुसंधान कार्य करने की आवश्यकता स्वतः सिद्ध है । हिन्दी साहित्य के आदि तथा मध्य काल के इतिहास का वास्तविक स्वरूप हमें अभी मिल सकता है जब प्राचीन साहित्य का पूरा अन्वेषण हो जाय । सम्भव है कि ऐसे प्रयत्न से हमारे आज तक के प्रतिपादित मत उलट पुलट हो जाय, कौन जाने हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास की बहुत कुछ काया हो पलट जाय । जान्कवि (न्यामत हॉ) भी एक ऐसे ही कवि हैं जिसकी रचनाएँ ऐसी ही परिस्थितियों में बहुत दिनों तक अज्ञात रह गईं । कवि के संबंध में कहीं अन्यत्र उल्लेख न होने से जब तक इनकी कृतियों का पूर्ण अन्वेषण तथा समुचित अध्ययन न किया जा सका जिससे समस्त ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ अधिकतर प्रत्यक्ष या परीक्षा रूप से राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में बिखरी पड़ी हैं ।

मध्ययुगीन समस्त प्रमाख्यात्मक साहित्य में हिन्दी के प्रेमाख्यानों का विशेष महत्त्व रहा है । इनमें जान्कवि के प्रेमाख्यानों का अपना विशिष्ट

(दो)

मान है। विविध विधाय-सम्बन्धी अनेक रचनाओं के साथ-साथ उन्होंने प्रेमाख्यान-साहित्य की परम्परा में जो अमूल्य योगदान किया, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। समस्त हिन्दी प्रेमाख्यात्मक साहित्य में अन्य किसी एक कवि की इतनी अधिक रचनाएं उपलब्ध नहीं होतीं। श्री अगरबंद नाडटा ने उपलब्ध संख्या की दृष्टि से इन्हें "हिन्दी का सबसे बड़ा प्रेमाख्यानों का लेखक" (राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, अप्रैल, १९४६ ई०) कहा है। फलतः उनके ग्रंथों के अध्ययन की ओर अन्य जायिक विद्वानों का ध्यान जाना स्वाभाविक है। प्रस्तुत अध्ययन के विधाय-क्षेत्र की सीमा उनके प्रेमाख्यानों तक ही परिमित है।

जानकवि का सर्व प्रथम परिचय पत्रिकाओं के प्रकाशित लेखों तथा खोज रिपोर्टों द्वारा प्राप्त होता है। इनके तथा उनकी कृतियों के संग्रह में जायिक विद्वानों के ध्यान आकर्षित कराने का सर्वप्रथम प्रयत्न जयपुर के व्योमवृद्ध साहित्य सेवा-संघ पुरोहित हरिनारायण शर्मा को है जिन्होंने अपने "सुंदर ग्रंथावली" (खण्ड - १, पृ० ३०, १९३० ई०), राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता की प्रस्तावना में अलफ़र्ज़ा का काव्योपनाम जानकवि बताते हुए अपने जयपुर के संग्रहालय की वर्तमान उनके चार ग्रंथों - "कथा रतनावली", "कथासतर्वती", "कविवत्सल" तथा "मदनविनीद" का परिचय दिया और "कथामहाराजा" के रचयिता का नाम नेमपतर्ज़ा बताया। इनके बाद "धूमकेतु" के सम्पादक शिवशेखर द्विवेदी ने "धूमकेतु" (अगस्त १९३९ ई० कलकत्ता), में प्रकाशित अपने लेख (हिन्दी संसार का अपरिचित कवि) में जानकवि की शाहजहाँ का साला तथा उनका कुशल सेनापति बताते हुए राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता में उनके तीन ग्रंथों - "मदनविनीद", "सतर्वतीसत" तथा "कविवत्सल" के उपलब्ध होने का उल्लेख किया। भगवदमल्ल शर्मा ने श्री अगरबंद नाडटा द्वारा सम्पादित "राजस्थानी" (भाग ३, अंक ४, अप्रैल १९४० ई०) में "काव्यमहानी नवाब अलफ़र्ज़ा और उसकी कविता" नामक लेख में उपर्युक्त पुरोहित जी के प्राप्त चारों ग्रंथों का नामोल्लेख करते हुए

(तीन)

जानकवि का नाम जलफखां तथा नेठपतखां को "कायमरासो" का रचयिता बताया और हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध ताज की कायमरासी नामक दफ्तरनामा की पुत्री और जलफखां के पितामह ताजखां (द्वितीय) की सहोदरा बहिन होना लिखा। मोती ताल मेनारिया ने "राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की शीर्ष-भाग - १" (पृ० १६८, १९४२ ई०, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर) में इनके "एसमंजरी" ग्रंथ के उपलब्ध होने की सूचना दी। इसी वर्ष श्री जगरबंद नाहटा ने "ब्रज भारती" (वर्ष २, अंक ११, १९४२ ई०, ब्रजसाहित्य मंडल, मयुरा) में प्रकाशित अपने लेख "कवि जान कृत जानकीप" में "जानकीप" ग्रंथ का आदि - अंत तथा उसका सारांश दिया। इसी समय अनुप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर के पुनरुद्धार का कार्य करते हुए श्री नाहटा जी को जानकवि के अनेक ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां देखने की मिति। श्री रावत सारस्वत के सूचना तथा श्री नाहटा की विशेष सहायता से जुलाई सन् १९४४ ई० में शेतावाटी में प्राप्त जानकवि के ७० ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां डा० धीरेन्द्रवर्मा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयोग में मंगवाई। ये सभी प्रतियां एकेडेमी में सुरक्षित हैं।

इसके बाद श्री जगरबंद नाहटा ने "हिन्दुस्तानी" (भाग १५, अंक २, १९४५ ई०) में "कविवर जान और उनका कायमरासो" नामक लेख में जानकवि से संबंधित सभी प्रकाशित पूर्व सूचनाओं का उल्लेख करते हुए सर्व प्रथम उनका प्रमाणिक नाम न्यायमूर्ति बताया और "कायमरासो" का ऐतिहासिक क्या-सार तथा उन पर विश्लेषणात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया। श्री राव सारस्वत ने "विश्ववाणी" (वर्ष ५, अंक ५, १९४५ ई०) तथा "सरस्वती" (भाग ४६, खण्ड १, जनवरी १९४५ ई०) में क्रमशः हिन्दी का विस्मृत मुसलमान कवि जान तथा "कविवर जान" नामक लेखों में जानकवि पर आलोचनात्मक टिप्पणियां देते हुए उनके भाषा आदि के स्वरूप का विश्लेषण किया। श्री कमल कुलश्रेष्ठ ने "हिन्दुस्तानी" (भाग १५, अंक १, १९४५ ई०) में "कवि जान" नामक लेख में एकेडेमी के कुछ ग्रंथों का वर्गीकरण तथा उनका परिचय दिया। ग्रंथों के वर्गीकरण का इनका यह प्रथम प्रयास है। इसी वर्ष श्री रामचन्द्र टण्डन ने "हिन्दुस्तानी" (भाग १५, अंक १) में "कथा कायमरासो" का

(चार)

पाठ प्रकाशित कराया ।

बागे चलकर सन् १९४६ ई० में श्री जगरबन्द नाहटा द्वारा "हिन्दु-रतानी" (भाग १५, अंक १, तथा ४) में क्रमशः "कविवर जान का सबसे बड़ा ग्रंथ "बुद्धिमागर" तथा कविवर जान रचित "अलिफता की पैड़ी" और "राजस्थान-भारती" (भाग १, अंक १) में "कविवर जान और उनके ग्रंथ" लेख प्रकाशित हुए । प्रथम तथा अंतिम लेखों में जानकवि के जीवनी तथा ग्रंथों की समयसारणी का विवेचन और द्वितीय में उक्त ग्रंथ का पाठ दिया । सन् १९४७ ई० में उन्होंने "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज-भाग २ तथा ४ में जानकवि के क्रमशः १० तथा २ ग्रंथों का और सन् १९५२ ई० में इसी ग्रंथ के भाग - ३ में श्री उदयसिंह भटनागर ने "कथा स्तवती" के प्राप्त होने का केवल सूचनात्मक परिचय दिया । सन् १९५३ ई० में भी नाहटा जी द्वारा अपने अभय जैन ग्रंथालय के एक ही प्रति के आधार पर सम्पादित "क्यामलारंसा" विस्तृत भूमिका तथा टिप्पणी से समर्पक राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर से प्रकाशित हुआ । इसके अंत में परिशिष्ट रूप में "अलिफता की पैड़ी" का पाठ भी दिया गया । इसमें लेख ने सर्वप्रथम जानकवि का प्रमाणिक जीवन-वृत्त तथा उनके प्राप्त ७६ ग्रंथों का निर्णयदिया और सभी पूर्व अध्ययनों की सूचना दी । अभी हाल ही में मिला हुआ "संगीत गुन्दीप" ग्रंथ का परिचय पीताल जी मिश्र ने "बरदा" (वर्ष ५, अंक ३, जुलाई १९६२ ई०) में "कवि जान विरचित एक अज्ञात ग्रंथ "संगीत गुन्दीप" नामक लेख में दिया ।

इस क तरह अब तक के ये सारे प्रयत्न केवल जानकवि के सामान्य परिचयात्मक स्वरूप तक ही सीमित हैं । इनसे हमें केवल उनके और उनके ग्रंथों के हस्तलिखित प्रतियों के संबंध में मात्र सूचना ही मिलती है । इनमें वास्तविक चनात्मक अध्ययन का कोई प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता है, फिर भी इनका महत्व कम नहीं कहा जा सकता । इतना ही क्या कम है कि इनसे हमें कवि तथा उसके ग्रंथों के सम्बन्ध में महत्व पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है ।

इतिहास लेखकों की ओर से कवि बहुत उपेक्षित रहा है । हिन्दी साहित्य का सबसे पुराना इतिहास गार्गी दत्ता की है । इसका पहला

(पांच)

संस्करण दो भागों में क्रमशः १८३९ - १८४० ई० में प्रकाशित हुआ था जिसका हिन्दी अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वाष्णीय ने "हिन्दुई साहित्य का इतिहास" के नाम से किया है। इसमें जान्कवि की वर्णन नहीं है। बाद में रामचन्द्र शुक्ल के जैसे "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में भी उनका कोई उल्लेख नहीं मिलता। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने "हिन्दी साहित्य" (पृ० २७७, १९५५ ई०) में इनके सन ग्रंथों की ७० संख्या का उल्लेख करते हुए हासी निवासी शेख मुहम्मद को उनका गुरु बताया है। इसके अतिरिक्त बाद के विवेचन में किसी भी इतिहास ग्रंथ में कवि का नामोल्लेख तक नहीं मिलता।

शोध प्रबन्ध तथा अन्य पुस्तकों के रूप में सर्वप्रथम सन् १९५३ ई० में हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर से प्रकाशित मोतीलाल मेनारिया के "राजस्थान का विंगल साहित्य" में जान्कवि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके बाद डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने सन् १९५३ ई० में अपने प्रबन्ध "हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य" में जान्कवि के २१ प्रेमाख्यानों का परिचय दिया किन्तु यह परिचय बहुत ही भ्रमपूर्ण है। इनके अतिरिक्त बाबाय परशुराम चतुर्वेदी ने "सूफ़ी काव्य संग्रह" में जान्कवि के जीवन तथा काव्य पर आलोचनात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए उनके पांच ग्रंथों - "कथा कन्कावती", "कथा कामलता", "कथा मधुकरमालती", "कथारतनावती" तथा "कथाछीता" के बादि - अंत का संक्षिप्त पाठ दिया। जान्कवि के साहित्य पर आलोचनात्मक रूप से दृष्टिपात करने का यह प्रथम प्रयास है। इसी वर्ष डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने अपने प्रकाशित प्रबन्ध "भारतीय प्रेमाख्यान काव्य" में कवि के १८ ग्रंथों का मात्र नामोल्लेख करते हुए उन्हें मुसलमानों का प्रतिनिधि कवि कहा।

आगे चल कर सन् १९५६ ई० में बाबाय परशुराम चतुर्वेदी ने "भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा" में जान्कवि के "कथा नन्दमालती", "कथामधुकरमालती" आदि कुछ ग्रंथों का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया। इसी वर्ष डा० सरला शुक्ल ने अपने प्रबन्ध "बायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य" में शोध में कवि का जीवन-वृत्त तथा उनके १५ प्रेमाख्यानों पर आलोचनात्मक टिप्पणी उपस्थित किया। इनके अतिरिक्त सन् १९५८ ई० में

"छिनाईवार्ता" में रूद्रकाशिकेय तथा डा० माता प्रसाद गुप्त ने क्रमशः इसके "परिचय" तथा "प्रस्तावना" में "छिनाईवार्ता" से जानकवि के "कयाछीता" का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया। सन् १९५९ ई० में भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रकाशित "हिन्दी साहित्य" भाग - २ में आचार्य परशुराम बहुर्वेदी ने "सूफ़ी प्रेमाख्यान साहित्य" निबन्ध में सूफ़ी कवियों के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया। इसके बाद सन् १९६० ई० में डा० सत्येन्द्र ने "मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन" में जानकवि के प्रेमाख्यानक काव्यों में किंवदन्ती अभिप्रायों का तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया। इनके अतिरिक्त सन् १९६१ ई० में डा० यशम मनोहर पाण्डेय ने "मध्ययुगीन प्रेमाख्यान" ग्रन्थ में जानकवि के प्रेमाख्यानों की संख्या २१ बताते हुए उन्हें सूफ़ी कवि होना संकेत किया। सन् १९६२ ई० में आचार्य परशुराम बहुर्वेदी ने "हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान" में सूफ़ी तथा दक्खिनी प्रेमाख्यानों के साथ इनके प्रेमाख्यानों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जो कि तुलनात्मक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। वही वर्ष डा० सत्येन्द्र का "लोक साहित्य - विज्ञान" प्रकाशित हुआ जिसमें इनके पूर्व ग्रंथ की भांति विभिन्न अभिप्रायों का उल्लेख हुआ।

जानकवि पर अभी तक अध्ययन के जो प्रयत्न हुए हैं वे अधिकतर केवल उनके ग्रंथों की सूचना तथा उनके सामान्य जीवन-कृत के निर्धारण मात्र से सम्बद्ध हैं। इनके ग्रंथों के क्रमबद्ध और विस्तृत अध्ययन का अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ जानकवि के संपूर्ण प्रेमाख्यानों के विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन का प्रथम प्रयास है। जानकवि के प्रेमाख्यानों के मुख्य अध्ययन के साथ अन्य सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों से तुलना भी विवेच्य रहा है। इस प्रयत्न की नवीनता और मौलिकता के स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ के उन कतिपय सूत्रों का उल्लेख करना आवश्यक है जो इसके प्रतिपादन सम्बन्धी दृष्टि की सूचना देते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त है इसमें अपने दृष्टिकोण के प्रति निष्ठा रखते हुए मैंने पूर्वाग्रह के प्रवर्तना से बचने का प्रयत्न किया है।

(सात)

इस दृष्टि से प्रथम अध्याय में जानकवि की जीवनी तथा कृतियों के सम्बन्ध में निष्पक्ष भाव से विचार प्रकट करने का प्रयास किया गया है। उनके अंतःसाध्य विशेषण रूप से "श्यामसांरासा" ग्रंथ के आधार पर उनका असली नाम श्यामसांरा, उनकी बंशावली तथा उनके जीवन-काल का निर्धारण किया गया है। उनकी उपलब्ध सभी ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग तथा रामस्वान के विभिन्न संग्राहकों से सम्पूर्ण अध्ययन कर अब तक उनकी प्राप्त सब संख्या ७८ निर्धारित करते हुए इनका पहली बार विज्ञानानुगत वर्गीकरण तथा एक साथ प्रामाणिक परिचय दिया गया है। इसमें समस्त चरित या प्रेमाख्या-एक काव्यों की असूची कवियों की भांति दास्यत्वपरक, स्वच्छंदतापरक, सत-परक तथा अध्यात्मपरक वर्गों में विभाजित करते हुए अपने अध्ययन की सीमा निर्धारित की गई है।

इस प्रबन्ध का दूसरा अध्याय सबसे बड़ा तथा महत्वपूर्ण है। इसमें कवि के समस्त प्रेमाख्याओं के कथाओं के स्रोतों, परम्पराओं और उनकी मौलिकता का अध्ययन किया गया है। इसमें लेखक ने हिन्दी, संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, लोक-साहित्य आदि सभी के कथा स्रोतों का पूर्ण अध्ययन किया है और मूल ग्रंथों से ही कथाओं का विश्लेषण कर उन पर निर्णय देने का साहस किया है। आधार कथा के साथ अन्य कथाओं से तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना भी लेखक का दृष्टिकोण रहा है। इसदृष्टि से इनकी तीन वर्गों में विभाजित किया गया है -

(क) पूर्ण ज्ञात आधार (ख) मिश्रित या अल्पज्ञात आधार और (ग) कल्पित या अज्ञात आधार। पहले वर्ग में १४ प्रेमाख्याएँ हैं जिनके कथाओं का किसी पूर्व कथा से एक निश्चित आधार रहा है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत १० प्रेमाख्याएँ हैं जिनके कथाओं का किसी एक पूर्व कथा से पूर्ण साम्य नहीं मिलता फिर भी इनके कथाएँ विभिन्न कथाओं में दीखती हैं। तबता है कि कवि ने इनकी रचना के पूर्व दो या कई कथाओं से कुछ कथाएँ लेते हुए अपने कल्पना के मिश्रण से किया है। इस दिशा में कई कथाओं के अल्प-साम्य रूपों को लेकर इनका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तीसरे वर्ग में ऐसे चार ग्रंथ हैं जिनकी कथाओं का तुल्य प्रयास करने पर भी लेखक को इनका कोई पूर्व

(१४४)

रूप उपलब्ध न हो सका । सम्भव है कि ये विभिन्न अभिप्रायों के आधार पर कवि द्वारा कल्पित कर लिए गये हों । उनके प्रोतों के सम्बन्ध में अब भी लेखक प्रयत्नशील है ।

तीसरे अध्याय के दो भाग हैं । प्रथम भाग में कथानकों के संगठन को तुलनात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जिसमें यह दिखाया गया है कि ज्ञान-कवि ने कथानक का चयन अधिकतर असूफ़ी प्रेमाख्यानों की भांति की है । फ़ारसी काव्यों की रूढ़ियाँ इनके गठन में कम प्रयुक्त हुई हैं दूसरे भाग में कथा तथा साहित्य-सम्बन्धी विभिन्न अभिप्रायों (Motifs) का तुलनात्मक विवेचन किया गया है । इनमें कुछ अभिप्राय ऐसे भी उपलब्ध हुए हैं जो किसी पूर्ववर्ती कथा-साहित्य में नहीं मिलते ।

चौथे अध्याय में ज्ञानकवि के समस्त प्रेमाख्यानों के प्रेम-निरूपण का कई दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इनमें यह प्रदर्शित किया गया है कि इनकी प्रेम-व्यंजना कितनी असूफ़ी प्रेमाख्यानों में विभित प्रेम की विभिन्न प्रवृत्तियों तथा कितनी सूफ़ियों के प्रेमपद्धति के निकट है । इस तरह इन दोनों परम्पराओं से इनकी समानताओं और विभिन्नताओं का तुलनात्मक विवेचन पहली बार इस प्रबन्ध में इसीलिए प्रस्तुत किया गया है कि इनकी अपनी विशिष्टता इस प्रकार के अध्ययन की ओर अधिक प्रेरित करती है ।

पाँचवें अध्याय में कवि के भावाभिव्यक्ति और रस-निरूपण का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि असूफ़ी कवियों की भांति कवि ने गुंजार रस के संयोग तथा विप्रतन्ध दोनों पद्यों व समान रूप से महत्व दिया है और गुंजार के साथ अन्य रसों का विवेचन भी प्रस्तुत किया है ।

छठे अध्याय में चरित्रों का वर्गीकरण करते हुए उनमें असौक्य तथा सौक्य (मानवीय और मानवैतर) सभी पात्रों का सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों के चरित्रों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें यह दिखाया गया है कि इनके पात्र अधिकतर असूफ़ी पात्रों की भांति आवरण करते दीखते हैं । नायकों के चरित्र तो सूफ़ी और असूफ़ी दोनों में लगभग एक जैसे हैं, पर नायिकाओं के चरित्र में असूफ़ियों की भांति चारित्रिक विभिन्नता

(नौ)

मिलती है। कवि ने राजस्थानी प्रभाव से अपने समस्त प्रेमाख्यानों में लल-
लायिकायें बिल्कुल नहीं प्रयुक्त किए हैं।

सातवें अध्याय में कवि के प्रेमाख्यानों का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत
किया गया है जिसमें छंद, अलंकार, प्रतीक, प्रकृति-चित्रण तथा भाषा -
शैली हैं। प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त इनके अन्य ग्रंथों के नवीन प्रयुक्त छंदों का
भी विवेचन किया गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि इनके छंदों का श्रोत्र
अपभ्रंश या चारणा कवियों के छंद रहे हैं^१। इन्होंने कुछ नवीन नवविकर्षा-
धार छंदों का भी प्रयोग किया है जो उनके पूर्व नहीं मिल सके हैं। अलंकारों
के अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि इनके अर्थालंकारों में प्रयुक्त उपमान
रूढ़िगत होते हुए भी बहुत कुछ लोक गृहीत एवं मौलिक हैं। इन्होंने सूफ़ी -
कवियों की भांति सांकेतिक प्रतीकों का निर्वाह नहीं किया है। इनका प्रकृति
चित्रण अधिकतर उद्दीपन रूप में चित्रित हुआ है। इनकी भाषा समस्त प्रेम-
गाथाओं के कवियों से भिन्न अवभाषा रही है और शैली पर मसनवी रूप की
भल्लक दीखने पर भी असूफ़ी कवियों की भांति भारतीय है।

इस तरह जानकवि के इन समस्त प्रेमाख्यानों का प्रस्तुत प्रबन्ध में
पहली बार विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। जानकवि के विशेष
अध्ययन के कारण मैंने कवि के ग्रंथों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं
उनमें बहुत कुछ नवीनता है। जीवनी, कृतियों तथा श्रोतों के अध्ययन के
बाद मैंने प्रेमाख्यानों की विस्तृत तुलनात्मक समीक्षा की है और इसे कवि की
रचनाओं में ही केन्द्रीभूत करके यथा सम्भव सर्वांग पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया
है। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष स्थलों का ही उपयोग किया गया है और यह

१- अपभ्रंश छंदों का एक व्यवस्थित अध्ययन डा० रामसिंह तोमर ने अपने प्रबंध
"प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य" (पृ० २४२ से २६० तक, १९६४ ई०) में किया
है। प्रस्तुत लेखक को इससे बड़ी सहायता मिली है।

(दस)

प्रयास किया गया है कि ऐसे स्थल न आवें जिनके दुहरावट प्रतीत हो ।
सुलनात्मक विवेचन में इस बात की चेष्टा की गई है कि अन्य ग्रंथों का मूल
से आश्रय लिया जाय, पर किसी विशाल प्रबन्ध का रूप मूल ग्रंथ से ही बड़ा
नहीं किया जा सका । अतः कुछ प्रबन्धों तथा शालोचनात्मक ग्रंथों का महारा
लेना ही पड़ता है । इनकी पूर्ण ऊँचाई तथा गहराई को समझने के लिए
पाठकों को इनके मूल ग्रंथों को भी देखना होगा । ऐसे ग्रंथों की हस्तलिखित
प्रतियाँ एक साथ सुलभ न होने से मेरे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा रही है ।
जाचार होकर मुझे इन सभी ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करनी पड़ी है ।

प्रस्तुत विषय का निर्वाचन अडेप डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा
हुआ, किन्तु उनके विभागाध्यक्ष होकर जयपुर चले जाने पर, निर्देशक का
पूरा कार्य गुरुवर डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने किया । उन्होंने अत्यन्त स्नेह और
आत्मीयता के साथ मुझे सदा प्रोत्साहित कर अपने बहुमूल्य परामर्शों से इस
प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत कर सकने में सक्षम बनाया । उनके इस स्नेहपूर्ण
निर्देशन के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ तथा नतमस्तक रहूँगा । हिन्दी विभाग के
अध्यक्ष गुरुवर डा० रामकुमार वर्मा का स्नेह तो विभाग से सम्बद्ध सभी
विद्यार्थियों पर रहता ही है । मैंने जब बाधा है उनसे विभागीय कार्यों में
सहायता ली है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने पत्रों द्वारा तथा प्रयाग जाते-
जाते जिन अमूल्य सुझावों को दिया है उससे मेरे अध्ययन का मार्ग प्रशस्त
हुआ है । कथा के मूल स्रोतों को ढूँढ़ निकालने का महत्वपूर्ण सुझाव
चतुर्वेदी जी का ही है । अतः उनके प्रति तेजक हृदय से आभारी है । बरबी
तथा फ़ारसी विभाग के डा० मुहम्मद रफ़ीक़ ने कथा स्रोतों के अध्ययन में
बरबी, फ़ारसी या उर्दू के विभिन्न कथा ग्रंथों का अग्रपूर्वक अध्ययन कर मेरी
सहायता करने की कृपा की है । उनके अनुग्रह से ही तेजक बरबी तथा फ़ार-
सी के कथा-स्रोतों को ढूँढ़ने में सक्षम हो सका है । अतः उनके प्रति भी
कृतज्ञता प्रकट करना मेरा कर्तव्य है । श्री नर्मदावर चतुर्वेदी ने बराबर अपने
महत्वपूर्ण सुझावों से इस प्रबन्ध की विभिन्न गुटियों को सुलभाने में
सहायता की है । मेरे निराशा के क्षणों में वे सदैव अत्यन्त स्नेह तथा

(गुमारङ्ग)

सहानुभूति पूर्वक मुझे डाइस बंधाते रहे हैं। कार्य को समय पर पूरा के लिए भी वे निरन्तर मुझे प्रेरित करते रहे हैं। मैं उनके प्रति सदा नतमस्तक रहूंगा।

इसके अतिरिक्त हिन्दी विभाग के पं० उमाशंकर गुप्ता, डा० रघुवंश, डा० जगदीश गुप्त, डा० पारसनाथ तिवारी तथा श्री राजेन्द्रकुमार वर्मा से भी मुझे समय-समय कई प्रकार की सहायताएं मिलती रही हैं, एतदर्थ उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा कर्तव्य है।

डा० राजनारायण मौर्य (पूना विश्वविद्यालय) का स्नेह पूर्ण पत्र-प्रदर्शन प्राप्त करना लेखक का अधिकार-सा बन गया है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वे सदैव मुझे उत्साह तथा प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। इस प्रबन्ध के भाषा के अध्ययन में भी उन्होंने मेरी अपेक्षातः सहायता की है। इनके प्रति औपचारिक आभार प्रकट करना न मुझे अच्छा लगता है और न यह उनके मनोनुकूल होगा। श्री रामयश मौर्य ने बड़े प्रेम और निःस्वार्थ भाव से मेरी एक नहीं बल्कि प्रत्येक प्रकार से सहायता की है। मेरी आर्थिक कठिनायियों के प्रारम्भिक वर्णों में उन्होंने जो सहायता की है बिना उनके मैं इलाहाबाद रहकर शोध कार्य पूरा नहीं कर सकता था। उनके प्रति आभार - प्रदर्शन के लिए शब्द साध नहीं दे रहे हैं। उनकी सहायताओं के लिए उनका मैं ऋणी हूँ। पारिवारिक विकट परिस्थितियों में भी मेरे अग्रज श्री रामशैल-वन मौर्य ने मुझे सदा स्नेह पूर्वक इस कार्य को करने का प्रोत्साहन दिया और तथा संभव आर्थिक सहायता की। इसके फलस्वरूप मैं इस रास्ते पर इतना आगे बढ़ सका हूँ, पर उनके प्रति आभार प्रकट करते लेखक बहुत संकोच अनुभव कर रहा है। ऐसे अवसर पर मैं श्री माता प्रसाद एम०एल०ए० को नहीं भूल सकता जिन्होंने उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा छात्रवृत्ति प्राप्त कराने में मेरी पूर्ण मदद की है। अतः उन्हें भी धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है।

प्राप्त प्रबन्ध के लिखने में कई दिशाओं से अनेक सहायताएं लेनी पड़ी हैं। सर्व प्रथम हस्तलिखित प्रतिओं के सम्बन्ध में सबसे अधिक सहायता हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग के सहायक-मंत्री डा० सत्यत सिन्हा के प्रति लेखक हार्दिक कृतज्ञ है जिन्होंने जाऊँट के ०० ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां

(भारत)

देखने की उदारता पूर्वक सुविधा प्रदान की । इसके अतिरिक्त उस अध्ययन से सम्बन्धित सामग्री की प्राप्ति के लिए लेखक को राजस्थान के विभिन्न स्थानों में कई संग्रहालयों की यात्रा करनी पड़ी जिनमें विशेष रूप से बीकानेर के श्री जगरबन्द नाहटा ने अपने अभय जैन ग्रंथालय की प्रतियों के अतिरिक्त वस्तु-सम्पत्तियाँ तथा अनेक सुवर्ण प्रदान कीं, अतः लेखक उनका हृदय से आभारी है । इनके अतिरिक्त अनुप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, भारतीय विद्या मंदिर जोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, राजस्थान प्रांतीय विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, राजस्थान प्रांतीय विद्या प्रतिष्ठान जावा कार्यालय, जयपुर, आदि के प्रबन्धकों के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे हर तरह की सुविधाएं देकर हस्तलिखित प्रतियों को देखने का अवसर दिया । नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, मुनिवर्सिटी तथा पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद के प्रबन्धकों का भी कृतज्ञ है जिन्होंने पुस्तकों के अध्ययन की सुविधा प्रदान की । लेखक हिन्दी परिषद् पुस्तकालय, प्रयाग विरयविद्यालय का विशेष रूप से आभारी है जिसके सम्पर्क में रह कर यह कार्य किया ।

मैं उन सब के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञ हूँ जिनसे और जिनकी वस्तु-वृत्तियों से मुझे जाने तथा अनुमाने में किसी प्रकार की भी सहायता मिली है ।

अंत में मैं अपनी उन सम-बिचाम परिस्थितियों को भी वृत्त्यवाद स्मरण करता हूँ जिनके बीच रह कर चार वर्ष तक संघर्ष करता रहा और जिन्होंने मुझे कार्य सफल बनाने में योग दिया ।

इलाहाबाद:-

३० सितम्बर, १९६४ ई० ।

राम किशोर मौर्य
(राम किशोर मौर्य)

- - -

विषय - सूची

भूमिका :

अध्याय-१

जीवनी तथा कृतियाँ

जीवनी - जीवन-कृत - नाम, जाति तथा वंश परम्परा - समय - गुरु - शिक्षा-दीक्षा तथा शान ।

कृतियाँ - प्राप्त - सामग्री - (१) हस्तलिखित प्रतियाँ । (२) मुद्रित प्रतियाँ। स्फुट उत्सव - पुस्तकों तथा शोध-ग्रंथों के उत्सव - खोज रिपोर्टों के उत्सव - पत्रिकाओं के उत्सव । प्रतियों की सामान्य अवस्था - रचना-काल - लिपि-काल तथा प्रतिलिपिकार - ग्रंथों का नामकरण - मौलिक तथा अनुदित ग्रंथ - ग्रंथ - विस्तार - ग्रंथों के विषय - चरित काव्य - गुणार्थिक पुस्तक काव्य - नीति-परक वा उपदेशात्मक काव्य - काव्यशास्त्रीय ग्रंथ - ऐतिहासिक काव्य - वैद्यक - ग्रंथ - वार्ता सम्बन्धी काव्य - संगीत - काव्य - कामशास्त्रीय काव्य - विविध विषय-सम्बन्धी काव्य - ग्रंथों का वर्गीकरण ।

पृ० १-४७

अध्याय - २

कथानकों का आधार तथा कवि की मौलिकता

विषय - प्रवेश - कथानक स्रोतों के परम्परागत विभिन्न रूप - एकदृष्टता की सामान्य प्रवृत्तियाँ - जानकवि के कथानकों का आधार-आधारों के विभिन्न रूप ।

- (क) पूर्णज्ञात आधार - कथा कल्पनावृत्ति - कथावस्तु - कथा का आधार और कवि की नवीनता । कथा कामतता - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा पुंनुरविरचना - कथावस्तु - कथा का आधार ।

(२)

कथा रतनावती - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा नन्दमर्बती - कथावस्तु - नन्दमर्बती कथा की परम्परा - नन्दमर्बती कथा का आधार तथा जानकवि की मौलिकता । कथा तमीम अनसारी - कथावस्तु - कथा का आधार - कथा कामरानी वा पीतमदास - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा अरदसेर पतिलाह - कथावस्तु - कथा का आधार - तुलनात्मक विश्लेषण । ग्रंथलेखन - कथावस्तु - कथा के विभिन्न रूप - जानकवि की कथा का आधार - निम्नामी । कथा त्रिजवां देवतदे - कथावस्तु, - कथा का आधार - बांदी नावा - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा मणुकर मालती - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा छीता - कथावस्तु - कथा का आधार - तुलनात्मक विश्लेषण । कथा बलुकिवा विरही - कथावस्तु - कथा का आधार ।

(स) भिन्न या अल्पज्ञात कथाधार- कथा कौतूहली - कथावस्तु - तुलनात्मक विश्लेषण । कथा मोहनी तथा कथा छत्रिसागर - कथावस्तु - प्रहेलिका साहित्य - तुलनात्मक विश्लेषण । कथा सुभट्टराइ - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा कर्तदर - कथावस्तु - कथा का आधार । कथा सतवती * सीतवती * तथा कुलवती - कथावस्तु - तुलनात्मक विश्लेषण । कथा चन्द्रसेन रावा सीतनिधान - कथावस्तु - कथा निरमल - कथावस्तु - कथा का आधार ।

(ग) कल्पित या अज्ञात कथाधार - कथा कलावती - कथावस्तु - विश्लेषण । कथा कनकावती - कथावस्तु - विश्लेषण । कथा रूपमवरी - कथावस्तु - विश्लेषण । कथा रतनमवरी - कथावस्तु - विश्लेषण ।

पृ० ४८ - १५४

अध्याय - ३

कथा - विन्यास

(क) कथानक-संगठन:

प्रेम का उदय तथा संकल्प - प्राप्ति के प्रयत्न तथा साधन -

(१)

विधन-वाधार्प - फलागम - सुखान्त और करुणान्त - घटना -
क्रम तथा पात्र - मुख्य संवेदना - एकरूपता और उसके कारण -
नव-गिह वर्णन और उसका उद्देश्य - विरह वर्णन की प्रमुखता और
उसका महत्व - कथानकों की अन्य विशेषताएँ - कथा - संगठन -
सुसजात्मक । पु० १५५-१९४

(२) अभिप्राय (Motifs) :

अभिप्राय का स्वरूप - अभिप्रायों के अध्ययन का महत्व-
भारतीय अभिप्रायों पर किए गये कार्य - मिटव धामसन - मारिह
मूमफोल्ड - वेनफी - टानी - पैजर - एण्ड्रुसिंग । अभिप्रायों
का वर्गीकरण - (क) कथा - सम्बन्धी अभिप्राय । (ख) काव्य
सम्बन्धी या साहित्यिक अभिप्राय । पु० १९५-२३४ ।

अध्याय - ४

प्रेम - निरूपण

प्रेम का स्वरूप - जातकवि की रचनाओं में प्रेम का
स्वरूप - प्रेम और सौन्दर्य - प्रेम की विभिन्न अवधारणें - प्रेम का
उद्देश्य - प्रेम - मार्ग की विधन-वाधार्प - सदिश-वाहक वा गुरु का
महत्व - प्रेम और विरह की गहनता - संयोग और प्रेम की चरम
परिणति । प्रेम की अन्य विशेषताएँ - एकनिष्ठता या अमन्यता-
निष्कामता - सर्वात्मसमर्पण एवं अहं का विलय - आध्यात्मिक
संकेत - सहजता - ऐन्द्रियता तथा सर्वात्म भाव - आदर्शवादिता -
निष्कर्ष । पु० २३५-२९० ।

अध्याय - ५

भावविशेष और रस-निरूपण

सुगाररस - आलस्य विभाव - उद्दीपन विभाव -
अनुभाव - संवारी या व्यभिचारी भाव - स्वाधी भाव । भेद -

(४)

संयोग या संभोग शृंगार - वियोग या विप्रलम्भ शृंगार । जीर रस - करुणा रस - वात्सल्य रस - शीघ्र रस - रौद्र रस - भयानक रस - अद्भुत रस - शान्त रस - हास्य रस - निष्कर्ष ।

पृ० २९१-३२१ ।

अध्याय - ६

चरित्र और स्वभाव-चित्रण

प्रेमास्थानों के कथा पात्रों का स्वरूप - प्रेमास्थानों में चरित्रों का महत्त्व । पात्रों का वर्गीकरण - देवी-देवता - सिद्ध पुरुष - नायक - नायकों की चारित्रिक विशेषताएँ - प्रतिनायक - सहायक पुरुष पात्र - (१) सखा रूप में (२) सहृदय रूप में । बाधक पुरुष पात्र । नायिका - नायिका की विशेषताएँ, प्रतिनायिका । सहायक स्त्री - पात्र - बाधक स्त्री पात्र । मानवेतर प्राकृतिक पात्र - मानवेतर कात्पयनिक पात्र - निष्कर्ष ।

पृ० ३२२-३६८ ।

अध्याय - ७

अभिव्यञ्जना - सौन्दर्य ७ वर्णन वैचित्र्य तथा भाषा - शैली

(क) छंद योजना:

छंदों का आधार - छंदों का वर्गीकरण - मात्रिक छंद - (क) समवतुष्यदी छंद (ख) अर्द्धसमवतुष्यदी छंद (ग) मिश्रित छंद (घ) नव-विकर्णाधार छंद - सम विकर्णाधार - विषम विकर्णाधार । वर्णिकृत - छंदों का नवीन नामकरण तथा प्रयोग - निष्कर्ष ।

पृ० ३६९-३९३ ।

(ख) अलंकार और प्रतीक विधान:

अलंकार-

उपमानों का प्रयोग - साहित्यिक परम्परा के दृष्टिगत

(५)

उपमान - लोक जीवन से लिए हुए मौखिक या नवीन उपमान - उपमा-
उत्प्रेक्षा तथा रूपक - अतिशयोक्ति - अन्य अलंकार - शब्दालंकार -
निष्कर्ष ।

प्रतीक विधानः

प्रतीक का स्वरूप - प्रतीक की स्थिति - रूप-सौन्दर्य के
प्रतीक - योगपरक प्रतीक - प्रेमपथ की विधान-वाधाओं के प्रतीक -
मितनावस्था तथा आनन्दानुभूति के प्रतीक - प्रतीकात्मक समासोक्तियाँ
तथा प्रासंगिक कथार्थ - पात्रों का प्रतीकार्थ - निष्कर्ष ।

पृ० ३९४-४१३ ।

(ग) प्रकृति - चित्रणः

प्रकृति-चित्रण के रूप - आर्तवन रूप में - उहीपन रूप में -
षाट्शतु वर्णन - बारहमासा वर्णन - अलंकार रूप में - आध्यात्मिक
अभिव्यक्ति के रूप में - मानवीकरण रूप में - निष्कर्ष ।

पृ० ४१४-४२५ ।

(घ) भाषा-शैली की विशेषताएँ:

भाषा:

क्रिया-वर्तमानकाल - भूतकाल - भविष्य काल - प्रेरणाजनक-
क्रियाएँ - पूर्वकालिककृदन्त - संज्ञा - सर्वनाम - विशेषण - क्रिया -
विशेषण तथा अव्यय - शब्द भण्डार - तत्सम + तद्भव - विदेशी -
(क) अरबी - शब्द (ख) फ़ारसी - शब्द । मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ -
विशिष्ट प्रयोग - निष्कर्ष - शैली ।

पृ० ४२६-४४३

उपसंहार

अनुसंध - ग्रंथ - सूची

संक्षिप्तीकरणतालिका ।

अध्याय - १

जीवनी तथा कृतियाँ

जीवनी

जानकवि के सम्बन्ध में मुख्यतः सर्व उनके ग्रंथों से आत्मकवनात्मक सामग्री एकत्र की गई है, अतः उनकी जीवनी का प्रधान आधार अतःसाध्य ही है। बाह्य-साध्य के स्तर में सम्कातीन व्यक्तियों द्वारा उनके संबंध में कोई विशेष उल्लेख नहीं प्राप्त होते। मध्यकातीन कवियों की भारतीय परम्परा के अनुसार जानकवि ने ब्रह्म प्रदर्शन के भय से अपने संबंध में अधिक नहीं लिखा फिर भी "कवामर्शा-रासा" में उनका दिया हुआ स्वर्ण परिचय अवश्य मिल जाता है। आधुनिक काल में विद्वानों ने जानकवि की जीवनी से सम्बन्धित जिस सामग्री का विवेचन किया है प्रस्तुत विवरण में उसकी यथातथ्यता की भी परीक्षा की गई है। जानकवि एक साधारण कवि थे, उनके विषय में जन-मानस कल्पना क्रियाशील नहीं हुई, अतः उनकी जीवनी में जनश्रुतियों का कोई योग नहीं है। यहाँ संक्षेप में जानकवि का जीवन कृत यथासाध्य निम्नस्थ स्तर में प्रस्तुत किया जाता है।

जीवन-कृत

नाम -

जानकवि का सर्वप्रथम उल्लेख जयपुर के कयोबुद्ध साहित्यसेवी स्व० पुरोहित हरिनारायण^१, शिवसेखर द्विवेदी^२, भगवदलाल शर्मा^३ तथा मोतीलाल मेनारिया^४ ने करते हुए उनका असली नाम अलफांदा बताया। कुछ लोगों ने साहजहां

१- "सुन्दर-ग्रंथावली", खण्ड -१, जीवन-चरित्र, पृ० ३०, सन् १९३० ई०, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता।

२- "धूमकेतु", जगन्मठ १९३९ ई०, "हिन्दी संसार का अपरिवर्तित-कवि" शीर्षक लेख।

३- "राजस्थानी" भाग १, बंक ४, अप्रैल १९४० ई०, "कवामर्शानी नवाब अलफांदा और उसकी हिन्दी कविता" शीर्षक लेख।

४- "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची", भाग -१, पृ० ११८, १९४२ ई०।

के साथ के रूप में भी उनका परिचय दिया, किन्तु बीकानेर के श्री अगरबन्द नाहटा ने अपने विभिन्न ग्रन्थों तथा "जयामलाराम" एवं "जतिफला की पैड़ी" के आधार पर यह निष्कर्ष रूप में प्रमाणित किया कि जलफला ज्ञानकवि नहीं, बल्कि उनके पिता थे। जलफला के पाँच पुत्र थे - दौलतला, जयामलला, शरीफला, बरीफला तथा फकीरला। यही जयामलला या जयामलला हमारे ज्ञानकवि थे। ये कविता में अपना उपनाम सदा ज्ञानकवि ही लिखते थे। पिता के द्वितीय पुत्र होने से ये शासक न बन सके। जलफला की मृत्यु के बाद दौलतला राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। उनके सम्बन्ध में अन्यत्र कुछ भी लिखा नहीं मिलता। "जयामलाराम" में ज्ञानकवि ने फतहपुर के अपने चौहानवंशीय कामबानी नवाबों का संक्षेप में इतिहास देकर अपने पिता जलफला का विस्तार से परिचय तथा "जलफला की पैड़ी" में - राजकोट में जलफला, द्वारा प्रदर्शित बुद्ध-वीरता का विस्तार वर्णन किया है। "जयामलाराम" में कवि ने दो-तीन स्थलों पर अपना नाम जयामल दिया है तथा ग्रंथ के आरम्भ में जलफला को अपना पिता लिखा है -

कहत जान अब बरनिहाँ, जतिफलान की बात ।

पिता जानि बड़ि ना कहौ, भाणौ साँची बात ॥४॥

जाति तथा वंश परम्परा:

ज्ञानकवि जाति के मुसलमान थे, किन्तु इसके पूर्व इनके वंश कैलाश चौहान राजपूत थे जिससे कवि ने अपने "जयामलाराम" ग्रंथ में अपने चौहान-वंश का बड़े अभिमान के साथ उल्लेख किया है और चौहान कुल को सबसे बड़ा गौरवशाली कुल माना है -

जतिफलांनु दीवान की, बहुत बड़ी है गोत ।

बाहुवान की जोट की, वीर न जग में होत ॥५॥

+ + +

1- जयामल संपूर है वरूर हाजिरा वरूर होत ।

+ + +

जयामल और करामत पूरन होहि मुली वे दुली तकि जाये ॥

जिती जात रजपूत की, सगरे हिंदुसतान ।

सब में निहवे जानियो, बड़ी गोत बहूवान ॥६८॥

जानकवि में पार्थिक कट्टरता ऐसा-मात्र भी न थी । उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को एक ही पिण्ड से उत्पन्न हुआ बताया है, और कहा है कि उनके रक्त-वर्मादि में कोई भेद नहीं है, करनी से ही उनके अलग-अलग नाम हुए हैं^१ । उन्होंने नबी, मुहम्मद, हजरत आदि नामों के साथ बिराजि, ईरवर, दीन्दवात आदि की भी बंदना की है तथा अनेक स्थलों पर 'कैकुष्ठ', शब्द का उल्लेख किया है और अपने पिता की मृत्यु पर भी 'कैकुष्ठ गये' शब्द लिखा है^२ । इस तरह जानकवि मुसलमान होते हुए भी हिन्दुत्व के स्वाभिमान से जीत-प्रोत थे । चौहान वंश के संस्कार कदाचित् उनके बहुत कुछ रक्त में विद्यमान थे ।

जयपुर राज्य के अन्तर्गत एक हजार गांव की स्वतंत्र जागीर शेखावाटी पांच हिस्सों में बंटी थी- बिसाऊ, सूरजगढ़, डूण्डखोद, भुभानू, तथा खेतड़ी । इसी राज्य के प्रसिद्ध करद संस्थान सीकर के इलाके में एक परगना कुतहपुर है । वर्तमान शेखावाटी राजवंश से पूर्व वहाँ 'कामवानी' नवाबों का शासन रह चुका है । वे दिल्ली के बादशाह की अधीनता में शासन करते थे^३ । और मुसलिम मजहब स्वीकार करने के पूर्व चौहान राजपूत थे । बदेरा के मोटेराय चौहान के पुत्र करमली को सं० १४४० में दिल्ली के बादशाह फीरोज़शाह तुगलक के जोहदेदार खैब नासिर ने मुसलमान बनाया था और

१- कैकुष्ठ इन दुहुन की, ना अंतर रत बाम ।

ये करनी नाहिन मिलै, ताते न्यारे नाम ॥ कामवारीसा, दोहा -१५१

२- सोरह है कुतियासिवा, सन महल पैतीस ।

वतिकाबांनु कैकुष्ठगै-रीबै बहूठाईस ॥ कामवारीसा, दोहा -१५२ ।

३- फर्नस वेम्स टॉड - 'राजस्थान का इतिहास' (जगन्नेश्वरकुमार ठाकुर)

उसका नाम बदलकर क्यामवां रक्खा या । यही क्यामवां क्यामवानी या कायमवानी वंश का मूल पुरखा हुआ और इसके वंशधर कायमवानी कहताने लगे । अपने वंश के इसी मूल पुरखा के नाम पर जानकवि ने अपना ग्रन्थ "क्यामवारासा" लिखा है । क्यामवां राजपूतानी ज्ञान का एक बीर और महत्वाकांक्षी पुरखा था । वह कुछ दिन तक जलाउहीन के समय में दिल्ली का सेनानायक भी रहा^१ । बाद में सैयद नासिर की मृत्यु के उपरान्त उसे हिस्सार की जागीर प्राप्त हुई । उसने अपने पुत्र मुहम्मदवां तथा ताजवां को हिस्सार से बाहर निकाल दिया । बाद में इन दोनों ने क्रमशः भूभूमि तथा फतहपुर में अपनी जलग रिवास्तें कायम कीं । इसी ताजवां का पुत्र फतहवां फतहपुर का पहला नवाब हुआ । इसके बाद क्रमशः जलालवां, दीनवां, नाहरवां, फदनवां, ताजवां, महमदवां, जलफवां, दीनतवां, ताहरवां आदि नवाब हुए । इन नवाबों के बाद फतहपुर पर क्रमशः शिवसिंह शेखावट तथा ठाकुर तारुलसिंह शेखावट का अधिकार हुआ । इस तरह जलफवां फतहपुर का आठवां कायमवानी नवाब था । वहां नवाब जलफवां की मूर्ति के ऊपर एक बड़ा गुम्बददार आलीशान मकबरा बना हुआ है जो आज भी उनके नाम का स्मरण दिलाता है । "क्यामवारासा" ग्रंथ के आधार पर कायमवानी नवाबों का वंश-वृक्ष संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है^२:-

१- जलफवानु भूभार मुछार । है अति सुभट सिपहि सातार ॥

(क्या लिखवां देवतदे", पृ०-७)

२- "कायमवानी" के पूर्व कवि ने अनेक चौहान राजपूत राजाओं का उल्लेख भी किया है, किन्तु उनका विवरण यहां जनावरक है ।

श्यामशा (करमबंद) १

ताबशा	महमदशा	कुतुबशा	इस्तिमाराशा	मोमनशा					
फतहशा	रुकाशा	फज्जदीशा	मोमनशा	इकलीमशा	पहाड़ाशा				
जलातशा	हैबतसाह	महमदसाह	जसदशा	दरियासाह	साह	सेख	जलोशा	संग्राम	हेसमता
					मन- सूर	साह		सूर	
दीलतशा	अहमदशा	गुरशा	फरीदशा	नियाम	पहाड़ाशा	दाऊद	ताडशा	अरनन	महमदसाह
				शा		शा		शा	
महहरशा	होवनशा	बाबिदशा							
फदनशा	बहादरशा	दितावरशा							
तख्तशा	फिरोजशा	दरियाशा							
महमदशा	महमूदशा	शेरशा	जमातशा	जलातशा	मुबफुकर	हैबतशा	हनीजशा		
					शा				
जसफशा	इब्राहीम	शा	सरमस्तशा						
दीलतशा	श्यामशा	शरीफशा	जरीफशा	फकीरशा					
	(बानकवि)								
ताहरशा	मीरशा	बासफशा							
	+	+	+						

१- देखिए विशेष विस्तार के लिए श्री अमरचंद नाहटा द्वारा सम्पादित "श्यामशा-
राशा" - पृ० १३ से ३२ तक, १९५१ ई० ।

इस तरह फतहपुर पर सं० १०५८ से सं० १७८७ अर्थात् १७९ वर्ष तक इन चौहान नवाबों ने राज्य किया । उनकी बड़ी धाक थी । उनमें भी बतफर्वा सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ । कवि ने अपने "बतफर्वा की पैड़ी" ग्रंथ में बतफर्वा के अनेक मुद्दों एवं उसकी वीरता का बड़े विस्तार से वर्णन किया है^१ । फतहपुर के ये सभी नवाब अपनी उदारता एवं विद्या-प्रेम के लिए विख्यात थे । उनके द्वारा दान में छोड़ी हुई गोबर भूमि इनकी प्रजा-हितैषिता की साक्षी है । यहाँ की सुप्रसिद्ध बाबड़ी विद्यार्थियों की सुविधा के लिए बनवाई गई बताई जाती है । यहाँ के नवाबों ने शिक्षाणालयों, चिकित्सालयों आदि के निर्माण में बड़ा उत्साह दिखाया । नवाब दफनर्वा की पुत्री कवयित्री ताज का नाम कृष्ण के भक्तों में प्रसिद्ध है । उसकी अनेक रचनार्थ प्राप्त हैं । संत दादूदास के प्रमुख शिष्य सुन्दर दास प्रधानतया फतहपुर में ही निवास करते थे । सीकर के चारण कवियों में कृपाराम उड़िया, दुर्गादत्त, बारहट, गोपालदास कविया, नगराम उड़िया, नन्ददान कविया, दत्तराम कविया, रामनाथ रतनू, हरदान-कविया, रामदयाल कविया, मानदान कविया, आदि कुशल नीतिकार और इतिहासवेत्ता हुए हैं । इनके अतिरिक्त रामगढ़, बख्तरामपुर, मलसीसर, कूण्डलौद, गिठाऊ, मंडावा, भुंभानु, मुकुन्दगढ़, नवलगढ़, मण्डौला, चिड़ावा आदि में भी अनेक कवि हुए हैं । कूण्डलौद के भूतपूर्व ठाकुर शिव-सिंह शेषावट स्वयं एक अच्छे कवि एवं कवियों के आश्रमदाता थे । इनका "प्रीतिकलिका"^२ नामक एक बृहत् प्रेमाख्यान प्रसिद्ध है । शेषावाटी के "ख्यात"(एक प्रकार का गीति-नाट्य) के रचयिताओं में नानूताल राणा, उजीरा, प्रमदुलभोजक, भगतीराम निरमल(फतहपुर), पहतादीराम पुरोहित

१- देखिए विस्तार के लिए श्री अमरचंद नाहटा द्वारा सम्पादित "जयामल राणा" का परिशिष्ट वा "हिन्दुस्तानी", भाग १५, अंक, सन् १९४६- "बतफर्वा की पैड़ी" शीर्षक लेख का पाठ ।

२- देखिए विस्तार के लिए "राजस्थानीभारती", भाग ७, अंक १, मई १९५१ ई०, श्री हीरासाह मिश्र का "सुकवि शिवसिंह शेषावट और उनकी प्रीतिकलिका" शीर्षक लेख ।

(फतहपुर), डाकुराम ब्रजवाल, धनराज सोनी, घूमरमल आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके बनाए हुए "ख्यातों" का किसी समय बड़ा महत्व था। आज भी इन "ख्यातों" का अभिन्न करने वाली कुछ मण्डलियाँ यत्र-तत्र वर्तमान हैं।

समय -

जानकवि के जन्म तथा मृत्यु के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। उनकी समस्त रचनाओं के रचना-काल, शाहेज्जत की प्रशंसा तथा पिता अलफ़्ज़ा की जन्म-मृत्यु की तिथि के आधार पर उनके काल का अनुमान लगाया जा सकता है। इनकी सर्व प्रथम रचना सं० १६६९ की "कथा कबलावती" तथा अंतिम रचना सं० १७२१ की "अफ़र-नामानीसेरवा" है। इस तरह ५२ वर्ष के दीर्घकाल तक जानकवि ने साहित्य-सेवा की। इनके पिता अलफ़्ज़ा का जीवनकाल सं० १६२१ से सं० १६८३ तक है^२। इन दोनों दृष्टियों से अनुमान किया जा सकता है कि यदि इनका जन्म प्रथम रचना के १७-१८ वर्ष पूर्व या पिता के जन्म से (बड़े भाई दीततवा के पैदा होने के बाद) लगभग ३० वर्ष बाद माना जाय तो उसे सत्रहवीं शताब्दी के मध्य या सं० १६५० के आस-पास स्थिर किया जा सकता है। अंतिम ग्रंथ के रचना-काल के आधार पर इनके देहावसान के संबंध में केवल इतना कहा जा सकता है कि इनकी मृत्यु अठ्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के मध्य या इसके आस-पास हुई होगी। इस तरह वे लगभग ७० वर्ष से अधिक जीवित रहे होंगे। जानकवि ने अपनी कुछ रचनाओं में शाहेज्जत जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब की

१- देखिए विस्तार के लिए "साधना" वार्षिक प्रकाशन १९६१-६२ ई०, प्रो० मनोहर शर्मा का "सेबावाटी की साहित्यिक प्रगति" शीर्षक लेख।

२- सोलह सै ईकईस में, उनमें दो बाँण।

कीये उवले बबामवाँ, चकमे चौदाँण ॥

संवत् हुवा तियासिया, सेषी पदवाँण।

बैकुंठ पडुवे अतिफवाँ, छाड-दिया जहाँण ॥

प्रशंसा भी की है, जिनके राज्य-काल इतिहास के आधार पर क्रमशः सं० १६६२ से १६८४ तक, सं० १६८४ से १७१५ तक तथा सं० १७१५ से १७६४ तक थे । इससे विदित होता है जानकवि ने तीनों का राज्य देखा या और वे काव्य रचना करते हुए दीर्घ-काल तक जीवित रहे थे ।

गुरु :

जानकवि के गुरु हांसी निवासी शेख मुहम्मद चिरती थे । इनके चार पुत्र - कुतुबजमात, कुतुबपुरहान, नूरुद्दीन तथा मनवर थे । इन्होंने कथा कबलावती^१, कथानखदमयती^२, कथा छीता^३, कथा पुहुपवरिणा^४, कथा खिज्जा देवतदे^५ आदि अनेक प्रेमाख्यानों में इनका स्पष्ट उल्लेख किया है । इनके अतिरिक्त अपने "कथा बुद्धिसागर" में भी इन्होंने अपने गुरु का नाम, शेख मुहम्मद चिरती, निवास-स्थान, हांसी तथा उनके चार पूर्वज कुतुबों का नामोल्लेख किया है ।

शेख महमद पीर हमारी । जाकौ नांव जगत उजियारी ॥
 रोये उस पर बरसत नूर । करामात जगु भई हबूर ॥
 ज्यारत करन फिरस्ते जावत । मनुष्यनि की को बात बतावत ॥
 कुतुब भये इनके कुतुब चारि । तिनका जानत सब संसार ॥
 पहिले जानत कुतुब जमात । जेहि तन तक्यो सु भयो निहात ॥

१- पीर शेख महमद है चिस्ती । नदन नूरि भाजातु है फिस्ती ॥
 रहन गांव जानहु तिहि हांसी । देखत कटि बिल की फांसी ॥८॥

+ + + +

पहिले कुतुब जमात, दूसर हैं पुरहान ।
 नाव जाहि जीजाद परम, तबे बिल पुरहान ॥
 तीसर जानहु नूरदी, चतुर मनवर हेर ।
 सभ जग मैं बिनकी फिरी, कुतुबपनै की रेर ॥

२- चौ० -२ । ३- चौ० -२ । ४- चौ० -४ ।

५- चौ० - १ ।

दूजे भये कुतुब बुरहान । प्रगट्यो जाको नांव जिहान ॥
 कुतुब मनवर पावै भये । बिनकी जाव छपति नये ॥
 कुतुब नूरदी नूरबहान । प्रगट भये जगु जैसे भांन ॥
 हांसी में इनकी बिश्राम । ज्यारत किये सर मन काम ॥

(बी० -६)

वस्तुतः इन ग्रंथों में जहाँ कहीं भी कवि ने अपने परिवार की वर्णन किया है वहाँ शाहेबख्त के रूप में जहाँगीर और शाहजहाँ का भी परिचय दिया है जिससे निश्चित होता है कि इनके गुरु शेख मुहम्मद बिरती का समय जहाँगीर के शासन का अंतिम एवं शाहजहाँ के शासन का आरम्भिक समय रहा होगा ।

शिक्षा-दीक्षा तथा ज्ञान:-

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, फतहपुर का पूरा नवाब घराना ही शिक्षा-प्रेमी एवं विद्वानों का आश्रयदाता था । इसलिए जानकीजी को जानीपार्वन चाची के रूप में अपने परिवार से ही मिलता । कहा जाता है कि नारी-रत्न कवयित्री "ताज" की शिक्षा एवं संग से जानकीजी के हृदय में आत्मकाव्य में ही कविता के संस्कार अंकुरित हो गये थे । "ताज" जलफख्खी के पितामह नवाब ताजखान (द्वितीय) की सहोदर बहन थीं । उनकी जन्म रचनाएं प्राप्त हैं । उनमें से "बीबी बांदी का भगड़ा" श्री अमरचन्द्रनाहटा द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ से प्रकाशित हो चुका है । अपनी शादी के अनन्तर ये कृष्ण की अनन्य उपासिका हो गई थीं । ताज की निम्नलिखित भक्ति पूर्ण संतिकाव्य अति प्रसिद्ध हैं -

सुनी दित जानी मेरे दित की कहानी तुम,
 हरक की बिकानी बदनामी हो सहुंगी मैं ।
 देव पूजा ठानी मैं नमाज हूँ भुजानी,
 तबे कलमा कुरान सारे गुनन गहुंगी मैं ॥

स्वामता सलोना सिर ताज पाग कुल्हेदार,
तेरे मेह दाग में निदास हूँ दहूंगी मैं ।
नंद के कुमार कुरबान ताण्णी सूरत पै,
हूँ तो मुगलानी हिन्दुबानी हूँ रहूंगी मैं ॥

जान के बड़े भाई दीलतसा का लिखा हुआ मैथिल-ग्रंथ अनूप
संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में हस्तलिखित रूप में अब भी सुरक्षित है ।

जान बागु कवि थे । उन्होंने अपने कुछ ग्रंथों की रचना २,
२॥ या ३ पहर में, कुछ की २ या ३ दिन में और कुछ की ९, १० या
१२ दिन में करने का उत्प्रेष किया है । इस तरह बड़ी से बड़ी रचना
में भी उन्होंने १२ दिन से अधिक नहीं लगाए । फे परशुराम चतुर्वेदी
लिखते हैं कि "इस कवि की विशेषता इसकी रचनाओं की पंक्तियों की
दुतगामिता में देखी जा सकती है । जान पड़ता है कि इसकी प्रत्येक
पंक्ति तत्कालीन अपने आप बनती चली गई है, न तो इसे इसके लिए
कुछ सोचना पड़ा है और न कोई परिश्रम ही करना पड़ा है । कथानक
की रूपरेखा इस कवि के केवल संकेत मात्र से ही भरती चली जाती है और
कुछ कास में एक प्रेम-गाथा प्रस्तुत हो जाती है । फिर भी इसकी
रचनाएँ कोरी तुकबंदियाँ नहीं कही जा सकतीं । उनके बीच-बीच में
कुछ ऐसी सरस पंक्तियाँ आ जाती हैं जो किसी प्रौढ़ एवं सुन्दर काव्य
का अंग बन जाती हैं और उनकी संख्या किसी प्रकार कम भी नहीं कही
जा सकती ।"

जानकवि का अध्ययन विज्ञान एवं अनुभव परिपक्व था । उन्होंने
सभी पूर्व प्रचलित तथा समसामयिक साहित्यिक धाराओं के विचार
अपनाए हैं । सूफी तथा असूफी कवियों की प्रेम-पद्धति, सिद्ध तथा
नाबख्शियों की योग-साधना, संतों की दार्शनिक एवं नीति पूर्ण

उपदेशात्मक पद्यति, रीतिकासीन कवियों की गुंगारिक, मुक्तक, नीतिपरक तथा काव्यशास्त्रीय पद्यति सभी को अपनाया है। इनकी रचनाओं में भरित या प्रेमात्मानक काव्यों के अतिरिक्त गुंगारिक, नीतिपरक-उपदेशात्मक, काव्यशास्त्रीय, ऐतिहासिक, कामशास्त्रीय तथा वैष्णव, वार्ता, संगीत, रत्न-परीक्षा तथा अन्य विषय सम्बन्धित मुक्तक और प्रबन्ध ग्रंथ हैं जिनकी कुल संख्या ७८ है। इनकी प्रेम-सम्बन्धी रचनाएँ बहुत ही सरस तथा जीवपूर्ण हैं। इनमें अधिकांश गुंगार रसात्मक हैं। निरवयव ही ज्ञान सहृदय थे। प्रेमात्मान तिवने वाले हिन्दी कवियों की परम्परा में इनका विशिष्ट स्थान है। एक कवि द्वारा इतने अधिक प्रेमात्मानक काव्यों की रचना होना हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की बात है। ग्रंथ संख्या तथा विविधता की दृष्टि से जानकवि को हिन्दी के आत्मानक काव्यों के रचयिताओं में प्रथम स्थान दिया जा सकता है^१। वर्णन की स्वाभाविकता, सजीवता तथा कथा-प्रवाह की धारावाहिता द्वारा पाठक का ध्यान आकर्षित करने की जो कला-कामता एक कहानीकार में होनी चाहिये वह इनमें पूर्ण रूप में विद्यमान थी।

जानकवि बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। काव्य-मर्मज्ञता के साथ-साथ इनकी संगीत, ज्योतिष, वैष्णव, भूगोल, कामशास्त्र आदि विविध विषयों का ज्ञान भी उज्ज्वलकाटि का था। वे हिन्दी, अरबी, फ़ारसी के अतिरिक्त संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे इसका प्रमाण इनके संस्कृत ग्रंथों के अनुवादों से मिलता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों और संस्कृतियों के विभिन्न ग्रंथों का इनका अध्ययन अत्यन्त विस्तृत था। इनकी भाषा अत्यन्त मधुर तथा प्राञ्जल है। इतनी सरस और शुद्ध भाषा का प्रयोग बहुत कम कवियों में मिलता है। इनकी अपनी मौलिकता पर गर्व है -

मयन ग्रंथ करि हैं जो कोई । जाकी उक्ति न कहि है सोई ॥

(कथा कबलावती) ।

दुर्भाग्य से जानकवि की कृतियों का अभी तक पूर्ण परिचय अधिक व्यापक रूप में नहीं हो सका। वस्तुतः इनकी समस्त रचनाएँ प्रकाश में आ जाने पर ही हम इनके महत्व का यथार्थ अनुमान कर सकेंगे।

१- "हिन्दुस्तानी" (भाग १५, अंक २) तथा "राजस्थान-भारती" (भाग १, अंक १) में श्री जगरनन्द नाहटा का कृपाः "कविवर ज्ञान और उनका कामधारासी" और "कविवर ज्ञान और उनके ग्रंथ" शीर्षक लेख ।

कृतियाँ

प्राप्त-कामग्री :-

जानकवि के गंवं हस्तलिखित तथा मुद्रित दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं । नीचे विभिन्न संग्रहालयों या पुस्तकालयों में प्राप्त प्रतियों का क्रम से विवरण दिया जा रहा है ।

१- हस्तलिखित प्रतियाँ

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग की प्रतियाँ :-

जानकवि राजस्थान के निवासी थे । अतः उनकी समस्त रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों में उपलब्ध हुई हैं । जुलाई सन् १९४४ ई० में डा० धीरेन्द्र वर्मा ने श्री अगरबन्द नाहटा की विशेष सहायता से बीकानेर के एक महानुभाव के पास से जानकवि के ७० ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ हि० ए०, प्रयाग में मंगवाई । ये सभी प्रतियाँ एकेडेमी द्वारा खरीद ली गई हैं । पहले इन सभी ग्रंथों की एक ही बिन्दु बंधी सीधी थी, बाद में वे अलग कर दिये गए । जानकवि के ग्रंथों की इन प्रतियों के साथ एक अन्य कवि अहमद के दो ग्रंथ - मोहिनी तथा विषोय-सागर - भी बंधे हुए थे । इन ग्रंथों का जानकवि से कोई संबंध नहीं है । एकेडेमी में ये हस्तलिखित प्रतियाँ बर्थावत सुरक्षित हैं, किन्तु शीघ्र ही उनके प्रकाशित होने की सम्भावना है । प्रस्तुत लेखक ने इनका पूर्णरूप से उपयोग किया है । वहाँ सुरक्षित रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :-

१- कथा कवलावती २- कथाकलावती ३- भावसति

४- सिंगारसति ५- विरहसत ६- पैमुनामा ७- कथा कनकावती ८- कथा कौतुहली ९- रसकोण १०- कथाकामलता ११- कथा सतवती १२- कथा सीतवती १३- कथा पुहुपवरिष्ठा १४- कथा रूपमंजरी १५- कथा रतनमंजरी (अपूर्ण) १६- कथा अरदसेर पतिसाह १७- कथा रतनावती १८- कथा

बलुकिया विरही १९- कथा बन्धुसेन राजा सीतनिधान २०- कथा कामराजी
का पीतमदास २१- ग्रंथ शैलमज्जू २२- कथा मधुकर मातली २३- कथा छीता
२४- कथा कुलवती २५- संतनावा २६- पैमसागर २७- विरहीकी मनोरथ २८- कथा
मोहनी २९- कथा विजुवा देवलदे ३०- वैदकसत पंदनावा ३१- शिवासागर
३२- कथा तमीम अन्तारी ३३- कथा कर्तदर ३४- कथा निरमल ३५- कथा छवि-
सागर ३६- सिंगार तिलक ३७- रसतरंगिनी ३८- भावकलोल ३९- विमोहसागर
४०- कथा नलदम्यती ४१- कथा सुभटराज ४२- पंदनावा लुक्मान ४३- जफरनामा-
नीसरवा, ४४- बरवा ४५- जादरितुन्दरवाचंघ ४६- पर्वगम जादरितु वर्नन
४७- पाहन परीक्षा ४८- चेतन नामा ४९- शिवा ग्रंथ ५०- सुधासिखा ५१- बुधि-
दाहक ५२- बुधिदीप ५३- बृंष्टनावा ५४- दरसनावा जुहुल ५५- बलकनावा
जुहुल ५६- दरसनावा ५७- बारहमासा पुनिंगण्ड ५८- वर्ननामा ५९- बांदी-
नामा ६०- बाजनामा ६१- कभूतरनामा ६२- गूढग्रंथ ६३- देसावली ६४- उत्तमसज्ज
६५- सवैया ६६- कंदपकलोल ६७- मानविनोद ६८- बारहमासा ६९- नाममाला
अनेकादी ७० सवैयाग्रभूतनाह ।

अन्य संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की प्रतियां:-

इसमें जानकवि के छः ग्रंथों- कथा सतवती, कथामोहनी, ग्रंथ
शैलमज्जू, कविबल्लभ, मदनविनोद तथा रसकोष की हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध
हैं जो कि बीकानेर नरेश के लासगढ़ पैलेस में हैं, पर उनकी व्यवस्था अब ठीक
नहीं है । ये प्रतियां सम्भवतः बीकानेर ट्रस्ट को दान मिलने वाली हैं । यहाँ
प्राप्त कवि बल्लभ तथा मदनविनोद के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों की प्रतियां एकेडेमी
में भी हैं ।

अथ जैन ग्रंथालय, बीकानेर की प्रतियां:-

यह बीजगरबन्द नाहटा का व्यक्तिगत संग्रहालय है । इसमें जानकवि
के ९ ग्रंथों - कथा सतवती (अपूर्ण), कथा मोहनी, ग्रंथ बुधिसागर, कायमरासी,
अतिफला की पैड़ी, वैदकमति, शिवासागर, पंदनामा तथा मदनविनोद (अपूर्ण),

की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। इनमें बुद्धिसागर, कायमरासो तथा जलिफर्वा की पैड़ी के अतिरिक्त शेष सभी प्रतियाँ उपर्युक्त दोनों संग्रहालयों में मिलती हैं।

राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रतियाँ:-

यह राजस्थान सरकार का प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का बहुत बड़ा संग्रहालय है। इसकी अनेक शाखाएँ --जयपुर, बीकानेर, जयवर, कोटा, टोंक, बिलौड़ा तथा उदयपुर में फैली हैं। इसमें जानकवि के ७ ग्रंथ - कथा रतनावती, कथा सतवती, कथा मोहनी, बुद्धिसागर, मदनविनोद, कवि बल्सभ तथा जलिफर्वा की पैड़ी- की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं^१। इन प्रतियों की अवस्था बहुत अच्छी है।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा कार्यालय, जयपुर की प्रतियाँ:-

इसमें जानकवि के चार ग्रंथ - कथा रतनावती, कथा सतवती, कवि बल्सभ, तथा मदन विनोद हस्तलिखित रूप में हैं। ये सब स्व० पुरोहित हरिनारायण द्वारा प्रदत्त हैं। स्व० पुरोहित जी का प्राचीन हिन्दी की हस्तलिखित पोथियों का निजी संग्रह आजकल इस संस्था को दान में मिल गया है। इसका कार्यालय महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में है। किन्तु उपर्युक्त प्रतियों की अवस्था बहुत अच्छी नहीं है।

शेखामाटी (जयपुर) राज्य, दुण्डतोद की प्रतियाँ:-

यहाँ एक महात्मा जी के संग्रहालय में जानकवि के छः रचनायें - कथा रतनावती, कथा सतवती, कवि बल्सभ, मदनविनोद, रसतरंगिनी तथा संगीत गुनदीप(अपूर्ण) --की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। अभी ये सूची-बद्ध नहीं हैं। "संगीत गुनदीप" अभी हाल ही में य० बीलास जी मिश्र को देखने को मिलता है^२।

१- इनमें से कथा सतवती तथा कथा मोहनी की प्रतिलिपियाँ प्रागुत लेखक के पास हैं।

२- "वरदा" वर्ण ५, अंक ३, जुलाई १९६२ ई०, "कवि जान विरचित एक अज्ञात ग्रंथ "संगीत गुन दीप" शीर्षक लेख।

दुःख है कि इस प्रति के अंत के कुछ पन्ने नहीं हैं । बहुत सम्भव है कि इस संग्रह में ठीक से नज़रबाना होने पर जानकवि के कुछ नवीन ग्रंथों की प्रतियां मिलें ।

अन्य स्फुट प्रतियां:-

इनके अतिरिक्त राजार्य शाखा भण्डार, बीकानेर में "रसतरंगिणी", श्री पूज्य संग्रह तथा जिन वरिष्ठ सूरि भंडार, बीकानेर में "शान्दीप", जयचन्द जी भण्डार, बीकानेर में "शान्दीप" तथा "रसतरंगिणी" (अपूर्ण), दान्तागर भण्डार (बड़ा भण्डार), बीकानेर तथा गुलाब कुमारी लाइब्रेरी कलकत्ता में "माहन परीक्षा", सरस्वती भण्डार, उदयपुर में "रसमंजरी", कविराज मोहन-सिंह संग्रह, उदयपुर में कथा सतवती, दिगम्बर जैन भण्डार, दिल्ली, पूना विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के संग्रहालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय^१ में "बुद्धिसागर" और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा कार्यालय, बीकानेर (पद्म निवास) में "शान्दीप" तथा "मदनविनोद" की हस्त-लिखित प्रतियां हैं । दिगम्बर जैन भण्डार, अजमेर में "अजीर्णनाश" नामक ग्रंथ की एक प्रति सं० १७०० की न्यामतर्का के नाम से श्री नाहटा को देखने की मिली थी, पर श्री नाहटा जी की इसकी प्रमाणांकता में संदेह है ।

इस तरह मुझे हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अतिरिक्त जानकवि के = अन्य नवीन ग्रंथ - बुद्धिसागर, रसमंजरी, शान्दीप, कविवत्सभ, क्यामडारिासा, जलिफर्वा की पैड़ी, मदनविनोद तथा संगीत गुनदीप—राजस्थान के उक्त विभिन्न संग्रहालयों में उपलब्ध हुए हैं । इस प्रकार जानकवि के इस समय तक ग्रंथों की संख्या ७८ तक पहुंच जाती है ।

२- मुद्रित प्रतियां

(क) क्यामडारिासा- श्री जगद्वंद नाहटा की विस्तृत भूमिका एवं टिप्पणी से समर्पकृत यह ग्रंथ राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर से सं० २०१० में प्रकाशित हुआ ।

१- क्रमांक - १२७ तथा ग्रंथांक १२२६ ।

नाहटा जी ने इसका सम्पादन अपने अभ्य जैन ग्रन्थात्म्य की एक ही प्रति के आधार पर किया है। यह एक ऐतिहासिक काव्य है।

(स) अक्षरार्था की पैड़ी :- श्री अगरबंद नाहटा ने अपने सम्पादन "अक्षरार्था" के अंत में परिशिष्ट रूप में तथा "हिन्दुस्तानी" (भाग १६, अंक ४, १९४६ ई०) में "कविबर जान रचित" अक्षरार्था की पैड़ी" शीर्षक लेख में इसका पाठ दिया है। इसका पाठ भी अभ्य जैन ग्रन्थात्म्य की एक ही प्रति के आधार पर दिया गया है।

(ग) कथा कामलता :- श्री रामचन्द्र टण्डन ने हि० ८०, प्रयाग की प्रति के आधार पर इसका पाठ "हिन्दुस्तानी" भाग १५, अंक, १, १९४५ ई० में दिया है।

रफ़्त उल्लेख

(अ) पुस्तकों अथवा शोध-ग्रंथों के उल्लेख :-

सूफ़ी-काव्य-संग्रह - परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित तथा हि० सा० स०, प्रयाग से प्रकाशित इस ग्रंथ में जानकवि पर आलोचनात्मक टिप्पणी तथा उनके पाँच ग्रंथों --- कथा कनकावती, कथा कामलता, कथा मधुकर मासती, कथा रतमावती तथा कथा छीता--के आदि -अंत का संक्षिप्त पाठ दिया हुआ है^१।

भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा :- राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित परशुराम चतुर्वेदी के इस ग्रंथ में प्रेमाख्यान साहित्य की परम्परा में जानकवि के कुछ ग्रंथों - जैसे: कथा कनकावती, कथा मधुकरमासती आदि का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है^२।

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान :- लीकर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित जून १९६२ ई० के संस्करण में जगत सेक ने ज़ारी तथा दक्कनी के हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों

१- पु० संस्कृ.पु० १५४ से १६८ तक।

२- प्रो.संस्कृ., १९५६ ई०, पु० ११६-१४१ आदि।

के तुलनात्मक अध्ययन के साथ जानकवि के प्रेमाख्यानों का बीच-बीच में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

हिन्दी-साहित्य (भाग-२): - भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग विरम - विद्यालय से प्रकाशित इस ग्रंथ में उपर लेखक के "सूफ़ी प्रेमाख्यान्क साहित्य" निबंध में सूफ़ी कवियों के साथ बीच बीच में जानकवि का भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है^१ ।

जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य:- लखनऊ विरमविद्यालय से सं० २०११ वि० में प्रकाशित डा० सरिता शुक्ल के इस प्रबन्ध में जानकवि की जीवनी तथा उनके १५ प्रेमाख्यान्क काव्यों पर आलोचनात्मक टिप्पणी दी गई है^२ ।

हिन्दी प्रेमाख्यान्क काव्य:- चौखी मानसिंह प्रकाशन कवहरी रोड, नवभेर से सन् १९५१ ई० में प्रकाशित डा० कमल कुलश्रेष्ठ के इस शोध -प्रबन्ध में जानकवि के २१ प्रेमाख्यानों का परिचय दिया हुआ है, किन्तु समस्त परिवर्ण बहुत भ्रम-पूर्ण है^३ ।

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य:- डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसमें जानकवि के १८ प्रेम कवियों का नामोल्लेख करते हुए उन्हें मुसलमानों के प्रेमाख्यानों का प्रतिनिधि कवि कहा है^४ ।

हिन्दी साहित्य:- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने इस इतिहास ग्रंथ में जानकवि के गुरु हांसी निवासी शेख मुहम्मद की चर्चा करते हुए उनके प्राप्त ग्रंथों की संख्या सब ७० बताई है^५ ।

१- प्रसंग मार्च १९५९ ई०, पृ० २४३ से २९९ तक ।

२- पृ० १७४ से ४१५ तक ।

३- पृ० २२ से २६ तक ।

४- प्रसंग १९५१ ई०, पृ० ३० तथा १४८, हिन्दी प्रचारक पुस्तक

५- सन् १९५५ ई०, पृ० २७७, अक्षरचन्द्र कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली ।

छिताईवार्ता:- प्रधान सम्पा० रुद्रकाशिकेय तथा संपा० डा० माता प्रसाद गुप्त ने इस ग्रंथ के क्रमशः "परिचय" तथा "प्रस्तावना" में छिताईवार्ता के साथ जानकवि के "कथाछीता" का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये हैं^१।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन:- डा० सत्येन्द्र ने अपने इस प्रबन्ध में जानकवि के अभिप्रायों का यत्र-तत्र विवेचन किया है^२।

मध्ययुगीन प्रेमास्थान:- डा० रमाम मनोहर पाण्डेय ने अपने इस प्रबन्ध में जानकवि के २१ प्रेमास्थानों का संक्षिप्त जालोचनात्मक अध्ययन किया है^३।

लोक साहित्य विज्ञान:- इसमें भी डा० सत्येन्द्र ने अपने पूर्व प्रबन्ध की भाँति अभि-
प्रायों का यत्र-तत्र विवेचन किया है^४।

मात्रिक छंदों का विकास:- डा० शिव नंदन प्रसाद ने अपने इस प्रबन्ध में जानकवि के छंदों का कहीं - कहीं उल्लेख किया है^५।

सुन्दर - प्रभावती (खण्ड-१):- स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा संपादित इस ग्रंथ की प्रस्तावना में जानकवि के वा प्रयोगों का परिचय दिया गया है^६।

राजस्थान का पिछला साहित्य:- पी० मोतीलाल मेनारिया ने अपने इस ग्रंथ में जान-
कवि का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है^७।

(ब) खोज रिपोर्टों के उल्लेख:-

"राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज" भाग-१ में जानकवि के "रसमंजरी", भाग-२ में -कविवत्सभ, रसतरंगिनी, रसकोष, वेदकमलि, पाहन परीक्षा, कथामोहिनी, बुद्धिसागर, ग्रंथसैलमवनू, कायमरासा, जलिफाँदा की पैड़ी, भाग-३ में कथा सतवती, तथा भाग -४ में मदन विनीत एवं शिखा सागर के रचनाकाल, लिपिकाल, पत्र-संख्या तथा जाति - जंत के जंत दिए हुए हैं^८।

१- सं० २०१५, पृ० १२२ तथा १, ना० प्र० सभा, काशी ।

२- विनीत पुस्तक मंदिर, जागरा, १९६० ई० ।

३- मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९६० ई०, पृ० ११२, ११३ तथा २६५ ।

४- शिवलाल जगन्नाथ जागरा, १९६२ ई० ।

५- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-४, १९६४ ई० ।

६- राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकता-सन् १९४७ ई० का संस्करण, पृ० ३७ ।

७- प्र० संस्क०, १९५२ ई०, पृ० ८० से ८२ तक ।

८- भाग -१ श्री मोतीलाल मेनारिया द्वारा सन् १९४२ ई०, भाग-२ तथा ४ श्री जगर-
बन्ध नाहटा द्वारा क्रमशः सन् १९४७ तथा १९५४ ई० में और भाग-३ श्री उदयसिंह
भटनागर द्वारा सन् १९५२ ई० में सम्पादित होकर साहित्य संस्थान राजस्थान
विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित है ।

(स) पत्रिकाओं के उत्सव:-

कुछ साहित्यिक पत्रिकाओं में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्राप्त सामग्री के अनुसार जानकवि के ग्रंथों की सूचना तथा उनके परिचयात्मक लेख प्रकाशित होते रहे हैं जो निम्नलिखित हैं -

- (१) "हिन्दुस्तानी" भाग १५, अंक १, १९४५ ई०, श्री कमल कुलशेठ का "कविवान" शीर्षक लेख । इसमें जानकवि का परिचय तथा उनके ७६ ग्रंथों का वर्गीकरण है ।
- (२) "हिन्दुस्तानी" भाग १५, अंक २, १९४५ ई०, श्री जगर बंद नाहटा का "कविवर जान और उनका कायमरासो" ।
- (३) "हिन्दुस्तानी" भाग १६, अंक १, १९४६ ई०, श्री जगरबंद नाहटा का "कविवर जान का सबसे बड़ा ग्रंथ "मुद्रिसागर" ।
- (४) "हिन्दुस्तानी" भाग १६, अंक ४, १९४६ ई०, श्री जगरबंद नाहटा का "कविवर जान रचित अलिफ्ता की पैड़ी" ।
- (५) "राजस्थान-भारती"- भाग १, अंक १, अप्रैल १९४६ ई०, श्री जगरबंद नाहटा का "कविवर जान और उनके ग्रंथ" ।
- (६) "विश्ववाणी" -वर्ष ५, अंक ५, १९४५ ई०, रायत सारस्वत का "हिंदी के विष्णुत मुसलमान कविवान" ।
- (७) "सरस्वती"- भाग ४६, सप्ट १, जनवरी १९४५ ई०, रायत सारस्वत का "कविवर जान" ।
- (८) "धूमकेतु" अगस्त १९४९ ई०, शिवोत्तर दिवेदी का "हिन्दी संसार का अपरिचित कवि" ।
- (९) "प्रबुद्धभारती" वर्ष २, अंक ११, वि०सं० १९९९, श्री जगरबंद नाहटा का "कवि जहान कृत जानदीप" ।
- (१०) "राजस्थानी" भाग ३, अंक ४, अप्रैल १९४० ई०, श्री भगवदरमल्ल शर्मा का "कायमखानी नवाब अलफ्ता और उसकी हिन्दी कविता" ।

(११) "वरदा"- वर्ण ५, जंक ३, जुलाई १९६२ ई०, श्रीलास मिश्र का "कविवर
जान विरचित एक प्रकाश ग्रंथ "संगीत गुन्दीप" ।

प्रतियों की सामान्य अवस्था:-

हि० १०, प्रयाग में प्राप्त समस्त हस्तलिखित पोथियों की अवस्था प्रायः अच्छी है । सब एक में जिल्द बंधी प्राप्त होने से पोथी का प्रथम ग्रंथ "कथा रत्नमंजरी" के प्रारम्भ के ० पन्ने नहीं हैं और अंतिम ग्रंथ "नाममाता प्रेकारवी" होने से उसके अधिकांश अंतिम अंत टूटे तथा कुछ गायब है । इनके अतिरिक्त ग्रंथ तैत्तिर्यसूत्र, कथा नन्दमर्षती, कथा पुष्पपरिष्ठा, मानविनोद तथा सैषा जैसे थोड़े से अन्य ग्रंथों में एकांत पन्ने टूटने या दीमक खा जाने की बात अवश्य मिलती है, किन्तु शेष सभी प्रतियों की अवस्था बहुत अच्छी है । अन्य संग्रहालय जय्य जैन, गुवालय, बीकानेर की कथा सतर्पती तथा मदनविनोद, जयवंद जी भण्डार, बीकानेर की "रत्नमंजरी" तथा झुण्डतोद की "संगीत गुन्दीप" की हस्तलिखित प्रतियाँ अपूर्ण हैं । शेष की अवस्थाएँ अच्छी हैं । हस्तलिखित ग्रंथ-सम्बन्धी सामान्य पाठ-विकृतियों- निरवेष्ट, सवेष्ट तथा निरवेष्ट-सवेष्ट (लिपि-भ्रम, वर्ण-साम्य, शब्द-साम्य, संकेत-भ्रम, साधारण-असावधानी, भ्रम-पूर्ण-विरलेकाण, पुनरावृत्ति), स्मृति-भ्रम, क्रम-परिवर्तन, अनधिकार-सुधार आदि) आदि का भ्रम-तम मिलना भी स्वाभाविक है । थोड़े थोड़े-सी जो मुद्रित प्रतियों का अध्ययन किया गया है वे सब एक ही प्रति के आधार पर मुद्रित हैं ।

रचना-काल:-

कवि ने प्रत्येक ग्रंथ का रचना-काल प्रायः उसके अंत में दे दिया है । केवल दो ग्रंथों -कथा पुष्पपरिष्ठा तथा कथा रूपमंजरी- में उसका उल्लेख कथा के प्रारम्भ में किया है । इन्हीं के आधार पर इन ग्रंथों का रचना-काल निर्धारित किया गया है । कवि ने स्तुति के साथ जैनिक ग्रंथों में जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब की प्रशंसा की है । इससे स्पष्ट है कि कवि ने अपनी

सभी रचनाएँ बादशाहों के राज्यकाल में प्रस्तुत की^१। कुछ विद्वानों ने इन ग्रंथों में इन ग्रंथों में कवि की सर्वप्रथम रचना सं० १६६७ में रचित "रसकोष" को बताया है, किन्तु श्री जगरबंद नाहटा ने अपने सम्पादित ग्रंथ "जयाम रत्न रासा" की भूमिका में इस ग्रंथ का निवारण करते हुए इस मत का खण्डन किया है और रसकोष का रचना-काल सं० १६७६ निर्धारित किया^२। एकेडेमी की प्राप्त प्रति में भी इसका रचना-काल सं० १६७६ ही है। कवि की सर्व प्रथम रचना सं० १६६९ वा हि० सन् १०३३ की कथा कबलावती है। यद्यपि कथा कलावती का भी रचना-काल यही दिया हुआ है, किन्तु "कथा कौतुहली" में कवि ने आरम्भ में कुछ रचनाओं के रचे जाने के क्रम का उल्लेख किया है^३। इससे स्पष्ट है कि कथा कबलावती की रचना कवि ने कथा कलावती से पूर्व की थी। अतः कवि की सर्व प्रथम रचना "रसकोष" न होकर कथा कबलावती है और अंतिम रचना सं० १७२१ की "अफरनामा नौसेरवां" है। कवि के लगभग ५०-६० ग्रंथों

१- जहाँगीर का राज्य-काल सं० १६६२ से १६८४, शाहजहाँ का सं० १६८४ से १७१५ तथा औरंगजेब का सं० १७१६ से १७६४ तक था।

२- यद्यपि श्री जगरबंद नाहटा ने "हिन्दुस्तानी" भाग १५, अंक २ में "कविवर ज्ञान और उनका काव्यसागर" नामक अपने लेख में "रसकोष" को ही सर्व प्रथम रचना स्वीकार किया है, किन्तु "जयाम रत्न रासा" की भूमिका में इसका निराकरण इन शब्दों में किया है-

"राजत सारस्वत द्वारा प्राप्त सूची में "रसकोष" का रचना-काल सं० १६६७ लिखा हुआ था और उसी के आधार से "राजस्थान-भारती" में प्रकाशित अपने लेख में, मैंने उसे सर्वप्रथम रचना बताया था। परगुराम चतुर्वेदी ने "सूफ़ी-काव्य-संग्रह" के पृष्ठ १३९-४० में उसी का अनुमान किया है। पर भी लेख के अपने के परचासु सं० १६८४ जेष्ठ वदी में कवि भीखन की फतहपुर में लिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में अवलोकन में आई। जिससे इस ग्रंथ का वास्तविक रचना-काल सं० १६७६ सिद्ध होता है।"

३- कवि पहिले कथा कवी कबलावती। पाछे कही पुरंदररत्नति ॥

भाजी बहुरा बात-कत्तावति। जमहि बुनु कौतुहल गावति ॥

के रचनाकाल इस ५३ वर्ण के दीर्घ रचनाकाल के अंतर्गत जा जाते हैं । शेष लगभग २० ग्रंथों में रचना-काल के उल्लेख नहीं मिलते । ये रचनाएँ बहुत छोटी हैं । इनका लिपिकाल, ग्रंथ-क्रम-संख्या, विषय आदि की दृष्टि से क्रम-निर्धारण किया गया है । कवि ने अपने अधिकांश ग्रंथों में दो, डार, तीन पहर या एक, दो, तीन दिन या नव, दस, बारह दिन में उनके रचने की अवधि भी दे दी है^१ । इससे सिद्ध होता है कि वे सचमुच जागू कवि थे ।

लिपिकाल तथा प्रतिलिपिकार:-

एकेडेमी से प्राप्त सभी ७० हस्तलिखित प्रतियों के अंत में प्रायः उनके लिपि-काल तथा प्रतिलिपिकार का नाम दिये हुए हैं । उससे इनका लिपिकाल सं० १७७७ से सं० १७८४ के बीच तथा इनके प्रतिलिपिकार कोई "फतेहबंद ताराबंद काडीझानिया" हैं । राजस्थान से प्राप्त विभिन्न प्रतियों की प्रतिलिपियाँ १७वीं, १८वीं या १९वीं शताब्दी की हैं और लक्ष्मीबंद, भीखन, चकवासरे, भुवन विशाल मुनि, फतेहबंद आदि द्वारा लिपिबद्ध की गई हैं । कुछ साधारण या छोटे-ग्रंथों का लिपि-काल नहीं दिया हुआ है । संभवतः ऐसा इसलिए है कि एक पोथी में बंधी होने से और छोटी रचनाएँ होने से प्रतिलिपिकारों ने जानबूझ कर इनके लिपिकाल का उल्लेख करने की ओर उतना ध्यान नहीं दिया ।

ग्रंथों का नामकरण:-

चरित-काव्यों में ग्रंथों का नामकरण कवि ने अधिकतर नायि-काव्यों के नाम पर किया है, किन्तु कुछ काव्य, जैसे- "कथा कलंदर", "कथा-तमीम अंसारी", "कथा जरदखेर पतिसाह", "कथा सीतनिधान", "कथा सुभटराज", "कथा बलुकिआ विरही" का नाम नायकों के नाम पर रखा है । शेष ग्रंथों का नामकरण कवि ने प्रायः उनके विषय के अनुसार किया है ।

१- देखिए इसी लेखक का "हिन्दुस्तानी" भाग २४, अंक ४, जनवरी-दिसम्बर १९६१ ई० में "जानकवि और उनकी रचनाएँ" शीर्षक लेख ।

बारहमासा, बारहमासा कुर्निंग, दरसनावा, दरसनावा बुद्धल आदि में यद्यपि नाम साम्य है, पर उनके वर्ण-विषय तथा छंद भिन्न हैं और ग्रंथ-अलग-अलग हैं ।

मौलिक तथा अनुदित ग्रंथ:-

जानकवि ने अपने चार काव्य-शास्त्र-विषयक ग्रंथ- रसकोष, रसतरंगिणी, सिंगार तिलक, रसमंजरी तथा एक विविध विषय-वर्तित "ग्रंथ-नाममाला अनेकार्थी" को संस्कृत से हिन्दी भाषा में और नीति-साम्बन्धी दो ग्रंथों -पंदनावा एवं जफरनामा- को क्रमशः सुकमान तथा नीशेरवां कवि के तुरकी ग्रंथों से हिन्दी में अनुवाद किया है^१ । इनके अतिरिक्त सेवा सभी इनकी मौलिक रचनाएं हैं ।

ग्रंथ-विस्तार:-

जानकवि का सबसे बड़ा ग्रंथ "बुद्धिसागर" लगभग ४०० पृष्ठों का तथा सबसे छोटा ग्रंथ "संकेता वा भूतनाह" है । ग्रंथ बुद्धिसागर, भारत में पंचतंत्र नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का स्वतंत्र अनुवाद-सा है । इसमें अनेक कथाओं का संग्रह है । एकेडेमी की प्रतियों में "कथा मधुकरमातली" ग्रंथ के ऊपर "कथा मधुकर मातली वा बुद्धिसागर" लिखा है, किन्तु लगता है वहाँ "बुद्धिसागर" नाम प्रतिलिपिकार की भूल से लिख उठा है । इस काव्य से इसका कोई संबंध

१-(क) करी सिंगार तिलक की, टीका कहि कवि जान ।

संस्कृति भाषा भये, हूँ सब की जासान ॥ (सिंगारतिलक)

(ख) जबहि नाम माला करी, अनेकार्थी नाम ।

संस्कृत तै भाषा रही, सुगम भई अभिराम ॥ (नाममाला अनेकार्थी)

(ग) हिंद की भाषा में करी, तुरकी से कहि जान ।

ये सिखा हैं सुकमान की, नीकै राजाहुं जान ॥ (पंदनावा)

नहीं है। इसके अतिरिक्त शेष ग्रंथों में से १-३ लगभग डेढ़ सौ, १-४ लगभग १००, ६-७ लगभग ६० या ७०, २०-२२ लगभग २० या ३०, ११-१२ लगभग १० तथा शेष लगभग ५-४-३ या २ पृष्ठों तक के हैं। इसका निदरणा भागे प्रत्येक ग्रंथ के परिचय के साथ दिया गया है।

ग्रंथों के विषय:-

समस्त ग्रंथों के विभिन्न विषयों को ध्यान में रखते हुए बान बहुत कवि जात होते हैं। उन्होंने अपने समस्त ग्रंथों के प्रारम्भ में नवी, मुहम्मद, अल्ल निर्जन, हजरत, करतार, चारवार (जवाबर, उमर, उसमान एवं अली साह) ईश्वर, निर्द्वि, जगदीश, रवि, शशि, पवन, नीर आदि की स्तुति करते हुए परम्परानुगत शाहेबखत जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेब की प्रशंसा की है। इसके बाद उन्होंने अपने पूर्व एवं वर्तमान की प्रचलित समस्त साहित्यिक धाराओं एवं परम्पराओं के विषयों को अपनी रचनाओं के विषय बनाये। सिद्धों, नायों, संतों, सूफियों, असूफियों तथा रीतिकालीन कवियों आदि की विविध रचना-पद्धतियों को अपनाते हुए बहुत से चरित या प्रेमाख्यानक काव्यों और अनेक शृंगारिक मुक्तक, नीति या उपदेशात्मक, काव्य-शाल्मीय, ऐतिहासिक, वैद्यक, संगीत, आख्यानक, कामशास्त्री, रत्नपरीक्षा-विषयक तथा अन्य विविध विषय सम्बन्धी ग्रंथों की रचना की। उन्होंने अपने समय तथा के पूर्व की प्रचलित कई कथाओं को लेकर अपने चरित-काव्यों की रचना की है जिससे इनकी अनेक कथाओं में कथा की प्रावीण्यता की दुहाई है। फिर भी विविध विषयों की दृष्टि से कवि का अध्ययन बहुत विज्ञात एवं अनुभव परिपक्व था। इतने अधिक विषयों से सम्बन्धित विविध ग्रंथों की एक साथ रचना कोई साधारण बात नहीं है।

चरित-काव्य:-

बानकवि के २८ चरित-काव्यों का मुख्य विषय प्रेम कहानियाँ हैं इसलिए इन्हें प्रेमाख्यानक -काव्य कहना विशेषा युक्ति संगत है। इन प्रेमाख्यानक -काव्यों का सबसे महत्वपूर्ण विषय उनकी प्रेमाभिव्यक्ति में है।

१- दे० विस्तार के लिए, अध्याय २।

सभी काव्यों का केन्द्र विषय-प्रेम होने से इनका सारा कथानक इसी पर अपनी परिधि बनाता है । कवि ने अपने समस्त प्रेमाख्याक-काव्यों में प्रेम के विभिन्न रूपों एवं परिस्थितियों का चित्रण करते हुए प्रेम का सच्चा रूप निर्धारित किया है । इनके समस्त प्रेमाख्याक-काव्यों को बार भागों में विभाजित कर सकते हैं:-

(क) दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यान ।

(ख) स्वच्छन्दता परक प्रेमाख्यान ।

(ग) सत परक प्रेमाख्यान ।

(घ) अध्यात्मपरक प्रेमाख्यान ।

दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत नायक के प्रेम का उदय गुण-अवस्था, प्रत्यक्षा-दर्शन, चित्र-दर्शन या स्वप्न-दर्शन से होने पर वह नायिका को-प्राप्त करने के लिए अनेक कष्ट एवं जटिल परिस्थितियों को भोगता हुआ प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है । इनके जीवन का अंतिम लक्ष्य केवल नायिका की प्राप्ति-मात्र है । नायकों के साथ कभी-कभी नायिकाएँ भी प्रयत्न करते हुए दीख पड़ती हैं । अंत में दोनों के मिलन में कभी कथा पूर्ण हो जाती है तो कभी दोनों के शीघ्र विवाह संबंध के अनन्तर कहानी का विकास होता है और दोनों के अनेक कष्ट सहने के बाद पुनः मिलन में कथा पूर्ण होती है ।

स्वच्छन्दतापरक प्रेमाख्यानों में नायक परकीया-विवाहिता, अविवाहिता या अथवा नायिकाओं से प्रेम करते हुए दीखते हैं । "कथा खिन्नता देवतदे" में नायक अविवाहिता तथा "कथा अरक्षतेरपतिसाह" में वह विवाहिता से प्रेम करता है । "ग्रंथ लैलामजनू" में पहले मजनू अविवाहिता लैला से फिर बाद में उसके विवाहित होने के बाद भी उससे प्रेम करता रहता है और अंत में उसके विधोम में प्राण त्याग देता है । "बांदी नादा" तथा "कथा कर्तदर" में नायक बेरियों से प्रेम करते हुए दीख पड़ते हैं ।

सतपरक प्रेमाख्यान "कथा सतबंती", "कथा सीतबंती", "कथा कुलबंती" तथा "कथा निरमल" में नायिकाएँ पर पुरुष से अपने सत्य या पातिव्रत-धर्म की रक्षा करते हुए चित्रित की गई हैं । "कथा चन्द्रसेन राजा सीत निधान" में नायिका सीतनिधान अपने पातिव्रत-सत्य पर अटल रह कर

संत में राजारामन्दसेन पर विजय पाती है ।

साध्यात्मिक प्रेमाख्यान "कथा बलुकिवा विरही" में नायक बलुकिवा की ईश्वरोन्मुख तादात्म्यता प्रकट की गई है ।

शृंगारिक मुक्तक-काव्य:-

ऐसे काव्य विषय की दृष्टि से दो रूपों में उपलब्ध होते हैं-- ईश्वरोन्मुख तथा लौकिक । कवि ने रीतिकालीन कवियों की भांति बिना किसी कथा-प्रसंग के स्फुट सामान्य नायक-नायिकाओं का प्रसंग लेकर उनके ईश्वरोन्मुख तथा लौकिक संयोग एवं वियोग अथवा मिश्रित रूपों में विविध विषयों को लेकर लगभग २० ग्रंथों की रचना की है । ईश्वरोन्मुख मुक्तक प्रेमाख्यानों में कवि का मुख्य उद्देश्य विरह-प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करना है, जो कि जीवात्मा को परमात्मा की प्राप्ति में सहायक होता है । लौकिक शृंगारिक मुक्तक-काव्यों में कवि ने रीतिकालीन कवियों की भांति नायिकाओं के अंग-प्रत्यंग, रूप-सौन्दर्य, उनकी विभिन्न चेष्टाओं, हाव-भाव आदि का वर्णन किया है जो कहीं-कहीं बहुत सामान्य एवं अश्लील हो गया है । ऐसे ग्रंथ प्रायः छोटे-छोटे हैं ।

नीति-परक या उपदेशात्मक काव्य:-

यद्यपि ज्ञानकवि के नीति या उपदेशात्मक ग्रंथ रीतिकाल तथा संत कवियों की नीति एवं उपदेश परक रचना-पद्धति पर आधारित हैं, किंतु फिर भी भाव तथा व्यंजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । नीति सम्बन्धी समस्त काव्यों में सामान्य जीवन की अनेक व्यावहारिक बातों की ओर संकेत मिलते हैं । उपदेशात्मक काव्यों में कवि ने जीव को परमात्मा की ओर उन्मुख होने तथा सांसारिक विघ्न-बाधाओं से मुक्ति पाने का उपाय बताते हुए विभिन्न रूपों में ग्रंथों के विषय का प्रतिपादन किया है । कवि के ऐसे ग्रंथ लौकिक तथा अमूर्दित दोनों रूपों में उपलब्ध हैं । उस प्रकार अमूर्दित ग्रंथ मूल तुर्की से हिन्दी में रूपान्तरित हैं ।

काव्यशास्त्रीय - ग्रंथ:-

ये ग्रंथ भी मौलिक तथा अनूदित दो रूपों में प्राप्त होते हैं । मौलिक ग्रंथ केवल एक है :- "कविवत्सल", जो अर्तकार - ग्रंथ है । शेष काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ संस्कृत से हिन्दी में अनूदित हैं ।

ऐतिहासिक-काव्य:-

कवि ने दो ऐतिहासिक ग्रंथ भी लिखे हैं - कयामशारदा तथा बलफला की पैड़ी । "कयामशारदा" में कवि ने अपने "कायमशानी" चौहान-वंश के नवामों के शासन तथा उनकी वंश-परम्परा और "बलफला की पैड़ी" में अपने पिता बलफला की युद्ध वीरता तथा राजकोट में वीरगति पाने का वर्णन किया है । प्रस्तुत ग्रंथों का महत्व ऐतिहासिक तथा साहित्यिक उभय दृष्टियों से है ।

वैद्यक - ग्रंथ:-

कवि को विभिन्न औषधियों का अच्छा ज्ञान था । उनके ऐसे ग्रंथों के दो रूप हैं - प्रथम "वेदकसत" ग्रंथ में कवि ने मनुष्य की अस्वास्थ्यता का तथा संयमित जीवन व्यतीत करने के लिए प्रतिदिन की जीवनवर्मा से सम्बन्धित विविध उपयोगी औषधियों का उल्लेख किया है । दूसरे "कबूतर नामा" तथा "बाजनामा" ग्रंथ में कवि ने दोनों पक्षियों की बीमारियों के लिए अनेक उपयोगी दवाओं का उल्लेख किया है । बाज तथा कबूतर जैसे पक्षी का उल्लेख कवि के अपने संस्कार का परिचायक है । पक्षी तथा जानवर सम्बन्धी अन्य ग्रंथ भी हिन्दी साहित्य में मिलते हैं ।

वार्ता सम्बन्धी-काव्य:-

इन्हें जाल्पानक काव्य भी कह सकते हैं । "ग्रंथ बुद्धि सागर" तथा "शान्दीप" में विविध विषयों से सम्बन्धित कवि की अनेक छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह है । "शान्दीप" में सात तथा "बुद्धिसागर" में एक सौ बाठ कहानियाँ संगृहीत हैं ।

संगीत-काव्य :-

कवि को संगीत का अच्छा ज्ञान था । उनका अभी हाल में प्रकाश हुआ "संगीत गुन्दरीप" ग्रंथ इसका परिचायक है । इसमें उन्होंने बनेक राग-रागिनियों, वाद्य-यंत्रों आदि का सविस्तार वर्णन किया है । प्रेमाख्यातक - काव्य "कथा कौसुहली" में कवि ने संगीत के माध्यम से ही नायक-नायिका में प्रेम का उदय दिसताया है ।

कामशास्त्रीय-काव्य :-

माधकाशीन प्रवृत्तियों के परिणाम-स्वरूप जानकवि को भी कामशास्त्र का अच्छा ज्ञान था । उनका "मदनविनोद" कोकशास्त्र विषयक काव्य है । इसमें कवि ने नायक-नायिका के ८४ क्रिया-कलापों (प्रासनों) का सविस्तार वर्णन किया है ।

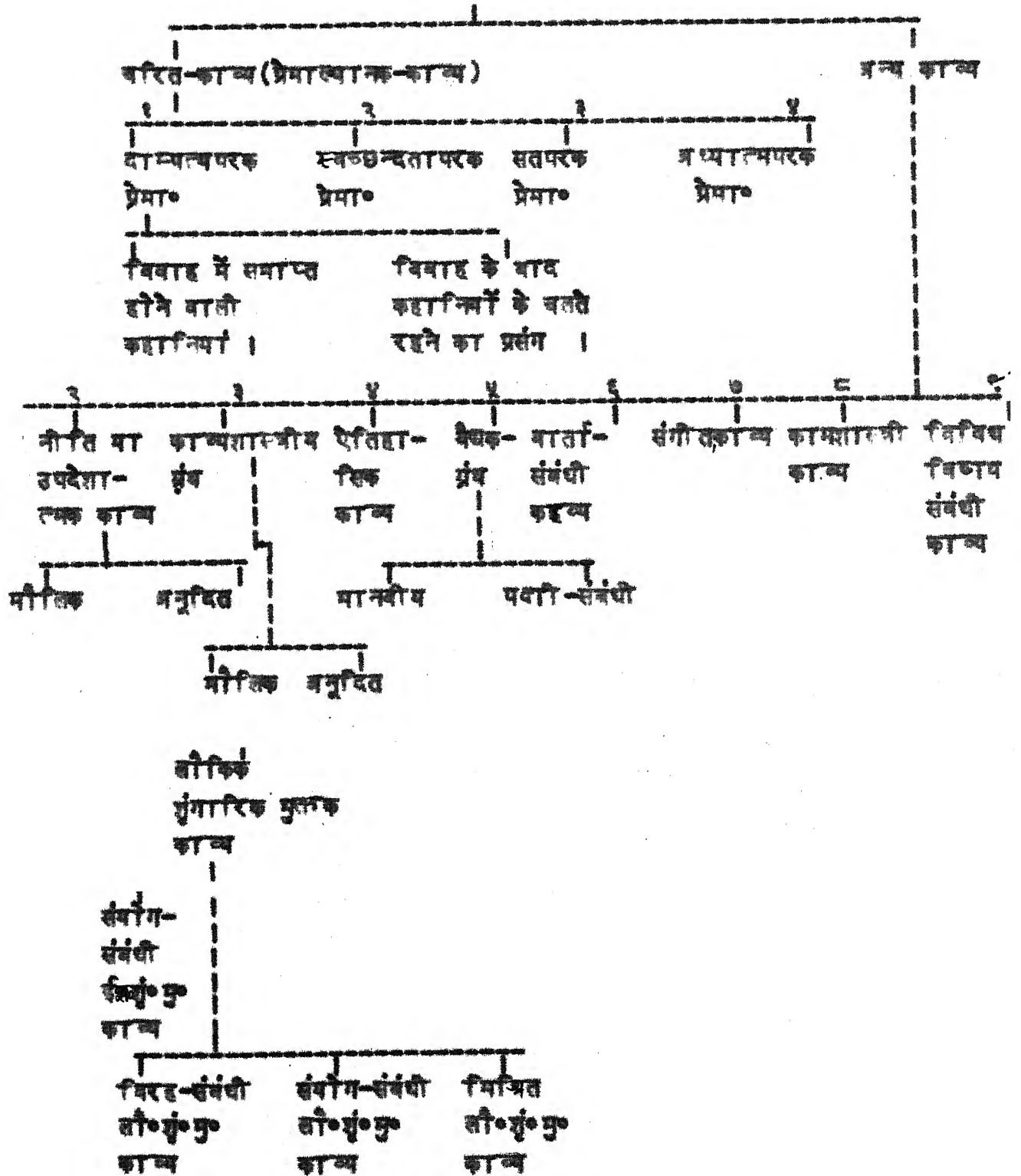
विविध विषय-सम्बन्धी +काव्य :-

जमीर हुसरो की तरह की पहेलियाँ, कबीर जैसी उलटवांसियाँ नामों तथा सिद्धों के जैसे तन्त्र-मन्त्र तथा रत्न-परीक्षा, भूगोल, वन्य-शब्द, ककहरा (वर्ण) आदि विविध विषयों से सम्बन्धित रचनारंग भी कवि की मिलती हैं जो उनकी बहुमुखी प्रतिभा की परिचायक हैं ।

ग्रंथों का वर्गीकरण :-

उपर्युक्त विरलेक्षण के आधार पर जानकवि के समस्त ग्रंथों को विषयानुसार निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं -

जानकवि के ग्रंथ



इस वर्गीकरण में समस्त विरत-काव्यों को प्रेमाख्या-काव्यों के अन्तर्गत रक्खा गया है। कही प्रेमाख्या-काव्य हमारे इस ग्रंथ के अध्ययन

का मुख्य विषय हैं । यहाँ प्रेमाख्यानों के साथ अन्य समस्त ग्रंथों का भी सामान्य परिचय दिया जा रहा है । विद्यावानुगत ग्रंथों के परिचय का यह क्रम उसके रचना-काल के अनुसार है ।

प्रेमाख्या-काल

(१) दास्यत्वपरक-प्रेमाख्यान:-

(अ) विवाह में समाप्त होने वाली कहानियाँ:-

(१) कथा कलावती :- रचनाकाल-सं० १६६९ वि० । लिपि-काल सं० १७७८ मिती कार्तिक सुदी ११ शुक्रवार । विस्तार - १६ पृष्ठ, ३६ चौ०, ३६ दोहा, २ सवै तथा १३ पदगम छंद ।

इसमें नायक राजकुंवर पुरन्दर जाठ विवाह के बाद भी कलावती के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर एक अन्य विवाह करता है ।

(२) कथा कौतूहली :- रचनाकाल - सं० १६७५ । लिपि-काल सं० १७७८ मिती चैत, सुदी १० मंगलवार । विस्तार - ३२ पृष्ठ तथा विविध छंद ।

इसमें पुरीगाँव के राजा चन्द्रसेन का पुत्र नायक सरबंगी तथा छविनेर देश के राजा जगद्वज्र और रानी रूपसरिसट की पुत्री कौतूहली की प्रेम-कथा है । विविध छन्दों का चमत्कार इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता है ।

(३) कथा कामलता :- रचना-काल-सं० १६७८ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८, मिती कार्तिक सुदी ९ । विस्तार - ८ पृष्ठ, ३१ चौ० तथा ३१ दो० । पाँच चौ० के बाद एक दोहे का क्रम है ।

इसमें हंसपुरी के राजा रसाल तथा सुन्दरपुरी की शासिका कामलता की प्रेम-कथा है ।

(४) कथा मुहुषपरिष्ठा :- रचनाकाल-सं० १६८५ वि० । लिपि-काल -सं० १७७८, मिती कार्तिक सुदी ७ । विस्तार - ५४ पृष्ठ, १७२ चौ० तथा १७४ दो० । चौ० की पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

का मुख्य विषय हैं । यहाँ प्रेमात्मानों के साथ अन्य समस्त ग्रंथों का भी सामान्य परिचय दिया जा रहा है । विषयानुगत ग्रंथों के परिचय का यह क्रम उनके रचना-काल के अनुसार है ।

प्रेमात्मान-काव्य

(१) दास्यत्वपरक-प्रेमात्मानः-

(अ) विवाह में समाप्त होने वाली कहानियाँ:-

(१) कथा कलावती :- रचनाकाल-सं० १६६९ वि० । लिपि-काल सं० १७७८ मिती कार्तिक सुदी ११ शुक्रवार । विस्तार - १६ पृष्ठ, ३६ चौ०, ३६ दोहा, २ सवै० तथा १३ पदंगम छंद ।

इसमें नायक राजकुंवर पुरन्दर जाठ विवाह के बाद भी कलावती के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर एक अन्य विवाह करता है ।

(२) कथा कौतूहली :- रचनाकाल - सं० १६७५ । लिपि-काल सं० १७७८ मिती चैत, सुदी १० मंगलवार । विस्तार - ३२ पृष्ठ तथा विविध छंद ।

इसमें पुरीगाँव के राजा चन्द्रसेन का पुत्र नायक सरबंगी तथा छविनेर देश के राजा जगद्वज्र और रानी रूपसरिसद की पुत्री कौतूहली की प्रेम-कथा है । विविध छन्दों का चमत्कार इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता है ।

(३) कथा कामलता :- रचना-काल-सं० १६७८ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८, मिती कार्तिक सुदी ९ । विस्तार - ८ पृष्ठ, ३३ चौ० तथा ३३ दो० । पाँच चौ० के बाद एक दोहे का क्रम है ।

इसमें हंसपुरी के राजा रघुल तथा सुन्दरपुरी की शासिका कामलता की प्रेम-कथा है ।

(४) कथा पुष्पवरिणा :- रचनाकाल-सं० १६८५ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८, मिती कार्तिक सुदी ७ । विस्तार - ५४ पृष्ठ, १७२ चौ० तथा १७४ दो० । चौ० की पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

चौहान वंशीय बीनार के राजा भूपाल का पुत्र पुरणजोतम प्रेमपुरी की रानी रूपनिधि की पुत्री सुकेती को पक्षी रूप में पाकर तथा उसकी विरह कहानी सुनकर उसे उसकी माता के पास जनेऊ कष्टों को सहते हुए ले जाता है जो मंत्र द्वारा उसे पुनः पक्षी से तड़की बना लेती है । इसमें पुरणजोतम की परोपकारी भावना ही प्रधान है ।

(५) कथा रूपमंजरी :- रचना-काल-सं० १६८५ अगहन मास^१ । लिपि-काल-सं०-१७८४, मिति चैत, वदी ७, मंगलवार । विस्तार -१२ पृष्ठ, ४४ चौ० तथा ४४ दो० । चौपई की पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

हस्तिनापुर की रानी परभावती का पुत्र जानसिंघ तथा कन्नपुरी की सुन्दरी रूपमंजरी की प्रेम-कथा है । इसमें गुरु-महिमा तथा गर्पव रूप में विवाह सम्पन्न होने की बात महत्वपूर्ण है ।

(६) कथा रतनमंजरी :- रचना-काल-सं० १६८६ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८, मिति पूष, वदी १ बुधस्मितीवार । विस्तार-७८ पृ०, २६४ चौ० तथा २६६ दो० । चौ० की पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है । इस ग्रंथ के प्रारम्भ के ७ पन्ने नहीं हैं ।

इसमें राजकुंवर मधुसूदन तथा राजकुमारी रतनमंजरी की प्रेम-कथा है जो स्वप्न दर्शन से विकसित होती है ।

(७) कथा रतनावती :- रचना-काल-सं० १३९९ अगहन, वदी ७ । लिपि-काल-सं० १७८४ मिति फागुन, सुदी ९ बुधवार । विस्तार-७४ पृ०, १७३ चौ० तथा १७३ दो० । चौ० की १० पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम-निर्वाह है ।

इसमें जमुतपुरी के राजा जगतराज के पुत्र राजकुंवर महिमोहन और फुलवारी नगर के राजा सूरज तथा रानी चन्द्रावती की पुत्री अप्सरा रतनावती की प्रेम-कथा है ।

- (८) कथा कामरानी का पीतमदास:- रचना-काल-सं० १६९१ वि०, पूस वदी १० बुधवार (दोपहर) । लिपि-काल-सं० १७८४ वि०, मिती चैत, वदी १० । विस्तार - २० पृ०, चौ० तथा दो० छंद ।

इसमें मुलताननगर का राजकुंवर पीतमदास अपने चार मित्रों (सौदागर, सुरंगिया, बड़ईपुत्र तथा काछीपुत्र) की सहायता से राजाराम के यहां से हरिदास की पुत्री कामरानी को लाकर विवाह सम्पन्न करता है ।

- (९) कथा मधुकर मातली:- रचना-काल-सं० १६९१ फागुन सुदी एकदम । लिपि-काल - सं० १७७८ मिती पूस, सुदी ३ पतवार । विस्तार- ३६ पृ०, चौ०, दो० तथा पदगम छंद । इसमें चौ० की २२ पंक्तियों के समुच्चय है ।

इसमें जयोज्जयानगर के रतनसेन सौदागर के पुत्र मधुकर तथा बटसार में पढ़ने जाने वाली एक अतीव सुन्दरी मातली की प्रेम-कथा है । मातली अपनी ओर आकृष्ट अनेक पुरुषों को ठुकराकर अहर्निश भाव से मधुकर के ही प्रेम में दूढ़ रहती है ।

- (१०) कथा छीता:- रचना-काल-सं० १६९२, कार्तिक सुदी ६ । लिपि-काल-सं० १७८४, मिती चैत, वदी ५ । विस्तार - १६ पृ०, चौ० तथा दो० छंद । चौ० की १० पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

इसमें देवगिरि के राजादेव की रूपवती कन्या छीता तथा परिचम दिशा के राजा राम की प्रेम-कथा है ।

- (११) कथा मोहन:- रचना-काल-सं० १६९४ वि०, जगहन सुदी ४ । लिपि-काल-सं० १७८४, चैत वदी ८ । विस्तार - ८ पृ०, १२२ दो० ।

इसमें मोहन-मोहनी की प्रेम-कथा है । पहेलिमां बुझाने का प्रसंग मुख्य है ।

- (१२) कथा छविहागर:- रचना-काल -सं० १७०६ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८, कार्तिक, सुदी ९ बुधवार । विस्तार - ७ पृ०, १५ चौ० तथा १५ दो० । चौ० की १० पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

इसमें जैतपुरी के राजा जैत का पुत्र गुनबागर तथा रामपुरी के राजा-राम की छविबंती कन्या छविबागर की प्रेम-कथा है । कानिदास की भांति नार प्रानों के मौन उत्तर से ही नायक गुनबागर पाणिग्रहण करता है ।

(ब) विवाह के बाद कहानियों के बसते रहने का प्रसंग:-

(१३) कथा कलामती :- रचना-काल-सं० १६६० वि० अर्थात् हि० सन् १०२१ ।
लिपि-काल-सं० १७७८ मिती आसाढ़, वदी १४ । विस्तार-६६ पृ०, चौ०, दो०, सो० तथा सवै० छंद । यह कवि की सर्व प्रथम रचना है ।

इसमें रूपनगरी का राजा रूपराइ तथा रानी रूपरेख का पुत्र इन्दुवदन और मदननगरी के राजा मदनराइ तथा रानी मदनकला की पुत्री कलामती की प्रेम - कथा है ।

(१४) कथा कनकावती :- रचना-काल-सं० १६७५ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८, मिती चैत, सुदी ८ । विस्तार - २२ पृ०, चौ०, दो० तथा सो० छंद ।

भरथनेर नगरी के राजा भरत का पुत्र परमरूप तथा सिंहपुरी नगरी के राजा जगपति राय की पुत्री कनकावती की प्रेम-कथा है । "कल्यणनिधि" विद्या का महत्त्व ग्रंथ में स्पष्ट है ।

(१५) कथा नलदमवती :- रचना-काल-सं० १७१८ वि० । लिपि-काल-सं० १७७८ वि० । विस्तार-६० पृ०, १४६ चौ०, १४६ दो० तथा ५८ सवै० । चौकी जाठ पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है, किन्तु सवैया का कोई निश्चित क्रम नहीं है ।

उज्जैन नगर के राजा वीरसेन के पुत्र नल तथा विदर्भ देश के राजा भीमसेन की पुत्री दमवती की अति प्राचीन पौराणिक प्रेम-कथा वर्णित है ।

(१६) कथा सुभट्टराइ :- रचना-काल-सं० १७२० या हि० सन् १०७४ कार्तिक^१ ।

१- सन सहस चौहत्तर, कथा करी यह जान ।

समय है वरु चौस पुनि, संवत् हुती यहान ॥

तिथि-काल-सं० १०८४ मिती चैत, वदी १, बुधवार । विस्तार-१८ पु०,
बी० तथा दो० छंद ।

इसके कथानक में सूरनगर के राजा सूरजमत के पुत्र कुंजर सुभटराज
उदीची, प्रतीची तथा अवाबी दिशाओं के राजाओं की राजकुमारियों की रक्षा
करके तीन विवाह करता है और तीनों के साथ सान्द्र दाम्पत्य पुत्र भोग करते
हुए कालयापन करता है ।

(१०) कथा तमीम अनसारी :- रचना - काल - सं० १००३ वि० या हि० सन्
१०५५ । तिथि-काल - सं० १०००, फागुन सुदी ८ । विस्तार-१४ पु०,
दो-दो पंक्तियों की १५० बी० ।

इसमें व्यापारी तमीम अनसारी की विपत्ति-कथा है । एक दिन
उसे अचानक मदीना से एक प्रेत लड़ा ले जाकर ऐसे स्थान पर छोड़ता है जहाँ
उसे बहुत दिन तक भटकते हुए अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं । अंत में वह पुनः मदीना
जाकर अपनी पत्नी से मिलता है और जीवन व्यतीत करता है ।

२- स्वच्छन्दतापरक प्रेमाख्यान:-

(१८) कथा अरदसेन पतिसाह :- रचना-काल-सं० १६९० कुवार, वदी १२ शुक्रवार ।
तिथि-काल - सं० १०८४ मिती चैत, वदी १० । विस्तार-१० पु०, २२
बी० तथा २२ दो० । बी० की आठ पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम
है ।

इसमें राजा अरदसेन अरदुवान की पुत्री को मुद्रा द्वारा बताव
लाकर अपनी पटरानी बनाता है ।

(१९) ग्रंथ लैलै मजनू :- रचना-काल-सं० १६९१, माघ, समय मकर संक्रान्ति,
तिथि-काल-सं० १०८४ वि०, फागुन सुदी १५ । विस्तार - ६२ पु०, बी०
दो०, दो० तथा सबै० छंद । इन छंदों का कोई क्रम नहीं है ।

लैला तथा मजनू की प्रसिद्ध प्रेम-कथा है तथा "पैमु र्दय जति कठिन"
ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य है ।

- (२०) कथा शिखरा देवलदे:- रचना-काल-सं० १६९४, पुस्त सुदी २ । लिपि-काल-सं० १७७८ मिती चैत सुदी ६ । विस्तार- १६ पृ०, ८५ चौ० तथा ८५ दो० । चौ० की आठ पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

पातिशाह अलाउद्दीन ने सागर के राजा कर्न को युद्ध में परास्त कर उसकी पत्नी कवता को लेकर अपनी पटरानी बनाया तथा उसकी पुत्री देवलदे की शादी अपने बड़े पुत्र शिखरा के साथ कर दी । पूरे ग्रंथ में शिखरा तथा देवलदे की प्रेम-कथा है ।

- (२१) कथा कतंदर:- रचना-काल-सं० १७०३ वि० हिमवतु । लिपि-काल-सं० १७७७ फागुन सुदी ८ । विस्तार - ५ पृ०, ९ चौ० तथा ९ दो० । चौ० की १० पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

इसमें चार चेरियों के रूप-सौन्दर्य पर मोहित मसीत जाति के कतंदर की प्रेम-कथा है ।

- (२२) बांदी नावा:- रचना-काल- तथा लिपि-काल का उत्तेत ग्रंथ में नहीं है । विस्तार- ३ पृ०, ७० चौ० तथा अंत में एक दोहा ।

इसमें मिर्बा तथा चैरी बांदी की लौकिक प्रेम-कथा है । यह कव-मित्री ताव विरचित "बीबी बांदी का भगड़ा" ग्रंथ के आशय पर आधारित है ।

३- सतपरक प्रेमाख्यान:-

- (२३) कथा सतवर्ती:- रचना-काल - सं० १६७८ वि० या हि० सन् १०३१ । लिपि-काल सं० १७७७, मिती फागुन सुदी ३, तनीवार । विस्तार-१४ पृ०, ५१ चौ० तथा ५१ दो० और सो० ।

सौदागर मन्सूर की पत्नी सतवर्ती एक पूर्ण व्यक्ति द्वारा चार कुटुम्बों (पनवारिनि, कलवारिनि, मासिनि तथा जोगिनि) को भेजकर मिलाने की कुप्रवृत्ति की अवहेलना करती हुई अपने पातिव्रत की रक्षा करती है ।

- (२४) कथा सीतवर्ती:- रचना-काल-सं० १६८४ वि० । लिपि-काल-सं० १७७७ मिती फागुन, सुदी १० तनिवार । विस्तार- ६ पृ०, २४ चौ० तथा २४ दो० ।

बी० की पांच पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

गुणवानु जौहरी की पत्नी रूपवानु शीतवती एक बाबदार की दो वृत्तियों (गुनारिन तथा रंगरेखिन) तथा तोता से अपने पातिव्रत की रक्षा करती है ।

(२५) कथा चन्द्रसेन राजा शीतनिधानः- रचना - काल-सं० १६९१, पृष्ठ बंदी २, गुक्रवार । लिपि-काल-सं० १७८४ मिती चैत, बंदी ९ । विस्तार-९ पृ०, १७ बी०, तथा १९ दो० । बी० की १२ पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

चन्द्रपुरी का राजा चन्द्रसेन अपनी पत्नी शीतनिधान के अतिरिक्त तीन अन्य अथम नायिकाओं को अपनी पटरानी बनाता है और उनसे अपेक्षाकृत अधिक प्रेम करता है, किन्तु शीतनिधान अपने पातिव्रत सत्त्व पर अटल रह कर राजा के ऊपर विजय पाती है ।

कथा-

(२६) कुलवती :- रचना-काल-सं० १६९३ वि०, पृष्ठ । लिपि-काल-सं० १७७७, मिती फागुन, सुदी १२ । विस्तार - १८ पृ०, ४६ बी०, ४६ दो० तथा ४६ शी० । बी० की पांच पंक्तियों के बाद क्रमशः एक दोहा तथा एक सौरठा का क्रम-निर्वाह है ।

एक सौदार की रूप-सौन्दर्य-वती पत्नी कुलवती राजा कुतुबुद्दीन की पांच कुटुम्बियों (नाइन, बुरिबाइन, ज्योतिषिन, बितेरिन, तथा डीमनी) के भुलावे से अपने पातिव्रत-सत्त्व की रक्षा करती हुई अंत में राजा कुतुबुद्दीन के दुर्लभहार से उसे जान से मरवाती है ।

(२७) कथा निरमलः- रचना-काल-सं० १७०४, माघ । लिपि-काल + । विस्तार- ४ पृ०, १२ बी० तथा १२ दो० । इसमें विधवा निरमल के सतीत्व की महिमा है ।

४- ज्ञानात्मपरक प्रेमास्थान:-

- (२८) कथा बलुकिमा विरही:- रचना-काल-सं० १६९० वि० पर्याप्त हि० सन् १०४४ । लिपि-काल-सं० १७७७, फागुन ७ । विस्तार - १० पृ०, १२८ चौ० ।

इसमें कवि इसरावल जाति के बलुकिमा के विरह की विभिन्न अवस्थाओं तथा उसकी ईश्वरोन्मुख तादात्म्यता का विवर्ण करता है ।

अन्य-काव्य

(१) शृंगारिक मुक्तक-काव्य:-

(अ) ईश्वरोन्मुख शृंगारिक मुक्तक-काव्य-

(१) विरह-सम्बन्धी-

- (२९) ग्रंथ पैमुनामा:- रचना-काल-सं० १६७५ वि० । लिपि-काल - मिती भदुवा सुदी ११ मंगलवार । विस्तार - ६ पृ०, २० चौ० तथा २१ दो० । चौ० की पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम है ।

इसमें कवि प्रेम-पथ की ही सब कुछ मानकर विरह की महत्ता प्रतिपादित करता है ।

- (३०) पैमसागर:- रचना-काल-सं० १६९४, चैत सुदी । लिपि-काल-सं० १७७९, मिती चैत, सुदी ११ शुक्रवार । विस्तार- २४ पृ०, २९३ दो० तथा १ सवै० ।

"पैमुनामा" ग्रंथ की भाँति ही इस ग्रंथ में भी विरह-प्रेम की महत्ता वर्णित है ।

- (३१) विरही कौ मनोरथ:- रचना-काल-सं० १६९४ चैत का अंत । लिपि-काल-सं० १७७८ भादो, सुदी १० । विस्तार- ३११ पृ०, ४३ दो० तथा तीन पंक्तियों की एक सवैया ।

इसमें कवि ने विरही जीवात्मा का ईश्वरोन्मुख

तादात्म्य स्थापित किया है ।

(३२) दरसनावा षुद्धलः:- रचना-काल + । लिपि-काल-सं० १७७७ फागुन, सुदी ३ । विस्तार - २ पृ०, २० षुद्धल छंद । सभी छंदों की अंतिम पंक्ति दुहराई गई है ।

ईश्वरी-मुक्त विरह-प्रेम ही उस ग्रंथ का भी मुख्य विषय है ।

(11) संयोग-सम्बन्धी :-

(३३) बूँटनावा:- रचना-काल + । लिपि-काल-सं० १७७७, फागुन, सुदी ३ । विस्तार- २॥पृ०, तीन-तीन पंक्तियों की २२ चौ० ।

इसमें कवि ने जीवात्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष मानकर संत कवियों की भांति सांसारिक नरवरता वर्णित करते हुए तादात्म्य अवस्था का विवर्णन किया है ।

(ब) लौकिक गुंजारिक मुक्तक-काव्य:-

(1) विरह-सम्बन्धी :-

(३४) विरह सतः रचना-काल - सं० १६७१ वि० । लिपि-काल + । विस्तार- ६ पृ०, १०० दोहे ।

इसमें कवि ने संयोग एवं वियोग दोनों दशाओं के लौकिक रूप में केवल विरह-सत्त्व की महिमा वर्णित की है ।

(३५) विमोगसागर:- रचना-काल-हि०सन् १०६६ अर्थात् सं० १७१२ वि० । लिपि-काल-सं० १७८४ मित्ती माघ, सुदी १५, सोमवार । विस्तार-१८ पृ०, १४ दो० तथा ७७ सवै० ।

इसमें कवि रीतिकालीन शैली में एक प्रोणितात्मिका का वर्णन करता है ।

(१६) आदरितु वर्णना संघः:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं दिया है ।
विस्तार- केवल २१ छंद । इसमें छः ऋतुओं (पावस, शरद, हिम,
शिशिर, वसंत तथा ग्रीष्म) में प्रकृति के माध्यम से विरहिणी नायिका
की अवस्था का वर्णन है ।

(१७) पद्मगम वर्णना (आदरितु वर्णन):- रचना-काल तथा लिपि-काल प्रकाशित ।
विस्तार- केवल ७ छंद ।

आदरितुओं में नायिका के वियोगावस्था का वर्णन इसमें
भी है ।

(११) संयोग-संबंधी:-

(१८) भावसति:- रचना-काल - सं० १६७१ (जहाँगीर का राज्य) । लिपि-
काल-सं० १७७७ पितृ पुस्त, बंदी १ । विस्तार- ६ पृ०, १०२ दो० ।

इसमें कवि मानवीय व्यवहार की अनेक उपयोगी बातों
की ओर संकेत करता हुआ नायक के प्रति नायिकाओं के अनेक प्रकार के हाव-
भावों की सत्यता का निरूपण करता है ।

(१९) सिंगार सति:- रचना-काल-सं० १६७१ । लिपि-काल-सं० १७७७ पितृ
पुस्त, बंदी ९ मंगलवार । विस्तार-६ पृ०, १०१ दो० ।

इसमें कवि ने नायिकाओं की तीनों अवस्थाओं- बालपन,
वैधव्य(वयःसम्य) तथा तरुणावन का - तथा उनके नखशिख का विभिन्न
उपयोगों तथा उपमानों के आश्रय से वर्णन किया है ।

(२०) भावकलोल:- रचना-काल-सं० १७१३ वि० । लिपि-काल + । विस्तार-
२० पृ०, ११८ दो० ।

इसमें नायिकाओं के ही विशेष प्रसंग में भाव-कीड़ाओं
के चमत्कार वर्णित हैं ।

- (४१) अलकनावा जुद्धतः:- रचना-काल + । लिपि-काल-सं० १७७७ फागुन सुदी ३ । विस्तार- २॥ पु०, १२ जुद्धत छंद । इसमें भी "दरस-नावा जुद्धत" की भांति प्रत्येक छंद की अंतिम पंक्ति दुहराई गई है ।

नायिकाओं की अलकों का सौन्दर्य ही इसका वर्णन विषय है ।

- (४२) सर्वज्ञा:- रचना-काल तथा लिपि-काल अज्ञात । विस्तार- = पु०, ३६ सवै० । (अपूर्ण)

इसमें कवि ने सामान्य नायक-नायिकाओं तथा गोपी-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य एवं उनकी संयोगावस्था का बिल्कुल लौकिक स्तर पर वर्णन किया है ।

- (४३) कंदफलोत्तः:- रचना-काल तथा लिपि-काल अज्ञात । विस्तार-प्राप्त अंत १० पु०, १५ दो० तथा ११६ सवै० ।

इसमें कवि ने नायिकाओं की तीनों अवस्थाओं (वैसंघ, रति तथा मुंगार) में उनकी संयोगावस्था के संभोग का सुलकर वर्णन किया है ।

- (४४) मानविनोदः:- रचना-काल + । लिपि-काल-सं० १७७८ भादौ सुदी १०, सोमवार । विस्तार - ४ पु०, २ दो० तथा १६ सवै० ।

इसमें विभिन्न ऋतुओं की पृष्ठभूमि में संयोग सुलभ नायिकाओं का मान तथा मुंगार बढ़ाने वाली युक्तियों का रीति-काशीन शैली में वर्णन किया गया है^१ ।

- (४५) बारहमासा:- रचना-काल + । लिपि-काल - सं० १७७८ असाढ़ सुदी ३ । विस्तार- ३॥ पु०, १४ सवै० ।

श्रीकृष्ण तथा गोपियों के प्रसंग से बारहमासा का वर्णन किया गया है ।

१- इस ग्रंथ के प्रारम्भ में स्तुति नहीं है ।

(४६) सर्वथा वा भूलनाहः:- यह कवि का सबसे छोटा ग्रंथ है । इसमें श्रीकृष्ण के बांसुरी बजाने के प्रसंग के दो सवैये मात्र हैं ।

(111) मिश्रितः:-

(४७) ग्रंथ बरवा:- रचना-काल तथा तिथि-काल अज्ञात । विस्तार-४ पृ०, ७० बरवा छंद ।

इसमें सामान्य नायक-नायिकाओं तथा कृष्ण एवं गोपियों के प्रसंग से विरह एवं संयोग का लौकिक रूप में वर्णन किया गया है ।

(४८) दरसनावा:- रचना-काल तथा तिथि-काल नहीं है । विस्तार- ४ पृ०, ३२ छंद । इसमें बारह मासा के प्रसंग से संयोग एवं वियोग का चित्रण है ।

(४९) बारहमासा फुनिंग छंद:- रचना-काल तथा तिथि-काल नहीं है । विस्तार- ३११ पृ०, २६ फुनिंग छंद ।

इसमें कवि ने नायक-नायिका के पूर्वराग की पृष्ठभूमि में वियोगावस्था का चित्रण किया है । "परं कल नाहि बिनु जानी", "कहा वह मेक संग रहियो" आदि कुछ चरणों को बार-बार दुहराया गया है ।

(२) नीति परक वा उपदेशात्मक काव्य:-

(अ) मौलिक-

(५०) संतनावा:- रचना-काल - सं० १६९३, पूर । तिथि-काल-सं० १७७७, मिती फागुन, सुदी ४ । विस्तार- ७ पृष्ठ, १८ चौ०, १८ दो० तथा १८ हो० । चौ० की पांच पंक्तियों के बाद क्रमशः एक दोहा तथा एक सौरठा का क्रम है ।

इसमें कवि ने संतों को उपदेश देते हुए पाँचों इंद्रियों (जाँच, नाक, कान, रसना तथा मदन) और काम, क्रोध, मद, लोभ, माया आदि से

दूर रहने का एकमात्र उपाय मन का स्थिरीकरण बताया है - यथा -

सोरठा- मन ही पितं न होई, जो अपने बस होत है ।

कहे माहि न होइ, तो जैसी जरि जोर ना ॥

(५१) सिखासागर संदनावा:- रचना-काल-सं० १६९५ । लिपि-काल-सं० १७७७, फागुन, बंदी २ । विस्तार- १६ पृ०, २४६ दो० ।

इसमें नीति के दोहों के माध्यम से जीव को सांसारिकता से बचने का उपदेश, उत्तमपुरुषा, धर्म एवं गुरु की महिमा और दुर्बलों की निंदा है ।

(५२) वैतननामा:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार- २॥पृ०, ३५ फारसीमति छंद तथा १ दोहा ।

इसमें कवि ने जीवात्मा के मन को काम, क्रोध, माया आदि सभी से मोड़कर परमात्मा के जप-तप या भक्ति में लगने का उपदेश दिया है ।

(५३) सिखाग्रंथ:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार- २ पृ०, २२ फारसीमति छंद । इसमें कवि ने जीवात्मा को निर्जन की ओर वन्मुख करने की शिक्षा दी है ।

(५४) सुखासिखा:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार- १२ फारसीमति छंद । इसमें कवि ने जीव को सांसारिक ऐश्वर्यों की नश्वरता बताते हुए - "सुमिरन करहु करतार रे । तबि सकल ही जंवार रे" ॥ का उपदेश दिया है ।

(५५) बुधिदाइक:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार- १० मोदक छंद । जीव के लिए "सुख की भरवा दुख की हरता । बपि रे बपि रे बपिरे करता ॥" ही इसका संदेश है ।

(५६) बुधिदीप:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार-२ पृ०, दो०, दो पंक्तियों की २४ बौ० ।

यदि जीव के पास ईश्वर रूपी दीपक हाथ में रहे तो सांसारिक
तृष्णा - काम, क्रोध, माया, मद, लोभ, कात, मतवालापन आदि कुछ नहीं
बिगाड़ सकते ।

(ब) अनुदित:-

(५७) पंदनामा:- रचना-काल- हि० सन् १०७४ या सं० १७२१ वैशाख ।
लिपि-काल- + । विस्तार - ११ पृ०, ८० दो० ।

यह हकीम तुकमान के तुर्की ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद है । इसमें
व्यावहारिक नीति की बातें कही गई हैं ।

(५८) जफरनामा:- रचना-काल -सं० १७२१ । लिपि-काल -सं० १७७७,
मिर्सी बैत, बदी २, शनिवार । विस्तार- ११ पृ०, दो-दो संस्करणों
की १३६ बी० ।

यह हकीम नौशेरवां के ग्रंथ का अनुवाद है जिसमें पंदनामा की भांति
कवि ने व्यावहारिक नीति के रूप में वैद्य की शिक्षा का उपदेश दिया है ।
यह कवि की अंतिम रचना है ।

(३) काव्यशास्त्रीय-ग्रंथ:-

(अ) मौलिक:-

(५९) कविवत्सव:- रचना-काल -सं० १७०४ (शाहजहाँ का राज्य) । लिपि-काल-
१८वीं शताब्दी । विस्तार- लगभग १९० पृ०, विविध छंद तथा २१ प्रकीर्ण।

यह कवि का अलंकार-ग्रंथ है जिसमें उसने अलंकारों के विभिन्न-
भेदों-प्रभेदों त के लक्षण तथा उनके उदाहरण के साथ स्त्री-पुरुष दोनों-वर्णों
तथा कविता के गुण-दोषों का वर्णन किया है । इस ग्रंथ के अंत में कुछ
अलंकारों के चित्र भी बनाए गये हैं ।

(ब) अनुदित-

- (६०) रसक्रीडा :- रचना-काल-सं० १६७६ (जहाँगीर का राज्य) । लिपि-काल-सं० १७७७, मितो चैत बदी १ । विस्तार- २३ पु०, चौ० तथा दो० छंद ।

इसमें लक्षणा तथा उदाहरण के साथ नायक-नायिका के भेद-प्रभेद का वर्णन किया गया है ।

- (६१) रसमंजरी :- रचना - काल -सं० १७०९ कार्तिक मास । लिपि-काल - १ । विस्तार- लगभग १०० पृष्ठ । इसमें रसों का सविस्तार विवेचन है ।

- (६२) रसतरंगिणी :- रचना-काल-सं० १७११ वि० माघ, या हि० सन् १०६५ । लिपि-काल-सं० १७७८ मितो वैशाख, सुदी ७ शनिवार । विस्तार- ५४ पु०, १२३ दो०, १०४ सवै० तथा ३२ पर्वगम छंद ।

यह "भानु" कवि के "रसतरंगिणी" संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद है । इसमें रसों के स्वाधी भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव तथा संयोग और विप्रलम्भ गुणार का सविस्तार वर्णन है ।

- (६३) सिंघारतिलक :- रचना-काल-सं० १७१३ वि० सुहरम मास । लिपि-काल-सं० १७७८ मितो भादो, बदी १५, शुक्रवार । विस्तार - २५ पु०, चौ०, दो० तथा सवै० छंद ।

इसमें रस का विवेचन तथा नायक-नायिका के भेद-प्रभेद, वचन, मुक्तियाँ, रीति एवं मन्त्र के लक्षणाओं तथा उदाहरणों का वर्णन किया गया है ।

(४) ऐतिहासिक - काव्य :-

- (६४) अलिङ्गना की मैत्री :- रचना-काल-सं० १६८४ वि० । लिपि-काल-सं० १७१६ मितो कार्तिक, बदी ११, शनिवार, ता० २३ सुहरम । विस्तार- १३ पु०, १०० छंद ।

इसका वर्ण-विषय बलफला के राजकोट का मुहवर्णन है । कवि ने अपने पिता की स्मृति में इसकी रचना की है ।

(६५) जयामर्गारासः:- रचना-काल-सं० १६९१ वि० । लिपि-काल-सं० १७११ वि० । विस्तार - १५० पृ० ।

इसमें कवि ने फतहपुर के अपने कायमखानी बाँहान बंश के नवानों का प्रारम्भिक इतिहास संक्षेप में देकर पिता बलफला का सविस्तार परिचय दिया है ।

(५) वैद्यक - काव्य:-

(अ) मानवीय:-

(६६) वैद्यकसतः:- रचना-काल-सं० १६९५ वि० । लिपि-काल-सं० १७७७, मिती चैत, वदी ५ । विस्तार - ८ पृ०, १०० दोहे । इस ग्रंथ में सामान्य जीवनोपयोगी औषधियों एवं हाँनिकारक जीव वस्तुओं से बचने के लिए सहायक औषधियों का वृत्तान्त दिया है । इससे स्पष्ट है कि कवि को औषधियों का अच्छा ज्ञान था ।

(ब) पक्षी-सम्बन्धी:-

(६७) बाजनामा:- रचना-काल-सं० लिपि-काल- नहीं है । विस्तार- ४ पृ०, चौ० तथा दो० छंद ।

इसमें बाज पक्षी के लिए विभिन्न उपयोगी औषधियों का वृत्तान्त दिया गया है ।

(६८) कबूतरनामा:- रचना -काल + । लिपि-काल-सं० १७७७ फागुन शुदी ५ । विस्तार - ४ पृ०, चौ० तथा दो० छंद ।

"बाजनामा" की भाँति इस ग्रंथ का विषय कबूतर से सम्बद्ध है ।

(६) वार्ता-सम्बन्धी-काव्य:-

(६९) कान्दीप:- रचना-काल - सं० १६८६, वैशाख, सुदी १३ । लिपि-काल-सं० १८९२, मिती वैत सुदी १३ । विस्तार-४६ पृ०, ८६० छंद ।

माने श्रीर शिकार के शौकीन ईरान के शाह बहरामशा अपनी दासी दिताराम के विवोग में सात देशों की रानियों से शादी करता है । इन सात रानियों द्वारा कही हुई सात शिवाग्रद कहानियों का विस्तार ही इस ग्रंथ का विषय है ।

(७०) बुद्धिसागर:- रचना-काल-सं० १६९५, जगहन सुदी १३ । लिपि-काल-सं० १८९८, वैशाख सुदी ५ । विस्तार - लगभग ४०० पृ०, चौ० तथा दो० छंद । यह कवि का सबसे बड़ा ग्रंथ है ।

यह ग्रंथ पंचतंत्र का स्वतंत्र अनुवाद-सा है । इसमें १०८ कहानियाँ (वार्ताएँ) संगृहीत हैं जिन्हें हिन्दुस्तान के अति दानी राजा दाबसलेम को एक गुफावासी बुद्ध पुरुष सुनाता है ।

(७) संगीत-काव्य:-

(७१) संगीत गुनदीप-(अपूर्ण):- रचना-काल तथा लिपि-काल अज्ञात । विस्तार-प्राप्त अंश लगभग १५० पृ०, विविध छंद ।

इसमें कवि ने संगीत के अनेक स्वरों, तालों, नादों, वाद्य-यंत्रों आदि के भेद-प्रभेदों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है ।

(८) कामशास्त्रीय-काव्य:-

(७२) मदन-विनोद:- रचना-काल-सं० १६९३, कार्तिक शुक्ल २ । लिपि-काल-सं० १७४३, जसाढ़ सुदी १४ । विस्तार- ५४ पृ०, ५५ छण्ड, दोहा छंद ।

यह कवि का कोकशास्त्र - ग्रंथ है जिसमें नायक-नायिकाओं की सभी काम-क्रीड़ाओं का सविस्तार वर्णन है ।

(९) विविध-विषय-सम्बन्धी काव्य:-

- (७३) गुह-ग्रंथ:- रचना-काल + । लिपि-काल-सं० १७७७, फागुन सुदी ६ ।
विस्तार-१० पृ०, ८० दोहे तथा कुछ चौ० । इसमें बमीर कुसरो की जैसी
पहेलियां, कबीर की जैसी उलटवासियां तथा कुछ नीति-परक शिक्षाप्रद
दोहे हैं ।
- (७४) ग्रंथ देसावली:- रचना-काल- + । लिपि-काल- सं० १७७७, मिति
फागुन सुदी ११ । विस्तार- ७ पृ०, चौ० तथा दो० छंद । यह भूगोल
विषयक काव्य है । श्रीरंगदेव के "सप्तधरा" में विस्तृत राज्य के अंतर्गत
माने जाते विभिन्न देशों के नाम तथा उसकी भौगोलिक विशेषताओं का
वर्णन किया गया है ।
- (७५) उत्तम सबद:- रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार- २ पृ०,
२५ दो० । इसमें कवि ने ईमान, लक्ष्मी, नमाज़, इमाम आदि कुछ "उत्तम-
शब्दों" की विशेषताओं का उल्लेख किया है ।
- (७६) पाहन परीक्षा:- रचना-काल -सं० १६९१ । लिपि-काल-सं० १७८४, वैत
सुदी १२ । विस्तार - ६ पृ०, दो०-चौ० । यह कवि का रत्न-परीक्षा-
विषयक काव्य-ग्रंथ है ।
- (७७) वर्णनामा+ रचना-काल तथा लिपि-काल नहीं है । विस्तार- २ पृ०,
३२ दोहे । इसमें कवि ने भाषा में प्रचलित ३१ वर्णों^१ में से प्रत्येक पर
एक-एक दोहा लिखा है, जो नीति विषयक हैं ।
- (७८) नाममाता अनेकार्थी:- रचना-काल तथा लिपि-काल अज्ञात । प्रति अपूर्ण,
अतएव विस्तार का निश्चित पता नहीं । यह नंददास के "नाममाता
अनेकार्थ" का अनुवाद है । इसमें कवि ने ककार वर्ण, तिसबद, तिसबद,
छकार वर्ण, तकार वर्ण, मकार वर्ण, एकार वर्ण आदि सभी वर्णों
के विभिन्न शब्दों को लेकर अनेकार्थी छंद लिखा है । ✓

१- ३१ वर्ण ये हैं:- क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ह, ञ, ई, ऊ ।

अध्याय - २

कथानकों का आधार तथा कवि की मौलिकता

विषय-प्रवेश:-

हिन्दी साहित्य की प्रेम-गाथाओं में कवियों के विभिन्न व्यक्तित्व एवं विभिन्न उद्देश्य के कारण यद्यपि इनकी रचनाओं के विभिन्न रूप तथा विभिन्न स्तर उपलब्ध होते हैं फिर भी इनके समस्त कथानकों के विकास, घटना-प्रवाह, स्वभाव-चित्रण, प्रेम-निरूपण, वर्ण्य-विषय, रचना-पद्धति तथा भाषा आदि विभिन्न उपादानों की दृष्टि से साधारणतः एक रूपता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जो कि प्रेमास्थानों का एक विशेष गुण है¹। इसका प्रधान कारण यह है कि इन प्रेम-कथाओं की दीर्घकालीन एक लम्बी परम्परा मिलने से, वे कभी अपने विलकुल पूर्व रूप जैसी तो कभी नाम-साम्य, घटना-साम्य या भाव-साम्य आदि अल्प-साम्य रूप में अपने पूर्व की कथाओं से संश्लिष्ट होती हैं। इनका पूर्व स्रोत अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत या लोक-साहित्य आदि किसी की भी कथा से हो सकता है। इनके अतिरिक्त कुछ कथाएँ ऐसी भी होती हैं जो कवि की अपनी कोरी कल्पना होती है, किंतु आगे चलकर वे भी परम्परा के अन्तर्गत जाती जाती हैं और बाद के कवि तथा लेखक उन्हें अपनाते जाते हैं। इस तरह इन पूर्व तथा नवीन कथाओं की एक ऐसी परम्परा बनती जाती है कि इनमें एकता की प्रवृत्ति का जाना स्वाभाविक है। इनमें विभिन्न अभिप्रायों का परम्परागत जाल जैसा बिछा हुआ मिलता है और लेखकों तथा कवियों ने जहाँ, जैसे एवं जिस रूप में चाहा, उनकी तोड़-मरोड़ कर अपनी परिस्थिति के अनुकूल सबूतों का प्रयत्न किया है। एक रूपता की प्रवृत्ति होते हुए भी इनके घटना-चक्रों में पूरी वैवाच्यता मिलती है जिससे वे सभी कथाएँ प्रायः एक दूसरे से विलकुल भिन्न एवं नवीन लगती हैं।

कथानक स्रोतों के परम्परागत विभिन्न रूप:-

प्रेमास्थानों के कथानकों के मूल स्रोतों के अवलोकन के लिए कथाओं की परम्परा तथा कालक्रमानुसार उनके विकसित विभिन्न रूपों का अध्ययन

1- परशुराम चतुर्वेदी- भारतीय प्रेमास्थान की परम्परा- पृ०-२, १९५६ ई० ।

आवश्यक है। ये परम्पराएं भारतीय तथा फ़ारसी दोनों साहित्यों में उपलब्ध होती हैं। ज्ञानकवि ने दोनों परम्पराओं का उपयोग किया है। यहाँ दोनों प्रकार के साहित्यों की प्रेम-कथाओं की गति संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत की जा रही है।

भारतीय प्रेम-कथाओं की परम्परा बहुत प्राचीन है। श्री परशुराम चतुर्वेदी, डा० हरिकान्त श्रीवास्तव तथा एन०एम०पेन्वर आदि विद्वान इसका प्रारम्भ वैदिक साहित्य के ऋग्वेद के कुछ संवादों- जैसे - यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी, श्यामाश्विन, रघवीति आदि से और इसका विकास संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा रासी आदि ग्रंथों की प्रेम-कथाओं से मानते हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत पाये जाने वाले छोटों की वास्तविकता का पता नहीं चलता है। वैदिक कहानियाँ देवता और मानव, अप्सरा और मानव तथा ऋषि और राजकुमार के प्रेम से सम्बन्धित हैं। इनकी अपूर्ण तथा अव्यवस्थित कथाओं में यहाँ यम-यमी के संवाद में स्त्रियों के समानाधिकार की भावना का झलक होता है यहाँ पुरुरवा एवं उर्वशी में मर्दा - रवा तथा श्यामाश्विन एवं रघवीति में प्रेम की सिद्धि के लिए आत्मत्याग का। डा० सत्येन्द्र का विचार है कि "ऋग्वेद में हमें वे जीव और विन्दु और किसी सीमा तक उनका विकास मिलता है जो संसार की लोकवाणी और लोक-कहानी के एक विशद भाग का मूलधार है। अनेक लोक-कहानियों का मूल वेदों के द्वारा और देवताओं में पाया जा सकता है, पाया भी गया है।" किन्तु बाद में इनकी पौराणिक प्रेमाख्याओं के अन्तर्गत एक लम्बी परम्परा चल पड़ी मिलती है। ऋग्वेद के सूक्तों में प्रेम का वह जीव इतना प्रस्फुटित नहीं था जितना आगे चल कर पौराणिक-साहित्य में हुआ।

पौराणिक प्रेमाख्याओं में महाभारत, रामायण, हरिवंश पुराण विष्णु-पुराण, ब्रह्म-पुराण, शतपथ-ब्राह्मण, श्रीमद्भागवत आदि के अन्तर्गत

प्रेम-कथाओं का रूप अनेक प्रकार का दीख पड़ता है, इनमें वैदिक कहानियों के उपयोग के साथ अन्य अनेक पौराणिक कहानियों के आधार पर इनकी रचना हुई है। इन वैदिक तथा अन्य पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त इनकी प्रेम-कथाओं का अन्य कोई आधार उपलब्ध नहीं होता और न इनका कोई पुष्क स्वतंत्र अस्तित्व ही है। इनका अपना एक निरिक्त उद्देश्य रहा है। वैदिक कहानियों की तुलना में इनकी संख्या बहुत बड़ी है तथा इनमें अपेक्षाकृत घटनाओं के विस्तार एवं वाक्य-शक्ति आदि में नवीनता लाई गई है। अक्सर युग के प्रेमात्मानों में प्रेम-भाव की जागृति केवल प्रत्यक्ष-दर्शन पर अवलम्बित नहीं रहती। वहाँ कभी-कभी स्वप्न-दर्शन एवं विष-दर्शन जैसे साधनों की भी सहायता ली जाने लगती है तथा गुण-वर्णन कराने का माध्यम इस जैसे पद्यों को भी बनाया जाने लगता है। - - - - - पौराणिक साहित्य वाले प्रेमा-त्मानों में विरह यातना के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। ये प्रायः स्वाभाविक दशा का ही परिचय देते हैं^१। इनके द्वारा नीति एवं धर्म का प्रचार तथा समकालीन समाज का न्यूनाधिक परिचय दिया गया है। इनमें उष्णाजनिष्ठ की कथा, नलदम्पती की कथा, श्रीकृष्ण-रङ्गिमणी की कथा, यक्ष्मण और मायावती की कथा, गर्जुन एवं सुभद्रा की कथा, भीम-हिडिम्बा की कथा आदि प्रसिद्ध हैं। उपनिषद्ओं में अधिकतर वर्णनात्मक कहानियाँ ही मिलती हैं। महाभारत, रामायण तथा बृहत् कथा-साहित्यों में तो प्रेम-कथाओं के अक्षय-भण्डार हैं। महाभारत तो कहानियों का बृहत् कोष ही है। इनमें अनेकानेक उद्देश्य एवं अभिप्राय वाली अनेकानेक कहानियाँ हैं जो नीति, धर्म, राजनीति, समाज तथा इतिहास आदि अनेक तरह के काव्यों के लिए अवलम्ब सामग्री और प्रेरणा प्रदान करती हैं^२। संस्कृत साहित्य की पौराणिक रचनाओं में भी इन प्रेम-कथाओं का जाहुत्व दीख पड़ता है।

पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में गुणाक्ष्य का

१- परशुराम चतुर्वेदी- भारतीय प्रेमात्मान की परम्परा- पृ० २२१-२४, १९५६ई०।

२- विस्तार के लिए देखिए:- डा० सत्येन्द्र-मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन-पृ० १५०, १९६० ई०।

पाशाची भाषा में लिखित लोक-कहानियों का बृहत् संग्रह "बृहत्कथा" है । इसका मूल रूप अब प्राप्त नहीं है, किन्तु इसका संस्कृत रूपान्तर सोमदेव के "कथासरित्सागर" तथा लोमेन्द्र की "बृहत्कथामंजरी" में उपलब्ध है । दोनों रचनाएँ एक ही ढंग तथा एक ही उद्देश्य से की गई हैं, फिर भी "कथासरित्सागर" अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है । यह अति प्राचीन लोक-कहानियों का संग्रह है । इसमें १८ तन्त्रक और १२४ अध्याय हैं । इनमें भारतीय कहा-
नियों के प्रायः सभी तन्त्र-सूत्र मिल जाते हैं । अपने उपलब्ध रूप में यह अति रोचक एवं महत्वपूर्ण है । इनकी कहानियाँ अपने समय के सामाजिक रीति-
रिवाजों एवं विश्वासों का सुन्दर परिचय देती हैं । "बृहत्कथामंजरी" को कीच महोदय ने अपने समय की अत्यन्त लोक प्रचलित कथाओं का कोश कहा है^१ ।
वे ^{एक} युग से दूसरे युग में संस्कृत के परवात् प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से साहित्य में जीवित रही हैं । हिन्दी साहित्य के आरम्भ काल में बन्द आदि चारण कवियों ने इन कथाओं का पर्याप्त सहारा लिया है, किन्तु भवितकाल में इनकी उपेक्षा होने लगी है । वे शैव तथा शाक्त जैसी साम्प्रदायिक भावनाओं से मुक्त नहीं हैं । इनके अतिरिक्त जैन विद्वान् पूर्णभद्रसूरि का संस्कृत में लिखा हुआ "पंचतन्त्र" तो और भी लोकप्रिय हुआ है । भविस्यत्कथा, जसहरचरित, आदि जैन चरित-काव्य धर्म कथा होते हुए भी प्रमात्मानों की कोटि में आ जाते हैं । इन समस्त जैन कथाओं में मानव के स्थान पर पशु-पक्षियों की कहानियों की बहुलता मिलती है । इनमें आरचर्म-तत्वों के द्वारा मनुष्यों की शिक्षा देने की प्रवृत्ति विशेषा लक्षित होती है । अधिकांश जैन चरित काव्य लोक-कथाओं के आधार पर ही लिखे गये हैं । इनमें धार्मिक एवं नैतिक उपदेश भी मिलते हैं । ऐन्द्रिय सुख की ओर वीतराग होने से इन जैन मुनियों ने प्रेम-तत्व को

^१"As the Sanskrit Panchatantra or Tantrakhyayika heads the history of the beast fable, through the creation of a new literary genre, so the Brihatktha of Guradhya in Paishachi Prakit heads the Literature of Tale----- Guradhya drew freely on the travellers, tales and the popular narratives of this day." 'Classical Sanskrit Literature-P.69, 1923.

सत्य, अहिंसा, अस्तेय एवं ब्रह्मचर्य के आवरण में परिवेष्टित कर दिया है^१।
 "धर्म और साहित्य का अद्भुत सफल मिश्रण जैन कवियों ने किया है। जिस
 समय जैन कवि काव्य रस की ओर भुकिता है तो उसकी कृति सरस काव्य का
 रूप धारण कर लेती है और जब धर्मोपदेश का प्रसंग आता है तो वह पद्मवद
 धर्म उपदेशात्मक कृति बन जाती है जो कभी-कभी नीरस भी हो जाती है।
 इस उपदेश प्रधान साहित्य में भी भारतीय जीवन के एक विशेष पक्ष के दर्शन
 होते हैं और इस दृष्टि से वह महत्वपूर्ण है^२।"

इस तरह जैनाचार्यों द्वारा लिखे गये कथा-गीत धर्म प्रधान होते
 हुए भी प्रेम एवं गुंगार रस से पूर्ण तथा लोकोपयोगी हैं। फलतः इनकी
 रचनाओं में मदनमहोत्सवों के वर्णन तथा वसंत-झीझाओं आदि के प्रेम-पूर्ण चित्र
 उपस्थित किये गये हैं। ज्ञान पंचमी कहा, सुरसुन्दरी चरित, तथा कुमारपाल
 चरित में जहाँ जहाँ प्रेम और गुंगार-रस प्रधान उल्लिखित दिखाई देती है।
 "रवणसेहरीकहा" विप्रलम्भ और संयोग का एक सरस आख्यान है। "जैनियों
 के चरित-काव्यों और पुराणों में साहित्यिक-सौन्दर्य के साथ-साथ ब्राह्मण
 और बौद्ध गाथाओं की कथा-बन्ध-सम्बन्धी विशेषताएँ भी मिलती हैं^३।

बौद्ध-साहित्य तो जातक कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ
 पाली भाषा में हैं। इन कहानियों में भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ हैं
 जिनमें तत्कालीन मानव-समाज या मानव-स्वभाव और पशु-पक्षियों से
 सम्बन्धित कथाएँ मिलती हैं। पशु-पक्षियों के अतिरिक्त जारपर्य-तत्व-जैसे
 गन्धर्व, किन्नर, सर्प आदि - का योग भी उद्देश्य सिद्धि के लिए किया गया
 है। बुद्ध के समय तक भारतीय साहित्य में गद्य तथा पद्यमय बितने भी वर्णना-
 त्मक प्रेमाख्यानक काव्य थे, इन बौद्धों ने इन आख्यानों को अपने धर्म प्रचार की

१- डा० हरिवंश कोछड़-"अपूर्ण-साहित्य", पृ० १४१, सं० २०१३।

२- डा० रामसिंह तोमर-"प्राकृत और अपूर्ण साहित्य"-पृ०-६९-१९६४ ई०।

३- डा० हरिकान्त श्रीवास्तव-"भारतीय-प्रेमाख्यान-काव्य"-पृ०-१३,

दृष्टि से रंगकर नये रूप में बनता के सामने रखता । इनमें हिन्दू कथा-साहित्य रामायण, महाभारत आदि को भी स्थान दिया गया है । महाभारत की बहुत-सी कथाओं का उत्सर्पण हम जातक कथाओं में पाते हैं । कुछ विद्वानों की धारणा है कि रामायण में भी कुछ प्राचीन जैन कहानियाँ मिलती हैं । जैसे - दशरथ जातक की कहानी ।

इस तरह जैन एवं बौद्ध कथाओं में नैतिक एवं धार्मिक उपदेश के साथ भुंगारिक रचनावर्गों को भी महत्व दिया गया है । इनके पात्र अधिकतर वे ही प्रयुक्त हुए हैं जो या तो मध्यम श्रेणी के सेठ आदि हैं अथवा निम्न वर्ग के व्यक्ति । केवल राजपरिवारों या परिवारों तथा देवताओं को ही इनमें स्थान नहीं मिलता है । इसका कारण यह हो सकता है कि इनकी कथाएँ प्रायः लोक-कथा के स्रोतों से संबंध रखती हैं । इनके अतिरिक्त जैन तथा बौद्ध लेखकों ने पाली, प्राकृत या अपभ्रंश की अपनी रचनावर्गों का माध्यम बनाया जिससे उन्हें साधारण तथा निम्न वर्ग के व्यक्ति भी समझ सकते थे । इस तरह इनके कथा-साहित्य-कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी, जातक कथाएँ आदि - में प्रेम-कथाओं की कमी नहीं है । इन्होंने अपने पूर्व की कथाओं को सम्मिश्रित करके उनके रूपों में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर या नवीनता जोड़कर उन्हें साधारण कहानियों के स्तर पर ला दिया है^१ ।

उपर्युक्त कथा-साहित्य के अतिरिक्त प्रेमाख्यानक रचनावर्ग संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के विभिन्न काव्य-ग्रंथों से होती आई हैं । इनके कथानकों को लेकर साहित्य में विविध रूपों की रचना होती रही है । संस्कृत के ललित साहित्य में प्रेमाख्यानों की कमी नहीं है । बाणभट्ट की "कादम्बरी", जन्म-जन्मान्तर से प्रवर्तित प्रेम की बमत्कार पूर्ण गाथा है । कातिदास का कुमार संभव, "मेघदूत", "अभिज्ञान शाकुन्तल", "विक्रमोर्वशीयम्", हर्ष का महाकाव्य "नैषधीयम्", जिविक्रम का "नलवम्पु", सुवन्धु की "वासव-

१- विस्तार के लिए देखिए:- परमुराम चतुर्वेदी-"भारतीय प्रेमाख्यान की

दत्ता", भवभूति का "मासती माधव" आदि अनेक रचनाएं प्रेम-कथाओं के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन रचनाओं में कथा की अपेक्षा वर्णन और रचना-शैली की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। ऐसे काव्य-ग्रंथों की रचनाओं के लिए कुछ विशेष नियम हुआ करते हैं जिससे उनमें साहित्यिक गुणों की प्रचुरता आ जाती है, पर कथा-साहित्य में ऐसा कोई कठोर बंधन नहीं है।

प्राकृत कथा-साहित्य का काल-ईसवीं सन् की लगभग चौथी शताब्दी से लेकर साधारणतया १६वीं या १७वीं शताब्दी तक माना जाता है। इसमें कथा, उपकथा, अन्तर्कथा, आख्यान, आख्यायिका, उदाहरण, दृष्टान्त, वृत्तान्त, चरित आदि के भेद से कथाओं के अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं। हरिभद्रसूरि की समराइञ्चकहा, धूर्ताख्यान, सोम-प्रभसूरि का "कुमारपाल-प्रतिबोध", जिनेश्वरसूरि का कथा कोष प्रकरण, नेमिचन्द्रसूरि तथा वृत्तिकार गामदेवसूरि का आख्यानमणि कोष, धर्मदास-मणि की उपदेशमाला, गुणचन्द्रमणि का कथा रत्नकोष तथा प्राकृत-कथा-संग्रह आदि रचनाएं प्राकृत कथा-साहित्य की निधि हैं। प्राकृत-कथा-संग्रह में सुन्दरी देवी का आख्यान एक सुन्दर प्रेमाख्यान कहा जा सकता है। इन "विविध ग्रंथों में कथाओं को मनोरंजक बनाने के लिए विविध संवादों, वाक्कांक्षित्य, प्रश्नोत्तर बुद्धि-परीक्षा, प्रहेलिका, समस्या-पूर्ति, कहावत, सूक्ति सुभाषित, गीत, गाथा, चर्चरी, छंद आदि का उपयोग किया गया है।" इस तरह सम्पूर्ण प्राकृत-कथा-साहित्य के दो रूप उपलब्ध होते हैं - पहला उसका पूर्व रूप जो कि संस्कृत से प्रभावित है। दूसरा उसका बाद का रूप जो मौलिक है। यही धाराएं आगे चल कर अपभ्रंश में मिलती हैं। इनमें कुछ धार्मिक तथा अनेक लौकिक कथाएं हैं।

अपभ्रंश-साहित्य की रचनाएं ७वीं से लेकर १६वीं शताब्दी तक मिलती हैं, किन्तु इनका वैभव-काल १०वीं से १२वीं शताब्दी तक ही रहा है। सिद्ध, तंत्र तथा सूक्ति के अतिरिक्त पुराण और चरित-काव्य अपभ्रंश के

पुष्ट रंग है। चरित-काव्य प्रेमाख्यानों के रंग के काव्य हैं। प्रेम की इन मधुर कथाओं में उपदेश एवं धर्मतत्त्व को मिला कर रचयिताओं ने इन्हें धर्म-कथा बना दिया है। अपभ्रंश-साहित्य की सारी रचनाएं धार्मिकता का पुट लिए हुए हैं। लोमप्रभुत कुमारपाल प्रतिबोध तथा भविष्यकहा, महापुराण, सुदर्शनचरित, नागकुमारचरित, कुमारपालचरित, करकण्डुचरित, बसहरचरित, पठमचरित आदि प्रमुख आख्यान हैं। इनके कथानकों के संयोजन में कृतिपय दृष्टियों का अनुसरण तथा आदर्श चरित्रों का निर्माण किया गया है इसलिए लौकिक गाथाओं में पारलौकिकता का संकेत विशेष रूप से लक्षित होता है, क्योंकि इनके पूर्व जैनों ने भी ऐसी कथाओं का निर्माण अपने धर्म प्रचार के लिए किया था।

अपभ्रंश साहित्य तथा हिन्दी भाषा के वास्तविक संबंध का अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि हिन्दी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने आदिकाल के अन्तर्गत अपभ्रंश को ही रखा है। यह अपभ्रंश धारा हिन्दी के साथ चिरकाल तक समानान्तर रूप में चलती रही है इसलिए इसका परम्परागत रूप आज हमें हिन्दी साहित्य में दिखाई देता है। देश-काल के प्रभाव से इस धारा का बाह्य-रूप भी ही परिवर्तित होता रहा और उसमें अनेक प्रवृत्तियाँ आविर्भूत एवं प्रतिष्ठित होती रहीं, किन्तु इसका मूल उद्गम वा आन्तरिक रूप ज्यों का त्यों पूर्ववत् ही अबाधगति से प्रवाहित मिलता है। इसलिए हिन्दी प्रेमाख्यान्क काव्य धारा के कथानक प्राकृत अपभ्रंश वा इनके पहले से एक जैसे प्रयुक्त होने से बहुत ही सोक-प्रवर्तित है। इनकी हिन्दी कवियों की मौलिक शोध एवं कल्पना नहीं कह सकते।

हिन्दी कवियों की कथानक शैली पर भी इन अपभ्रंश काव्यों का बहुत कुछ प्रभाव वन-तन दृष्टिगोचर होता है। भाव-भाषा, शैली, छंद आदि के पारस्परिक आदान-प्रदान वा प्रेरणा से प्रभावित होना भी स्वाभाविक है। "हिन्दी के चरित काव्यों, रासक रचनाओं, प्रेमाख्यान्क कृतियों, स्फुटपदों, दोहा सभी के मूल आधार अपभ्रंश में प्राप्त हैं। अनेक रूपों में व्यवहृत भावधारा भी अपभ्रंश साहित्य में मिल जाती है। कुछ में बाह्य रूप तो अपनाया गया है, किन्तु वर्ण विचार अन्य स्रोतों से लिया गया है। वहाँ तक काव्य के विविध

रूपों की मोटी रेखाओं का प्ररन है वे सब किसी न किसी रूप में अपभ्रंश में भी मिलती हैं^१ ।"

अपभ्रंश साहित्य के बाद हिन्दी प्रेमाख्यानों के दो रूप-सूफ़ी तथा असूफ़ी मिलते हैं । असूफ़ी प्रेमाख्यानों में डोलामारूरा दूहा, बीसलदेव-रास, सद्यवत्सलावर्तिगा, सवसेन पद्मावती, छिताईमार्ता, नलदम्पती, माधवा-नलकामकंदला; सत्यवती कथा, चतुर्भुवदास कृत मधुमासती, रूपमंजरी, रघुरतन, प्रेम प्रगास, पुहुपावती, बेतकिंसन्त-विमणी जादि हैं । इनके अधिकांश कथानकों का आधार वैदिक, पौराणिक, जैन, बौद्ध, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश वा लोककथाएं रही हैं, किन्तु मूल कथानकों के अतिरिक्त विभिन्न अभिप्रायों वा अध्यात्मिक अभिव्यञ्जना के लिए ये सूफ़ी-साहित्य से भी प्रभावित रही हैं^२ । हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान पद्मावत, मुगावती, मंभनकृत मधुमासती, बिनावती, अनुराग बांसुरी, जान्दीप, कुतुबपुरतरी, सैफुलमलूकबबदीउलउमात जादि के कथानकों के उद्गम अरबी, फ़ारसी वा लोक-साहित्य में बूढ़े जा सकते हैं । फ़ारसी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में प्रेम-निरूपण की वो भाव-भूमियां हैं वे हिन्दी प्रेमाख्यानों के रचयिताओं की प्रेरणा देती रही हैं । यद्यपि दोनों के परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त अन्तर है । दक्खिनी हिन्दी में लिखने वाले कवियों ने भी फ़ारसी आदर्श को अपनाया ।

इस तरह अपभ्रंश तथा फ़ारसी स्रोतों के अतिरिक्त हिन्दी प्रेमाख्यानों की कथाओं का उद्गम स्रोत बहुत कुछ इस देश की प्रचलित लोक-कहानियां हैं । इन लोक-कहानियों की परम्परा बहुत प्राचीन रही है। अपभ्रंश साहित्य की लोक-कहानियों का हिन्दी पर बहुत प्रभाव रहा है^३ । प्रश्न यह

१- डा० रामसिंह तोमर-"प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य"-पृ० २३८-३९, १९६४ ई० ।

२- डा० हरिवंश कोछड़-"अपभ्रंश-साहित्य", पृ०-३८८, सं० २०१३ ।

३-"लोक कथाओं की अपभ्रंश-साहित्य में बहुत स्थान मिला है और अनेक हिन्दी कवियों द्वारा ग्रहीत कथाओं के समान ही पूर्ववर्ती अपभ्रंश में भी कथानक मिलते हैं । हिन्दी प्रेमाख्याक काव्यों पर इस प्रकार का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है ।"

डा० रामसिंह तोमर-प्राकृत तथा अपभ्रंश-साहित्य, पृ० २७१, १९६४ ई० ।

है कि क्या इन लोक-कथाओं की केवल लौकिक परम्परा ही मिलती है या इनका कोई साहित्यिक रूप भी रहा है ? वस्तुतः इसका निर्णय करना बहुत कठिन है कि कोई कहानी कब तक जन-प्रिय एवं लोक-प्रचलित रही है और कब साहित्यकारों द्वारा अपनाई जाकर साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत आई ? इसके संबंध में विद्वानों में दो वर्ग हैं - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, "हरिऔध", एवं श्याम सुन्दरदास जैसे विद्वान इन कहानियों की एक साहित्यिक परम्परा मानते हैं जबकि पारवात्य विद्वान विशेषकर ए०जी० शिरफ^१ इनको लोक-ग्रहीत और मौखिक मानते हैं । प्रसंगानुसार थोड़े हेर-फेर के साथ सूफ़ी कवियों ने प्रायः इन्हें ज्यों का त्यों अपने ढंग से अपनाया और आवश्यकतानुसार आध्यात्मिक संदेश भी दिये । कुछ विद्वानों की धारणा है कि लोक-कथाओं का आधार लेकर ऐसे काव्यादि लिखने की परम्परा सूफ़ी कवियों ने ही चलाई, किन्तु यह संगत नहीं । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह मत उल्लेखनीय है कि "लौकिक निम्नवर्गीय कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना उस देश की विराचरित प्रथा है । हमारे साहित्य के इतिहास में एक गलत और केजुनियाद बात यह चल पड़ी है कि लौकिक प्रेम-कथाओं का आश्रय करके धर्म भावनाओं का उपदेश देने का कार्य सूफ़ी कवियों ने आरम्भ किया था । बौद्ध, ब्राह्मण और जैन अनेक आचार्यों ने नैतिक और धार्मिक उपदेश देने के लिए लोक-कथाओं का आश्रय लिया था^२ ।"

इस तरह प्रेम-कथाओं की लम्बी परम्परा होने से इनके कई कथानक विभिन्न कालों में अनेक बार दुहराए गये मिलते हैं फिर भी इनका वास्तविक रूप नहीं बन होता गया है । विभिन्न कालों में कवियों ने उस पर अपने-अपने समय एवं परिस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ नवीन रंग बड़ाने की चेष्टा की है और अपनी कल्पना के बल पर कभी-कभी उनमें बहुत सुन्दर कलात्मक परिवर्तन भी कर दिए हैं जिससे इनमें नीरसता नहीं जाने पाई है ।

१- यदुमावती, पृ० ११४ (पाद टिप्पणी) ।

२- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी साहित्य का आदिकाल-पृ० ११,

एकरूपता की सामान्य प्रवृत्तियाँ:-

कथानकों में परम्परागत एकरूपता प्रेमाख्यानों का एक विशेष गुण है। इनमें कुछ ऐसी सामान्य एकरूपता की अभिव्यक्ति मिलती है जिससे लगता है कि जैसे सभी प्रेम-कथाओं के विभिन्न उपादान एक जैसे हैं और उनको कवियों ने जैसे तथा जिस रूप में बाँटा है तोड़-फोड़ कर अपनी परिस्थिति के अनुकूल रचनाओं में खोजने का प्रयत्न किये हैं। कभी-कभी तो कवि अधिक घटनाओं की पैकीदगी के गुंफन में फँसकर काव्य को काफी जटिल बना देते हैं और इससे कहानी का स्वाभाविक विकास जाता रहता है तथा साधारण पाठकों को समझने में कठिनाई का अनुभव होता है। इस एक रूपता के अनेक कारणों का विवेचन अगले अध्याय में "कथानक-संगठन" के साथ किया गया है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इन कथाओं का कुछ न कुछ पूर्व रूप अवश्य प्रवर्तित रहा है।

इस तरह एक-रूपता की दृष्टि में रत कर इन कथाओं के पूर्व साधारण से सम्बन्धित कथाओं के हम कई वर्ग कर सकते हैं। पहली वे रचनाएँ जो पूर्ण रूप से अपने पूर्व की रचनाओं से एकरूपता रखती हैं। दूसरी वे हैं जो आंशिक रूप से घटना, नाम या भाव-साम्य के रूप में उपलब्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी रचनाएँ होती हैं जिनका अपना कोई पूर्व साधारण नहीं होता। वे कवि की कोरी कल्पना होती हैं फिर भी वे जागे चलकर परम्परा में सम्मिलित हो जायज करती हैं और उनके कथानकों में एकरूपता अपने साथ लाती जाती है।

जानकवि के कथानकों का साधारण:-

जान कवि ने अपने पूर्व तथा समय की प्रवर्तित कई कथाओं के कथानकों को लेकर काव्य रचना की है। इस दृष्टि से उन्होंने अरबी, फ़ारसी, हिन्दी, लोक-साहित्य आदि सभी स्रोतों का उपयोग किया है। उदाहरण के लिए कथा नन्दमर्त्यती पुराण की एक प्रत्यात् कथा रही है जिसकी कि एक

बहुत लम्बी परम्परा मिलती है। सैतामबनुं, त्रिबुवां देवलदे, बलुकिमा-विरही, लमीम अन्सारी आदि अरबी तथा फारसी-साहित्य की प्रसिद्ध कथाएँ हैं। इनके अतिरिक्त "कथा कबलावती" के लिए इनामतुल्लाहकृत "बहारेदानिशा", "कथा अरदसेरपतिगाह" के लिए "शाहनामा" "कथानिमल" के लिए "नाउता" की कथा, ^{तथा} "कथा कामराजी वा पीतमदास" के लिए "किस्से बहार दर्वेश" का आधार भी लिया गया है, इस बात के प्रमाण मिलते हैं। कथा छीता के लिए- "छिताई बार्ता" कथा कामलता के लिए "कुसुमपुरतरी" तथा कथा रतनावती के लिए "सैफुलमुक व जदीउलमात्र" मध्ययुग की प्रचलित प्रसिद्ध प्रेमकथाएँ हैं। कवि का "बांदी नावा" इनके पितामह दाउततर्ग की सहोदरा बहन कवयित्री ताज द्वारा निरचित "बीबी बांदी का भगदौं" पर आधारित है। इस तरह इस मनमौजी कवि ने जहाँ, कैसे, जिस रूप में बाधा है वहाँ, कैसे उस रूप में पूर्व प्रचलित कथाओं को अपनाकर विभिन्न कथाभिप्रायों का मिश्रण करते हुए अपनी काव्य रचना कर दी है। इनकी कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनकी कथाओं का पूर्ण कथाधार नहीं मिलता, पर पूर्व की विभिन्न प्रेम या लोक कथाओं में इनके कथांश तथा नाम, घटना, भाव या अभिप्रायों का साम्य मिलता है। कुछ कथाएँ कवि की कल्पित भी हैं, पर इनकी संख्या बहुत कम है। लगता है, वे राजस्थान की मौखिक या लोक प्रचलित कथाओं से ली गई हैं, क्योंकि राजस्थान में मौखिक रूप से कथाओं के कहने तथा सुनने की एक बहुत प्राचीन परम्परा रही है। इसकी भी बर्तमान कवि ने अपने ग्रंथों में की है^१। इसके अतिरिक्त अपनी अधिकांश कथाओं में कवि ने कथा की प्राचीनता की दुहराई देते हुए उसे अपने ढंग से अपनाने की बर्तनी भी की है^२।

आधारों के विभिन्न रूप:-

कथाओं के आधारगत विभिन्न रूपों की दृष्टि से इनके समस्त

१- कथा रतनावती - बी० - ६ से ८ तक।

२- देखिए अध्याय ३ में 'साहित्यिक-अभिप्राय'।

ग्रंथों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :-

(क) पूर्णज्ञात कथाधार ।

(ख) मिश्रित या अल्पज्ञात कथाधार । तथा

(ग) कल्पित या अज्ञात कथाधार ।

पूर्ण ज्ञात या उपलब्ध स्रोतों में कथा कलावती, कथा कामलता, कथा पुष्पवरिष्ठा, कथा रतनावती, कथा नलदमयन्ती, कथा तमीम अकगारी, कथा कामरानी वा पीतमदास, कथा अरदक्षेरमतिसाह, ग्रंथ लैलामजनुं, कथा - शिखरां देवलदे, कांदीमाता, कथा मधुकर मालती, कथा छीता तथा कथा बसुकिवा निरही आदि प्रेमाख्यान हैं । इनमें कवि ने अरबी, फारसी, उर्दू, हिन्दी आदि सभी स्रोतों का उपयोग किया है ।

मिश्रित या अल्पज्ञात स्रोतों में कथा कौतुहली, कथा मोहनी तथा कथा छविस्तार, कथा सुभटराह, कथा कर्बदर, कथा सतवंती, कथा सीतवंती, कथा बन्धसेन राजा सीतनिधान, कथा कुतवंती, तथा कथा निरमल हैं । इन प्रेमाख्यानों के कथानकों का कुछ पूर्व रूप तो मिलता है किन्तु केवल आंशिक साम्य मिलने से उसे उनका निश्चित आधार नहीं कहा जा सकता । इनके अभिप्रायों के विभिन्न स्रोत भी अरबी, फारसी, हिन्दी या लोक प्रचलित कथाएँ ही हैं । इन आधारों में प्राप्त अंशों के अतिरिक्त सम्मिश्रित अंश सम्भवतः कवि की मौखिक कल्पना से प्रसृत हैं ।

अज्ञात या कल्पित काव्यों में कथा कलावती, कथा कन्कावती, कथा रूपमंजरी तथा कथा रतनमंजरी हैं । इनके कथानकों के संबंध में ऐसा लगता है कि कवि ने अपने पूर्व प्रचलित विभिन्न अभिप्रायों को लेकर प्रायः अपने ढंग से रूपरंग देकर इन्हें सजा दिया है । राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र में रही जाने के कारण इनमें राजस्थानी लोक-गाथाओं के विभिन्न रूपान्तरों का मिश्रण स्वाभाविक है ।

जागे के पृष्ठों में हमने प्रत्येक ग्रंथ की पुष्क-पुष्क कथा-वस्तु, उनके कथाधार तथा यथा सम्भव उनके मूल स्रोतों की परम्परा का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है ।

(क) पूर्णज्ञात कथाचार

कथा कवलावती

कथावस्तु:-

रूपनगरी के राजा रूपराज तथा रानी रूपरेख के इन्दुवदन नाम का अत्यन्त सुन्दर पुत्र था । राजा रूपराज ने कुंवर की शादी के लिए देश-विदेश के चित्रकारों द्वारा विभिन्न सुन्दरियों के एक सहस्र चित्र मंगवाए । कुंवर ने उनमें से कोई भी पसन्द न किया । एक दिन वह राजमहल में बैठा ही था कि अचानक एक तोता जाकर उसके हाथ पर बैठ गया और कहने लगा कि मदननगरी के राजा मदनराज तथा रानी मदनकला के एक अत्यन्त सुन्दर पुत्री कवलावती है जो अपने समान कर पाने पर ही विवाह करना चाहती है । वहाँ के राजा ने चित्रकारों से दो सहस्र राजकुमारों के चित्र मंगवाए, पर उसे कोई भी पसन्द न आया । जब मुझे उसके योग्य किसी की खोज में भेजा गया है । जाप की देख कर मेरा मन मोहित हो रहा है । अतः जाप चित्रकार भेजकर चित्र मंगवाएं । तोता इधर कुंवर के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने के बाद जाकर राजकुमारी कवलावती से भी कुंवर की रूप-प्रशंसा की । एक चित्रकार ने कवलावती का चित्र लेकर कुंवर के पास गया और कुंवर का भी एक चित्र बना लाकर कवलावती को दिया । दोनों एक दूसरे का चित्र पाकर तथा मोहित हो विरह में विकल रहने लगे ।

माता-पिता को शत होने पर दोनों का शीघ्र ही विवाह संपन्न हो गया । दम्पति सुख में समय बिता ही रहे थे, कि एक दिन सुरपति की इच्छानुसार उनके घर दोनों को लौटे हुए "इन्द्रसभा" में उठा ले गये । वहाँ अनेक राग-रागिणियों को सुनकर दोनों मुग्ध रहे । सभा समाप्त होने पर अनुवरों ने उन्हें धीराहर लाकर छोड़ दिया । वहाँ से एक देव कवलावती को उठा ले गया । कुंवर जागने पर बहुत चिन्तित हुआ और एक तोते को कवलावती के खोज में भेजा, किन्तु बहुत दिनों के बाद जब तोता वापस न आया । तो

कुंवर कबलावती की खोज में स्वयं निकला । वह जंगल में अनेक कष्ट सहता हुआ एक जगह बैठा ही था कि उसे एक पक्षी उड़ा ले गया और ऐसे स्थान पर छोड़ आया जहाँ गरुड़ (गुरु) की कृपा से उसने कबलावती का पता पाया । गरुड़ द्वारा दी हुई मृत्ति की सहायता से वह कबलावती के पास पहुँचा और उसे देव से छुड़ा कर प्राप्त किया । दोनों मदनपुरी लौट ही रहे थे कि इसी समय बलसागर नामक राजा ने कबलावती के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर इन दोनों पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वह स्वयं हारकर लौट गया । इसके बाद दोनों नौका द्वारा समुद्र पार कर रहे थे कि तूफान आने से नाव फट गई और दोनों बिलग होकर विपरीत दिशा में बह गये । कबलावती रूपनगर पहुँची । वहाँ रूपाक्ष ने अपनी पुत्र-वधू को पहचानकर कुंवर की खोज का प्रयास किया । इधर बहते-बहते कुंवर एक अप्सरा के हाथ लगा । अप्सरा की प्रणय - वाचना को न स्वीकार करने पर उसने उसे अनेक कष्ट दिया । इसी बीच में गरुड़ की कृपा का ध्यान करने पर कुंवर को उन्होंने दयापूर्वक लाकर रूपनगर पहुँचा दिया और दोनों बिछुड़े प्रेमी पुनः मिल कर सार्ध काव्यापन करने लगे ।

कथा का आधार और कवि की नवीनता:-

जान कवि की इस कथा का आधार इनामतुल्लाह की एक फ़ारसी रचना ^{रचना} "बहारे-दानिशा" (*Bahar-e-Danish*) है । कवि ने इस पुस्तक की रचना जहाँगीर को भेंट करने के लिए की थी + और बादशाह द्वारा इसकी कथा उतनी रोजक न समझी जाने पर भी उसे पुरस्कृत किया गया था । यह पुस्तक कई सालों तक छोटी कथाओं में पाठ्य पुस्तक रूप में पढ़ाई जाती रही है ।

रचना- काल की दृष्टि से जहाँगीर का राज्यकाल सं० १६६२ से सं० १६८५ तक रहा है और जान कवि ने "कथा कबलावती" की रचना सं० १६६९ में की है । इससे स्पष्ट है कि इनामतुल्लाह ने यह रचना जहाँगीर के राज्यकाल के पूर्वार्ध में ही भेंट की होगी और इसके कुछ ही समय बाद जान कवि ने अपनी रचना की । जान कवि ने अपनी कथा के प्रारम्भ में जहाँगीर की प्रशंसा की है,

तथा कथा के पूर्व प्रवर्णित रूप का उल्लेख किया है^१ । यद्यपि ग्रंथ का नाम "बहारे-दानिश्ता" के स्थान पर "कवलावती" तथा नायक एवं नायिका का जहाँदारशाह तथा बहरावरवानों के स्थान पर क्रमशः इन्दवदन् तथा कवलावती रखा है । किन्तु दोनों के कथानक पट्टिचित्र अंतरों के साथ एक जैसे हैं ।

दोनों ग्रंथों की कथा का प्रारम्भ एक जैसा हुआ है । जिस तरह कथा कवलावती का नायक इन्दवदन् तोता द्वारा गुण-श्रवण से नायिका को और आकर्षित होता है उसी तरह "बहारे-दानिश्ता" का नायक जहाँदारशाह भी तोता द्वारा रूप-वर्णन सुनकर हुसनाबाद की बहरावर वानों के रूप पर आशिक हुआ है । तोता दोनों ग्रंथों में नायक-नायिका के बीच प्रेम की प्रगाढ़ता को बढ़ाने के लिए बारी बारी से उनके समीप जाकर एक दूसरे के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है ।

जहाँ कवलावती में तोता कवलावती द्वारा भेजे गये चित्रकार को कुंवर इन्दवदन् के पास तक पहुँचाता है और कुंवर का चित्र लाकर कवलावती को देता है वहाँ "बहारे-दानिश्ता" में एक बेखीर दोनों का चित्र एक दूसरे को देता है और दोनों के बीच सदिश-बाहन का कार्य करता है । इसी तरह कथा के प्रारंभ में नायक-नायिका के प्रेम के प्रादुर्भाव में मुगैन्द्रकृत "प्रेम पयोनिधि" तथा बाबा परणीदास कृत "प्रेमप्रगास" में क्रमशः तोता तथा मैना सहायक हुए हैं ।

प्रेम का प्रादुर्भाव हो जाने के बाद दोनों कवियों ने नायक-नायिका के बीच विरह की गिकतता का एक जैसा वर्णन किया है, पर जान कवि के इन्दवदन् को जहाँ उसके माता-पिता ही सम्भालते तथा अनेक उपचार करते हैं वहाँ इनायतुल्लाह के जहाँदारशाह को अनेक बखीर जाकर स्त्रियों की निन्दा से सम्बन्धित बातें किन्हीं सुनाते हैं ताकि उसका मन फिर जाय, पर उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

१- बी० - ६ तथा ९ से १२ तक ।

अबहि पुरातन कथा बघातू । कानन परी सु रसना जानू ॥

"बहारे-दानिहा" में जिस तरह नायक का पिता नायिका "बहरावर-बानों" के पिता के पास पैगाम भेजता है उसी तरह "कथा कवलावती" में राजा दमराह मदभराह के पास एक बिघ्न द्वारा दोनों के सगाई का संदेश भेजता है। बहरावरबानों के पिता द्वारा पैगाम न स्वीकार करने पर जहाँ नायक जहाँदारशाह-शाह योगी-वेश में घर से निकलता है वहाँ कवलावती का पिता सम्बन्धी स्वीकार कर दोनों का विवाह सम्पन्न करवा देता है। किन्तु "विवाह" और "इन्द्र-सभा" में दम्पति को ले जाने का प्रसंग जान कवि की नवीन उद्भावना है। योगी-वेश में दोनों के नायक लौटने निकलते हैं, पर जहाँ जहाँदारशाह नायिका से विवाह हेतु निकलता है वहाँ इन्द्रवदन् लौटें हुई कवलावती को पुनः लौटने।

जिस तरह नायक जहाँदारशाह नायिका की लीज में जंगल एवं रेगिस्तान में भटकते हुए अनेक कष्ट सहता एवं तकलीफें उठाता है और इस बीच में औरतें, तोता तथा मैनापक्षी उसकी मदद करते हैं उसी तरह जान कवि का नायक इन्द्रवदन् कवलावती को देवताओं द्वारा उठा ले जाने पर उसकी लीज में जंगल, पर्वत, उवाड़नगर आदि में घूमता हुआ अनेक विघ्न बाधाएँ भोगता है और गरुड़, तोता तथा अप्सराएँ उसकी मदद करती हैं। यहाँ जान कवि ने "मैना" के स्थान पर "गरुड़" तथा "स्त्रियों" के स्थान पर "अप्सरारों" का उपयोग किया है। दोनों के नायक कुछ समय तक अपनी ससुराल में रहते हैं।

इन्द्रवदन् के सपत्नीक स्वदेश लौटते समय जिस तरह राजा जल-सागर कवलावती के रूप-सौन्दर्य को सुनकर तथा उस पर मोहित होकर उसे पाने के लिए आक्रमण करता है वैसे ही "बहारे-दानिहा" में जहाँदारशाह के स्वदेश लौटते समय एक बादशाह आक्रमण करता है। आक्रमण के बाद दोनों ग्रंथों में नायक-नायिकाओं को रास्ते में अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। अंत में दोनों ग्रंथों के नायक सपत्नीक स्वदेश वापस आकर तथा माता-पिता से मिलकर कालयापन करते हैं। इस तरह दोनों ही कथाएँ सुखान्त हैं।

इस विरलेक्षण से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान कवि की "कृतावती" के कथानक का एकमात्र आधार यही ग्रंथ है। "बहारे-दानिया" की कथा उस समय बहुत लोक-प्रिय थी क्योंकि वह बहागीर को प्रसन्न करने के हेतु लिखी गई थी। इसलिए ज्ञान कवि का इस कथा के आधार पर ग्रंथ लिखना स्वाभाविक था। कवि एक प्राथमिक घटनाओं एवं प्रसंगों की उद्भावना के साथ कथा का सरल एवं संक्षिप्त रूप ही अपनाता है जिससे अनेक घटनाओं एवं भावात्मक स्वलों का परित्याग करना पड़ा है।

कथा-कामतता

कथावस्तु:-

कथा कामतता का प्रारम्भ कवि "विजय" की विशेषता है के वर्णन से करता है। ईसपुरी का राजा रसाल एक दिन स्वप्न में अपने को एक बर्तन सुन्दरी से मिलते देखता है। वह स्वप्नावस्था में ही था कि उसके यंत्री बुधवंत ने आकर उसकी बगावत जिससे वह क्रोध एवं विरह से व्याकुल हो उठा। राजा के विरह की विकलता देख कर प्रधान ने स्वप्न में देखे हुए राजा के वर्णित रूप के अनुसार उस सुन्दरी का विजय बनवाया और यथ में रखवा दिया। एक पक्षि द्वारा उस विजय को सुन्दरपुरी की शासिका कामतता का बताने पर राजा रसाल अपने प्रधान तथा विजयकार के साथ सुन्दरपुरी गया। विजयकार ने सुन्दरपुरी में राजमहल का निर्माण करते समय उसमें अनेक विजयों के साथ राजा रसाल का भी विजय पाषक-मुद्रा में चित्रित किया। एक दिन संयोग से कामतता उस विजय को देख गई और मोहित होकर विरह में गिर पड़ी। कामतता के पिता ने राजा रसाल को बुलाकर दोनों का पाणिग्रहण कर दिया।

कथा का आधार:-

वाल्मीकि की इस कथा का आधार दक्षिणी हिन्दी के सुफ़ी प्रेमात्माकार मुल्तावुद्दीन "क़ुतुबपुरतरी" प्रतीत होता है। इनके सम-

कासीन कवि गवासी की रचना "सैफुलमुक़्त ब वदीउलज्जमात" कवि के "कथा-रत्नावली" का आधार रहा है। "कुतुब-मुरतरी" प्रकाशित हो चुकी है। रचना-काल की दृष्टि से यह सं० १६६७ की रचना है^१, जबकि जान कवि की "कामलता" उसके बाद की सं० १६७८ की रचना है। मुल्ताज़ज़ही ने गोलकुण्डा के कुतुबशाही मुल्तानों की छत्रछाया में इसकी रचना प्रस्तुत की थी। अपने समसामयिक या ऐतिहासिक पात्रों को लेकर प्रेमगाथा की रचना करने का दक्षिण-हिन्दी में सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है। पं० परशुराम जतुर्वेदी का विचार है कि "जैसे (कुतुब-मुरतरी) हम केवल एक शुद्ध प्रेमात्मान मात्र भी कह सकते हैं। इसमें ऐसे स्वतः बहुत कम मिल सकेंगे जिनकी व्याख्या सूफ़ी कवियों की विचारधारा के अनुसार भी की जाय। शाहजादा मुहम्मद कुली इब्राहीम कुतुबशाह (सं० १६०६-३७) का राजकुमार या जो गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत का चौथा मुल्तान था। अपने पिता के जनन्तर वह स्वयं भी मुल्तान हुआ और उसका राज्य-काल सं० १६६७ तक बना, तब तक उसके बुवराज काल से ही आरम्भ होकर "कुतुब-मुरतरी" की रचना समाप्त हो चुकी थी^२।" ऐसा ही एक कथानक "कथा-सरित्सागर" के अन्तर्गत "अर्तकारवती कथा" में नरदाहन को गोमुख सुनाते हुए वर्णित है। इसमें भी रूपधर तथा रूपलता में केवल विप्र-दर्शन मात्र से विवाह हुआ है। जब हम कथानक की दृष्टि से "कुतुब-मुरतरी" तथा "कामलता" का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं -

ग्रंथ का नामकरण जहाँ कवि गवासी एवं वजही ने नायक-नायिका दोनों के नाम पर किया है वहाँ जानकवि ने केवल नायिका के नाम पर किया है। पात्रों में नायक कुतुब के स्थान पर राजा रसाल तथा नायिका मुरतरी के स्थान पर कामलता रखी गई है। कवियों ने दोनों ग्रंथों की रचनाएँ विप्र की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए की हैं। इसी से दोनों ग्रंथों के आरम्भ में

१- तमाम इतिहास दीस बारा मने ।

सन बक हवार और बठारा मने ॥ कुतुब-मुरतरी, पृ० ५, दक्षिण-प्रकाशन समिति, हैदराबाद ।

२- हिन्दी के सूफ़ी प्रेमात्मान-, पृ० १२६-२७, १९६३ ई० ।

"चित्र" की महिमा गाई गई है ।

जिस तरह "कुतुबपुरतरी" में राजकुमार मुहम्मद कुली रात में स्वप्न में देखे हुए एक सुन्दरी के रूप पर मुग्ध होकर जागते ही विकल हो उठता है और इसकी विकलता पर राजा रसातल द्वारा स्वप्न में देखे हुए रूप वैसा चित्र बनवाता है, वैसे ही कामलता में भी "रसातल" की विरह विकलता पर प्रधान दुर्लभत स्वप्न में देखे हुए रूप के समान चित्र बनवाता है ।

बंगाल के बादशाह की बेटी पुरतरी का परिचय कुतुब को अपने माप चित्र-दर्शन से हो जाता है जबकि जान कवि में एक पथिक चित्र को देखकर उसका परिचय देता है । चित्र का परिचय पाकर दोनों के नायक विरह में विकल दिखाई पड़ते हैं ।

वैसे मुहम्मद कुली चित्रकार के साथ मार्ग में जनेक कष्ट सहते हुए बंगाल जाता है वैसे ही जानकवि का रसातल भी जनेक दुर्गम बनों को पार करता हुआ चित्रकार तथा अपने प्रधान के साथ सुन्दरपुरी जाता है । मार्ग में मुहम्मद कुली की भेंट भिरौतबा, जो कि पुरतरी की छोटी बहन जुहरा के प्रेम में भटक रहा था, तथा राजकुमारी अफ़ताब से हुई है, किन्तु जानकवि ने कथा को सरल रूप देते हुए ऐसा प्रसंग नहीं रचा है ।

मुहम्मद कुली का चित्रकार बंगाल में पुरतरी के राजमहल में सजावट करते हुए जिस तरह मुहम्मद कुली का चित्र बना देता है, वैसे ही राजा रसातल का चित्रकार सुन्दरपुरी में कामलता के सदन में चित्रकारी करते समय राजा रसातल का चित्र बनाता है । दोनों की नायिकाएं संयोग से चित्र को देखते ही अनुरक्त हो विरह में विकल हो उठती हैं । दोनों में नायिकाएं नायक को बुलवाकर विवाह करती हैं । विवाह के बाद दोनों के नायक स्वदेश लौटकर सानंद कातवापन करते हैं ।

इस तरह दोनों कवियों ने चित्र का महत्व दिखाते हुए प्रेम एवं विरह का सुन्दर चित्रण किया है । दोनों कथाएं कल्पित हैं । न तो मुहम्मद कुली का कभी बंगाल जाना प्रमाणित है और न राजा रसातल का सुन्दरपुरी । केवल चित्र की महत्ता का प्रदर्शन ही इन कथाओं का मूल है ।

कथा पुहुपवरिका

कथावस्तु:-

बन्धु ग्रंथों की भाँति कवि नबी, मुहम्मद, किर्रजन, गुरन, बार-बार जादि की बंदना तथा शतहस्तवाँ और अपने पिता असफ़ाँ की प्रशंसा से कथा प्रारम्भ करता है । चौहानवंशीय उत्तमगोत्र के भीमर के राजा भूमात तथा रानी पार्वती को अनेक दान-पुण्य के बाद पुत्र पुरनचोत्तम उत्पन्न हुआ । एक बार राजसभा में राजकुंवर संगीत का आनंद ले रहा था कि एक पक्षी दृष्टिगोचर हुआ । पक्षी को पकड़ते हुए राजकुंवर का राजमुकुट सिर से गिर गया । एक दिन पक्षी का दुःख पूर्ण वनन सुनकर कुंवर ने उसकी कहानी सुननी चाही । पक्षी ने संकोच एवं लज्जा से उस तरह कहानी कहना शुरू किया ।

“मैं प्रेमपुरी के राजा जगमन की पुत्री सुकेसी हूँ । मेरी माता “रूपनिधि” है । मेरे पक्षी होने की बात जागे सुनि । कंकनपुरी नगर का पवार गोत्री राजा उदैसिंह तथा रानी दुर्गावती का पुत्र सुरपति है । एक बार राज सभा में सुन्दर रमणियों की बर्बा में किसी ने पद्मिनी, किसी ने इन्द्राणी, तथा एक बूढ़ ने सुकेसी का रूप-वर्णन करते हुए सबिच्छताया । सुकेसी के रूप-सौन्दर्य - अवस्था से कुंवर सुरपति उसे पाने के लिए व्याकुल रहने लगा और पिता की आज्ञा लेकर कुंवर स्वयं अपने मित्र महानंद के साथ लौबने निकला । लौबते हुए जंगल में गया जहाँ अपने मित्र महानंद से वह अलग हो गया और भटकते हुए जप्तरा निरमलदे से मिला । निरमलदे ने दादासों के हाथ पड़ने की अपनी सारी विरह व्याथा कुंवर से कहते हुए अपने पिता का नाम बसुर्भुज, माता का गिरिका तथा बहन का परमलदे बताया । उसने यह भी बताया कि एक बार मुझे मेरी माँ दूध पिला रही थी, कि एक बन्धु स्त्री आकर मेरी बहन परमलदे को दूध पिलाने लगी । माता के पूछने पर शत हुआ कि वह प्रेमपुरी की जप्तरा “रूपनिधि” है । इसकी पुत्री सुकेसी है, तभी से मेरी माँ तथा वह दोनों मित्र हैं । वह सुनकर पुरनचोत्तम दानवों को मारकर तथा निरमलदे को साथ लेकर बसुरपुर पहुँचा । संयोग से वहाँ मित्र महानंद भी मिल गया । बसुरपुर पहुँचकर

निरमलदे ने एक दिन "फुलवारी" में सुकेसी को बुलाया । कुंवर से मिलने पर उसके हृदय में भी कुंवर के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया और दोनों वहीं लिपटकर सो गये । चित्तमन होने से सुकेसी की मां जोबती हुई नार्ज और दोनों की संयोगावस्था में देखकर लोकतन्त्रा को बचाने के लिए सुकेसी को पक्षी बना दिया । मैंवही "सुकेसी" पक्षी हूँ । एक वर्ष मुझे हो गया । प्रियतम की खोज में रहे हो भटक रही हूँ ।"

पुराणोत्तम यह कथा सुनते ही पित्रदे में सुकेसी पक्षी को लेकर जाता और दो वर्ष बाद प्रेमपूरी पहुंचा । सुकेसी की मां रूपनिधि ने अत्यन्त हर्षित होकर उसे पक्षी से पुनः पुत्री बना दिया । कुछ दिन बाद ही संयोग से वहीं सुरपति भी जा गया । पुराणोत्तम की पक्षीपकारी भावना से दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया । सुरपति के जाग्रह पर बाद में पुराणोत्तम का निरमलदे से तथा महानंद का परमलदे से भी विवाह सम्पन्न हो गया । इस तरह तीनों दम्पति स्वदेश लौटकर सानंद कालयापन करने लगे ।

कथा का आधार:-

जान कवि की "पुहुपवरिष्ठा" कथा का आधार संस्कृत "मधु-मातली" है । इसमें कवि ने कुछ कल्पित घटनाओं के सम्मिश्रण के साथ मधुमातली के कथानक की ही हेर-फेर के साथ अपनाया है । रचना-काल की दृष्टि से मधुमातली सं० १६०२ की रचना है जबकि "कथा पुहुपवरिष्ठा" इसके बाद की सं० १६८५ की रचना है । जानकवि ने ग्रंथ के नाम परिवर्तन के साथ पात्रों में ताराचंद के स्थान पर पुराणोत्तम, मधु नायिका के स्थान पर सुकेसी, मनोहर के स्थान पर सुरपति, प्रेमा के स्थान पर निरमलदे आदि रक्ता है । वैसे इस कथा का मूल स्रोत द्वापर (चौराणिक काल) में मिलने की ओर संकेत मिलता है^१ । जानकी ने अपने षड्मावत में कई पूर्व प्रचलित प्रेम कहानियों का

१- आदि कथा द्वापर चलि आई । कतिपुन मंह भासा के गई ।।

उल्लेख किया है जिसमें मधुमालती के सम्बन्ध में भी बताया है कि —

साधा कुंवर मनोहर जोगू ।

मधुमालति कहं कीन्ह निमोगू ॥

इससे ध्वनित होता है कि इस प्रकार की किसी कहानी का ज्ञान इस कवि को भी रहा होगा, पर इसका मौखिक रूप प्रचलित या या लिखित— इसका सही पता नहीं चलता । मरहान के परवर्ती उममान कवि ने भी मधुमालती कथा का उल्लेख अपनी रचना "चित्रावली" के अन्तर्गत किया है^१। इस तरह इस कथा की भी अपनी एक परम्परा लगती है ।

ज्ञान कवि ने कथा का चित्रण "मधुमालती" कथा के वर्द्धांत के बाद के कथानक तथा प्रारम्भ के कथानक के भावात्मक रूप को लेकर कल्पना के मिश्रण से किया है । श्रीनगर के चौहानवंशीय प्रतापी राजा भूपाल हर तरह से सम्पन्न होने पर भी संतान के अभाव में दुखी रहते थे । बाद में ज्योतिषियों के बताने के अनुसार पुत्र पुण्यजोत्तम हुआ । कुंवर ने एक दिन एक पक्षी पकड़ा और उस पक्षी द्वारा ही पूरी कथा कहलवाई गई है । इस तरह ज्ञान कवि के पुण्यजोत्तम "मधुमालती" में व्रत के भाग में बाप हुए पौनेरिगढ़ के तारावंद के रूप में हैं जिसका प्रसंग ज्ञानकवि ने कथा के प्रारम्भ में ही ला दिया है । राजाओं के संतानभाव का प्रसंग दोनों कथाओं में है, पर मधुमालती में जहाँ नायक के पिता कनैगिरि के राजा सूरजभान की संतान का दुःख है, वहाँ ज्ञान कवि के परोपकारी पुण्यजोत्तम के पिता श्रीनगर के राजा भूपाल की । "मधुमालती" के परोपकारी तारावंद का कोई परिवय नहीं दिया गया है ।

कुंवर पुण्यजोत्तम के परिवय के बाद ज्ञान कवि ने पूरी कथा पक्षी द्वारा कहलवाई है जबकि मधुमालती में ऐसा नहीं है । पक्षी द्वारा कथा कहने की नवीन शैली का प्रयोग ज्ञान कवि की विशेषता है ।

मधुमालती में जहाँ महारस नगर के राजा विक्रमराज की कन्या मधुमालती के प्रति कनैगिरि के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर के हृदय में स्वप्न में

१- मधुमालति होई रूप दिखावा । प्रेम मनोहर होई तहं नावा ॥

(चित्रावली) ।

पूर्वाञ्जराग से प्रेम अंकुरित होता है और कुंवर विरह से व्याकुल हो उठता है वहाँ "पुहुपवरिष्ठा" में प्रेमपुरी के राजा जगमन्नाय तथा पटरानी रूपनिधि की पुत्री सुकेसी के गुण-श्रवण से कंकनपुरी के पवार गोत्र के राजा उदैसिंह तथा रानी दुर्गावती का पुत्र सुरपति आकर्षित होकर उसके विरह में विकल रहने लगता है^१। इस तरह वहाँ एक में प्रेम का उदय स्वप्न-दर्शन से हुआ है वहाँ दूसरे में गुण-श्रवण से। विरह की विकलता में दोनों नायकों के माता-पिता अनेक उपायों से उनका उपचार कराते हैं, पर सफल नहीं हो पाते।

वहाँ मधुमालती का मनोहर पिता की अनुमति लेकर अकेले योगी-वेश में मधुमालती को खोजने निकलता है वहाँ जान कवि का सुरपति अपने वरपन के मित्र महानंद के साथ सुकेसी को खोजने निकलता है और योगी-वेश धारण नहीं करता।

मनोहर तथा सुरपति दोनों जंगल में खोजते हुए अनेक तरह का कष्ट रहते हैं, राक्षस से मुझ तक करते हैं। सुरपति अपने मित्र महानंद से भी बिछड़ जाता है और भटकता हुआ रूपनगर पहुँचकर अप्सरा निरमलदे से मिलता है। उससे सुकेसी से मिलाने का आश्वासन पाकर दानवों का संहार करके निरमलदे को साथ लेकर वह चतुरपुर जाता है। वहीं संयोग से मित्र महानंद भी मिल जाता है और निरमलदे की सहायता से वह कुलवारी में सुकेसी से मिलता है। इसी तरह "मधुमालती" में मनोहर पेमा को राक्षसों से छुड़ाकर और उसे लेकर चित्त बिसराउ नगर जाता है व तथा विजयवारी में मधु से मिलता है।

दोनों के नायक अपनी अभीष्ट प्रेमिकाओं से मिलने के बाद सुख-बुध भूलकर सो जाते हैं। अत्यधिक विलम्ब होने पर दोनों नायिकाओं की माताएं जाती हैं और लोक लज्जा को बचाने के लिए उन्हें मंत्र द्वारा पत्नी बना देती हैं^२। जान कवि में पत्नी द्वारा कथित कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है,

१- चौ०- ४४, ४७ से ५४ तक।

२- मधुमालती-सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त- छंद ३५२, १९६१ ई०

तथा "श्या पुहुपवरिष्ठा"- चौ० १२५।

किन्तु फिर भी पुरणञ्जोत्तम की परोपकारी भावना से कथा बागे की ओर बसती रहती है ।

जिस तरह पुरणञ्जोत्तम पद्मी द्वारा कथा सुनने पर पद्मी को पित्रदे में लेकर दो वर्ष के बाद प्रेमपुरी पहुँचता है और नायिका की माता प्रसन्न होकर मंत्र से पुनः नारी उसे बना देती है^१। वैसे ही ताराचंद कथा सुनने पर तुरन्त पित्रदे में लेकर रूपमंजरी के पास महारसनाग जाता है और रूप-मंजरी मंत्र द्वारा उसे पुनः नारी बना देती है^२। यहाँ दोनों कवियों ने निरह-पूर्ण बारहमासा का वर्णन किया है^३। दोनों का प्रसंग एक जैसा है ।

पतिव्रतों को पुनः सुकैसी तथा मधुमालती बनाने के बाद दोनों की माताएँ प्रसन्न होकर क्रमशः पुरणञ्जोत्तम तथा ताराचंद के साथ उसका विवाह करना चाहती हैं पर दोनों उन्हें बहन के रूप में स्वीकार कर शादी करने से इन्कार कर देते हैं । यहाँ कवियों ने दोनों के चरित्रों को बहुत ऊँचा उठाया है । "कथा छीता" में अलाउद्दीन की भाँति दोनों की परोपकारी भावना सबमुब सराहनीय है ।

अंत में जिस तरह मधुमालती में मधु तथा मनोहर और पेमा तथा ताराचंद का विवाह सम्पन्न हो जाता है । वैसे ही सुरपति के अवाक जा जाने से सुरपति का सुकैसी से, महानंद का निरमलदे से तथा पुरणञ्जोत्तम का परमलदे से पाणिग्रहण हो जाता है । इसमें जान कवि ने मित्र महानंद का ज्वीन प्रसंग रखने के कारण ही यहाँ निरमलदे तथा परमलदे दो बहनों का उल्लेख किया है ताकि विवाह की संगति अनुकूल बैठ सके । विवाह के बाद सभी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ स्वदेश वापस आते हैं और सुप्त पूर्वक कालमापन करते हैं । इस तरह दोनों कथार्थ सुखान्त है ।

१- बहुदि मंत्र पडि सुमिरवाई दई । पंछी तैं जछि हूँ गई ॥१४३॥

२- रूपमंजरी पडिकै छिरका, मधुमालति मुबनीर ।

पहिलई रूप भई नर कामिनि, परि हरि पंखि सरीर ॥

-मधुमालती-सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त-छं-

३९३, १९६१ ई० ।

३- मधुमालती -सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त- छंद-४०२ से ४१३ तक, १९६१ ई०, तथा "मुहुषवरिका" १२६ से १३० तक ।

स्पष्ट है कि मंगल की मधुमासती के कथानक में निहित सम्पन्न घटनाओं के उलट-केर के साथ अपनी नवीनता दिखाने के लिए जान कवि ने कुछ नवीन प्रसंगों - यथा यगी द्वारा पूरी कथा कहलवाना, नायक के साथ भिन्न महानंद को ले जाना, कथा के प्रारम्भ में पुष्पकोलम का परिवर्ष देना और उसी के कथा प्रारम्भ करना आदि-- के सम्मिश्रण से अपने कथानक का संगठन किया है, किन्तु घटना, पात्र, कथा-प्रवाह आदि सभी दृष्टियों से आधार मधुमासती को ही बनाया है, और अपने स्वभाव के अनुसार बहुत-सी जटिल घटनाओं का परित्याग करके नवीन प्रसंगों के साथ कथानक को सरल एवं रोचक किया है ।

कथा रतनावली

कथावस्तु:-

अमृतपुरी के राजा जगतराज अनेक राजिनीयों के बावजूद भी निरसंतान थे । इसी विन्ता में एक दिन राजा बनवास लेने का निश्चय कर ही रहे थे कि कुछ ज्योतिषियों ने आकर आश्वस्त्य दिया कि राजा उदैभान की पुत्री जगरानी से स विवाह करने पर उसके पुत्र उत्पन्न होगा । राजा जगतराज ने अपने भैंरी जगवीन को अनेक रत्न-पहार्य के साथ राजा उदैभान के यहाँ भेजा । राजा उदैभान ने सम्मानपूर्वक अपनी पुत्री जगरानी को भैंरी के साथ बिदा कर दिया ।

ज्योतिषियों के कथानुसार राजा के यथा समय पुत्र महिमोहन उत्पन्न हुआ । तब देकर ज्योतिषियों ने बताया कि चौदह वर्ष के उपरांत कुंवर को कष्ट भोगना पड़ेगा, तत्परचात् अभीष्ट प्राप्त करते हुए वह सन्मुखों का भोजता और राजा होगा । इसी समय भैंरी जगवीन के यहाँ भी उत्तम नायक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

महिमोहन एवं उत्तम दोनों एक साथ रहते थे । एक दिन राजा जगतराज ने कुंवर को एक "मुद्रिका" तथा उत्तम को "सरपाय" देकर यह कहा कि इन्हें मुझे नवी सुतेमान में उत्पन्न त्रेम-पूर्वक दिया था । मुद्रिका पर अंकित एक नारी का चित्र देखते ही कुंवर मोहित हो विरह में व्याकुल रहने लगा । राजा के अनेक उपाय करने पर भी कुंवर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । राजा उस

"यामें" पर बंकिम चित्र की नारी (कुतुबगारी नामक नगर के राजा सूरज तथा रानी बन्नावती की पुत्री रतनावती) की जलम्बता सम्झकर मैं बहुत चिन्तित हुआ। राजा ने कुंवर के संतोजन के लिए अनेक खोजियों को भेजा, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। कुंवर पिता की आज्ञा लेकर जाया लास व्यक्तियों तथा उत्तम के साथ स्वयं खोजमें निकला। मार्ग के अनेक कष्ट तथा विघ्नबाधाओं को पार करता हुआ वह चीन और फिर बिजपुरी पहुँचा। वहाँ एक महत में दानवों द्वारा बंदिनी बनाई हुई पद्मिनी से उसकी भेंट हुई जिसने रतनावती का पूरा पता बताया। कुंवर बत्पन्न चतुराई से दैत्यों का विनाश करके पद्मिनी को साथ लेकर सिंहल-द्वीप पहुँचा। संयोग से वहाँ मंत्री-पुत्र उत्तम भी मिल गया। वह अपने इतने दिनों के बिछुड़े हुए समय के बीच की देखी हुई सभी कुतूहल पूर्ण चीजों का वर्णन करता है।

पद्मिनी के प्रवास से उपवन में कुंवर महिमोहन तथा रतनावती का मिलन होता है। रतनावती कुंवर की देखती ही मोहित होकर भ्रष्ट हो जाती है।

रतनावती अपने मिलन की कठिनाइयाँ बताते हुए पुनर्मिलन का एक उपाय बताकर चली गई। एक दिन एक देव कुंवर को उड़ाकर रूपपुरी ले गया। वहाँ रूप संभा ने दोनोंके प्रेम की परीक्षा लेकर रतनावती के माता-पिता से दोनों के विवाह की बर्बादी की, किन्तु इसी बीच में एक दैत्य महिमोहन को छलपूर्वक पकड़ ले गया। राजा सूरज मुझ में दैत्यों को हराकर कुंवर को वापस लाया और दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाहोपरान्त महिमोहन रतनावती के साथ सिंहल द्वीप जाया और वहाँ उत्तम तथा पद्मिनी का भी विवाह करवाया। वहाँ बंजियों का संहार करने के अनंतर दंपति जमुतपुरी जाय और माता-पिता से मिल कर सुवर्णक कातमापन करने लगे।

कथा का आधार:-

"कथा रतनावती" का आधार गौतकुण्डा के गुवासीकृत "सैफुल-मुक़्त व वदीरतकुमार" है। इसके पूर्व इस कथा का अन्य रूप मीरान कृत मधुमालिनी

में भी मिलता है । इस कथा की प्राचीनता पौराणिक-काल तक जाती है^१।
 मंभन की 'मधुमालती' की तरह ही दक्खिनी के सुफ़ी कवि नुसरती के "गुलशने-
 इराक़" (सं० १७१४) में मनोहर और मधुमालती की कथा मिलती है, किन्तु रचना-
 काल की दृष्टि से यह कथा जान कवि के बाद की है । मंभन की 'मधुमालती' सं०
 १६०२ की रचना है और कथा के प्राप्त रूपान्तरों में सबसे प्राचीन है । "सैफुल-
 मुल्क व बदी उलज्जमात" की रचना सं० १६०२ में जहाँगीर के राज्य-काल में हुई है
 जान कवि की "कथा रतनावती" इनके बाद की सं० १६९९ की रचना है । कवि
 ने कथा की उत्पत्ति का सविस्तार वर्णन करते हुए लिखा है कि "मुहम्मद ग़ज़नी
 कथा का बड़ा प्रेमी था । एक दिन उसने अपने प्रधान हसन को १० हजार मुहरों
 देकर अच्छी कथा बुढ़ने की आज्ञा दी । प्रधान ने सातों दीपों में जनेक खोजियों
 को भेजा । उसमें से एक महानु गुणी पण्डित रोम जाकर वहाँ से यह कथा ले
 आया । विवोग तथा मिलन की ऐसी कथा सुनकर बादशाह को प्रसन्नता पूर्वक ४०
 हजार मुहरों से उसे पुनः पुरस्कृत किया^२ । " बाद में जब यह कथा हिन्दुस्तान
 में आई तो उसको जहाँगीर ने बड़े प्रेम से सुना और जानकवि ने उसे अपने
 ढंग से अपनाकर नाम आदि अरबी से हिन्दी भाषा में परिवर्तित किये -

हिन्दुस्तान कथा यह आई । सुनिके जहाँगीर मन भाई ॥
 जहाँगीर डीही उत्पत्ति । कथा सुनित बहु भाई जति ॥
 जब यह कथा सुनी कविदान । कीनी भाषा बाँधि वजान ॥
 वो ज़ामे है तुरकी नाब । हिंद की राजी उनकी ठाँव ॥
 पातिसाह है राजा कीने । सुगम नाब परगट पर दीने ॥
 बाँधी अपनी मति अनुसार । जहाँ और तो तेहु सवार ॥^३

१- "यह कोई ऐतिहासिक आख्यान नहीं है । हाँ, इसकी पौराणिकता में हमें
 कोई संदेह न होना चाहिए । स्वयं मंभन ने एक स्थान पर इस कथा की
 उत्पत्ति इराक़ (पौराणिक काल) में बताया है और कलियुग में अपने द्वारा
 भाषा में रूपान्तरित ।"-मंभनकृत मधुमालती -सम्पा० शिवगोपाल मिश्र,

भूमिका, पृ० २६-११५, १६०।

२- चौ० - ६ तथा ७ ।

३- चौ० ८ ।

जहाँगीर का राज्य-काल सं० १६६२ से १६८५ तक रहा है और ग्वासी की रचना सं० १६७१ की है। इससे लगता है कि जहाँगीर ने अपने समय में जो कथा सुनी थी वह सम्भवतः ग्वासी कृत "सैफुलमुल्क व बदी उलज्जमाल" ही थी। इस कथा के संबंध में पं० परशुराम चतुर्वेदी ने स्पष्ट लिखा है कि "कवि (ग्वासी) ने किसी फ़ारसी गद्य की पुस्तक की कहानी के आधार पर भी रचा था। उस कथा की प्रसिद्धि गजनवी सुल्तान महमूद के समकालीन किसी दरिम्फ़ के दरबार तक में थी और यह वहाँ किसी पुस्तक में भी उपलब्ध थी। ग्वासी ने उस कथा के ढाँचे पर अपनी रचना की तैयार करते समय बहुत कुछ अपनी ओर से भी अवयव मिलाया, किन्तु उसकी छान्नी परम्परा सम्बन्धी प्रायः सभी बातें ठीक पूर्ववत् ही रह गई^१।" इसी कथा के आधार पर बाद में जान-कवि ने भी "कथा रतनावती" की रचना की। कवि ने इस रचना के पूर्व सं० १६८५ में "कथा मुहुपरिफा" की रचना की थी, जिसका आधार मंभनकृत 'मधुमातली' है। इसी से "कथा रतनावती" में मंभन की मधुमातली का भी बहुत कुछ आदर्श मिलता है, पर कथानक का विभिन्न दृष्टियों से विरलेखण करने पर इसका एक मात्र आधार ग्वासी की ही रचना ज्ञात होती है। यद्यपि कवि ने ग्रंथ का नाम बदलते हुए नायक "सैफुलमुल्क" के स्थान पर "महिमोहन", नायिका बदी उलज्जमाल के स्थान पर "रतनावती", मंत्री पुत्र "साठद" के स्थान पर "उत्तम"^{तमा} राजकुमारी के स्थान पर पद्मिनी रक्खा है। नामों का यह परिवर्तन तो स्वाभाविक ही था।

कथा के आरम्भ में ग्वासी की रचना में जहाँ मिस्र के बादशाह "आसिमनवत" के संतान-विवाह पर ज्योतिषियों के बताने के अनुसार यवन देश की कन्या से विवाह करने पर एक वर्ष बाद पुत्र "सैफुलमुल्क" तथा उसीदिन मंत्री-पुत्र साठद पैदा हुए हैं वैसे ही जान-कवि में भी नायक एवं मंत्री-पुत्र उत्तम का जन्म हुआ^२। मंभन की मधुमातली में एक तपस्वी द्वारा पिण्ड देने पर

१- हिन्दी के सुफ़ी प्रेमाख्यान - पृ० ८४, १९६३ ई० ।

२- वी०-९ से १५ तक ।

कनैगिरि के राजा सुरबधान को पुत्र मनोहर प्राप्त हुआ है, किन्तु मंत्री के पुत्र पैदा होने का कोई उत्सव नहीं है ।

जिस तरह राजकुमारों के पैदा होने पर भविष्यवाणी गवासी तथा मंत्रन के रचनाओं में की गई है वैसे ही जानकवि के राजकुंवर महिमोहन के पैदा होने पर भी हुई है^१ ।

गवासी के राजकुंवर सैपुलमुलुक तथा मंत्री-पुत्र साठुद की तरह ही बचपन में जानकवि के राजकुंवर महिमोहन तथा मंत्री-पुत्र उलम एक साथ रहते एवं रान्योचित शिक्षा पाते हैं ।

जिस तरह बादशाह असिमन्वत एक दिन कुंवर को एक 'जरीदार कपड़ा' तथा मंत्री-पुत्र को सुतेमान की दी हुई 'जंगूठी' देता है और कपड़े पर अंकित एकनारी का चित्र देकर कुंवर बेचैन हो उठता है वैसे ही जानकवि में राजा जगतराह कुंवर महिमोहन को सुतेमान की दी हुई "मुद्रिका"^२ तथा उलम को "सरपाव" देता है और कुंवर मुद्रिका पर अंकित एक नारी का चित्र देखकर विरह में पीड़ित हो जाता है,^३ पर गवासी का नायक जहाँ जरीदार कपड़े पर चित्र देखता है वहाँ जान कवि का महिमोहन जंगूठी पर । मंत्रन की मधुमालती में यह प्रसंग नहीं है यद्यपि स्वप्न में दोनों के मुद्रिका बदलने का प्रसंग है । जंगूठी पर चित्र देखकर आसक्त होने का प्रसंग मुल्लावज्जी कृत "सबरस" में है जिसमें हुस्न का चित्र जंगूठी पर देखते ही दिल प्रेमासक्त हो जाता है । सम्भव है कि जान-कवि ने इस अभिप्राय को यहीं से लिया हो ।

वैसे राजा जगतराह महिमोहन की विकलता पर उपचार कराता तथा जंगूठी पर अंकित फुलवारी नामक नगर के राजा सुरज तथा रानी बन्नावती की पुत्री रतनावती का चित्र जानकर विन्तित होता है^४, वैसे ही गवासी का

१- दोहा- १४ तथा चौ० १५ ।

२- चौ० - १८, १९ तथा २४ ।

३- चौ० - २५ ।

राजा "असिमनवल" भी कुंवर की व्याकुलता पर वैजोपचार कराता तथा जंकित तस्वीर की गुल्लितानेपरम के बादशाह की बेटी बदीउलज्जमात की समझकर चिन्तित होता है ।

सैफुलमुल्क पिता की आज्ञा से मंत्री-पुत्र के साथ जिस तरह बदीउलज्जमात को लौटने निकलता है वैसे ही महिमोहन भी मंत्री-पुत्र के साथ पिता जी की आज्ञा लेकर रतनावती को लुंढने जाता है । 'मधुमावती' का मनोहर तो योगी-वेश में अकेले ही निकलता है ।

घर से निकलने के बाद दोनों ग्रंथों के नायक समुद्र पार करके चीन पहुँचते हैं और दोनों को वहाँ एक बूढ़ (पुराण) मिलता है जोकि गवासी में नायक को कुस्तुनतुनियाँ तथा जान-कवि में रूपदेश जाने का संकेत करता है ।

गवासी का नायक कुस्तुनतुनियाँ जाते समय जिस तरह समुद्री तुफान में फँस जाने से साऊद से अलग हो जाता है वैसे ही जान-कवि का महिमोहन रूपदेश जाते समय समुद्र में नाव फँट जाने से पचास हजार व्यक्तियों के डूबने के साथ उलम से अलग हो जाता है ।

मंत्री-पुत्र से विछुड़ने के बाद दोनों ग्रंथों के नायक अनेक प्रकार का कष्ट सहते हुए भटकते हैं । सैफुलमुल्क कहता हुआ हथियारों के द्वीप पहुँचता है, वहाँ से केसरिया नामक नगर होता हुआ "इस्फन्द" द्वीप जाता है जहाँ राक्षसों द्वारा कैद की गई, बदीउलज्जमात की सखी राजकुमारी को छुड़ाकर साथ लेकर जागे बढ़ता है । ऐसी ही जान-कवि का महिमोहन भी जंगियों के हाथ पड़कर अनेक कष्ट भोगता हुआ स्वाजाखिन्न की सहायता से भूपाल मित्रों के यहाँ जाता है । वहाँ एक महल में नज़रबंद की हुई रतनावती की सखी पद्मिनी को दानवों से छुड़ाकर साथ लेकर चलता है । इस तरह दोनों ग्रंथों में एक ही प्रकार का प्रसंग है । मधुमावती में यह प्रसंग नहीं है । इसमें तो मनोहर सीधे जाकर मधु से चित्रकारी में मिलता है ।

जिस तरह बदीउलज्जमात की राजकुमारी के यहाँ पहुँचने पर संयोग

से मंत्री-पुत्र साहजद मिल जाता है जैसे ही महिमोहन को सिंहसदीप पहुंचने पर उत्तम ।

जैसे सही राजकुमारी नायिका सैफुलमुकुट को लाकर बदीउलज्जमाल को मिलती है जैसे ही पद्मिनी महिमोहन को उपवन में रतनावती से ।
"मधुमासती" में ताराचन्द की परीष्कारी भावना से दोनों का मिलन होता है ।

मिलन के बाद नायक-नायिकाओं का पाणिग्रहण होता है । पाणिग्रहण के उपरान्त गुवासी का नायक सपत्नीक स्वदेश जाता है और कथा समाप्त होती है, किन्तु बान्कवि का महिमोहन अपने विवाह के परचातु मंत्री-पुत्र उत्तम की भी गादी आग्रह पूर्वक पद्मिनी से कराता है और मंगियों, दानवों आदि का संहार करते हुए स्वदेश लौटता है और कथा समाप्त होती है । इस तरह दोनों ग्रन्थ सुखान्त हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि बान्कवि के इस ग्रंथ के कथानक का आधार पूर्ण रूप से गुवासी की ही रचना है । गुवासी के प्रयुक्त पात्र भारतीय हैं जबकि बान्कवि के भारतीय । इसलिए नामों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । इन कथाओं के जैसे अभिप्राय उसमान की चित्रावती, कासिमशाह की "इंसजवाहिर", मेरुगिस्ता की "यूसुफ़-जुलैसा", मुस्तरी के "गुलशने-इराक़", संस्कृत के "मासती-माधव", अपभ्रंश की रचना "भविष्यत्कथा" तथा कुहूहत कवि की "तीतावईकथा" में भरे पड़े हैं ।

कथा नलदमर्चती

कथावस्तु:-

निष्ठाव देश के डन्वीन नगर के राजा वीर-सेन के नल तथा पुहकर दो पुत्र थे । वीरसेन के निधन के परचातु नल राजा हुआ । विदुर्भा देश के कुण्डनपुर नगर का राजा भीमसेन तथा रानी पुहुपावती की पुत्री दमर्चती अत्यन्त सुन्दरी थी । नल तथा दमर्चती में स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण आदि से प्रेमारम्भ हुआ । प्रेम का प्रबुधभि होते ही दोनों एक दूसरे को पाने के लिए निकल रहने लगे । इस ^{समय} एक पक्षी दोनों के बीच पत्र तथा संदेश-वाहन

का कार्य करता रहा । दमयंती के माता-पिता को जब प्रेम-प्रसंग मालूम हुआ तो उन्होंने स्वर्ग्वर की रचना की । नारद द्वारा इन्द्र से कहने पर चार देवता - इन्द्र, अग्नि, वसु एवं वरुणा, नल का रूप धारण करके स्वर्ग्वर में गए, इस प्रकार वहाँ नल के पाँच रूप प्रकट हुए, किन्तु जाकहतवाणी होने से दमयंती ने तार्किक नल को पहचानकर जयमान पहनाया और दोनों का पाणिग्रहण हुआ । १२ वर्षों तक वहाँ रहने के बाद पुत्र इन्द्रसेन, पुत्री इन्द्रसेना तथा पत्नी के साथ वह अपने देश वापस गया । वहाँ अपने भाई पुहकर से जुगा खेलेने लगा । नल को युव में डारते हुए देखकर दमयंती ने पुन-पुत्री को कुण्डनपुर पहुँचा दिया । सब कुछ हार जाने के बाद नल एवं दमयंती दोनों जंगल में भटकते हुए अनेक कष्ट सहते रहे । दमयंती को सोती हुई छोड़कर नल एक दिन जंगल में अन्यत्र चला गया । जागने पर दमयंती नल के विरह में व्याकुल होकर जंगल में पशु-पक्षी, पर्वत, नदी आदि से पूछती हुई इधर-उधर भटकने लगी । एक दिन एक नाव द्वारा नदी पार कर वह एक ब्राह्मणी के घर पहुँची और वहाँ ब्राह्मणी की पुत्री सुनंदा के साथ सानंद रहने लगी । इधर नल जयोध्या के राजा तनुपर्ण के यहाँ पहुँच कर गुप्त काल में सौ २०० माह पर वाइक तथा रसोईदार का काम करने लगा ।

वह समाचार मालूम होने पर राजा भीम को अपने विग्रह सुदेव से दमयंती की बुलवाया । मौखी ब्राह्मणी ने दमयंती की यथोचित विदाई की । कुण्डनपुर पहुँच कर दमयंती नल के विवोग में और दुखी रहने लगी । सुदेव ने भेदिया रूप में जयोध्या के राजा तनुपर्ण के यहाँ जाकर नल का पता लगाया । राजा भीमसेन के पुनः स्वर्ग्वर का आयोजन करने पर राजा तनुपर्ण सारथी (नल) के साथ रथ पर जाया । राजा नल के इस गोपनीय रूप का पता केशनी सेविका ने दमयंती को दिया । दमयंती नल को पहचानकर पूर्ववत् मिली । और राजा भीम से आज्ञा लेकर नल-दमयंती पुन-पुत्री सहित स्वदेश आए तथा नल अपने भाई पुहकर से जुगा खेलकर और इस बार सब राज्य जीत कर सानंद राज्य करते हुए कालवापन करने लगा । कुछ दिनों परचातु नल के निधन पर दमयंती सती हुई और पुत्र इन्द्रसेन उज्जैन का राजा हुआ ।

नल-दमयंती कथा की परम्परा:-

इस कथा का प्राचीन रूप वैदिक साहित्य में कहीं नहीं मिलता । वाल्मीकि रामायण में रावण द्वारा प्रेषित राक्षसियों को सीता ने प्रत्युत्तर में नल-दमयंती के प्रेम की वर्णना की है^१। महाभारत में नलोपाख्यान के रूप में वनपर्व वाले ५३वें से ७९वें अध्याय तक में यह कथा मिलती है^२। महाभारत में यह कथा बड़े अच्छे रूप में कही गई है । अन्य समस्त परवर्ती कथाओं का आधार भी प्रायः यही है । जागे जान कवि की कथा नलदमयंती के तुलनात्मक विरलेक्षण के साथ उसका विस्तृत विवेचन किया गया है । महाभारत के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी उसका उल्लेख हुआ है यद्यपि उतना विस्तार नहीं मिलता । मात्स्य पुराण^३ में इक्ष्वाकु-वंश वर्णन के प्रसंग में वीरसेन के पुत्र निष्पद्य देश के नल का, लिंगपुराण^४ में सूर्यवंशीय राजा हनुपर्ण के मित्र निष्पद्य देश के राजा वीरसेन के पुत्र अधिपति नल का तथा स्कन्द पुराण^५ में दो बार एक नल का उल्लेख हुआ है । इनके अतिरिक्त अन्य पुराणों में कहीं निष्पद्य नल का, कहीं सूर्यवंशीय^६ नल का तो कहीं अन्य नामों से नल का उल्लेख हुआ है । मार्कण्डेय पुराण में राजा धुमारक के पुत्र नल, शिवपुराण में शान संहिता अध्याय ६२ में

१- निष्पद्य दमयन्तीव धीमीपतिमनुव्रता ।

तथा उहमिद्वक्ताकुतर्द रामं पति मनुव्रता ।। वाल्मीकि रामायण-सुन्दरकाण्ड-२४-१३ ।

२- विस्तार के लिए देखिए -महाभारत, छठां भाग, इ० प्र०, प्रयाग ।

३- नली द्रावेव विख्याता वीर करयय सम्भवे ।

वीर सेन सुतस्तदै निष्पद्यनराधिपः ।। मात्स्य पुराण-अध्याय -१२-५६ ।

४- भार्यातन्मा भवत् सा यही प्राणोभ्योऽपिगदीयसी ।

दमयंतीति विख्याता विदमर्धाधिपतेः सुता ।। लिंग पुराण-खण्ड-६, अध्याय-५४-३ ।

५- स्कन्द पुराण- ७ प्रभात खण्ड, अध्याय -३४५ ।

" " - ७ नाग खण्ड, " ५४ तथा ५५ ।

६- अग्नि पुराण- अध्याय -२७३, श्लोक ३६ तथा कूर्म पु० -अध्याय २९ में ।

नल तथा भागवत पुराण में यदु के पुत्रों में एक नल का उल्लेख हुआ है ।

पैशाची भाषा में लिखित गुणादय की बृहत्कथा के सोमदेवकृत संस्कृत रूपान्तर "कथासरित्सागर" तथा श्रीमेन्द्र की "बृहत्कथामञ्जरी" में नल की कथा विस्तार से कही गई है । "बृहत्कथामञ्जरी" में कथा का अत्यन्त संक्षिप्त रूप मिलता है । "कथासरित्सागर" में अलंकारवती नामक नवम् स्कन्ध के षष्ठ्यंश में नल-दमयंती की कथा है^१ । महाभारत की भाँति कथा का प्रारम्भ इसमें भी होता है । इस का प्रसंग प्रेम-वटक के रूप में दोनों कथाओं में है, किन्तु महाभारत में इस जहाँ पहले जाग में नल से मिलता है वहाँ कथासरित्सागर में वह पहले दमयंती से ताताज पर जल-झीड़ा के समय मिलता है । महाभारत में सखियों द्वारा दोनों के प्रेम के रहस्य को जानने के बाद राजा भीमसेन स्वयंवर स्वरूप का आयोजन करता है, जबकि कथासरित्सागर में स्वयंवर का आयोजन स्वयं दमयंती के कहने से होता है । इसमें नल के वेश में इन्द्र, अग्नि, यम तथा वरुणा देवता के साथ वायु देवता भी जाते हैं । दोनों में नल कनि के बुरे प्रभाव से अपने भाई से झूत-झीड़ा करता है । 'कथा-सरित्सागर' में इस को पकड़ने के लिए राजा नल दुपट्टा फँकता है और पत्नी उसे लेकर उड़ जाता है जबकि महाभारत में पत्नी अपने आप वस्त्र लेकर उड़ जाता है । दोनों में नल सोती हुई दमयंती को छोड़ कर वन में अन्धकार चला जाता है । "कथासरित्सागर" में वहाँ कुशोण मंत्री नल का पता लगाता है वहाँ महाभारत में सुदेव ब्राह्मण । पुनः स्वयंवर का प्रसंग दोनों में है । इस तरह दोनों कथाओं में पर्याप्त समानता है ।

१०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में त्रिविक्रम भट्ट ने "नलचम्पू" रचना सात उल्लासों में प्रस्तुत की है । कल्पना की विशेष महत्त्व प्रदान करने के कारण इसमें पुराण व महाभारत के कथानक से विशेष साम्य नहीं परिलक्षित होता ।

१२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में श्रीहर्ष ने "नैकाधीयचरितम्" जैसे महाकाव्य में नल-दमयंती-प्रेम का मार्मिक चित्रण किया । इसके २२ सर्गों में कवि

नल तथा भागवत पुराण में यदु के पुत्रों में एक नल का उल्लेख हुआ है ।

पैशाची भाषा में लिखित गुणादय की बृहत्कथा के सोमदेवकृत संस्कृत रूपान्तर "कथासरित्सागर" तथा लीमेन्द्र की "बृहत्कथामञ्जरी" में नल की कथा विस्तार से कही गई है । "बृहत्कथामञ्जरी" में कथा का अल्पन्त संक्षिप्त रूप मिलता है । "कथासरित्सागर" में अलंकारवती नामक नवम् सर्गक के षष्ठ्यंश में नल-दम्पती की कथा है^१ । महाभारत की भाँति कथा का प्रारम्भ इसमें भी होता है । इस का प्रसंग प्रेम-वटक के रूप में दोनों कथाओं में है, किन्तु महाभारत में इस जहाँ पहले जाग में नल से मिलता है वहाँ कथासरित्सागर में वह पहले दम्पती से ताताब पर जल-झीड़ा के समय मिलता है । महाभारत में सखियों द्वारा दोनों के प्रेम के रहस्य को जानने के बाद राजा भीष्मसेन स्वयंवर स्नान का आयोजन करता है, जबकि कथासरित्सागर में स्वयंवर का आयोजन स्वयं दम्पती के कहने से होता है । इसमें नल के वेश में इन्द्र, अग्नि, वाम तथा वरुणा देवता के साथ वायु देवता भी जाते हैं । दोनों में नल कपि के जुरे प्रभाव से अपने भाई से झूत-झीड़ा करता है । 'कथा-सरित्सागर' में इस को पकड़ने के लिए राजा नल दुपट्टा फँकता है और पत्नी उसे लेकर उड़ जाता है जबकि महाभारत में पत्नी अपने आप वस्त्र लेकर उड़ जाता है । दोनों में नल सोती हुई दम्पती को छोड़ कर वन में अन्ध्र चला जाता है । "कथासरित्सागर" में वहाँ बुष्णेण मंत्री नल का पता लगाता है वहाँ महाभारत में सुदेव ब्राह्मण । पुनः स्वयंवर का प्रसंग दोनों में है । उस तरह दोनों कथाओं में पर्याप्त समानता है ।

१०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में त्रिविक्रम भट्ट ने "नलधम्मू" रचना सात उद्वासों में प्रस्तुत की है । कल्पना को विशेष महत्व प्रदान करने के कारण इसमें पुराण व महाभारत के कथानक से विशेष साम्य नहीं परिलक्षित होता ।

१२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में श्रीहर्ष ने "नैषाधीयचरितम्" जैसी महाकाव्य में नल-दम्पती-प्रेम का मार्मिक चित्रण किया । इसके २२ सर्गों में कवि

ने पूरी कथा कही है। उन्होंने महाभारत की पूरी कथा का यथावत् अनुसरण नहीं किया है, बल्कि कथा के अंतिम अंग को, जिसमें दमयंती के सतीत्व की परीक्षा की जाती है, छोड़ दिया है। श्रीहर्ष का कथा के पूर्वार्द्ध रूप को अपनाने का अपना विशेषा लक्ष्य है। वे शृंगार रस के कवि हैं। यदि सम्पूर्ण कथा को लेते तो चरित्र-वर्णन मात्र में शृंगार रस का उतना परिपाक न हो पाता और होता भी तो वह अनुकूल न पड़ता। इसलिए उन्होंने कथा का पूर्वार्ध ही ग्रहण किया है, किन्तु आधार महाभारत ही है^१।

लोक तथा शिष्ट साहित्य में भी नल-दमयंती का स्थान अत्यन्त प्रतिष्ठित रहा है, इसका उत्तम कृतवन, मंथन, जापसी तथा अन्य सूफ़ी कवियों ने भी किया है। फ़ारसी के कवि फ़ैज़ी ने "नलदमन" काव्य की रचना की है। उन्होंने दमयंती के सतीत्व को अधिक विस्तार न देकर नल के प्रेम एवं विरह को ही अधिक उभाड़ा है।

जान कवि के समकालीन कुछ असूफ़ी कवियों ने भी नलदमयंती कथा को लेकर काव्य रचना की है। नरपति व्यास कृत 'नलदमयंती कथा' सं० १६८२ के पूर्व की रचना है जोकि खण्डित प्रति के रूप में हि० सा० सं०, प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। इसके दो खण्ड हैं— (क) संयोग-खण्ड— जिसमें ४५३ चतुष्पदियाँ हैं। (ख) वियोग-खण्ड— जिसमें १८५ चतुष्पदियाँ हैं। नल-दमयंती के सौन्दर्य का वर्णन ही कवि का अभीष्ट रहा है। "श्रीहर्ष कृत मैत्रायण-चरित और नरपतिव्यास की कथा में यद्यपि साम्य है, किन्तु वर्णनात्मक दृष्टि से यह कथा महाभारत तथा कथासरित्सागर में वर्णित रूप के अधिक निकट है^२।" डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव इसका आधार भागवत पुराण तथा दृष्टिकोण आदर्शवादी मानते हैं^३। सुरदास (लखनऊ) कृत "नलदमन"

१- डा० खण्डका प्रसाद मुक्त— मैत्रायण-परिशीलन—पृ० ५८, १९६० ई०।

२- डा० शिवगीपाल मिश्र— "नरपतिव्यासकृत नलदमयंती कथा"—लेख—"हिन्दुस्तानी" भाग २०, अंक २।

३- डा० हरिकान्त श्रीवास्तव— भारतीय प्रेमाख्यातक काव्य—पृ० ३६, १९५५ ई०।

(सं० १७१४) में प्रारम्भ में नल को अनुशानी विधित किया गया है। इस के स्थान पर भाटिन सदेश-वाहन का कार्य करती है। मेघांश महाभारत की तरह ही है। दमयंती की प्रतिष्ठा का कवि ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त जानकवि के बाद की कुछ असूफी कवियों की रचनाएँ नलदमयंती कथा से सम्बन्धित मिलती हैं जिनमें कुंवर मुकुन्दसिंह का "नलवरिच" (सं० १७९८), मुरतीधर का "नललोपाख्यान" (सं० १८१४) तथा सेवाराज का "नल-दमयंती-वरिच" (सं० १८५१) मुख्य हैं। वे अभी मुद्रित नहीं हुए हैं।

हिन्दी के अतिरिक्त अन्य प्रादेशिक साहित्यों के विविध प्रेमाख्यानों में भी नलदमयंती कथा मिलती है। केरल कवि वासुदेव का ९वीं शताब्दी का "नलोदय", कन्नड़कवि कन्नदास का "नलवरिच", उड़िया कवि मधु-सूदन का "नल-वरिच", मैथिली कवि गोविन्द का "नलवरित नाटक" तैलंग की "गुंगार-मैणधीयम" उत्तेवनीय हैं। इनके अतिरिक्त गुजराती कवि जयसुन्दर, भातण ने एवं मराठी कवि नाकर तथा प्रेमानंद ने भी नलदमयंती कथा पर आधा-रित रचनाएँ लिखी हैं।

नल-दमयंती कथा का आधार तथा जानकवि की मौलिकता:-

ऐतिहासिक कथाओं का काव्य में बड़ा महत्व होता है। इतिहास अतीत की घटनाओं को यथासम्भव सत्य रूप में अंकित करता है। यह मानव की जीती कहानी होती है। इसमें इसी लोक की घटित घटनाओं तथा इसी समाज के व्यक्तियों का चरित्र होता है। ऐतिहासिक घटनाओं को जब हम भावना में अपनी कल्पना के आधार पर उसका मूर्त रूप बनाते हैं तो वे और भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। सत्य और कल्पना के इस विविध समन्वय की मनी-हरता का अनुभव करके ही आचार्यों ने इतिहासोद्भव कृत को काव्य के कथानक के लिए महत्व प्रदान किया है। कथानक की यह ऐतिहासिकता पाठक में काव्य

१- विस्तार के लिए देखिए- परमुराम चतुर्वेदी - "भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा"।

के प्रति विश्वास उत्पन्न कराती हैं और उसका रूप तब सबीब, स्वाभाविक एवं व्यवहारिक लगने लगता है। इसमें जन-साधारण का जात्मीय सम्बन्ध संस्कारतः सम्बद्ध होने से साधारणीकरण एवं तादात्म्य स्थापित करने में बड़ी सुगमता होती है।

नलदम्यंती कथा की एक प्राचीन सुदृढ़ परम्परा रही है। जानकवि की नलदम्यंती कथा का कथानक वर्णनात्मक है। इसमें वर्णित समस्त घटनाएँ जीवन के सरस-विवरण के साथ परस्पर स्वाभाविक क्रम से संगुणित मिलती हैं। पाठक के हृदय में नाना भावों की रसात्मक तरंगों को उभारने के लिए घटना-वक्र के अन्तर्गत अनेक वस्तुओं और व्यापारों का प्रति बिम्बवत् विवर्णन किया गया है। कवि कहीं पूर्ववर्ती घटनाओं का संकोच, कहीं विस्तार, तो कहीं कोरी कल्पित घटनाओं की उद्भावना की है। कल्पित उद्भावना के प्रति कवि इस बात के प्रति निरन्तर सबग रहा है कि नूतन कल्पना काव्यगत रस-संगीत के साथ इतिहासगत मुख्य-वस्तु-तत्त्व से भिन्न न प्रतीत हो, बल्कि उसका एक विस्तृत रूप लगे।

प्रायः नल-दम्यंती कथा का मूल स्रोत महाभारत रहा है। जानकवि की नलदम्यंती कथा में जितना कथानक रचखा गया है उसका पात्रों के वयन, विभिन्न घटनाओं के विविध रूपों तथा अन्य अनेक दृष्टियों से निवेदन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इसका भी कथानक महाभारत के अधिक निकट है। पर इनके कथानक का निरिखत आधार पूर्णरूप से नहीं कहा जा सकता कि प्रमुक्त ग्रंथ ही है? इनके समसामयिक सूरदास ने भी सं० १०१४ में नलदमन की रचना की थी। सम्भव है कि कवि ने इससे भी सहारा लिया हो क्योंकि इस ग्रंथ के आदि-अंत का कथांश जानकवि जैसा है। इन सबके अतिरिक्त कवि के व्यक्तिगत संकेत से यह स्पष्ट होता है कि इनके पूर्व जितने रूप इस कथा के विकसित थे उन सब का यथासम्भव उपयोग उसने अपनी आवश्यकतानुसार किया है जिससे लगता है कि उनकी इस कथा का कोई एक आधार नहीं, बल्कि अनेक आधार रहे हैं। जैसा कि स्वयं कवि ने संकेत किया है -

नलदम्यती क्या बघानी । कहत जान जैसी विधि जानी ॥
 नाबी हौ नइ प्रियन माहिं । मेक भांति मै पाई नाहिं ॥
 और और भांति मै लही । लागी भली बात सो कही ॥
 सुरता करि यह भली विचारि । कैसी लीनी दोष निवारि ॥
 सब को मति बुनि-बुनि लियो । बतुर्दान हेतु जरग्या कियो ॥
 बहुत मिलीनी मिली सुवास । अति सुगंध हवेलत प्रकास ॥

अब यहां जानकवि के पूर्व के प्रमुख ग्रंथों- विशेष रूप से महाभारत के कथानक से, कहां, किस प्रयोजन से तथा क्या परिवर्तन किया है और क्या नवीन उद्भावनाएँ हैं इसका तुलनात्मक विश्लेषण कर जानकवि के कथानक की प्रबन्ध कुशलता तथा उनकी मौक्तिकता-परिशीलन किया गया है ।

(१) जानकवि ने कथा के आरम्भ में मलनवी शैली का उपयोग करते हुए ईश्वर की बंदना तथा शाहेकुवत की प्रशंसा की है । महाभारत, कथासरित्सागर, मैणाय आदि की नलदम्यती कथानकों में इसका कोई प्ररन ही नहीं उठता । सूरदास(लखनऊ) तथा फैजी के "नलदमन" में भी ही इस प्रसंग का समावेश है ।

(२) जानकवि के नल तथा दम्यती में पारम्परिक पूर्वानुराग रचन-दर्शन, विषय-दर्शन और गुण-वर्णन-से हुआ है । इसमें दम्यती के रूप-सौन्दर्य के वर्णन से कवि का विशेष प्रयोजन सात होता है । कवि को नल के हृदय में दम्यती के रूप की प्रतिष्ठा करने की और उसके मन को सौन्दर्य लुब्ध बनाना या इससे यह आवश्यक था कि वह दम्यती को नल से शिव तक सौन्दर्यमयी बताता । इस प्रेम की पुष्टि के लिए नायक-नायिका के बीच पवन तथा पद्मी सदिश वाहक-का कार्य करते हैं । महाभारत में नल तथा दम्यती में प्रेम का उदय जबकि एक दूसरे के रूप-सौन्दर्य के वर्णन से हुआ है, किन्तु दोनों के बीच प्रेम की पुष्टि एवं सदिश-वाहन का कार्य इस करता है । बाग में हंस को पकड़ने पर वह नल से मानवीय वाणी में कहता है कि - "राजसु, जाय मुझे मारिएगा, नहीं, छोड़ दीजिए । मैं आपका प्रिय कार्य करूंगा । राजसु, मैं दम्यती के पास जाकर आपके गुणों का वर्णन करूंगा । तो इसका मन आप पर अपने आप तटहू हो

जायेगा । हंस के ये वचन सुनकर नल ने उसे छोड़ दिया^१।" इसी तरह हंस विदर्भ देत जाकर दमयंती से सार बातें कहता है । श्रीहर्ष के नैषध में जानकवि की तरह पुराणुराग से ही दोनों में प्रेम का उदय दिताया गया है और सरोवर में तैरते हुए हंस द्वारा दोनों में प्रेम की पुष्टि हुई है । कयासरित्सागर, में दमयंती जल-क्रीड़ा करते समय राजहंस पकड़ती है जोकि प्रणय-दूत का कार्य करता है^२। नरपतिव्यास की नलदमयंती कथा में ब्राह्मण तथा हंस दोनों और सूरदास (सुखनल) के "नलदमन" में एक भाटिन यह कार्य करती है । जानकवि महाभारत तथा कयासरित्सागर में वहाँ पहले नल का अनुराग दमयंती के प्रति होता है वहाँ नैषध में पहले दमयंती का प्रेम नल के प्रति हुआ है । पवन एवं पक्षी द्वारा बंदिता एवं पत्र भेजवाने की कल्पना कवि की अपनी मौलिक उद्भावना है जिस पर रीतिकालीन शैली का प्रभाव लगता है ।

(३) प्रेम के उदय होते ही नल एवं दमयंती में एक दूसरे की प्राप्ति के हेतु विरह की विकलता का जैसा विवर्ण जानकवि ने किया है, वैसा महाभारत में भी नहीं हुआ है । जानकवि ने जाकर्णिक अप्रस्तुत विधान द्वारा दमयंती के विरह का बड़े विस्तार से वर्णन किया है^३। इसी प्रकार श्रीहर्ष के नैषध, झिड़ी तथा सूरदास (सुखनल) के "नलदमन" में वियोग का सविस्तार विवर्ण किया गया है । नैषध में तो १२२ श्लोकों का एक सर्ग ही दमयंती की विरहावस्था का विवर्ण करने में लगाया गया है । 'कयासरित्सागर' तथा नरपतिव्यास की 'नलदमयंती कथा' में विरह की उतनी तीव्रता नहीं व्यक्त की गई है ।

(४) जानकवि ने स्वर्ग्वर का प्रसंग बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत किया है । अनेक राजाओं के साथ नल का रूपधारण करके बार देवताओं इन्द्र, यम, अग्नि तथा वरुण का स्वर्ग्वर में जाना और जाकासनाणी होने से दमयंती

१- हिन्दी महाभारत- छठा भाग, पृ० ८०१, इ० प्रयाग ।

२- कयासरित्सागर-(द्वितीय खण्ड)-जनु केदारनाथ शर्मा, पृ० १६८ । छंद-२४३से

३- सर्वथा -३२ से ३५ तक तथा चौ० ४५ से ४६ तक । ४८ तक, १९६१ ई० ।

का वास्तविक नल को पहचानकर जयमात्र पहनाना ही स्वर्ग्वर की मुख्य घटना है।
 किन्तु जबकि महाभारत, निष्पाद्य, कथामरिचसागर, नन्दमन आदि में ऐसा नहीं है।
 इनमें नल देवताओं का दूत बन कर दम्पती के पास जाता है और उसे देवताओं में
 से किसी एक को वरणा करने की सलाह देता है। महाभारत में दम्पती के पूछने
 पर - तुम कौन हो ? क्यों आए हो ? नल स्पष्ट कहता है - "हे कन्याणी, मैं
 निष्पाद्य देश का राजा नल हूँ। इस समय देवताओं का दूत बन कर आया हूँ।
 हे गोभने, इन्द्र, अग्नि, वरुणा और यम ये चारों लोकपाल तुम्हें प्राप्त करना
 चाहते हैं। इस कारण इनमें से किसी एक को तुम अपना पति बना लो। मैं
 इन्हीं लोगों के प्रभाव से यहाँ बला गया हूँ।" उस पर दम्पती अपने प्रेमी
 एकनिष्ठता एवं दृढ़ता का परिचय देती हुई कहती है - "महाराज, मैं मन,
 प्राण और अपना सर्वस्व आपको अर्पण कर चुकी हूँ आप मित्र की तरह सब
 ग्रहण करके जो कर्तव्य समझें सो करें। मेरा निष्कपट प्रेम आप ही पर है। हे
 नरेश, जब से इस के मुख से आप का वृत्तान्त सुना है तबसे आप के लिए मैं बने
 कष्ट सह रही हूँ। आप को पाने के लिए ही स्वर्ग्वर की तैयारी हो रही
 है।" राजा नल दम्पती की ऐसी बात सुनकर असमंजस पूर्ण परिस्थिति एवं
 धर्म-संकट में पड़कर कहता है - "हे कन्याणी, देवताओं के आगे विशेष रूप से
 प्रतिज्ञा करके उनका दूत बनकर मैं यहाँ आया हूँ। पराये के लिए बतन करके जब
 मैं किस तरह स्वार्थ साधन करूँ ? जिससे मेरा यह दूत-धर्म नष्ट न हो वैसे
 उपाय कर सकी तो मैं अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।" इसके बाद वापस
 लौट कर वह सारी बातें देवताओं से व्यवस्त कर देता है इस पर भी चारों
 देवता नल का छद्म रूप धारण कर स्वर्ग्वर में वास्तविक नल के पास बैठते हैं।
 इस तरह तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा स्पष्ट है कि ज्ञान कवि में स्वर्ग्वर का
 प्रसंग महाभारत की अपेक्षा सरल एवं सीधा है। इसमें दम्पती आकलनवाणी
 से ही वास्तविक नल को पहचान लेती है जबकि महाभारत में दम्पती की प्रार्थना
 पर देवता अपने वास्तविक रूप में होते हैं और तब दम्पती वास्तविक नल की

१- हिन्दी महाभारत, छठा भाग, पृ० ८००, इ० प्र० प्रयाग।

२- वही, पृ० ८०८।

३- वही, पृ० "।

पहनाकर जयमाल पहनाती है । विवाह सम्पन्न होने पर महाभारत का नल कहता है--"हे कन्याश्री, तुमने देवताओं के जागे मुझे अपना पति स्वीकार किया है । मैं जनमभर के लिए आज से तुम्हारी आश्रय के अनुकूल चलने वाला और प्रेम के आधीन तुम्हारा पति हुआ । दमयंती ने भी प्रणय-पूर्ण वचनों से बार बार-नल का अभिनन्दन किया^१।" जानकवि ने ऐसे वचन नहीं कहलवाये हैं । विवाह-सम्पन्न होने का दोनों में अत्यन्त संक्षेप में वर्णन हुआ है । सूरदास (नलमन) के "नलदमन" में स्वयंवर-प्रसंग महाभारत की तरह होते हुए भी उसने जानकवि की भांति आकाशवाणी कराई है । श्रीहर्ष के नेषाय में स्वयंवर वर्णन का विस्तार है । इसमें श्रीहर्ष की रागात्मक वृत्तियाँ वर्णन में ब्रुव रही हैं । स्वयंवर के अंत में दमयंती प्रत्येक देश के नरेश को एक-एक सुन्दरी दितवाती है जबकि अन्य काव्यों में ऐसा नहीं है । इसके बाद अपने देश वापस जाते हैं और सानंद रहते हुए कालयापन करते हैं । यहीं पर कथा समाप्त है । इसमें कथा का उत्तराई छोड़ देने से दमयंती के सतीत्व की परीक्षा नहीं हो पाई है । कथा सरित्सागर में बार देवताओं के स्थान पर पाँच देवता --इन्द्र, अग्नि, वसु, वरुणा तथा वायु--स्वयंवर में नल के रूप में प्रकट हुए हैं । दमयंती के एक-निष्ठ सतीत्व की भावना से ही आन्तरिक नल का रूप प्रकट होता है^२। नरपति-व्यवहारी की नलदमयंती कथा में इन्द्र ही माया रूप धारण करके पंचनल का छद्म रूप दिखाता है, पर दमयंती के अपने पातिव्रत का स्मरण करते ही उसकी सारी माया दूर हो जाती है ।

(५) जानकवि में नल द्वारा जुवा व खेलने से विपत्ती का प्रसंग अपने-आप जाया है जबकि महाभारत, कथासरित्सागर तथा नलदमन में यह प्रसंग

१- हिन्दी महाभारत, छठां भाग, पृ० ८१०, इ० प्रे०, प्रयाग ।

२- "हे लोकपालों, यदि स्वप्न में भी मेरा मन नल को छोड़ कर किसी दूसरे पुरुष में गया हो तो इसी सत्य के प्रभाव से मुझे अपना स्वरूप दिखाओ । विवाह से पहले जर लिए गये पुरुष के अतिरिक्त कन्या के लिए और सभी पर पुरुष है और दूसरों के लिए वह कन्या पर स्त्री के समान है । तब तुम लोगों का यह कैसा अज्ञान है ?"

-कथा सरित्सागर-भाग २, छंद २०४, तथा २०५, १९६१ ई० ।

अपने-बाप नहीं दितलाया गया है, जबकि "कलि" द्वारा नल के अभिभूत किये जाने पर ऐसा हुआ है। इनमें रवेत-बृकाभ के लिए नल ने भाई से सूत-झीड़ा की है। नरपति व्यास की नलदमयंती कथा में नल पुहुकर से जुआ न लेकर एक ब्राह्मण से खेलता है।

(६) जानकवि की नल दमयंती कथा में जुआ में हारने के बाद जंगल में अनेक कष्ट सहते हुए जिस तरह दमयंती अपनी मौसी ब्राह्मणी तथा नल अयोध्या के राजा द्रुपद के महल पहुँचते हैं, वैसे ही महाभारत, कथासरित्सागर तथा सूरदास के "नलदमन" की कथाओं में विपत्ति के प्रसंग आए हैं। महाभारत में नल तथा दमयंती दोनों बिछुड़ने के बाद विवाह करते हैं। नल का दमयंती के प्रति परचाताप कितना मार्मिक है - "पहले सूर्य भगवान् जिसे देव नहीं सकते थे, पवन जिसे छू नहीं सकता था, वही असांखिक सुन्दरी इस समय पृथ्वी पर जनाव की तरह पड़ी हुई है। नींद खुलने पर वह किस तरह आँधे कपड़े से अपनी लज्जा की रक्षा करेगी?" ऐसे ही जान कवि में भी नल परचाताप करता है। महाभारत में दमयंती केसरीत्व को अधिक उभाड़ा गया है। दमयंती के सतीत्व के प्रताप से ही एक जासूस शिकारी की मृत्यु होती है^१। कथा सरित्सागर में यह प्रसंग बहुत संक्षेप में कहा गया है। उस विपत्ति-प्रसंग में दमयंती की विरहा-कथा के चित्रण में जानकवि की दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक रमी है।

(७) जान कवि में राजा भीम का ब्राह्मण सुदेव द्वारा दमयंती को बुलाकर पुनः स्वयंवर की रचना करना और उसमें नल का देश बदल कर राजा द्रुपद के साथ सारथी रूप में जाना, केसरी सेविका द्वारा नल के गुप्त-रूप का रहस्योद्घाटन तथा पुनः दोनों के मिलन पर जैसे दमयंती के शील एवं सत्य की दुइता पर आकाशवाणी हुई है, लगभग ऐसे ही प्रसंग महाभारत में भी आए हैं। इतनी भिन्नता अवश्य है कि रस-वाहन करते समय नल राजा द्रुपद से वक्षस एवं गणना विद्या सीख लेता है जिससे "कलि" से छुटकारा पा जाता है।

१- हिन्दी महाभारत, छठा भाग, पृ० ८२०, व० प्र०, प्रयाग।

२- वही, पृ० ८२०।

किन्तु यह प्रसंग पूर्व कथानक के अनुकूल ही है। 'कथासरित्सागर' में सुदेव ब्राह्मण के रथान पर सुष्मिता-मंत्री यह काम करता है। दम्पती को ब्राह्मणी के घर से नहीं, बल्कि सीधे जंगल से लाता है^१। दोनों के पुनः मिलन पर महोत्सव मनाया जाता है। जाकाशवाणी का प्रसंग इसमें नहीं है।

(८) नल-दम्पती के पुनः मिलने के बाद रजदेश लौटकर नल द्वारा पुनः दुःख में सग कुछ जीत जाने से ही जान्कवि ने कथा समाप्त नहीं की है; बल्कि नल के नियम पर दम्पती के सती होने तथा पुत्र इन्द्रसेन के सिंहासन पर बैठने के साथ कथा समाप्त की है। इस तरह कवि ने कथा को थोड़ा और भागे बढ़ाकर उसे सुखान्त से करुणान्त किया है। सुरदास (लखनऊ) के "नलदमन" में भी कथा का अंत ऐसे ही हुआ है, किन्तु इसकी स्थिति जान्कवि सेबोड़ी भिन्न है। इसमें दम्पती की मृत्यु पर नल समाधिस्थ बनकर जंगल में जाकर शरीर त्याग करता है। "महाभारत" एवं "कथासरित्सागर" में कथाएं सुखान्त हैं। इस तरह जान्कवि की "कथा नलदम्पती" का कथानक महाभारत के कथानक के ही अधिक निकट का सिद्ध होता है।

कथा तमीम अंसारी

कथावस्तु:-

इसमें कवि ने मदीना के तमीम अंसारी की विपत्ति का वर्णन किया है। एक दिन ब्रह्मन्क तमीम को एक प्रेत उड़ा ले गया। उसकी अनु-परिस्थिति में उसकी पत्नी गुणा से पीड़ित होने पर तथा भूत-प्रेत के भय से पड़ोसी ठाकरहिताब तथा ठाकर बमीर के कहने से एक परदेशी को अपने घर ले गई।

१- बालां वने प्रसुप्तां नृणां सन्त्यज्य कुमुदिनीकान्ताम् ।

प्राप्यैवाग्न्यर क्षणं वन्द्या दुरयः क्व वातोऽसि ॥१५८॥

कथासरित्सागर-भाग २, पृ० ६८०, १९६१ ई० ।

उसी दिन रात को तमीम जा ग्यह ह और दरवाजा लटखटाने पर बंदर से उसकी पत्नी ने कहा कि मेरा पति मेरे साथ है । ऐसा ठहर उसने भूत-प्रेत के भय के कारण दिया था । दरवाजा न खोलने पर तमीम ठीक लौटकर बंदर गया और पत्नी द्वारा न पहचानने पर प्रेत के उड़ा ने जाने के अनंतर को अपनी सारी विषयिकहानी पत्नी एवं पड़ोसियों के समक्ष इस प्रकार बताने लगा ।

प्रेत उड़ाकर उसे बहुत दूर अप्सराओं के उस समूह में छोड़ा जहाँ अप्सराओं की सरदार शाहपरी की सहायक तुर्कपरी एवं हिन्दूपरी थी, उनके साथ वह रुका । एक दिन शाहपरी तमीम से मदीने तथा इब्रत के इस जग में जीवित रहने की बात पूछी । तमीम द्वारा नकारात्मक उत्तर माने पर परचापाप करती हुई वह तमीम की सम्मानपूर्वक अपने घर ले आई और अनेक सेवानों के साथ अपने प्रेत-प्रबंध-विस्तार को दिताती हुई दुवा का मंत्र सिद्धाकर एक प्रेत को उसे मदीना पहुंचाने के लिए सौंपा । प्रेत ने उड़ाकर ले जाते हुए उसे ऊपर से ही छोड़ दिया । ज़मीन पर गिरने से वह एक सराय में बला गया जहाँ उसे एक "मानव" मिला । उसने शुतुर्नी का पैर फकाया जिसने उड़ाकर उसे कोहनूर पहुंचा दिया जहाँ से एक तस्ली पर सुलैमा स्त्री सोती हुई मिली । वहाँ थोड़े समय बाद एक प्रेम आकर उसके दोनों पहरेदारों - मैवीमरद तथा लोहगुरज को मारकर और सुलैमा की मुद्रिकाएँ लेकर, तमीम की परिचय दिशा की ओर जाने का संकेत करके चला गया । परिचय दिशा की ओर चलने पर वहाँ प्रेतों के सरदार की पुत्री अपनी सारी विषयिकथा बताते हुए कहने लगी कि मेरी माता अत्यन्त सुन्दरी थी । उसे एक दिन एक प्रेत ने उड़ा ले जाकर मार डाला और मुझे रहकर पालन-पोषण किया । यदि तुम मुझे कुरान पढ़ाओ तो मैं तुम्हें मदीने पहुंचा सकती हूँ । तमीम ने ऐसा ही किया । उसने एक प्रेत से उसे हाजी पहुंचवा दिया । वहाँ एक महापुराण के कहने पर एक "मानव" उसे मदीना पहुंचाने चला, किन्तु रास्ते में समुद्र में बहाव टूट जाने से सभी डूब गये । तमीम संयोग से काष्ठफलक के सहारे बहकर

किनारे लगा और वहाँ से एक जल में गया जहाँ १२ हजार बुद्धों के एक बुद्धों को सता रहे थे । उन लोगों ने भी तमीम को परिचय दिया की और जाने का संकेत किया । आगे चलने पर उसे जंग में पुनः एक "पुरुषा" मिला जिसने अनेक फल खिलाकर उसे एक बुद्धिया से मिलाया । फिर इतियास तथा स्वाभाविक ने उसे बादलों के समूह में लपेटवा कर मदीना पहुँचा दिया । विपत्ति कथा पूर्ण करने पर ऊमर अमीर ने परदेशी जाया उसकी पत्नी वापस दितवाया और इतनी विपत्ति के बाद पुनः सपरिवार सानंद रहने लगा ।

कथा का आधार-

जानकवि की इस कथा का आधार "तमीमदारिमी" की कथा ज्ञात होती है । "तमीमदारिमी" की कथा अरबी साहित्य में पैगम्बर के जमाने में बहुत प्रचलित थी । यह उस समय के अरबी कथा साहित्य के अनेक ग्रंथों में मिली मिलती है । बलीमुद्दीन मुहम्मद तिकरीजी की "मिरकातु और हदीस की दूसरी किताब" में यह कथा है^१ । तिकरीजी यहोदय ने इस ग्रंथ में पैगम्बर की कही हुई अनेक बातों को एकत्रित कर कथा रूप में रक्खा है । "हदीस" पैगम्बर की कही हुई बात को कहते हैं । जो लोग उस समय मुसलमान थे और पैगम्बर के साथ रहते थे उनको "सहाबी" कहा जाता था । "तमीम-दारिमी" तो पैगम्बर के एक महादूर साथियों में से था । पैगम्बर की मृत्यु सन् ६३२ ई० में हुई थी इसके सिद्ध है कि यह किम्सा इन्हीं पूर्व का है जबकि जानकवि की "कथा तमीम-जनसारी" तो बहुत बाद की सं० १७०२ की रचना है ।

"तमीमदारिमी" तथा "तमीम-जनसारी" में नाम एक ही है अन्तर केवल ~~"तमीमदारिमी" तथा "तमीम-जनसारी"~~

१- हि० सन् १३१० या सन् १९४६ ई० में लाहौर से प्रकाशित ।

केवल "दारिमी" तथा "अन्सारी" का है। "दारिमी" तथा "अन्सारी" उस समय दोनों अरब की जातियाँ थीं। इनकी तमीम का संबंध था।

"क्यातमीमदारिमी" में जहाँ समुद्र में यात्रा करते समय दारिमी को टापू में एक विचित्र वस्तु "अन्सासः" मिलता है और वह बताता है कि "पैगम्बर का उदय मदीने में हुआ है और तुम उसी मिलने जाओ।" जिसके परिणाम स्वरूप जहाज से मदीने नज़र देता है वहाँ ज़ाक़िब का तमीमनगारी ज़ानक एक प्रेत के उद्घाटन से जाने से प्रवधान करता है।

दोनों कथाओं में नायकों के विपत्ति-प्रसंग एक जैसे हैं। ज़नेक भूत, प्रेत, ज़म्सराओं या परियों द्वारा कष्ट पाते हुए किसी "मानव" या "पुरुष" द्वारा सहारा पाकर आगे बढ़ाने का प्रसंग दोनों कथाओं में है। दोनों के नायक प्रेतों के डरे में पड़ते हैं। समुद्र में जहाज के टूटने तथा काष्ठफलक के सहारे रक्षा का प्रसंग दोनों कथाओं में एक जैसा है। इस तरह दोनों कथाओं के नायक ज़नेक कष्ट उठाने के बाद अंत में मदीने पहुँच कर पैगम्बर से मिलते हैं, पर अन्सारी जहाँ पैगम्बर से मिलकर वापस आ जाता है वहाँ दारिमी उनके शिष्य शिम्ब के रूप में उनके साथ रहने लगता है।

१- प्रवाग विरविषातव के अरबी तथा फ़ारसी विभाग के डा० मुहम्मद रफीक के अनुसार "अन्सारी" का एक बचन "अन्सार" है और "दारिमी" का "दारिम", जिसका अर्थ है "सहायक"। ये शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होते थे जो अरब देश के अतिरिक्त कहीं और जगहों से आकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर मदीने में रहने लगे थे और जिन्होंने पैगम्बर के वहाँ जाने पर उनके धर्म के प्रचार तथा प्रसार में सहायता दी थी। एक बार पैगम्बर और उनके शिष्यों में मुद्द हो रहा था कि एक ईरानी मुन्क ने पैगम्बर के एक शत्रु पर बलपूर्वक तार करके कहा कि "ले, मैं हूँ ईरान जवान। तो पैगम्बर ने कहा कि "ईरानी जवान नहीं" "अन्सारी" कह।" इससे स्पष्ट है कि उस समय अरब में अन्सारी जाति के लोग थे।

इस तरह दोनों कथाएँ एक जैसी हैं और यही जान कवि की कथा का आधार साबित होती है ।

अरबी-साहित्य में ऐसी और बहुत-सी कथाएँ मिलती हैं । इस्लाम के पूर्व धार्मिक-ग्रंथ "अरब देवमाता" (जिबालजी) में "शुराफ़ाह" नाम की कथा है जिसमें नायक "शुराफ़ा" को "जिन" उड़ा ले जाता है और वह वहाँ तक भटकता रहता है, और अंत में ^{वर}लौटकर अन्तारी की तरह अपनी विपत्ति-कथा सुनाता है । "हज़ारदास्ता" (अल्फ़तैला) की "बादशाह जिन(पिशाच) की सहायता से जीनुत्सनाम की प्राणा-प्रिय माशूफ़ा का प्राप्त होना" तथा "विराग (दीपक) जादू के संयोग से अलाउद्दीन का बनाइय होना" कहानियों में अनेक भूत, प्रेत, पिशाच या जादुओं के प्रसंग हैं^१।

कथा कामरानी वा पीतमदास

कथावस्तु:-

कवि मुलताननगर के पाँच मित्रों - राजकुमार पीतमदास, लौदागर पुत्र, मुरंगिया, बड़ई पुत्र तथा काछी पुत्र, की कथा का महत्व बताते हुए कथा का प्रारम्भ करता है । राजकुमार के विवाह के पश्चात् ही ये चारों मित्र अपना विवाह करना चाहते हैं । एक बार ये पाँचों कामरू देग को घेर कर गये । वहाँ मंदिर की एक शिखा पर एक रूपवती स्त्री का चित्र देखकर कुंवर उस पर मोहित हो विरह में विकल रहने लगा^२। एक "पुराणा" के बताने पर कि "वह चित्र राजा राजहरिदास की पुत्री कामरानी का है, जिसके पिता को राजाराम ने युद्ध में मारकर उसको अपनी पटरानी बनाया है, किन्तु राजाराम के बहुत चाहने पर भी वह उससे प्रेम नहीं करती ।" उसने यह भी बताया कि वहाँ एक मातिनि रहती है, उसको मिलाने से काम बन सकता है । राजकुमार

१- "हज़ार दास्ता"-पृ० ५२६ तथा ६१८, प्र० संस्क०.बैकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

२- एक तिमा की देगी मूरत । कुंवर बिकान्यी उहाँ महरत ।।४।।

के चारों मित्रों ने राजाराम के देश जाकर मातिनि को मुद्रा देकर मिला लिया^१ और एक चित्र पीतमदास काहाय जोड़कर कामरानी से याचना करते हुए, विव्रित-कर, मातिनि द्वारा कामरानी के पास भिजवाया। कामरानी भी चित्र देखते ही राजकुंवर पर मुग्ध हो गई। पाँचों मित्र राजाराम से ठहरने की जगह माँगकर लौटने लगे। बड़ई पुत्र ने लकड़ी का एक पीपा बनाया और सुरंगिया ने पीपे से ज़मीन के नीचे खोदकर कामरानी के कंधा तक एक सुरंग बना दी। इसी सुरंग से प्रतिदिन राजकुंवर पीतमदास रात को जाकर कामरानी से मिलने लगा। एक रात राजकुमार सुरंग से कामरानी को निकालकर सभी मित्रों के साथ कामरानी के पिता के घर पहुँचा। राजा रावहरिदास ने दोनों का विवाह सम्पन्न कर दिया। कुछ समय उपरांत चारों मित्रों का विवाह भी वहीं हो गया। राजगद्दी पाने पर पीतमदास ने उन चारों मित्रों को अपना मंत्री बनाया और पाँचों मिल साकेद रहने लगे।

कथा का आधार:-

"कामरानी वा पीतमदास" कथा का आधार फ़ारसी की प्रसिद्ध रचना "किस्से बहार दर्वेश" में "पहले दर्वेश की सैर" की कथा है। इस ग्रंथ में चार दर्वेशों के सैर की कहानियाँ हैं। कहा जाता है कि इन कहानियों को पहले जमीर कुसरों ने अपने पीर शैखनिमुद्दीन को सुनाया था। इस पर उनके पीर खुश होकर बोले कि "इस कहानी को जो सुनेगा वह सदा ख़ुश रह लगेगा।" जिससे बाद में बहुत से लोग इसे कहते और सुनते रहे। इसकी इसी लोक प्रियता को देखकर बाद में एक अंग्रेज जानगिनक्राइफ्ट के कहने से सन् १८७३-४ ई० में पीर ब्रम्हम ने इसका फ़ारसी से उर्दू भाषा में "बाग़ोबहार" नाम से तर्जुमा किया। कहानी के पूर्व उन्होंने इसके मूल कई फ़ारसी रूपान्तरों की वर्णना की है^२। डा० सैयद एजाज हुसैन के अनुसार "बाग़ोबहार" तहसीन की "नौतर्जुम पुरखां" से संगृहीत है^३।

१- दमका बहुत दमे मिलियार। तबहि मातिनी उपन्यों प्यार ॥७॥

२- "किस्से बहार दर्वेश"-भूमिका, १९६१ ई०। भाषा:- डा० सैयद एजाज हुसैन।

३- वही, पृ० १३।

कथा की दृष्टि से दोनों का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर जानकवि के कथानक के प्रारम्भ तथा अंत में त्रयेदाकृत कल्पना का विशेष सहारा लिया गया मिलता है। दोनों के कथानक का मध्य भाग एक-सा है। "किरसेये बहार दर्वेश" में कथा के प्रारम्भ में जहाँ यमन के सौदागर ख्वाजा ब्रह्मद की मृत्यु के बाद उसका बेटा पहला दर्वेश १४ वर्ष की गरीबी ब्रमथा में त्रिहारत करने दक्षिण जाता है और ख्वाजासरा द्वारा बताने तथा सहायता करने से बादशाह बाग़दक़्त की अल शाहजादी (परी) को देखकर, मोहित हो, बादशाह से कुछ पैसे लेकर वहीं व्यापार करने लगता है वहाँ जानकवि में मुलतान नगर का राजकुमार पीनमदास अपने चार मित्रों के साथ कार्रू देश जाता है और वहाँ एक शिता पर अंकित राजकुमारी कामरानी का चित्र देखकर उस पर मोहित होता है तथा राजाराम की बुद्धि द्वारा जीतकर उसे बलात् ले जाने की बात जानकर वह चार मित्रों के साथ वहाँ पहुँचता है। इस तरह प्रारम्भ में इन दोनों कथाओं की बटनार्थ एक-सी न होने पर भी दोनों में भाव-साम्य है। दोनों के नायक पर से निकलते हैं और दोनों को रास्ते में एक-एक सहायक मिलते हैं। नायक का मित्रों की साथ से जाने का प्रसंग जानकवि की अपनी उद्भावना है।

कथानक के मध्य भाग में दोनों में पूर्ण साम्य है। दोनों में नायक सुरंग की सहायता से नायिकाओं से मिलते हैं। "किरसेये बहार दर्वेश" की शाहपरी कहती है कि "साँभ होते ही मुझे हो वह ख्वाजासरा उस ज़वान की उसी राह से ले जाता। तमाम रात सराबों-क़बाब और ऐसी-असरत में कटती। मैं उससे मिलने से ज़ाराम पाती। वह मुझे देखने में लुप्त होता।" उसी तरह जानकवि के नायक-नायिका भी सुरंग से मिलकर केलि करते हैं। जानकवि में दोनों को मिलाने का प्रवृत्त एवं संदेश-बाहन का कार्य एक मातृन करती है जबकि "किरसेये बहार दर्वेश" में एक दाई।

कथा के अंत में के अंत में प्रारम्भ की तरह दोनों की बटनार्थों में भिन्नता होने पर भी भाव-साम्य है। "किरसेये बहार दर्वेश" में कुछ बटनार्थ ऐसी हैं जो कि जानकवि से भिन्न हैं। इसमें शाहजादी डेढ़ लाख रूपयों में एक

१- "किरसेये बहार दर्वेश"- भूमिका, पृ० ५८, १९६१ ई०।

जाग लगी होती है और दर्वेश के साथ जाकर उसमें सानंद बिहार करने लगती है कि इसी बीच एक लौंडी को गाते देखकर दर्वेश उस पर मोहित हो जाता है और शाहजादी के मना करने पर उसे मारकर तथा मरा हुआ सम्भरकर पैसक देता है । उसे एक कमरा का साँदागर लड़का बान्सावा उठा ले जाता है और जीवन्धि से उसे जीवित करता है तथा बाद में उसी से शादी कर लेता है । विवाह के बाद दोनों सानंद समय व्यतीत करते रहे कि इसी बीच में एक दिन शाहजादी एकाएक बदला लेने के विचार से दर्वेश को लौंडी सहित निर्मथित करती है और जाने पर दोनों को कत्ल करवा देती है । यहाँ पर कथा समाप्त होती है । जान्कवि ने जाग का प्रसंग नहीं रक्खा है । नायिका शाहपरी के जीवन में जिस तरह दो पुरुषों का आगमन हुआ है वैसे ही जान्कवि की नायिका कामरानी के जीवन में भी दो पुरुषों का प्रवेश हुआ है । नायिकाओं को कष्ट देने का प्रसंग दोनों कथाओं में है । जहाँ दर्वेश लौंडी पर मोहित हो शाहपरी को नाराज़गी पर उसे कष्ट देता है वहाँ राजाराम कामरानी के दाम्पत्य-प्रेम न स्वीकार करने पर उसे ज़नेक कष्ट देता है । कथा के अंत में जिस तरह राजा-राम की अपनी करनी का जुरा फल मिलता है वैसे ही दर्वेश को भी अपनी करनी का जुरा फल मिलता है । "किस्से बहार दर्वेश" की कथा का अंत दुःख पूर्ण घटना से हुआ है जबकि जान्कवि ने उसे सुखान्त रक्खा है ।

इस तरह कथा के जादि तथा अंत में कुछ घटनाओं में बिधात्मकता होने पर भी दोनों के कथानकों में पर्याप्त एकता है । जान्कवि ने कुछ घटनाओं को जान-बूझकर छोड़ते हुए कथानक को सरल एवं छोटा रूप प्रदान किया है । "किस्से बहार दर्वेश" में चार दर्वेश बारी-बारी से सैर करने जाते हैं जबकि जान्कवि के नायक के साथ चार मित्र चलते हैं । "किस्से बहार दर्वेश" मुगलों के समय बहुत प्रिय कथा रही है इसलिए कुछ उलटे-फेर के साथ जान्कवि द्वारा उसे अपनाता स्वाभाविक है ।

कथा भरदसेर पतिसाह

कथानक:-

भरदसेर एक वीर और प्रतापी राजा था । उसने अपने प्रताप से ईरान तथा तुर्कान आदि ज़नेक देशों को जीत लिया था । राजा भरदुवान ने

उसकी वीरता का लगावार पाकर अपने बड़े पुत्र बहमन को उसे फँकड़ लाने के लिए भेजा । दोनों में युद्ध हुआ । बहमन परास्त होकर भाग ही रहा था कि जरदवान ने स्वयं पहुँचकर युद्ध किया और युद्ध में काम आया । जरदसेर ने जरदवान की पुत्री को ले जाकर अपनी अनेक रानिबों के साथ पटरानी बनाया ।

कुछ दिन उपरांत बहमन ने अपने पिता का बदला लेने के लिए एक गुप्त-भेदी को अपनी बहन के पास भेजा । उसकी बहन ने सहमत होकर सहायतार्थ एक दिन रात्रि को शराब से भरे प्याले में विषा बीज कर दिया, किन्तु पीने के पूर्व संयोग से वह प्याला गिर गया और शंकातुर होकर रात्रि में गिरी हुई शराब में गेहूँ के दोने भिगवाकर बार कुँों को बिताया । कुँों के तत्काल मरने से रात्रि में उस भेद-नीति को जानकर पटरानी को जान से मारने की आज्ञा दे, मंत्री के हवाले कर दिया । मंत्री ने पटरानी को गर्भवती जानकर अपने घर में छिपाकर रक्खा । समय जाने पर उसे पुत्र स्त्रापूर उत्पन्न हुआ ।

एक दिन राजा जरदसेर शिकार के लिए बना, किन्तु मृग के दो शिशुओं को देखकर संतान-प्रियता से दयान्वित हो उन पर बाण प्रहार न किया और एकाएक अपनी संतानहीनता से चिन्तित हो मंत्री के पास आया और अपनी सारी व्यवस्था कह सुनाया । मंत्री छिपाये हुए पुत्र तथा पटरानी को लेकर योगोचित दान एवं पद प्राप्त किया । राजा ने पुत्र स्त्रापूर को गद्दी पर बैठाया ।

कथा का आधार:-

जरदसेर की कथा फ़ारसी साहित्य के "शाहनामा" में मिलती है । "जितरेरी हिस्ती नाफ़ परशिमा" में भी इसका कथानक दिया हुआ है^१ । इस कथा का जर्मन भाषा में अनुवाद "पहलवी कारनामा" नाम से हुआ है । ज़ान्कवि की कथा का आधार "शाहनामा" की कथा है । इसका कथानक संक्षेप में इस तरह है-

"शाहनामा" की कथा में पावनक का पुत्र जरदसेर अत्यन्त वीर एवं प्रतापी राजा था । उसने जरदवान की रूप-सौन्दर्यवती पत्नी पर आकर्षित

१- दी लीवेंड नाफ़ ज़दसीर, प्रो० ई०जी० ब्राउन, जिल्द १, पृ० १३०,

होकर उस पर शाक्रमण किया और उसे युद्ध में परास्त कर तथा उसकी पुत्री को थोड़े पर बैठाकर, अपने यहाँ लाकर, अपनी पटरानी बनाया। कुछ दिन बाद पुत्र शापूर उत्पन्न हुआ। यह अरदसेर का चौथा पुत्र था। मिहरक अरदसेर का शत्रु था। शापूर ने पिता की चोरी मिहरक की पुत्री से अपनी शादी कर ली। अरदसेर की मृत्यु होने पर उसने उसेवान से मार डालने की आज्ञा देकर वज़ीर के सुपुर्द कर दिया, पर वज़ीर ने उसे गुप्त-रूप में घर में रखवा। थोड़े दिन बाद शापूर की पत्नी को पुत्र इरमखद उत्पन्न हुआ। इरमखद सात वर्ष की अवस्था में एक दिन पोते के रूप में आया कि बादशाह अरदसेर ने कहते हुए उसे देख लिया और अपने पोते को पहचानकर उसे प्यार से घर में लाया और गद्दी पर बैठाया।”

सुलनात्मक-विवरण:-

दोनों कथाओं का पूर्वार्ध प्रायः एक-सा है, पर इतनी भिन्नता अवश्य है कि जानकवि में जहाँ अरदसेर के ऊपर अरदुवान तथा उसका पुत्र बहमन शाक्रमण करते हैं और दोनों परास्त होते हैं वहाँ “शाहनामा” की कथा में स्वयं अरदसेर अरदुवान की पत्नी की ओर आकर्षित होकर शाक्रमण करता है। अरदुवान की पुत्री को लाकर पटरानी बनाने की बात दोनों कथाओं में एक-सी है।

जानकवि की कथा के मध्य भाग में वहाँ पटरानी अपने भाई बहमन से मिलकर पिता के प्रतिशोध की भावना से अरदसेर की विषा मुक्त शराब से भरा प्याला देती है और रडस्य का उद्घाटन होने पर राजा पटरानी को जान से मारने की आज्ञा देकर मंत्री के हाथों करवाता है और मंत्री के छिपाकर रखने से थोड़े दिन में पुत्र शापूर उत्पन्न होता है वहाँ “शाहनामा” में पटरानी को पुत्र शापूर पहले ही उत्पन्न हो जाता है और पिता की चोरी इरमन मिहारक की पुत्री से शादी कर लेने पर, अरदसेर क्रोध में वज़ीर को मारने के लिए देता है, पर वज़ीर के छिपाकर रखने से पुत्र इरमखद पैदा होता है। इस तरह जहाँ जानकवि में पटरानी छल-कपट करती है वहाँ “शाहनामा” में वह ऐसा नहीं करती। जानकवि के अरदसेर के क्रोधित होने का कारण पटरानी की प्रतिशोध भावना है जबकि “शाहनामा” में शापूर द्वारा इरमन की पुत्री मिहारक से शादी करने पर।

यद्यपि संतान होने की बात दोनों में है, पर "गाइनामा" में कथानक थोड़ा थोड़ा बढ़ता है। ऐसा लगता है कि जान्कवि ने यहाँ जानबूझकर कथानक को संक्षिप्त कर दिया है।

कथा के उत्तरार्द्ध में जान्कवि में जहाँ राजा मुगला के लिए जन में जाने पर मुग के दो बच्चों की देखकर तथा दयालुता होकर निस्संतान होने की चिन्ता से शोकातुर हो मंत्री से अपनी सारी स्यवा कहता है और राजा के विशेषज्ञ ज्ञाग्रह पर मंत्री मन्तानी एवं पुत्र शाहू को देता है तथा राजा उसे गद्दी पर बैठाता है जहाँ "गाइनामा" में राजा मुगला के लिए न जाकर, एक दिन घूमते हुए ही जवानक ७ वर्ष के बालक बुरमबद को पोतो लेते हुए देखकर और अपने पोते को पहचानकर, उसे लाकर गद्दी पर बैठाता है। इस तरह दोनों कथाएँ सुशान्त हैं और दोनों में राजा बरदसेर को बुढ़ापे में संतान-वियोग हुआ है। जान्कवि में "गाइनामा" की अपेक्षा कुछ नवीन प्रसंगों के सम्मिश्रण के साथ, इस कथा का संक्षिप्त रूप मिलता है।

ग्रंथ लेखक

कथावस्तु:-

नबी, मुहम्मद, अलब, गुरु आदि की बंदना के पश्चात् कवि सांसारिकता, मन तथा पिता की बंधनता और प्रेम के महत्त्व से कथा प्रारम्भ करता है। अरब के एक शरबी को अनेक धार्मिक अनुष्ठान करने के बाद पुत्र मन्नू उत्पन्न हुआ। मन्नू पाँजाशा में एक रूपवती लड़की लैला के साथ पढ़ने तथा रहने से उससे प्रेम करने लगा। दोनों के प्रेम की चर्चा चारों ओर फैलने से लैला की माँ ने लैला का बटखार पहने जाना बंद करवा दिया। मन्नू लैला के वियोग में विकल रहकर भिखारी - बेश में लैला से मिलता, तो कभी पवन से संदेश भेजता। मन्नू की विकलता देखकर उसके पिता उसे लेकर मक्का चले गये। मन्नू मक्का में जाकर भी लैला के वियोग में दुखी रहा। इस लैला भी मन्नू के विरह में पवन से संदेश भेजती। मन्नू का पिता अनेक प्रयत्न करने के बाद जब एक गया तो लैला के पिता के पास जाकर उसने दोनों की शादी की चर्चा की, किन्तु लैला का पिता सहमत न हुआ और लैला की शादी बङ्गालामें साथ सम्पन्न कर

दी । मजनूँ का विमोह ज्यादा बढ़ा हुआ देखकर नीफल ने लैला को पाने के लिए बुढ़ किया, किन्तु बुढ़ में जीतने पर भी वह लैला को पाने में सफल न हो सका । इस लैला इब्नसलाम से प्रेम न करती । वह मजनूँ के प्रति ही एकनिष्ठ भाव से दुड़ रही । मजनूँ का भी विरह इतना बढ़ गया कि वह कदमों परने पिता तक को नहीं पहचान पाता । बन के पशु-पक्षी उसकी सेवा करते हैं । पिता की मृत्यु के बाद माता, मामा सतीम मिन जैद तथा सुरज बंद ताराइन के बहुत समझाने पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा । इसी बीच में इब्नसलाम की मृत्यु हो जाने से वह लैला से मिलकर अंतिम दुःख प्रकट किया । जैद द्वारा लैला के सती होने का समाचार ज्ञात होने पर वह जाकर लैला की कब्र पर अपना शरीर त्याग दिया । इस तरह "कैकुण्ठ" में दोनों का मिलन सदा के लिए अबाध एवं शाश्वत हो गया ।

कथा के विभिन्न रूप:-

लैला मजनूँ की कथा सर्व प्रथम अरबी-साहित्य में अबुलफ़ारब अस्फ़हानी की प्रसिद्ध पुस्तक "किताबुल अग़ानी" में मिलती है । इसमें अरब के साहित्यकारों, कवियों तथा गवैयों के बारे में हर प्रकार का हमें ज्ञान मिलता है । इसमें बड़े विस्तार से लैला मजनूँ की कथा कही गई है । यही कदाचित् वह प्राचीनतम पुस्तक है जिसमें हमें लैला मजनूँ की कथा एक जगह एकत्रित मिलती है । इसमें लेखक ने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा, बरन् ^{जो} कुछ पुराने प्रवचनों या पुरानी पीढ़ी के लेखकों एवं कवियों ने लिखा था उसे एकत्रित कर दिया है ।

"किताबुल अग़ानी" के बाद इस विषय पर फ़ारसी-साहित्य की सर्व-प्रथम रचना निज़ामी कृत "लैला मजनूँ" (सं० १२४५) मिलती है । इसमें अरब की प्रख्यात कथा ग्रहण की गई है । यदि "किताबुल अग़ानी" की कथा से इसकी तुलना करें तो दोनों में पर्याप्त अन्तर मिलता है । "किताबुल अग़ानी" के लेखक ने बहुत से लोगों का मत लेकर यह बताया है कि मजनूँ वास्तव में मनुष्य नहीं था, बल्कि कवियों ने इसे इस रूप में जनता के सामने पेश किया । कुछ

साहित्यकार एवं आलोचक ऐसे भी थे जो उसके प्रतिभाव को मानते थे और उन लोगों के कहने के अनुसार लेखक ने यह कथा लिखी । निज़ामी ने तो उसका "कैस" नाम दिया है । बाद में सैता के प्रेम में पागल होने से लोगों ने उस "मयनू" कहना शुरू किया । निज़ामी के मयनू का पिता एक बादशाह था, किन्तु "किताबुल अगानी" में इसकी कोई वर्णन नहीं है । निज़ामी में दोनों प्रेम का उदय पाठागला से होता है जबकि "किताबुल अगानी" में ऐसा नहीं है । निज़ामी में सैता के पति का नाम "इबनसलाम" था जबकि "किताबुल अगानी" में एक अन्य व्यक्ति से विवाह किए जाने की वर्णन है । नौफल का सैता के पिता से मुठ करने की बात भी "किताबुल अगानी" में बिल्कुल नहीं है । कथा के अंत में, ऐसा कि निज़ामी ने वर्णन किया है कि सैता की मृत्यु पर मयनू जैद द्वारा खबर पाने पर कुन्न पर जाकर प्राण दे देता है, "किताबुल अगानी" में नहीं है । दोनों कथाओं में इस तरह पर्वान्त अन्तर है । आन्कवि की कथा का मुख्य आधार निज़ामी कृत "सैता मयनू" ही है । इसका विस्तृत विवेचन आगे तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर किया गया है ।

निज़ामी के ही आधार पर आगे चल कर अमीर खुसरौ ने "मयनू-सैता" लिखी । अमीर खुसरौ मूलतः भारतीय कवि हैं । इन पर भारतीय वातावरण का पूरा प्रभाव है^१ । निज़ामी की कथा से तुलना करने पर दोनों की घटनाओं में कुछ साम्य तथा कुछ वैषम्य मिलते हैं । दोनों कवियों ने नायक-नायिका में प्रेम का उदय पाठागला में बढ़ते समयक दिखाया गया है । सैता एवं मयनू की एक दूसरे के प्रति विकृतता एवं मयनू का पागल होकर बन-बन भटकना दोनों कवियों में समान रूप से वर्णित है । पवन द्वारा संदेश दोनों ने भिजवाए हैं तथा दोनों ने कथा का अंत एक-सा किया है । पर जहाँ निज़ामी का नौफल मयनू की शादी के लिए सैता के पिता से मुठ करता है वहाँ अमीर खुसरौ ने मयनू की शादी नौफल की लड़की से कराई है । यह अमीर खुसरौ की अपनी नवीन सृष्टि है । इसका कारण यह हो सकता है कि हिन्दी में नायक विवाहित रहते हुए भी प्रेम-साधना की ओर बढ़ते हैं । निज़ामी का यह प्रेम

चित्कृत अशरीरी है। संयोग का चित्रण कहीं नहीं है जबकि अमीर तुस्तरों में संयोग का विस्तृत चित्रण किया है। अमीर तुस्तरों में यह प्रवृत्ति भारतीय वातावरण के कारण है। संयोग के चित्रण की यह प्रवृत्ति ईरान के सूफ़ी मयनवियों में चित्कृत नहीं है।

उनके अतिरिक्त भारतीय साहित्य में तसूफ़ी-काव्य - पारा के अन्तर्गत राम जी काव्य कृत "लैला मजनूँ" मिलती है^१। इस रचना का कथानक लैला-मजनूँ की गामी कथा पर अवलम्बित है। इसमें मजनूँ मुलतान का पठान तथा लैला दिल्ली की छोड़की है। मजनूँ बाग़िकी का परिचय देने के लिए लैला के कहने पर प्रत्यक्षित अग्नि में कूदता है और प्रस्ताव की रक्षा जैसे भगवान् करते हैं वैसे ही इसमें स्वयं लैला उसकी रक्षा करती है। बाद में दोनों के संयोग से कथा पूर्ण होती है। यह कथा बहुत छोटी है और उपर्युक्त सभी कथाओं के कथानकों से इसका कथानक बहुत भिन्न है। एक अन्य प्रेम नाट्य-राम कृत "लैला मजनूँ की बात" वार्ता रूप में अभय जैन ग्रंथालय तथा अनुप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में लेखक की हस्तलिखित रूप में देखने को मिली है^२। इसका कथानक बहुत भिन्न है। इसमें मजनूँ स्वयं पिता की आज्ञा लेकर व्यापार करने जाता है और वहाँ मुरतजानी की लड़की लैला से अपने पूर्वजन्म की प्रीति की खोज करता है। लैला प्रभावित होकर हाथी के होदे पर बैठकर मिलने जाती है और "रेरवतें" द्वारा दोनों वापस में खूब उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं। भटकते हुए मजनूँ से एक बार लैला मरदाने बेगम में भी बार सहेलियों के साथ मिलने जाती है। अन्त में मजनूँ के देहावसान पर लैला सती हो जाती है। कवि एक दोहा कहकर कथा पूर्ण करता है -

लैला मजनूँ नेह था, लैला सब का होड ।

अलिया की जखीयां लगी, निरवहली नहि कोड ॥

इसी तरह लैला मजनूँ की कथा को लेकर बंगाल में कई प्रेमाख्यानों की रचनाएँ हुई हैं जिनमें मोहम्मद जातिर की "लवला मजनूँ" तथा बहरामकवि

१- डा० हरिकान्त श्रीवास्तव- भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ४२२, १९५५ ई०।

२- इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत लेखक के पास हैं।

की "लायलिसमनु" प्रसिद्ध हैं। इनके कथानक के आधार पुनरसी ग्रंथ ही हैं। इनमें सौदागर की पुत्री तैला तथा जराय के बादशाह के पुत्र मजनु की प्रेम-कथा है। वहाँ जानकवि तथा निज़ामी में नौफ़ल गादी का संदेश ले जाता है और मुद्द करता है वहाँ इनमें एक बादशाह जाता है। जराय का कथानक तो बिल्कुल भिन्न है। मजनु के पिता की मृत्यु शर्वत में बिछा पीने से दिखलाई गई है। तैला की मृत्यु का समाचार मजनु को तैला की माँ देती है जबकि निज़ामी तथा जानकवि में जैद नामक व्यक्ति देता है। इनके अतिरिक्त जहमदयार तथा हाशम की तैलामजनु भी मिलती हैं।

जानकवि की कथा का आधार-निज़ामी :-

कथा के पूर्व प्रवर्तित रूप के सम्बन्ध में जानकवि ने अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही लिखा है कि - "सोई विधि प्रगट करौं, जो ग्रंथनि मैं रीति।" इससे स्पष्ट है कि जानकवि की कथा का आधार कोई न कोई ग्रंथ अवश्य रहा है। इनके कथानक से तुलना करने पर निज़ामी की कथा ही सभी दृष्टियों से इनके उपयुक्त पड़ती है। पर लगता है कि पूर्व प्रवर्तित समस्त कथानों का कवि ने अवलोकन करते हुए अपना मुख्य आधार निज़ामी को बनाया है। अब हम दोनों कथानों के विभिन्न रूपों का तुलनात्मक विरलेखण करके जानकवि की मौलिकता देखने का प्रयास करेंगे।

कथा के प्रारम्भ में निज़ामी का "कैस" (मजनु) वहाँ जराय के बादशाह का लड़का है वहाँ जानकवि का मजनु जराय के एक जराय का लड़का है। तैला के सम्बन्ध में दोनों में कोई परिचय नहीं दिया गया है। वह तो सर्व प्रथम पाठाशाला "बटसार" में पढ़ने वाली एक लड़की के रूप में हमारे सामने आती है और उसके साक्षात् - दर्शन से मजनु में प्रेम का उदय हो जाता है। निज़ामी में इनके बटसार पढ़ने जाने का प्रसंग नहीं है। मजनु में तैला के प्रति प्रेम का आविर्भाव होते ही दोनों कवियों ने तैला के रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया है।

दोनों के प्रेम की चर्चा फैलने की बात तथा तैला की माता को खबर मिलने पर तैला को पाठाशाला न जाने देने का कड़ा-निर्बंधन दोनों कथानों

में है । इससे मजनू की विरह विकलता बहुत बढ़ जाती है । निज़ामी का मजनू लो रो-रोकर हृदय विदारक गाना गाया करता था । उसकी छाँटें सदैव जांसुवों से भरी रहती थीं तथा जाँघों में सेलाब रहता था । गली, कुर्वों तथा बाज़ार में भ्रमण करता था । वह न दिन को खाना खाता था और न रात को सोता था । लैला के घर जाकर दरवाज़ा दबककर बजा जाता था । अंत्य बार लैला का नाम लेता था । पवन द्वारा संदेश भी लैला को भेजता था ।" इसी तरह जान्कवि के मजनू में भी विरह की विकलता है । वह भी भित्तारी वेश में छल करके लैला के पास जाता है^१ । लैला से बलता है^२ । पवन से संदेश भेजता है^३ । इत्यादि ।

जान्कवि में मजनू का पिता मजनू की ऐसी विकलता तथा बीरामन देखकर उसे बहुत समझाता है और न मानने पर उसे लेकर मक्का जाता जाता है । वहाँ भी मजनू लैला के प्रेम में ही दीवाना रहता है । वह लैला से प्रेम किसी प्रकार भी कम नहीं होने देना चाहता । मरने के बाद भी लैला के प्रेम की अमरता की कामना करता है^४ । मजनू का पितालैला के पिता के पास जाकर दोनों की सगाई का प्रस्ताव रखता है, किन्तु लैला का पिता अस्वीकार कर देता है^५ । इससे मजनू का विरह और बढ़ जाता है । वह बन-बन बीरा बनकर चुपता-फिरता है । निज़ामी में मजनू का पिता सगाई के लिए लैला के पिता के पास नहीं जाता है यद्यपि विकलता से रबाख़्म लाभ के लिए काबा अवश्य लेकर जाता है ।

१- चौ० - १०, ११ तथा सवैया १०, ११ ।

२- चौ० - २९ ।

३- बहुत पवन सौ देत संदेशी । कहु है ते ली मोहि जंदेशी ॥
बाकै तन हा हा लगि जाइ । बहुर मोहि तन लागी जाइ ॥ १३ ॥

४- यह बिन्ती मेरी जाहि । बाबहु बहुत मित की चाहि ॥
जो ली राणहु मधि सैतार । नाहिं चटार्द लैल प्यार ॥ २० ॥

५- अपने मनु की ते के जाहु । जाये करने कौन की ज्वाहु ॥
जो बहुरौ बहु बात बलाई ।+ ली हम तुम में होइ तराई ॥ २६ ॥

मयन की व्याकुलता को देखकर उसका मित्र नौफल तैला के पिता से तैला को मांग करता है, पर तैला के पिता का विरोध होने से दोनों दलों में लड़ाई होती है और अंत में नौफल जीतने पर भी तैला को नहीं प्राप्त कर पाता । यह प्रसंग दोनों में समान रूप से है । दोनों में तैला के न मिलने पर मयन का दुःख इतना अधिक बढ़ जाता है कि मयन पागल हो जाता है । वास्तव में मयन का अर्थ ही "पागल" है, वरना सभी इतिहासकार इसका नाम "कैस" बताते ।

तैला का विवाह दोनों ने "इन्सलाम" से कराया है । तैला शादी के बाद दुलहन बनकर जाने पर इन्सलाम से प्रेम नहीं करती । शान्कवि की तैला तो कहती है -

येक पुरण्णा के नारि येक ।

है पुरण्णाणि के तिमन न येक ॥

यह पवन से मयन के पास विरह-संदेश भेजती है । मयन की विरह निरुत्तता में उसे मामा सलीम, मित्र जैद एवं सूरजवंदताराइन जाकर समझाते हैं, पर उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । निजामी में मामा सलीम के समझाने को कोई प्रसंग नहीं है । पिता की मृत्यु का प्रसंग दोनों में है, पर निजामी में मक्का में मरने का कोई उल्लेख नहीं है । पिता की मृत्यु के बाद दोनों ग्रंथों में मयन की इधर-उधर भटकते तथा वन में पशुओं के साथ रहते दिखलाया गया है।

दोनों के कथानकों का अंत एक-सा है । इन्सलाम की मृत्यु का समाचार जैद नामक व्यक्ति दोनों में मयन को देता है । दोनों में मयन तथा तैला निरुत्त भाव से मिलते हैं । उनके वाचरण पर कोई धब्बा नहीं पड़ता । तैला के सती होने पर दोनों के मयन उसी कूज पर प्राणा-त्याग करते हैं ।

इन दोनों कथाओं में प्रेम की अमरता, एकनिष्ठता, जीवन की नरकरता, त्याग और आत्म-समर्पण की महत्ता है । दोनों का प्रेम अशरीरी है, मांसल नहीं । इसी प्रकार जामी ने भी अपनी "पुसुफ़-बुलेला" में भी नितान्त वासनाविहीन प्रेम का वर्णन किया है । अमीर खुसरों की "मयन तैला" में इस परम्परा से भिन्न रूप में मयन की शादी नौफल की लड़की से कराई गई है, किन्तु जान ने अमीर खुसरों का अनुसरण नहीं किया है । इस तरह निष्कर्ष

रूप में हम यह कह सकते हैं कि जानकी की इस कथा का आधार मित्रापी की "लेनामजनु" ही है ।

कथा खिन्नतां देवलदे

कथावस्तु:-

अलाउद्दीन दिल्ली का अत्यन्त प्रतापी तथा वीर राजा था । उसका बड़ा पुत्र खिन्नतां था । थोड़े ही दिनों में उसने सिपाहियों के सरदार अलफ़ख़ां की सहायता से देवगिरि, मानकपुर, रणायम्भीर, बिताड़, मासवा, तिलंग, कटक आदि देशों के विभिन्न राजाओं रामदेव, हमीर, कौकाराड, सतलदेव, तिलंगी, राजा करण आदि को जीत लिया । कटक का राजा करण हारने की सम्भावना से भाग बड़ा हुआ और उसकी कन्या को अलाउद्दीन ने अपनी रानी बनाया । रानी कन्या के बाहने पर उसकी पुत्री देवलदे की, जोकि राजा करण के साथ गुजरात गई थी, लिया जाने के लिए अलफ़ख़ां गुजरात गया । राजा सिंहदेव की विशेष इच्छा से राजाकरण ने देवलदे की भीलम देव के साथ कटक भेज दिया था । कटक जाते हुए मार्ग में ही अलफ़ख़ां उसे लेकर देवलदे की दिल्ली लाया । बादशाह अलाउद्दीन द्वारा देवलदे की शादी खिन्नतां के साथ निरिबत करने पर देवलदे अपने भाई की छवि खिन्नतां में पाकर उससे प्रेम करने लगी । खिन्नतां की माता अपने भाई अलफ़ख़ां की पुत्री से इसका विवाह करना चाहती थी जिससे दोनों के प्रेम को छुड़ाने के लिए उन्हें पुनः-पुनः करवा दिया । दोनों बिलग होने पर एक दूसरे के लिए सदा विरह में विकल रहने लगे । खिन्नतां की बार बेरियां- करना, कूना, चम्पा तथा गुलाब और देवलदे की बार सलियां - नरगिस, कस्तूरी, बूही एवं कपूरी दोनों के बीच संदेश एवं पत्र-वाहन का कार्य करती रहीं । माता-पिता की इच्छानुसार खिन्नतां का विवाह अलफ़ख़ां की पुत्री से सम्पन्न हो गया । खिन्नतां ने इस नव-विवाहिता पत्नी से लोक सज्जा के कारण प्रणय-सम्बन्ध स्थापित तो किया, किन्तु उसका मन सदा देवलदे पर ही लगा रहता था । इन दोनों की विकलता देखकर देवों द्वारा जाकातवाणी हुई जिससे बादशाह बदलकर बाद में दोनों को पुनः मिला दिया । इस तरह दोनों पतिव्रतों के साथ तथा देवलदे से अपेक्षाकृत विशेष प्रेम करता

हुआ जिझ्वां सानंद जीवन व्यतीत करने लगा ।

कथा का आधार:-

कवि की "कथा जिझ्वां देवल दे" (सं० १६९४) का आधार अमीर खुसरौ कृत "दिवलरानी तथा जिझ्वां"^१ (सं० १३०३) बात होती है । हिन्दी शब्दों का फ़ारसी छंदों में उचित प्रयोग न होने के कारण अमीर खुसरौ ने "देवल देवी" के स्थान पर "दिवलरानी" कर दिया है । दोनों कथाओं में कथानक की दृष्टि से पूर्ण साम्य है । पं० परशुराम बहुर्वेदी अमीर खुसरौ की इस कहानी की निम्नी कल्पित और मनगढ़न्त मानते हैं, क्योंकि बहुत से इतिहासज्ञों के मत से खुसरौ द्वारा निर्दिष्ट समय में कोई देवलरानी जैसी प्रसिद्ध राजपूत बाता भी ही नहीं^२। कथा के सम्बन्ध में अमीर खुसरौ लिखते हैं कि "एक शुभ दिन को ग्राह-नादा जिझ्वां ने मुझे बुलवाया और विशेष रूप से सम्मानित किया । जिझ्वां ने अपने प्रेम की वेदना का वर्णन किया, तत्पश्चात् एक दासी ने निम्नी हुई कहानी मुझे लाकर दी । मैंने विशेष परिश्रम से यह कहानी लिखी^३।" जान्कवि ने भी प्रेम की महत्ता के साथ कथा की विशेषता का उल्लेख किया है^४। अब यहां दोनों कथाओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

कथानक के प्रारम्भ में दोनों रचनाओं में समानता है । अलाउद्दीन की विजय की वर्षा दोनों कवियों ने एक-सी की है, पर वहां अमीर खुसरौ ने अलाउद्दीन का जाक्रमण उलुगज़ां के सेनानायकत्व में कराया है वहां जान्कवि ने अलफ़ज़ां

१-अमीर खुसरौ की यह कहानी सैयद अतहर अब्बास रिज़वी द्वारा हिन्दी में अनुदित "कुलजी कालीन भारत" में "कथा जिझ्वां देवल दे" नाम से सन् १९५५ई० में इतिहास विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय से प्रकाशित है ।

२- हिन्दी-साहित्य (भाग-२) - पृ० २४९, ३१९५९ ई० ।

३- कुलजी कालीन भारत-अनु० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी-पृ० १०१, १९५५ ई० ।

४- सुनिष कथा यह बाँधी जैसी । मैंने मध्य तारिका जैसी ।।

कहा बुझा मधि सुभत नाहि । सुझ दुझ बुझि सबही या माहि ।।
 पिबरजान देवल की मेसु । बरनी मनसा बाचा मेसु ।।५।।

के द्वारा । ऐसे ही नारायणदास की "छिताई बार्ता" में अलाउद्दीन का आक्रमण उलुगज़ा के सेनानायकत्व में हुआ है + जबकि जान्कवि ने "कया छीता" में भी उसका प्रसंग नहीं रखा है । यह इतिहास द्वारा प्रमाणित है कि अलाउद्दीन का सेनानायक उलुगज़ा था । नितीड़ की विजय पर अमीर तुसरों के कहने पर अलाउद्दीन ने अपने बड़े पुत्र खिज़्रा के नाम पर उसका नाम "खिज़्राबाद" रखा । जान्कवि में ऐसा प्रसंग नहीं है ।

गुजरात पर आक्रमण एवं राजाकरण की रानी कमलादी की लाकर अलाउद्दीन के पटरानी बनाने का प्रसंग दोनों कथाओं में एक-सा है । अमीर तुसरों से रानी कमलादी के कहने पर कि "मेरे दो पुत्रियाँ थीं । एक की तो मृत्यु हो चुकी है और दूसरी जीवित है । उसके लिए मेरा हृदय बड़ा व्याकुल है यदि बादशाह की कृपा हो जाय तो पुत्री को माता से मिलाया जा सकता है" । उलुगज़ा रायराया के पुत्र संरवन्देव के लिए ले जाते हुए भीलमदेव से देवलरानी को छीन कर दिल्ली लाया । जान्कवि में यह कार्य अलफ़खा करता है । अमीर तुसरों के संरवन्देव के स्वाम पर जान्कवि ने सिंहदेव नाम प्रयुक्त किया है यद्यपि -घटनार्थ दोनों की एक है ।

देवलदे का विवाह दोनों कथियों ने खिज़्रा के साथ सम्पन्न कराया है । जिस तरह अमीर तुसरों की देवलरानी अपने भाई की छवि खिज़्रा में पाकर प्रेम करने लगती है वैसे ही जान्कवि की देवलदे भी करती है । अपनी पटरानी की पुत्री अपने संतान के समान समझी जाने से अलाउद्दीन द्वारा वहाँ देवलदे की शादी अपने पुत्र खिज़्रा के साथ कराना नैतिक दोष है ।

खिज़्रा की माता का अपने भाई अलफ़खा की पुत्री से शादी करने के विचार से देवलदे तथा खिज़्रा को पुष्क-पुष्क करने का प्रसंग दोनों कथाओं में है । अमीर तुसरों में पटरानी को दोनों के प्रेम-प्रसंग का सर्वप्रथम संदेश मलिकमे वहाँ देता है जबकि जान्कवि में यह समाचार एक बेरी देती है । अमीर तुसरों ने दोनों के गुप्त रूप से "मिलने की" एक बहुत ही मनोरंजक कहानी लिखी है, पर जान्कवि में ऐसा कुछ नहीं लिखा है ।

जानकवि ने दोनों के पुनर् - पुनर् रहने पर विरहावस्था की विभिन्न स्थितियों का बहुत ही पार्थिक एवं हृदयस्पर्शी विवर्ण किया है । इनकी भावात्मकता अमीर खुसरौ की अपेक्षा बहुत विस्तृत है ।

शाद में जलफूँकों की पुत्री से विवाह सम्पन्न कराने में अमीरखुसरौ ने तीन वर्ष तक विवाह की तैयारियाँ करवाई हैं, तलवारें बमकी हैं, खया नानाप्रकार की सजावट उत्सव एवं म्बांग रचवाई हैं । जानकवि में ऐसा विस्तार नहीं है । इन्होंने तो शीघ्र विवाह कराकर खिन्नता को दाम्पत्य-प्रेम की दुबिधा में डाल दिया है । वह लोक-तन्त्रा के भय से नववधू से प्रणय-सम्बन्ध रखता तो था, पर हृदय से देवतदे को ही चाहता रहा । ऐसी ही स्थिति अमीर खुसरौ के खिन्नता की भी हुई है । जानकवि की विरहिणी देवतदे - नव-विवाहिता पत्नी का समाचार श्रात होने पर जहाँ पवन द्वारा संदेश-पत्र खिन्नता के पास भेजती है तथा अपने सच्चे प्रेम की एकनिष्ठता का परिचय देती है^१, वहाँ अमीर खुसरौ मौन हैं । दोनों के विरह की चरम सीमा हो जाने पर उनके रस के लिए जानकवि ने आकाशवाणी कराई है^२। पर अमीर खुसरौ ने ऐसा नहीं किया है । आकाशवाणी का प्रसंग 'कथासरित्सागर' की कथाओं में बहुत मिलता है ।

कथा के अंत में दोनों के प्रसंग भिन्न हैं । जहाँ जानकवि ने देवतदे तथा खिन्नता को पुनः मिला कर, खिन्नता के साथ दोनों पत्नियों को रखकर तथा दोनों में देवतदे से अपेक्षाकृत खिन्नता का विशेष प्रेम प्रदर्शित किया है वहाँ अमीरखुसरौ ने बादशाह अलाउद्दीन के रोग-ग्रस्त होने पर मलिक्येवहाँ के उत्तपूर्ण आदेशोंद्वारा जलफूँकों की मृत्यु एवं खिन्नता की गुवालिमर में कैद होते दिख-लाया है । खिन्नता के वियोग में सुलतान की मृत्यु के बाद मुबारकशाह खिन्नता के पास संदेश भेजता है कि 'मेरा विचार है कि मैं उसे मुक्त कर दूँ और किसी इकतीम का राज्य प्रदान कर दूँ, किन्तु मुझे श्रात हुआ है कि देवतरानी के

१- कहा भयी जो कियौ विवाहि ।

तो दिन नाहिं और की चाहि ॥१४॥

२- वी० - ७४ ।

चरणों पर, जो एक दासी है, अपना सिर रखता है। वह उचित नहीं है।
तु उसे मेरे दरबार में भेज दे।" जिज्ञासा ने कूट होकर उत्तर दिया कि "बादशाह
को राज्य प्राप्त हो चुका है, किन्तु वह दिवतरानी को मेरे पास ही रहने दे।
दिवतरानी ही मेरी धन सम्पत्ति है। यदि वह सम्पत्ति मुझसे छिन जायेगी,
तो मैं पूर्णतया दरिद्र हो जाऊँगा, उसे मेरी हत्या के उपरान्त ही प्राप्त किया
जा सकता है।" इस उत्तर से परंतुष्ट होकर मुबारकशाह ने एक हिन्दू द्वारा
जिज्ञासा की हत्या करा दी और गुवालिगर के किले के विषय मंदिर नामक कुर्ब
में दफन करा दिया। इस तरह इसका कथानक दुस्तान्त रहा जबकि जानकवि का
दुस्तान्त है।

वस्तुतः जानकवि ने अन्य जाधार ग्रंथों की भांति इसमें भी जमीर-
कुसरो के कथानक का सरल रूप ही अपनाया है, इसलिए उन्हें कुछ घटनाओं
का त्याग करना पड़ा है तथा कुछ नवीन घटनाएँ जान-बूझकर बढ़ानी पड़ी हैं।
भावात्मक स्वतों के वर्णन में जमीर कुसरो की अपेक्षा इनकी दृष्टि अधिक रही
है।

बांदी नागा

कथावस्तु:-

इसमें एक मिर्सा अपनी बीबी से विमुक्त हो एक बांदी के प्रेम में
तीन विवशित किए गये हैं। मिर्सा बांदी को नौकरानी के रूप में घर का सभी
कार्य करने के उद्देश्य से ले जाते हैं, किन्तु बाद में उसके रूप-सौन्दर्य पर मोहित
होकर उससे घर का कोई काम नहीं लेते। एक दिन रात को मिर्सा तथा बांदी
को एक साथ सोते हुए देखकर बीबी दोनों को खरी-खोटी सुनाकर क्रोध में अपने
पिता के घर चली जाती है, किन्तु बांदी में अनुरक्त मिर्सा पर इसका कोई
प्रभाव नहीं पड़ा। बांदी के साथ भोग-विलास करते हुए वह वे समय बिताते रहे।

१- "खुलती काशी न भारत"- जगु लैपद अतहर अम्बात रिजवी- छंद -२७४, पृ०-
१७५, १९५५ ई०।

२- वही- छंद २७५, पृ० १७५।

एक दिन बाहर गये हुए परिवार के कुछ लोग बापस आए और मियां की यह दशा देखकर कुल, परिवार, जाति आदि में कलंक के भय से मियां पर बहुत झोपित हुए जिससे मियां ने सम्झा से परबाणाप करते हुए बांदी को घर से निकाल दिया और बीबी को सम्मान-पूर्वक पुनः बुलवाया । कवि व्रत में उगम कुल की प्रशंसा से कथा समाप्त करता है ।

कथा का आधार:-

जानकवि की इस कथा का आधार कवयित्री ताज विरचित "बीबी बांदी का भगड़ा" है^१। "भगड़ा" या "भगड़ा" संस्कृत बहुत सी रचनाएँ राजस्थान में प्राप्त हैं । जयपुर के दिगम्बर जैन भण्डार में ऐसी-बहुत-सी फुट-करत रचनाएँ हैं । रचना-काल ज्ञात न होने से कवयित्री ताज की रचना जानकवि के कितने पूर्व की है इसका निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता, पर रचना के प्रारम्भ में "नारी जो कहति परवाने । जो कुछ चारै इति मंहि जाने ॥" इस उक्ति में जाये "परवाने" के आधार पर इसे १४वीं शताब्दी के आस पास की रचना माना जा सकता है क्योंकि परवाने या उपरवाने गर्भित रचनाओं की परम्परा १४वीं शताब्दी तक ही चलती रही है । इसमें मीरा नामक व्यक्ति ने अपनी पत्नी के विगत जीवन होने पर एक बांदी के साथ प्रेम किया जिससे बीबी तथा बांदी में बराबर भगड़ा होता रहा । दोनों रचनाओं में बांदी बेरी रूप में आई है । जिस तरह जानकवि के मियां रात को अपनी बीबी की छोड़ी बांदी से मिलते हैं इसी तरह ताज के मीरा भी । जानकवि के मियां की बीबी तो पहली बार देखती ही झोपित होकर और लरी-खोटी सुनाकर अपने पिता के घर चली जाती है जबकि ताज में मीरा की बीबी कई बार दोनों को उस दशा में देखकर भगड़ा करती हुई विनित की गई है ।

१- कवयित्री ताज जानकवि के पिता अलफाँवाँ के पितामह ताजवाँ की सहोदरा बहन थी । वे शादी के उपरान्त कुष्ण की उपासिका हो गई थीं । इनकी अनेक रचनाएँ बतवाई जाती हैं । जानकवि की इस कथा का आधार एक तरह से खान्दानी मिता है । इनका "बीबी बांदी का भगड़ा" भी अगरचंदनाहटा द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान साहित्य समिति, जिसाऊ से प्रकाशित हो चुका । इसकी दो हस्तलिखित प्रतिमाँ अनुप संस्कृत लाइब्रेरी तथा अभय जैन भण्डार, बीकानेर में सुरक्षित हैं, पर दोनों में पर्याप्त भेद है ।

उपयुक्त शिवाक मांगा । गुरु ने इसका भार मधुकर को सौंप दिया । मधुकर के पिता को उस प्रेम व्यापार का पता चलने पर वह मधुकर को लेकर विदेश चला गया । दोनों ने बिछुड़े समय एक दूसरे के प्रति प्रेम की एकनिष्ठता का संकल्प किया^१ । मालती को किसी विदेशी बादशाह के बगीर ने एक सहस्र मुद्राएं देकर खरीद लिया, किन्तु वह उससे प्रेम नहीं करती थी । मधुकर अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर विदेश से घर वापस लौटा और गुरु द्वारा मालती की नियति जानकर वह बगीर के यहाँ पहुँचा जहाँ उसे ज्ञात हुआ कि मालती के प्रेम न करने से वह उसे मरना मानना चाहता है, किन्तु बादशाह द्वारा उसे अपने यहाँ बुलवा लेने से वह बच गई । बादशाह के अनेक प्रलोभन देने पर भी मालती ने उससे प्रेम नहीं किया जिससे वह तुर्कस्तान के छत्रपति के हाथ बेच दी गई ।

मालती को लेकर सुलतान के तुर्कस्तान प्रयाण की लहर धाँकों से पाकर मधुकर भी उसके साथ ही चला । सुलतान ने मालती को अपनी पुत्री की सेवा में रक्खा । कुछ दिन बाद छत्रपति का दामाद भी मालती के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हुआ, किन्तु मालती के अस्वीकार करने पर उसने क्रुद्ध होकर बर्बरानि में संदूक में बंद करवा के उसे पानी में फेंकवा दिया । एक जरमनी उसे पानी से निकाल कर नावपर ले चला । नाव पर मधुकर भी साथ था । जरमनी का प्रणय न स्वीकार करने पर जब वह क्रोधित होता है तो मधुकर मालती को उसकी भाषा में समझाने-बुझाने का आशवासन देकर उसे शान्त करता है । नाव किनारे लगने पर वहाँ के बादशाह का प्रधान भी मालती को देखते ही मोहित हो जाता है । बाद में वहाँ का बादशाह भी प्रेम करना चाहता है, किन्तु तिरस्कृत होने पर वह उसे भाकती में डलवा देता है । मधुकर भी साथ गया । वहाँ मधुकर को माँझी प्रतिदिन एक मछली खाने को दे जाया करता था । संयोगवश एक दिन मछली के घेठ से मधुकर की पाँच रत्न-पदार्थ उपलब्ध हुए जिसे देकर उसने मालती को प्राप्त किया । दोनों प्रेमी नाव पर बैठकर अपने देश लौट ही रहे थे कि समुद्र में तूफान जाने से तथा नाव फट जाने से दोनों पृथक्-पृथक् हो गये । मालती वहाँ किनारे लगी वहाँ के बादशाह ने उसे अपने १० सेवकों

१- मालत मधुकर नाव में की करता की जान ।

दोहा का सँभार है, पित्त कर ना जान ॥

से उसके घर पहुँचवा देना चाहता, किन्तु सेवकों ने उसे जप्पराजों के हाथ दे दिया। जप्पराजों के सरदार ने उसे अपने साथ रखना चाहा, किन्तु मासती के विमुख होने पर परिचरों तथा चेरियों ने उसे जेक कष्ट देकर रैती में ले जाकर छोड़ दिया। मासती जवण के मार्ग से होती हुई बगदाद जा पहुँची। भटकता हुआ मधुकर भी संयोग से बगदाद पहुँचा। दोनों रात को जमाने में एक मराम में ठहरे। सुबह पोरिया द्वारा दोनों बादशाह हारून रशीद के पास ले जाए गए। वहाँ दोनों के प्रेम की परीक्षा हुई। परीक्षा में उत्तरा उत्तरने पर हारून रशीद ने उनका पुत्र एवं पुत्रीवत् विवाह सम्पन्न करवा कर जवण पहुँचवा दिया।

कथा का आधार:-

हिन्दी साहित्य में मधुमासती नाम से कई रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें प्रमुखतः "मधुमासती" (सं० १६०२), चतुर्भुज दास की "मधुमासती" (१६वीं श० का मध्य), बंसराज की मधुमासती तथा जानकवि की "मधुकर-मासती" मुख्य हैं। सैयद हमज़ा कृत "मधुमासती" मासूद कृत "मधुमासामनोहर", मोहम्मद कबीर कृत "मनोहर मासती" आदि बंगला की सुफ़ी प्रेम गाथाएँ हैं। इनके अतिरिक्त गुजराती तथा नेपाली आदि के लोक-साहित्यों में भी इस कथा के अन्य अनेक रूप उपलब्ध होते हैं^१। इनके कथानकों का तुलनात्मक अध्ययन करके देखा जा सकता है कि इसकी कितने भेद-प्रभेद हो गये हैं तथा ऐसी कितनी रचनाओं में केवल नाम-साम्य ही है।

रचना - कास की दृष्टि से चतुर्भुजदास की "मधुमासती" जानकवि की "मधुकरमासती" से लगभग १०० वर्ष पूर्व की है। नायक एवं नायिका के नाम पर ही दोनों कवियों ने ग्रंथ का नामकरण किया है, किन्तु जहाँ चतुर्भुजदास ने नायक का नाम "मधु" (मनोहर) रखा है वहाँ जानकवि ने "मधुकर"। कथावस्तु

१- बयपुर, के दिगम्बर जैन भण्डार, में अस्तित्वित रूप में, सुरक्षित यह प्रति ११२ पन्नों में गुटकाकार रूप में प्रस्तुत लेख की देखने की मिति है।

२- विशेष विवरण के लिए देखिए- य० परशुराम चतुर्वेदी- भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० १४६, १९५६ ई०। तथा "हिन्दी के सुफ़ी-प्रेमाख्यान"- पृ० ७१ से ७६ तक, १९६२ ई०।

की दृष्टि से दोनों रचनाओं में बहुत कुछ साम्य है यद्यपि कथा के उपरार्द्ध में दोनों रचनाओं में घटना-सम्बन्धी पर्याप्त अन्तर मिलता है फिर भी जानकवि की "कथा मधुकरमासती" का आधार वही प्रेम रहा है। इसके अधिक लोक प्रिय होने से सम्मिश्रण की प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगोचर होती है। जानकवि की 'मधुकर-मासती' में पूर्वार्द्ध के बाद की घटनाएँ दास-प्रथा से सम्बन्धित हैं। ऐसा लगता है कि ये मूल कथा में जान-बूझकर नष्ट की गई हैं। एक ही प्रकार की घटनाओं की बार-बार पुनरावृत्ति से मासती की परीक्षा लेने के प्रसंगों को संख्या काफी बढ़ जाती है। चतुर्भुज दास की 'मधुमानसती' में उपरार्द्ध का अंत उसके भिन्न है। अभी दोनों ही रचनाएँ मुद्रित नहीं हुई हैं।

जानकवि ने कथा का आरम्भ प्रेम की महत्ता बताते हुए जबी ध्या-
मगर के सौदागर रतन के पुत्र मधुकर तथा बटसार में पढ़ने जाने वाली मासती के
प्रेम-प्रसंग से किया है जबकि चतुर्भुजदास ने कथा का आरम्भ जीतावती देश के राजा
बतुरसेन की पुत्री मासती तथा उसी के मंत्री तारणासाह के पुत्र मनोहर (मधु) के
एक पण्डित के यहाँ पढ़ने जाने के प्रेम-प्रसंग से किया है। इसमें भायक मधु मंत्री का
पुत्र तथा नायिका मासती एक राजा की पुत्री है जबकि जानकवि का मधुकर
एक सौदागर का पुत्र तथा नायिका मासती एक वैरी है। जानकवि में दोनों
में साक्षात्-दर्शन से प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ है जबकि चतुर्भुजदास की मधुमासती
में पाठशाळा में दोनों पर्दे की ओट में रक्खे जाते हैं और पर्दा हटते ही दोनों
की आँखें चार होती हैं। जानकवि में पर्दे का कोई प्रसंग नहीं है। चतुर्भुजदास
का मधु मंत्री का पुत्र तथा एक ही गुरु का शिष्य होने के भय से पढ़ाई छोड़कर
रामसरोवर में जाकर गुप्त रहता है और मासती अपनी सखी जैतमाल से सारी
प्रेम की बातें बताती है जिससे जैतमाल मधु के पास जाकर उससे उसके पूर्व जन्म की
कथा^१ कहती है और मधु को प्रभावित कर दोनों का विवाह सम्मन्वित करा देती

१- जैतमाल ने बताया- "जब शंकर ने काम को भग्न किया तो उसकी रास से
पाटलि(मासती) और भ्रमर(मधु) उत्पन्न हुए। पास में एक सेवती का वृक्ष
था, उसी से जैतमाल का अवतार हुआ। एक बार हेमन्त के तुषारपात
के कारण पाटलि जल गई। सेवती ने किसी प्रकार सेवा करके उसे पुनर्जीवित
किया। तब तक निष्कुर मधुकर उड़कर कहीं अन्यत्र जा चुका था। पाटलि
ने उसके विरह में प्राण त्याग दिए। जब वही भ्रमर और पाटलि पुनः मधु
और मासती के रूप में उत्पन्न हुए।"-

चतुरसेन दोनों को परवा डालने की आज्ञा दे देता है । रानी दोनों को कहीं अन्यत्र बसे जाने का गुप्त-संदेश भेज देती है । मालती तो सहमत हो जाती है, किन्तु मधु गुल्लत द्वारा राजा को कई बार मुद्द में पकड़कर विजय पाता है । मालती की प्रार्थना पर केशव के भारंठ-पक्षी तथा शिव से सिंह सहायतार्थ जाते हैं । राजा विवश होकर दामा पावना करते हुए मालती तथा जैतमाल दोनों का विवाह मधु के साथ कर देता है । राजा राजपाट देना चाहता है, किन्तु यह कहकर कि हम तीनों काम की विभिन्न कतारें हैं, मधु राजपाट लेना मन्गीकार कर देता है । कथा यही समाप्त होती है । जानकवि से यह विन्कुल भिन्न है । जानकवि में पूर्वाह्न के बाद के कथानक में दास-प्रथा का प्रसंग ज़रूर आया है । मालती एक वस्तु की भाँति कई व्यक्तियों द्वारा बेची तथा खरीदी जाती है । इसके साथ मधुकर भी निरन्तर कष्ट रहते हुए विभिन्न स्थलों पर प्रेम-भाव का निर्वाह करता है । यहाँ जानकवि ने मालती के प्रेम की परीक्षा लेने में एक ही प्रकार के प्रसंगों की संख्या उतनी बढ़ा दी है कि कथानक का प्रवाह जबरन-सा प्रतीत होने लगता है ।

जानकवि की कथा के अंत में बादशाह का बादशाह-हारून रशीद ने दोनों प्रेमियों की प्रेम-परीक्षा लेकर जैसे ही विवाह सम्पन्न कराया जैसे "माधवान्त कामकुंदता" में विक्रमादित्य ने तथा "कथाछीता" में जलाउद्दीन ने । चतुर्भुजदास की कथा के अंत में बादशाह रतनसेन ने भी ऐसे ही मालती और जैतमाल का एक साथ मधु के साथ विवाह सम्पन्न करवाया है । जानकवि के नायक के जीवन में एक ही नायिका आती है जबकि चतुर्भुजदास के नायक के जीवन में दो नायिकाएँ आती हैं । यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि चतुर्भुजदास ने मालती का विवाह मधु के साथ दो बार सम्पन्न कराया है जोकि असंगत है । जानकवि ऐसे प्रसंग से मुक्त है ।

ऐसा लगता है कि जानकवि को अपने सामी परम्परा से विशेष परिचय या विश कारण के कारण बार-बार ऐसे प्रसंगों का समावेश करते रहे हैं और चतुर्भुजदास में देवताओं में पूर्ण आस्था दिखाई पड़ती है जिससे कथानक के विभिन्न प्रसंगों एवं घटनाओं में ज़रूर उलट-फेर मिलते हैं वयःपि इनके कथानकों में हमें, नाम-राम्य तथा अन्य ज़रूर प्रसंगों के एक समान होते हुए भी बहुत कुछ अन्तर दीख पड़ता है । फिर भी वे हमें मूलतः दोनों एक-से जान पड़ते हैं ।

कथा छीता

=====

कथावस्तु:-

देवगिरि के राजा देव के अनेक दान-पुण्य करने के बाद सौन्दर्यवती कन्या छीता उत्पन्न हुई । परिव्रज्य दिशा के राजाराम छीता की देखने की इच्छा से एक दिन योगी-वेश में घर से बहे और देवगिरि पहुँचकर राजा के पुरोहित (ब्राह्मण) के यहाँ रहने लगे । ब्राह्मण ने घर रहस्य जानकर गढ़ में पूजा के लिए जाई हुई छीता का दर्शन राम को कराया । छीता के सौन्दर्य से प्रभावित होकर राम ने तुरन्त अपने देश की समाचार कहलवा भेजा और परिव्रज्य देश से अपने कुछ स्वजनों के आ जाने पर अपना रूप भी प्रकट कर दिया । राजा देव ने उन सब का सम्मान करते हुए छीता की राम के साथ तीन वर्ष की संगई निश्चित कर दी । राजाराम अपने देश वापस आकर तीन वर्ष की लालच युग के समान काटने लगा ।

इस बीच पुत्री तथा जामाता के लिए राजमहल बनवाने की इच्छा से रामदेव ने दिल्ली के जलाउद्दीन के यहाँ से कुछ कुशल विनकारों को बुलावाया । महल में विनकारी करते समय एक दिन संयोग से छीता भी वहाँ दिखाई पड़ी । विनकारों ने उसका भी विनय दिवात पर बना दिया और एक दिन दिल्ली वापस जाते समय साथ ले गये और राजा को दिया । जलाउद्दीन ने छीता की असाधारण सुन्दरी जानकर देवगिरि के गढ़ को घेर लिया । पहले जलाउद्दीन प्रधान राज्यवेतन के साथ वेश बदलकर गढ़ में पहुँचा । उद्यान में पूजा के लिए जाई हुई छीता ने बादशाह को पक्षियों पर गुल्लक मारते हुए पहचान लिया ।

छीता के विनकारने पर वह गढ़ से बाहर बला गया, किन्तु एकाएक झोप में आकर उसने गढ़ में एक सुरंग बनवाई और इसी के सहारे पूजा के लिए जाई हुई छीता को उत्तमपूर्वक निष्कास कर दिल्ली ले गया । जलाउद्दीन के अनेक प्रयत्नों के बाद भी छीता ने उससे प्रणय-सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया । छीता की इस अवस्था का समाचार ज्ञातकर राम योगी-वेश में बीणा वादन करते हुए दिल्ली पहुँचा । और बिड़की से भाँकती हुई छीता का आँसू राम के ऊपर गिरा हुआ देखकर बादशाह जलाउद्दीन उनके एकनिष्ठ एवं प्रगाढ़ प्रेम से अत्यन्त प्रभावित हुआ और छीता का राम के साथ वयाविधि पाणिग्रहण कर पुत्रीवत् सौंप दिया । दोनों

सानंद काव्यापन करने लगे ।

कथा का आधार:-

"छिताई" का उत्प्रेष केसवदास(सं० १६१२-१६७४) के "वीरसिंहदेव-चरित"^१ तथा जायसी के पद्मावत^२ में रतनसेन और राखवसेन के संवाद के प्रसंग में मिलता है । इसके बाद इस विषय पर अतन्त्र रूप से काव्य-रचना करने वाले कवियों में तीन कवि —नारायणदास, रतनरंग तथा जानकवि हैं । नारायणदास तथा रतनरंग की रचना के सम्बन्ध में "छिताईवार्ता" के सम्पादक डा० माता-प्रसाद गुप्त ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने नारायणदास की रचना पर अपना रंग बढ़ाया है । दोनों रचनाओं में बहुत साधारण-सा अन्तर दृष्टिगोचर होता है । दोनों की प्रतियां उच्छिन्न रूप में प्राप्त हैं । डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादन नारायणदास की रचना के रूप में किया है । प्रस्तुत लेखक का भी इस संबंध में यही मत है । इसका रचना-काल सं० १५८३ निश्चित किया गया है^३ । जबकि जानकवि की "कथा छिता" का रचना-काल सं० १६९३ है । इससे स्पष्ट है कि जानकवि की रचना उसके उत्तरार्ध की है^४ । यद्यपि जानकवि की कथा का पूर्वार्ध इससे काफी भिन्न है फिर भी इस कथा का आधार यही ग्रंथ है । इसकी तुलना में जानकवि की कथा बहुत सरल, सीधी, साफ एवं

१- साहि छिताई को ते बाद । बिहना फुल्यो रंग न माइ ॥

केसवदास- "वीरसिंहदेव चरित", छन्द-३९, पृ० २०१३(वि०)

२- बीसु न रावा जापु बनाई । लीन्ह देवगिरि और छिताई ॥

३- उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, किन्तु अब सिद्ध है कि यह पद्मावत के बाद की रचना है । डा० गुप्त को प्राप्त प्रतियों में नारायणदास की प्रति का लिपिकाल सं० १६४७ तथा रतनरंग का लिपिकाल-सं० १६८३ है । इनके तथा ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर उपरोक्त रचना-काल निश्चित किया गया है ।

४- "नारायणदास और रतनरंग के बाद जानकवि ने भी "कथा छिता" लिखी ।-- जानकवि के बारे में यह निश्चित ही है कि वे राजस्थानी थे और नारायणदास तथा रतनरंग भी राजस्थानी ही प्रतीत होते हैं ।"

(सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त-छिताईवार्ता-पृ० २१०, सं० २०१५) ।

संविष्ट है। कवि ने नायक का नाम "राम" रक्खा है जबकि नारायणादास की छितार्ई वार्ता में नायक का नाम 'सौरसी' या 'सुरसी' मिलता है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि कवि ने छितार्ई का गुह्य रूप छीता सम्भवा है और "छीता" तथा "सीता" शब्दों में जो अन्धविनि-साध्य है उसके सहारे नायक के नाम की कल्पना "राम" वासानी से कर ली है। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव "छितार्ई" का संबंध "छितार्ई" से जोड़ते हैं^१। कुछ विद्वान "विवातिपाती" शब्द से इसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जान्कवि ने ग्रंथ का नाम "कथाछीता" रक्खा है जबकि नारायणादास एवं रतनरंग की प्रतियों में "छितार्ईवरित" "छितार्ईकथा" या "छितार्ईवार्ता" नाम मिलते हैं, किन्तु डा० माता प्रसाद गुप्त ने पुष्पिका के आधार पर उसका उपयुक्त नाम "छितार्ईवार्ता" ही माना है।

तुलनात्मक-विवर्तिकाणाः-

नारायणादास की "छितार्ईवार्ता" तथा जान्कवि की "कथाछीता" के कथानक का पूर्वार्द्ध बिल्कुल भिन्न है। "छितार्ईवार्ता" से पहले जलाउद्दीन की सेना ने निसुरतख्त के सेनानायकत्व में देवगिरि पर आक्रमण किया और वहाँ राजा रामदेव के आत्म-समर्पण करने पर उन्हें दिल्ली लाए। तीन वर्ष के बाद राजा रामदेव रानी से पुत्री छितार्ई के विवाह का संदेश पाकर जलाउद्दीन से मनोमुक्त आशा लेकर एक विप्रकार के साथ देवगिरि वापस आया। विप्रकार ने विप्रकला के प्रदर्शन के लिए नवीन प्रासाद निर्मित करते समय छितार्ई को देख जाने से उसका भी एक विप्र कागज पर अंकित कर लिया। छितार्ई का विवाह जार समुद्र के राजा भगवान नारायण के शीत-गुण-सम्पन्न पुत्र सौरसी के साथ सम्पन्न हुआ। एक दिन सौरसी शिकार के लिए जंगल में एक मृग का पीछा करते हुए भर्तृहरि के आश्रम में गया और रोकने पर न माना। उन्होंने शाप दे दिया कि तुम्हारी स्त्री अन्य के हाथ में पड़ेगी। इसी से जलाउद्दीन उसे अपहरण कर ले जाता है। जान्कवि में कथा का पूर्वार्द्ध इससे भिन्न है। इसमें परिव्रम दिशा का राजा राम छीता को पाने के लिए योगी-वेश में देवगिरि जाता है और वहाँ राजादेव तीन वर्ष की सगाई

१- "इतिहास की रामदेव की कथा का ज्ञान नहीं। कथा में उसे छितार्ई के नाम

से पुकारा है। यही नाम पद्मावत कीरसिंह देव-वरित आदि में भी है।--

निश्चित करता है। जान्कवि ने देवगिरि के राजादेव की पुत्री छीता का परिचय दिशा के राजाराम के साथ सगाई निश्चित की है तो छिताई वार्ताकार ने देवगिरि के राजा रामदेव की पुत्री छिताई से द्वार-समुद्र के भगवान् नारायण के पुत्र सौरसी से विवाह का वर्णन किया है। तीन वर्ष की सगाई का उल्लेख "छिताईवार्ता" में नहीं है, जबकि तीन वर्ष तक राजा रामदेव के दिल्ली में रहने पर छिताई के विवाह का संदेश पाकर पुनः देवगिरि वापस लौटने का है। छिताईवार्ता के राजा रामदेव की भेषका जान्कवि के राजादेव अधिक सम्मानित एवं प्रतिष्ठित है। राजाराम देव तो जलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर दिल्ली जाते हैं जबकि जान्कवि के राजादेव ऐसा नहीं करते। अन्य काव्यों की भांति जान्कवि का नायक राजाराम बीगी-बेग में छीता की प्राप्ति हेतु जाता है जबकि छिताईवार्ता में यह प्रसंग नहीं है। इसमें तो कथारम्भ से ही युद्ध का प्रसंग है।

जान्कवि के साथ पात्रों के नाम में भी विचलन है। जान ने सौरसी के स्थान पर राजाराम, रामदेव के स्थान पर राजादेव रखा है। "कथा छीता" में निशुरताई, मेन्नेता, जनगीपाल जादि नाम नहीं मिलते।

तीन वर्ष की सगाई के बाद राजादेव द्वारा पुत्री तथा जमाता के लिए जलाउद्दीन के यहाँ से विनकार जुताकर भवन-निर्माण करवाना तथा विनकारों द्वारा जलाउद्दीन को छीता का विन मिलने पर देवगिरि के गढ़ को घेरना, जैसे विवर्ण "छिताईवार्ता" में भी मिलते हैं। केवल अन्तर इतना है कि जान्कवि^{में} यहाँ अनेक विनकार राजादेव की पुत्री एवं जमातों के लिए भवन-निर्माण करते हैं वहाँ छिताईवार्ता में आया हुआ अकेला विनकार कला-प्रदर्शन की दृष्टि से भवन-निर्माण करता है। छिताईवार्ता में भी जान-कवि की तरह विन देखते ही बादशाह जलाउद्दीन मोहित होकर घृष्टित हो

— जान्कवि ने इसे छीता के नाम से पुकारा है। इतिहास में छिताई से मिलते-जुलते "खिताई" नाम के नगर का उल्लेख है। रसीधुद्दीन जामिदत तजारीह में लिखता है कि खिताई होकर मा बार में (इसकी राजधानी द्वारसमुद्र है) जो सड़क जाई है वह बाबल तक जाती है।"

ही जाता है और छः माह के भीतर गढ़ घेर लेता है ।

राजादेव तथा अलाउद्दीन में घोर युद्ध होने पर भी अलाउद्दीन गढ़ पर अधिकार न कर पाया फिर बाद में मंत्री रायब वेतन के साथ वेश बदलकर गढ़ में प्रवेश किया । "अलाउद्दीन तथा रायबवेतन इन दोनों के चरित्रों का विवरण जान्कवि ने सम्भवतः रायसी के अनुकरण पर किया है" शिकार के शौकीन होने से राजा अलाउद्दीन गुलेल से पक्षियों का शिकार करने लगे । छीता ने छद्म-वेशी अलाउद्दीन को पहचान लिया । राजा लज्जित होकर क्षमा-याचना करते हुए गढ़ से बाहर बला गया । इसी तरह छितार्ईवार्ता में भी अलाउद्दीन के किला घेरने पर घोर युद्ध हुआ है । उसमें सुरसी विशेषा-सैन्य-संगठन के लिए अपने देश द्वार-समुद्र जाता है और इसी बीच में छितार्ई के अपहरण का प्रसंग उद्भूत होता है । जान्कवि में यह प्रसंग नहीं है । उनके राजाराम को तो कोई सूचना ही नहीं मिली रहती । रायब वेतन तथा अलाउद्दीन के गुप्त रूप से किले में प्रवेश करते समय "छितार्ईवार्ता" में दो दूतियाँ (धनवी नाइन तथा मनमोहिनी मालिन) भी साथ जाती हैं और छितार्ई को जीवन का पूर्ण लाभ उठाने का सलाह देती हैं^१ । जान्कवि में दूतियों का कोई प्रसंग नहीं है । अलाउद्दीन का गढ़ में पक्षियों पर गुलेल चलाने का प्रसंग दोनों कथाओं में है, किन्तु छितार्ईवार्ता में जहाँ सही मेन्रेला उसे पहचानती है वहाँ कथा छीता, में तब्य छीता । मेन्रेला "प्रतिज्ञा-पत्र" लिखवा लेती है जबकि छीता केवल लज्जित कर छोड़ देती है ।

अलाउद्दीन का सुरंग में प्रवेश करके पूजा के लिए जाई हुई छीता या छितार्ई का प्रसंग दोनों कथाओं में है, पर छितार्ई-वार्ताकार ने जहाँ पूर्व-निहित सुरंग से प्रवेश कराया है वहाँ जान्कवि ने सुरंग खुदवाया है । "छितार्ईवार्ता" में छितार्ई को अलाउद्दीन दिल्ली जोड़े पर बैठाकर ले जाता है जबकि जान्कवि में यह प्रसंग नहीं है । छितार्ईवार्ता का अलाउद्दीन उसे लेजाकर पुत्रीवत् रायबवेतन की संरक्षता

१- "छितार्ईवार्ता" - सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त - छंद - २४२ से २४८ तक, सं० २०१५ ।

२- हिन्दी साहित्य (भाग-२) - परशुराम चतुर्वेदी का लेख, पृ० २७९, १९५९ ई० ।

३- छितार्ईवार्ता: सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त-छंद ५१६ से ५१९ तक, सं० २०१५ ।

में रक्ता है जबकि जात्कवि का जलाउद्दीन उससे प्रणय-वाचना करता है ।
यहाँ ~~कवि~~ "छितार्थवार्ताकार" का वादार्थ अथेष्टाकृत अधिक उल्लेख है ।

छीता के अपहरण की समाप्ति पर राजाराम की यही
ही अवस्था होती है वही अवस्था सीता-हरण के अनन्तर राम की हुई थी^१ ।
राजाराम योगी-वेश में बीणा बजाता हुआ दिल्ली पहुँचा । वहाँ राजा
जलाउद्दीन के यहाँ बीणा-वादन करते समय ऊपर झरोखे से आँकती हुई छीता
की आँखों का वासू राजाराम के शरीर पर पड़ने से उसके शरीर का भाव
भीग जाता है । पातिगाह, के पूछने पर छीता योगी-वेश में राम के जाने की
बात कहती है । इसी पर जलाउद्दीन छीता को राम के साथ पुत्रीवत् विलासि
विवाह सम्पन्न करवा देता है । क्या यही समाप्त हो जाती है । छितार्थ-
वार्ता में सौरसी द्वार-समुद्र से लौटने के बाद योगी-वेश में छितार्थ को पाने
के लिए दिल्ली अवश्य जाता है, किन्तु बीणा साथ नहीं ले जाता, बल्कि
कलावंत जनगोपाल के यहाँ रहती हुई बीणा को बजाकर सबको मोहित करता
है और वहाँ सौरसी का वासू नहीं, बल्कि छितार्थ का वासू बादशाह के ऊपर
गिराता है, इस पर बादशाह सारा रहस्य जानकर छितार्थ को पुत्रीवत्
सौरसी की दे देता है । इसमें क्या यही नहीं समाप्त हुई है, बल्कि वह छितार्थ
के साथ देवगिरि लौटता है और गोड़े दिन बाद पुनः द्वार-समुद्र जाकर सान्द
राज्य करता है । क्या यहाँ समाप्त हुई है ।

इस तरह जात्कवि की "कथा छीता" का आधार यही ग्रंथ रहा है
यद्यपि कवि ने कथा को सरल एवं संक्षिप्त ढंग से कहने के कारण कुछ स्थलों,
चटनाओं, पात्रों आदि के नामों का परित्याग किया है । कल्पित एवं ऐति-
हासिक दोनों प्रकार की चटनाओं एवं पात्रों का उपयोग और उनका सुन्दर
समन्वय दोनों कथाओं में किया गया है । डा० माता प्रसाद गुप्त "छितार्थवार्ता"
को "ऐतिहासिक उपन्यास" तक कहा है^२ । इन कथाओं में के अंत में जलाउद्दीन

१- सीता नाई छीता हरी । रामहिँ राम बबूना परी ।

हे तजामन हनवंत से मार । मेँ कौन बिना करतार ॥३०॥

२-"(वह) रचना "इतिहास" नहीं है "वार्ता" मात्र है, किन्तु "वार्ता" होते हुए
भी वह इतिहास के इतने निकट पहुँचती है कि देखकर चकित रह जाना पड़ता
है । एक ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में वह रचना फलतः हिन्दी साहित्य
में बेजोड़ है, इसमें संदेह नहीं ।"

- "छितार्थवार्ता" - सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त-भूमिका-पृ० ४५, सं० २० १५ ।

की हिन्दुओं के प्रति यह सहृदयता एवं निष्कामता हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक सामंजस्य के प्रयत्नों का प्रतीक है ।

कथा बलूकिया विरही

कथावस्तु:-

नबी, मुहम्मद, यूसुफ, आदि की विशेषता का वर्णन करते हुए कवि ने इसराइल जाति के बलूकिया विरही की ईश्वरोन्मुख अवस्था एवं उसकी तादात्म्यता का विवर्ण किया है । विरही बलूकियानबी को पाने की चाह से माता से हठपूर्वक आशा लेकर उसकी सोब में बसता है । रास्ते में ऊँट, सर्प, लोभी ब्राह्मण, भूत-पिशाच, अप्सराएँ, सुतमा, फरिश्ते आदि सभी मिलते हैं और उसे अनेक कष्ट देना चाहते हैं, किन्तु नबी मुहम्मद से मिलने जाने की बर्बा से वे सभी बाद में सहायभूति दिलाते हैं । वह समस्त विघ्न-बाधाओं को पार करता हुआ जागे बढ़ता जाता है । रास्ते में एक सुधर्मी अप्सरा उसे फरिश्तों के पास ले जाती है । फरिश्ते उसे "बेकुण्ड" की विशेषता बताते हुए अपना विस्तार दिलाते हैं जिसमें तावाब में तैरती एक विचित्र मछली, सागर में सर्प, एक बड़े बुढ़ा, बड़े जबरान-पदवी आदि सभी विविध दुरायों को देखता है । फरिश्तों उसकी परीक्षा लेने के लिए जब मुहम्मद के इस संसार में न रहने की बात करते हैं तो बलूकिया विरह से व्याकुल होकर मूर्छित हो जातक है और अपनी ऐसी अवस्था में वह नबी मुहम्मद का दर्शन करता है । तत्पश्चात् स्वाजाज़िद के कहने पर एक पक्षी उसे उड़ाकर एक पहर में उसके घर पहुँचा देता है और परिवार एवं पड़ोसियों से मिलकर वह सुख का अनुभव करता है ।

कथा का आधार:-

बलूकिया विरही की कथा अरबी भाषा में लिखी "अलफ़लेहा"^१ में मिलती है । यह जानकवि के बहुत पहले की रचना है । जानकवि की इस कथा के अभिप्राय प्रायः ऐसे ही हैं जैसे कि "अलफ़लेहा" की कहानी में वर्णित हुए हैं । इतना अवश्य है कि जानकवि ने इस कथा का संविष्ट रूप अपनाया है जिसमें

^१- "ALAFIAILA" (Arabic Original), Edited by -W.H. Macnaghten) (Vol.II), P.587-686, 1839, Baptist Mission Press, Calcutta.

कुछ अभिप्रायों को छोड़ते हुए अपने सम्भावानुकूल एक साथ जगह परिवर्तन भी किया है ।

जिस तरह "अनुफलेता" की कहानी में इसराइल जाति का बहुकिया विरही पिता के घर जाने पर उनकी शिखी हुई "बसीयत" में "पैगम्बर" का नाम पढ़कर उन्हें पाने के लिए विरह में व्याकुल हो माता से दण्डपूर्वक आशा लेकर घर से निकल पड़ता है उसी तरह जानकवि का भी नामक इसराइल जाति का बहुकिया विरही कुरान जादि ग्रंथों में नबी का नाम पढ़कर उसे पाने के लिए विरहाकुल हो माता से दृढ़ता पूर्वक आशा लेकर घर से चल पड़ता है । दोनों के नामक रागते में भूत-पिताम, सर्प, टापू, फरिदती, बुलैया, अप्सराओं जादि से जनेक कष्ट सहते तथा विभिन्न कुतूहल पूर्ण दुरावों--उड़ती मछली, बड़े सर्प, बड़े पैर वाले या इसराइल पक्षी, बड़े बुढ़ा, विविध जानवर जादि - का जव-लोकन करते हुए जागे बढ़ते हैं और मार्ग में निषणित नहीं होते । जानकवि का बहुकिया विरही जहां अपनी मुछितावस्था में मुहम्मद नबी का दर्शन करता है, वहां "अनुफलेता" का बहुकिया "पैगम्बर" का दर्शन नहीं कर पाता । इसका मूल कारकणा यह है कि उसे जमाने में पैगम्बर से मिलने की बात ही प्रवणित नहीं थी । दोनों कथाओं का अंत एक सा हुआ है । दोनों में ख्याजाझिज की सहायता से अंत में एक पक्षी उन्हें उड़ाकर उनके देश वापस पहुंचाता है और दोनों अपने परिवार तथा पड़ोसियों से मिल कर सुख का अनुभव करते हैं ।

इस जाध्यात्मिक कथा की भांति बहुत-सी अन्य ऐसी कथाएं भी जरबी-फारसी कथा-साहित्य तथा हिन्दी के प्रेमाख्यान्क-साहित्य में मिलती हैं । जानकवि की कथातमीमजसारी तथा कथारतनावती में नामकों की प्रायः ऐसे ही जनेक कष्टों एवं कुतूहल पूर्ण दुरावों का सामना करना पड़ा है । कथारतनमंजरी में नामक मधुसूदन को भी पक्षी ऐसे ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाकर पहुंचाते हैं । उसी तरह "अनुफलेता" की एक अन्य कहानी "सिन्दबाद" में एक बहुत बड़ी चिड़िया नामक को टापू से उड़ाकर उसके घरपहुंवा देती है^१ । चिड़ियों द्वारा नामकों की आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाकर पहुंचाने का अभिप्राय कथा-साहित्य में बहुत प्रवणित रहा है ।

(ब) मिश्रित क या वस्तु ज्ञात कथाधारः

कथा कौतुहली

=====

कथावस्तुः*

हुवासपुरी के राजा नन्दसेन का पुत्र सरबंगी था । एक दिन सैर करते हुए उसे दो बंजारों द्वारा ज्ञात हुआ कि छत्तिसेर देश के राजा जगद्वय तथा रानी रूप सरिसठ की पुत्री कौतुहली रूप-सीन्दर्य में उसके विवाह योग्य है । वह कौतुहली के रूप की विशेषता सुनते ही मोहित होकर पिता से आज्ञा लेकर छत्तिसेर देश की ओर चला । छत्तिसेर में पहुँचकर सरबंगी उपवन में रहस्ये हुए कौतुहली को देखते ही मूर्छित होकर गिर पड़ा । उस स्थिति को देखकर कौतुहली ने उसके पास जाकर उसका उपचार कराया । कुंवर सरबंगी द्वारा जाग के माली को अपनी सारी कह बात बताने पर माली ने उसके पुनर्वस्तु व्यवहार करते हुए सहायता करने का आश्वासन दिया ।

एक दिन कौतुहली अपनी कुछ सहेलियों के साथ वीणा-वादन करती हुई उपवन में तालाब के किनारे कला-प्रदर्शित कर रही थी कि इसी समय माली के घर में सरबंगी जोर-जोर से रोने लगा । कौतुहली यह सुनकर उसके पास पुनः गई और पानी झुँझुँका छिड़काकर उसे स्वस्थ किया ।

कौतुहली को संगीत में प्रवीण जानकर सरबंगी भी माली के वेग में बाणा-विद्या तथा संगीत-कला सीखने लगता है । सभी कलाओं में प्रवीण हो जाने पर एक दिन जाग में वह अपनी कला का प्रदर्शन कर ही रहा था कि राजा जगद्वय का मंत्री नन्दन जाया और उसे १४ विद्याओं, कलाओं, संगीत आदि का ज्ञाता समझकर उसको राजमहल में ले गया । राजा उसके कला-प्रदर्शन को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ । कला-प्रदर्शन के समय कौतुहली भी उसके रंग में रंगकर नाचने-गाने लगी । इसके बाद कौतुहली तथा सरबंगी दोनों एक दूसरे को पाने के लिए विरह में विकल रहने लगे । इसी बीच राजा जगद्वय ने परिचय दिशा के राजा के साथ कौतुहली की सादी की बात बलाई, किन्तु कौतुहली ने उसे अस्वीकार कर दिया । इससे विवश होकर सरबंगी को पुनः बुलाकर राजा ने दोनों की सगाई निश्चित कर दी । दोनों सानंद समय व्यतीत कर ही रहे थे कि इसी बीच में परिचय दिशा के राजा ने बलाई कर दी । दोनों का गौर मुड़ हुआ । सरबंगी

सरबंगी ने अपने कोशल से उसको परास्त किया और बाद में राजा जगद्वय ने प्रसन्न होकर दोनों का विवाह सम्पन्न करवा दिया । सरबंगी सपत्नीक स्वदेश वापस आकर सानंद राज्य करता हुआ काव्यायन करने लगा ।

तुलनात्मक-विवरलेखन :-

आंकवि के प्रेमाख्यानों में "कथा कौतुहली" संगीत प्रधान काव्य है इसमें नायक-नायिका के प्रेम के वाकर्षण तथा पुष्टि का माध्यम संगीत है । इत्ताम द्वारा हेम ठहराये जाने से संगीत की सुफी प्रेमाख्यानों में महत्व नहीं दिया गया है । सुफी मत के विरहितवा सम्प्रदाय वालों ने उसे प्रायः अपना ही चैष्टा की है, द्विजगुपति कृत "बन्दावती" में ल्यालिस रागों की वर्ण है और सुफी कवि कुतबन की "मुगावती" का नायक अपनी किंगरी बजाकर नायिका के नगर वालों का ध्यान अपनी दयनीय दशा की ओर आकृष्ट करता है, किन्तु ये प्रसंग केवल अपवाद स्वरूप ही हैं । असुफी प्रेमाख्यानों में संगीत की महत्व दिया गया है । "माधवान्त कामकंदला", "छिताईवार्ता" (सं० १५८१) जयवा पुत्रकृत "रसरतन" (सं० १६७५) के नायक प्रेयसियों की प्राप्ति में संगीत का प्रयोग करते दीप्त पड़ते हैं । "छिताईवार्ता" में नायक सीरसी तथा छिताई में और "रसरतन" में बरागर के राजकुमार सोम तथा बम्पावती की राजकुमारी रम्भा में वीणा-बादन के प्रसंग से ही मेल-जोल दिखताया गया है । सुंदर की "वासवदत्ता कथा" के आधार पर भास कवि के "प्रतिभा दीगन्धरायण" में भी वीणा-बादन का प्रसंग मिलता है । "माधवान्त कामकंदला" की कथा मध्ययुग में बड़ी प्रख्यात रही है । इस पर कई कवियों की रचनाएँ मिलती हैं + जिनमें गुणपति कृत "माधवान्त कामकंदला प्रबन्ध" (सं० १५८४), माधवतर्मा कृत "माधवान्त कामकंदला रस विलास" (सं० १६००), कुललताम कृत "माधवान्त कामकंदला चठपई" (सं० १६१६), पुरुषोत्तम वत्स कृत

१- विस्तार के लिए देखिए :- परशुराम चतुर्वेदी - हिन्दी के सुफी प्रेमाख्यान-
पृ० ५० से ५२ तक, १९६२ ई० ।

२- " " " :- " " - भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा
पृ० ४३, १९५६ ई० ।

"माधवानल कलाबल्लभ" ^१, दामोदर कृत "माधवानल कथा" (१७वीं शताब्दी के पूर्व) तथा जाल कवि और कवि जालम (सं० १६५०) की कथाएँ उल्लेखनीय हैं। इसमें पुष्पावती नगरी के ब्राह्मण माधव तथा राजा कामसेन की राजनर्तकी कामकंदला में कला-प्रदर्शन के माध्यम से प्रेम प्रदर्शित किया गया है। जानकवि की नायिका कौतूहली की भाँति नायिका कामकंदला भी कला-प्रदर्शन में निपुण है। जिस तरह माधव मुग्ध होकर उसे पाने के लिए सब कुछ भुलकर प्रयत्न करता है वैसे ही जानकवि का नायक सरबंगी भी कौतूहली को पाने के लिए सब कुछ त्यागकर कला एवं संगीत पीछता है और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। अंतर केवल यह है कि इसमें नायक-नायिका दोनों की संगीत-कलाओं का प्रदर्शन हुआ है जबकि "माधवानल कामकंदला" में केवल नायिका कामकंदला से का। जानकवि के पूर्व इस कथा के लिखने की एक सम्प्री परम्परा मिलने से, कवि का इससे प्रभावित होना स्वाभाविक है। गुण-श्रवण से नायक का आकर्षण, उपवन में नायक-नायिका का मिलन तथा कला और संगीत के प्रदर्शन से उनके प्रेम की पुष्टि ही इसके मुख्य अभिप्राय हैं ^२। गुण-श्रवण से नायक-नायिका का आकर्षण तो प्रेमाख्यानों का मुख्य अभिप्राय ही रहा है। कवि ने कथा पुष्पहरिणा, कथा रूपमंजरी, तथा कथा रतनावली में भी उपवन में नायक-नायिकाओं का मिलन कराया है। लगता है इन दोनों अभिप्रायों की कल्पना कर कवि ने संगीत के इसी कथाभिप्राय से प्रभावित होकर इसकी रचना की होगी वैसे भी जानकवि संगीत के बड़े प्रेमी थे। उनका "संगीत गुन्दीप" ग्रंथ संगीत की विविध राग-रागणियों से परिपूर्ण है। संगीत के प्रति उनका यह आकर्षण अधिकांश रूप में बसुकी परम्परा के प्रभाव के फलस्वरूप ही माना जा सकता है।

१- श्री जगज्जदनाहटा-"माधवानल कामकंदला कथा सम्बन्धी कुछ नव्य रचनाएँ" लेख, हिन्दी अनुगीतन, अक्टूबर-दिसम्बर १९५८ ई०।

२- विस्तार के लिए देखिए- अध्याय-३ में "साहित्यिक - अभिप्राय"।

कथा मोहनी¹ तथा कथा छवितागर

कथावस्तु:-

कवि के ये दोनों प्रेमाख्यान पहेलियाँ कुम्भाने से सम्बन्धित हैं। उनमें नायिकाएँ नायक से अपने प्रान का उत्तर पाने के बाद ही पाणिग्रहण करती हैं। इनके कथानक संक्षेप में इस तरह हैं:-

कथा मोहनी में परिव्रज दिशा के राजा की पुत्री मोहनी को रूप-प्रांसा सुन्दर प्राची देश के राजकुंवर मोहन उसे पाने की चाह में व्याकुल रहने लगा। मोहनी अपना विवाह उसी से करना चाहती है जो उसकी १० पहेलियों का उत्तर दे। जो राजा इनका उत्तर नहीं दे पाते वे उनका बह सिर कटवा लेती थी। अंत में मोहन ने दसों पहेलियों (प्रश्नों) का उत्तर सफलता पूर्वक देकर तथा एक पहेली स्वयं पूछकर प्रसन्न कि उत्तर मोहनी नहीं दे पाती है, पाणिग्रहण करता है।

कथा छवितागर में रामपुरी के राजाराम की एक अत्यन्त सुन्दर कन्या छवितागर थी। इसकी कांति इन्द्रपुरी की अप्सराओं से भी बढ़ती जा रही थी। बचपन में ही वह सारी विद्या तथा मंत्र की शिक्षा में प्रवीण हो गई। गादी के योग्य होने पर वह अपनी गादी अपने समान बर से करना चाहती थी। एक पर्वत के ऊपर रहते हुए उसने यह समाचार चारों ओर फैला दिया कि जो उससे विवाह करना चाहे, वह चार प्रश्नों का उत्तर दे। जो राजा उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते वे उनका सिर कटवाकर उन्हें सटकवा देती थी। जैतपुरी के राजा जैत का पुत्र गुन्नागर उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर विन्मत्त हुआ और एक दृष्ट मित्र की शिक्षाओं के अनुसार दृढ़तापूर्वक चारों प्रश्नों का उत्तर मौन से ही दिया। छवितागर के अनुसार उत्तर ठीक होने से राजाराम ने दोनों का पाणिग्रहण करा दिया।

इन दोनों कथाओं के तुलनात्मक विश्लेषण से पूर्व प्रहेलिका-साहित्य

- १- हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के संग्रहालय में जानकवि की हस्तलिखित प्रतियों के साथ एक अन्य ग्रंथ "मोहनी सैयदहमद की करी" नाम से सुरक्षित है। इसमें कवि ने मोहनी नायिका के अंग-प्रत्यंग का गुंजारिक स्फुट रूप में वर्णन मात्र ६ पृष्ठों में किया है। यह "कथा मोहनी" से बिल्कुल भिन्न है।

की संश्लिष्ट रूप-रेखा का विवेचन कदाचित् विषय से दूर नहीं होगा ।

प्रहेलिका-साहित्य:-

प्रहेली की अंग्रेजी में "रिडिल" (Riddle) कहते हैं जो वर्मन शब्द 'Raetsel' से बना हुआ प्रतीत होता है । इसको संस्कृत में प्रवल्हिका, प्रहेलिका या प्रहेली कहा गया है । ब्राह्मण ग्रंथों में यह शब्द ऋग्वेद की कुछ छंदों के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

प्रहेली का मूल उद्गम आदिम मानव समाज की सहज रहस्यमय प्रवृत्तियों और उनकी अभिव्यक्ति में निहित है¹। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में प्रहेलिका के ढंग के कुछ विविध प्रयोग मिलते हैं । रामकृत त्रिपाठी ने तो ऋग्वेद की प्रहेलिका का वेद तक कह जाता है । यजुर्वेद और ऋग्वेदीय संहिता में पुरोहितों के द्वारा प्रहेली बुझाने की प्रथा का वर्णन मिलता है जिसका प्रयोग वे अपने इष्ट देव की प्रशंसा करने के लिए किया करते थे²। "वैदिक युग के लोक जीवन में प्रहेलिका की अनुष्ठानिक क्रिया का एक अनिवार्य अंग माना जाने लगा था और सामाजिक जीवन के अनेक सांस्कृतिक उत्सवों पर उसे अनुष्ठानिक महत्ता प्रदान की गई थी । यह परम्परा समस्त भारतीय आर्य-जन्य जातियों में अपने विविध रूपान्तरों के साथ वर्तमान युग तक बली बाई है³।"

1- The Golden Bough- Frazer. J. H., Part 9, p.121.

2. "In the Yajur Veda we also learn of the occasions at which the riddle games were customary, indeed, Even formed part of the cult. Thus we find in yajusaneyi Samhita in section XXIII a number of riddles with which the priests amused them selves at the renowned ancient horse sacrifice. These riddle games form an equally important part of the worship of Gods,, as the prayer and sacrificial formulae. However, the term "worship" of the Gods express but in adequately the purpose of the prayers and formulae, indeed, of the sacrifices themselves. The majority of the sacrificial ceremonies as also the "Yajus" formulae do not aim at worshipping the Gods but at influencing them, at compelling them to fulfil the wishes of the sacrificer."

A History of Indian Literature, by Winternitz, Vol.I, p.183-84.

3- प्रो० कस्तूरचन्द सतधिया "प्रहेलिका साहित्य की ऐतिहासिक रूपरेखा"-
संस्कृत पत्रिका, भाग ४०, अंक २ ।

उपनिषदों, पुराणों, लौकिक संस्कृत साहित्य आदि में भी इसका व्यापक प्रयोग मिलता है। उपनिषद में नविकेता तथा यम के संवाद, महा-भारत में यथा और युधिष्ठिर के वार्तालाप तथा कालिदास और विश्वामित्र का विवाह-प्रसंग पहली से ही संबद्ध हैं। इसे हम पहेलियों की वार्तालाप या प्रश्नोत्तर शैली कह सकते हैं। इन पौराणिक पहेलियों में कथात्मक एवं सैनात्मक दोनों शैलियों का विकास हुआ है।

पहली शताब्दी के बाद अलंकार तथा ध्वनि-सम्प्रदाय के आचार्यों ने पहेली की अभिव्यक्ति प्रणाली को रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति में बदलकर उत्कृष्टता की चरम सीमा प्रदान की। इसके बाद पाँचवीं शताब्दी के लगभग उच्चवर्ग के व्यक्ति पहेली साहित्य को हीन दृष्टि से देखते-देखते इसका रूप विकृष्ट हो गया। जागे बलकर अपभ्रंश युग के कवियों तथा लेखकों ने उसे नव साहित्य में पुनः प्रतिष्ठित किया। सिद्धों, नायिकों एवं नायक पंथी योगियों की वाणिजाय पहेलियों से भरी पड़ी है। इनका प्रभाव जागे बल कर संत-साहित्य पर भी पड़ा। सुफ़ी हिन्दी कवियों में जामसी, कुतबन, मंथन आदि ने जगह-जगह प्रहेलिका शैली का संकेत किया है। मंथन की मधु-मालती में इसके अनेक प्रयोग मिलते हैं।

आधुनिक युग में युगों से जली चार्ड प्रहेलियों की यह सतत परम्परा बहुत कुछ विलुप्त-सी हो गई है। फिर भी लोक-साहित्य में विशेषकर राज-स्थानी वार्ताओं में इनके अमिट स्वर आज भी गूँजते हैं। प्रहेलिका-साहित्य मुख्यतः लोक की ही देन है।

अरबी तथा फ़ारसी साहित्य में भी प्रहेलिका प्रणाली प्रश्नोत्तर शैली की तमाम कथाएँ मिलती हैं। "अलफ़तैसा" की कुछ कथाओं में तथा अन्य बहुत-सी स्वतंत्र कथाओं- यथा "हातिर्मतार्ड" आदि में ऐसे प्रसंग भरे पड़े हैं।

तुलनात्मक - विश्लेषण:-

बानकवि ने अपने इन दोनों प्रेमाख्यानों में नायिकाओं द्वारा प्रश्न कराया है। जो व्यक्ति इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते हैं। दोनों नायिकाएँ उनका छिर कटवा लेती हैं। अंत में दोनों नायिकाएँ अपने प्रश्नों का उत्तर पाने के बाद विवाह करती हैं। "कथा मोहनी" में मोहनी अपने १० प्रश्नों का उत्तर

मोहन से पाने के बाद ही उनके विवाह करती है। ऐसे ही "किमसा हातिम-तार्ड" में एक साँदागर की मृत्यु के बाद उसकी पुत्री हुसनानु ० प्रान निककर अपने द्वार पर लटकवा देती है और यह समाचार फैलवा देती है कि जो इस प्रानों का उत्तर देगा उसी से वह विवाह करेगी। बाद में हातिमतार्ड इन सत्तों प्रानों का उत्तर परिलभ्य पूर्वक देकर उसका विवाह मुनीरशामी से करवा देता है। जरे-वियन नाइट्स में "अबुलहुसैन और उसकी गुलाम लड़की तबहुद" नामक कथा में तबहुद नामिका बहुत विदुषी है। वह जनेक प्रानों का उत्तर देती तथा लोगों से प्रान ^{करती} दिखलाई गई है। बाद में वहाँ के राजा द्वारा वह पुरस्कृत भी होती है। इस तरह और बहुत-सी कथाएँ उसमें मिलती हैं।

"कथा छबिसागर" में नायक गुनगागर के उत्तर देने का ढंग मोहन से भिन्न है। इसमें नामिका छबिसागर के बार प्रानों का उत्तर गुनगागर मौनावलम्बन से देता है। जनकृति के आधार कालिदास ने भी विष्णोणमा के प्रानों का उत्तर भी उसी प्रकार दिया था। लगता है कि जानकवि ने इसी षटना से भाव-साध्य करके अपने इस ग्रंथ की रचना की है। जैसे कालिदास के विवाह की यह कहानी उस समय लोक में बहुत प्रसिद्ध हो चुकी थी। जानकवि भी इससे अपरिचित न रहे होंगे।

इस तरह इस समर्थ परम्परा के मध्य कवि का इन कथाओं में पहेलियाँ बुझाने का औरय नायक एवं नामिका की बुद्धि का उत्कर्ष प्रदर्शित करना मान रहा है। जैसे इन दोनों कथाओं का कथानक बहुत सरल एवं सीधा है तथा कवि कल्पित जात होता है।

कथा - सुभटराइ

कथावस्तु:-

पूर्व देश के सूरनगर का राजा सूरजमल बड़ा शूर, वीर एवं पराक्रमी था। कई राजाओं के बावजूद भी वह निःसन्तान रहने से बहुत

१- नल-किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।

२- जरेवियन नाइट्स (अंग्रेजी), सम्पा० रिचर्ड पी० बर्टन, भाग ६, पृ० १८९।

विनित्त रहता था । एक सिद्ध द्वाजा फल मिलाने से एक रानी को पुत्र सुभटराड उत्पन्न हुआ । फिर राजा के प्रधान नेगी के भी चार पुत्र थे । सुभटराड ने मंत्री-पुत्रों के साथ 10 वर्षों में सभी राज्याधिकृत शिवा प्रवृत्त की ।

सुभटराड अपने योद्धा कुपारी पाने पर ही अपना विवाह करना चाहता था तथा मंत्री-पुत्र सुभटराड के विवाह के बाद अपनी शादी करना चाहते थे । राजा सूरजमल ने अपने प्रधान नेगी को उदीची, प्रतीची तथा अरुणाची तीनों राजाओं के पास उनकी राजकुमारियों से शादी के निमित्त संदेश भेजा, किन्तु सभी से तर्कपूर्ण उत्तर पाकर मंत्री के वापस जाने पर राजकुंवर सुभटराड मंत्री के चारों पुत्रों के साथ अष्ट दिशा की ओर करने चला । रागते में उदीची के राजा की पुत्री की सिंह से रक्षा करने पर वहाँ के राजा ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री की शादी उसके साथ कर दी । राजकुंवर के कहने पर मंत्री के चारों पुत्रों का विवाह भी वही सम्पन्न हो गया ।

एक दिन उदीची के राजा के यहाँ ही ज्योत्नार में सभी देशों के राजाओं के साथ प्रतीची के राजा भी सम्परिवार एकत्रित थे । पर वापस लौटते समय उनकी पुत्री को एक हाथी ने परेशान किया जिससे वह पैर पर चढ़ गई । सुभटराड ने वीरता पूर्वक हाथी को पारकर उसकी रक्षा की । इस पर प्रतीची के राजा ने भी प्रसन्न होकर अपनी पुत्री की शादी उससे कर दी जब सुभटराड दोनों पत्नियों के साथ रहने लगा ।

एक बार अचानक अरुणाची के राजा की पुत्री को असुर से जा रहा था । शात होने पर कुंवर ने दोनों पत्नियों को छोड़कर दौड़ता हुआ "बड़ी" की महावता से उसकी रक्षा की जिससे वहाँ के राजा ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया । एक वर्ष तक वहीं रहने के उपरान्त उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । फिर राजा की आज्ञा लेकर कुंवर पत्नी तथा पुत्र के साथ सूरजमल आया और माता - पिता से मिलकर तीनों पत्नियों के साथ दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने लगा ।

कथा का आधार:-

कवि की इस कथा का आधार कोई एक निश्चित कथा नहीं

लिखे हुए मिलते हैं जिसकी घटनाओं एवं कथा के विकसित रूप में बहुत कुछ साम्य है। जिस तरह कथा सुभटराज में नायक सुभटराज तीन विवाह करता है उसी तरह दुबहरन दास कृत "पुहुपावती" में नायक राजकुमार तीन, धरणीदास के "प्रेमप्रगास" में नायक मनमोहन दो, दामोदर कृत "मदनमालक" में नायक मदनकुमार पांच, समसुन्दर कृत "प्रिय-मेलक-चरपई" में नायक सिंहलसिंह नार, जयसी के "पद्मावत" में नायक रतनसेन दो विवाह करते हैं। "ढोलापारूरादुहा", "लक्ष्मसेन पद्मावती", "सदयवन्तसारविंगी", "मैनासत" आदि में भी नायक अतिरिक्त विवाह करते हुए विव्रित हुए हैं। इनमें से "प्रेम-प्रगास", "प्रिय-मेलक-चरपई" तथा "पुहुपावती" के कथानक ही "कथा सुभटराज" के कथानक के अधिक निकट जान पड़ते हैं, पर कथा पुहुपावती (सं० १७२६) तो कथा सुभटराज (सं० १७२०) के बाद की तथा "प्रिय-मेलक-चरपई" (सं० १६७२) और प्रेमप्रगास (सं० १७११) पहले की रचनाएँ हैं। जानकवि की इस कथा के कथानक अभिप्रायों या घटनाओं का बहुत कुछ आधार प्रिय-मेलक-चरपई तथा प्रेम-प्रगास के अभिप्राय जबवा अन्य लोक प्रचलित प्रेमात्मानों के अभिप्राय रहे होंगे बिल्के आधार पर कवि ने इस कथा का ढाँचा बड़ा किया है। इस यहाँ इनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

कथा सुभटराज में जिस तरह नायक सुभटराज सैर करने के लिए जाने पर जनेक विभिन्न राजाओं के युवतियों को संकट से बचाकर उन्से पाणि-ग्रहण करता है उसी तरह 'प्रिय-मेलक-चरपई' में भी शूर, वीर एवं गुणवान् राजकुमार सिंहलसिंह वसंत में उपवन झीड़ा के निमित्त जाता है और जनेक युवतियों की विपत्तियों से रक्षा कर उन्से शादी करता है।

१- श्री बजरज्ज नाहटा ने ना० प्र० प०, काशी वर्षा ५७, अंक १ के अपने एक लेख में प्राचीन राजस्थानी व गुजराती भाषा की लोक कथात्मक रचानाओं तथा "विक्रम-स्मृति-ग्रंथ" में विक्रम-संबंधी लोक कथाओं पर रचे गये जैन ग्रंथों का कुछ परिचय दिया है जिनमें उन्होंने बताया है कि "सिंहलसुत-प्रिय-मेलक-चरपई" कविवर समसुन्दर ने सं० १६७२ में लिखी थी-"संबत् सोल बहूसरी समद रेडु मेडता नगर मभारि।" यही कहानी पूर्ववर्ती मलयचंद के "सिंहल-सी-वरिच" में है। इसका रचनाकाल सं० १५९९ है। इसी विषय पर एक रचना सं० १७४६ में "सिंहल-कुमार-चरपई" के नाम से लिखी गई, इस कथा की जनेक प्रतिपां मिलती हैं। कई सचिव भी हैं। इसकी एक प्रति माजकल बीका-भर के श्री शमा कल्याण ज्ञान भण्डार में है।"

जिस तरह उदीची के राजा की पुत्री की रक्षा सिंह से करने पर वहाँ का राजा नायक सुभटराज से उसकी शादी कर देता है वैसे ही पुहुपावती में नायक जम्बरसेन द्वारा काशी नरेश बिजसेन की कन्या रूपावती की रक्षा सिंह से करने पर वहाँ का राजा प्रसन्न होकर उसकी शादी कर देता है, किन्तु वह जाऊँव के बाद की रचना होने से इसका आधार नहीं कहा जा सकता । "कथासरित्सागर" तथा लोक-साहित्य की अनेक कथाओं में इस तरह के अभिप्राय मिलते हैं । सम्भवतः इस कहानी के अभिप्रायों के लिए कवि लोक-साहित्य का ही इन्गी है ।

नायक सुभटराज द्वारा प्रतीची के राजा की पुत्री की हाथी से रक्षा करके द्वितीय शादी करने का अभिप्राय "प्रिय-मेलक-वठपई" में भी मिलता है । इसमें भी सिंहलद्वीप के नौरवरसिंह की रानी सिंहली का पुत्र नायक सिंहलसिंह नगर सेठवन की पुत्री धनवती की रक्षा हाथी से करके पाणिग्रहण करता है^१ । हाथी से युवतियों की रक्षा करके शादी करने का अभिप्राय "कथासरित्सागर" के अनेक कथाओं तथा लोक साहित्य में बहुत मिलता है । "कथा सरित्सागर" की एक कथा के अनुसार सुप्रसिद्ध नगर के राजा प्रसेनजित् की सुन्दरी पुत्री कुरंगी की रक्षा हाथी से करके नायक जांडास उससे शादी करता है । हाथी के आकस्मिक आक्रमण और उससे कुमारी की रक्षा का अभिप्राय भवभूति के "मालती माधव" नाटक में भी मिलता है ।

अवाची के राजा की पुत्री की रक्षा दानव से करके नायक सुभटराज की उससे शादी होने का अभिप्राय धरणीदास कृत "प्रेम-प्रगास" में मिलता है जिसमें नायक मनमोहन दास पंचवटी के राजा देवनारायण की पुत्री प्रानमती की रक्षा दुरमस दानव से कर करने पर दोनों का पाणिग्रहण हुआ है इसी तरह पुहुपावती में भी नायक जम्बरसेन द्वारा बेगमपुर ग्राम के बेगमराय राजा की पुत्री "रंगीली" की रक्षा दानव से करने पर शादी हुई है । ऐसे ही कथासरित्सागर में नरवाहनदत्त (सातवाँ खण्ड) द्वारा राक्षस का बध करने पर विद्याधरी से उसका विवाह सम्पन्न हुआ है ।

१- विस्तार के लिए देखिए - डा० सत्येन्द्र-मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का

लोक-साहित्य-अध्ययन- पृ० २१४ से २२२ तक, १९६० ई० ।

जिस तरह अंत में नायक सुभट्टराज तीनों पत्नियों के साथ रजदेश लौटकर सानंद सुखोपभोग करता है उसी तरह "प्रिय-मेलक-वतर्पाई", "प्रेम-प्रगास", "मदनगतक", तथा "पुहुपावनी" के नायक भी रजदेश लौटकर अपने सभी पत्नियों के साथ दाम्पत्य-सुख भोगते हैं ।

संक्षेप में, जानकवि के इस ग्रंथ का कथानक कोई एक निश्चित पूर्व प्रेम-कथा के आधार पर न होकर, पूर्व प्रचलित विभिन्न प्रेम-कथाओं वा लोक-साहित्य के अभिप्रायों के आधार पर निर्मित है, जिसमें "प्रिय-मेलक-वतर्पाई", "प्रेम-प्रगास" तथा "कथासरित्सागर" के कुछ अभिप्राय तथा उनके कथानकों के प्रारम्भ, विकास एवं अंत के अंग अधिक मिलते जुलते हैं ।

कथा कर्तंदर

कथावस्तु:-

कर्तंदर मसीत जाति का एक सेवक था । एक दिन एक सौदागर द्वारा बार बेरियां बेचने के लिए ले जाते हुए देखकर वह उन पर मोहित हो गया । उनका मूल्य न चुका सकने के कारण वह उनके विरह में व्याकुल रहने लगा । एक पातशाह ने १० हजार मुहरें देकर उन्हें खरीद लिया । वियोग से पीड़ित कर्तंदर ने एक दिन अपने मित्र दुरवेश से इसका रहस्य बताते हुए कहा कि जब मैं मर जाऊँ तो मेरे हृदय में निहित एक अनाहिर है उसे निकाल कर पातशाह के यहाँ ले जाकर बेच देना ताकि मुझे वहाँ शान्ति मिल सके । इस एकदिन पातशाह एक बेरी के पास प्रणय-याचना के लिए गया, किन्तु उसके शरीर पर हाँप रहते ही उसके हृदय का अनाहिर पिघल कर पानी होगया जिससे बेरी बहुत नाराज हुई । राजा विन्तित होकर सुबह होते ही एक-सभा बुलवाई और कर्तंदर की ऐसी प्रेम की एकनिष्ठता का रहस्य जानकर उसके प्रेम की प्रशंसा की और स्वयं परवातापु किया ।

कथा का आधार:-

इस कथा का मूल स्रोत लोक-साहित्य है । यह लोक-साहित्य में बहुत प्रसिद्ध कथा रही है। श्री प्रतापनारायण मिश्र कृत "लोकोक्ति-शतक" में प्रमुक्त एक लोकोक्ति के ऊपर आधारित एक छंद में वर्णित "कर्तंदर" की कथा

के उल्लेख से यह सङ्ग हो अनुमान लगता है कि कर्तदर की कथा मूल रूप में लोक की कथा है और वही जान्कवि का आधार रही है -

अपनी काम आपने हो हावन भत होई ।
परदेगिन परधर्मिन ते आशा नई कोई ॥
धन परती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई ।
जोगी काके मीत कर्तदर केतिके भाई ॥

हुक महोदय ने भी उत्तरी भारत के लोक-साहित्य के अध्ययन में कर्तदर की कथा की उल्लेख "अली कर्तदर" (Ali-Qatander) नाम से किया है^१। यह कहानी जाम की कहानी में मिलती है ।

"अरेबियन नाइट्स" में कर्तदर की तीन कथाएँ मिलती हैं । अपने मूल रूप "अल्फ़-सैता" में यह कथा "सुलूक" नाम से प्रसिद्ध है । इसका कथानक जान्कवि से बिल्कुल भिन्न है । इसमें बगदाद की एक लड़की बाजार से लौटकर सारा सामान एक मजदूर के ऊपर रख कर अपने घर ले जाती है । साहजादी की जन्म छोटी वहमें मजदूर को दितवस्तु समझकर रोक लेती है । रात को सभी गाने बजाने तथा शेरों के साथ जानेंद ले रही थीं कि इसी बीच में एक-एक करके तीन कर्तदर आए । तीनों बड़ी विपत्तियों के बाद पहुँच पाए थे । वहाँ का बादशाह तलीफ़ा हादून भी रात को गरत लगाते हुए संयोग से वहाँ जा पहुँचा । वह तीनों की रावमहत में ले गया और उनकी विपत्ति कहानी बारी-बारी से सुनकर उनकी पुरस्कृत किया । इस तरह इन तीनों की कहीं हुई कथाएँ जान्कवि से बिल्कुल भिन्न हैं । केवल नाम-साम्य मात्र है । जान्कवि ने अपनी इस लौकिक प्रेम कथा में विरह की महत्ता तथा "कथा मधुकर गालती" की भाँति दास-प्रथा की बोर संकेत किया है ।

१- डॉ० प्रताप नारायण मिश्र - प्रताप सहरी, पृ० ६३, प्र० सं० १९४९ ई० ।

२- 'An Introduction to the popular religion, and

folklore of Northern India': by A.W.Crooke, P.138,

1894.

कथा सतवती, सीतवती तथा कुलवती

कथा-वस्तुतः:-

सत- परक इन तीनों प्रेमालापानों का कथानक प्रायः एक-सा है । जो संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है ।

"कथा सतवती" में कवि नबी, मुहम्मद आदि की बंदना तथा एक सौदागर मन्सूर की पत्नी सतवती के सत्य की प्रशंसा से कथा का प्रारम्भ करता है । एक दिन सौदागर सतवती को घर में अकेली छोड़कर व्यापार करने परदेश जाता है । एक धूर्त व्यक्ति सतवती पर मोहित होकर उसके सत्य की डिगाने के लिए बारी-बारी से क्रमशः चार दूतियों -पनवारिनि, कलवारिनि, मालिनि तथा जोगिनि, को भेजता है । ये चारों कुटुम्बियाँ अपने स्वभाव के अनुसार सतवती को हर तरह से बहकाने का प्रयास करती हैं, किन्तु सतवती पर इनका ^{कोई} प्रभाव नहीं पड़ता है । वह अपनी चेरियों से बारी-बारी से उनकी अच्छी परामर्श करवाती है । दूतियों के अशफल होने पर अंत में धूर्त स्वयं सौदागर मन्सूर का वेग धारणाकर सतवती के पास जाता है और एक योगी द्वारा सीधी हुई कुछ कलाओं का प्रदर्शन करता ही रहता है कि इसी बीच में सौदागर मन्सूर जा जाता है । सतवती द्वारा उन दोनों में वास्तविक मन्सूर को न पहचानने पर दोनों निर्णय के लिए राजा के पास जाते हैं । मन्सूर के पास उन दोनों के विवाह का कागज पाकर राजा उस धूर्त का सिर कटवा लेता है । इस तरह सतवती तथा मन्सूर अपने शीत के कारण सूर्य एवं चन्द्र की तरह उस संसार में जमर रहे^१ ।

"कथा सीतवती" में भी कवि नबी, मुहम्मद आदि नामों की बंदना तथा सीत की विधेयता से कथा प्रारम्भ करता है । एक गुणवान्

१- सौरठा- सतवती मन्सूर, जमर भये गुा जगत में ।

जगमगात ससि सूर, तैसे प्रगटे सीत हैं ॥

जौहरी के अत्यन्त सौन्दर्यवती शीतवती पत्नी थी । जौहरी के बाहर जाने पर एक दिन एक बाजदार भारोहे से भाँकती हुई शीतवती को देखकर उस पर मोहित हो विरह में व्याकुल हो उठा और सुनारिन तथा रंगरेडिन दो दूतियों को उसे मिलाने के लिए भेजा । दोनों के भरसक प्रयत्न करने पर भी शीतवती पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ । अंत में बाजदार ने पुनः एक अन्य रणाय द्वारा उसे दोष लगाने के लिए एक कौर कौसंकृत भाषा सिखाकर शीतवती के सम्मुख पर पुनः से प्रेम की बात कहलवाया । संयोगवश इसी बीच में जौहरी का जाता है और तोते की बनावटी बात की वास्तविकता जानकर बाजदार के साथ दोनों कुट्टियों को बुलवाकर सब के नाक-कान काट लेता है और कुट्टियों की जहाँ तक निकलवा लेता है ।

"कथा कुलवती" में भी कवि अन्य ग्रंथों की भाँति करतार, नवी, हजरत आदि की बंदना, शाहजहाँ की प्रशंसा तथा शीत-सत्य की महिमा से कथा प्रारम्भ करता है । कुलवती एक सौदागर की अत्यन्त रूप-सौन्दर्य शीता पत्नी है । बदलठगर के पुत्र राजा कुतुबुद्दीन के पास जेबे कुट्टियों हैं जो कि उसके सौन्दर्य की प्रशंसा चारों तरफ फैलाते रहने से सभी स्त्रियाँ देखने के लिए लातावित रहती थीं । एक दिन कुतुबुद्दीन बाहरसर करते समय भारोहे से भाँकती हुई कुलवती को देखकर मनें उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया । उसने अपनी दूतियों में से पाँच-"नाइनि, बुरियाइनि, ज्योतिशनि, बितेरिनि तथा डौमनी"- को क्रमशः कुलवती के सत्य को ढिगाने के लिए भेजा । अपने स्वभाव के अनुकूल सभी ने बहकाने का पूरा प्रयास किया, किन्तु सतवती पर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा । वह एकके बाद एक सभी दूतियों का मुँह कासा करवा कर घर से बाहर निकलवा देती रही । बाद में पातिगाह के समय जाने पर उनके लिए उसने भोजन एवं मद्य की अच्छी व्यवस्था की । भोजनादि के बाद बादशाह के संभोग की इच्छा प्रकट करने पर कुलवती हाथ खटाती है । सुनते ही सारी बेरियाँ जाकर मूसल से उसको मार डालती हैं और रात ही में उसे सड़क पर फिफका कर कुलवती भागकर ईराक चली जाती है तथा सौदागर से सारी बातें प्रकट कर देती है ।

इस सुन्द ही कुतुबुदीन का मुतक शरीर रिल्लि पर चारों चोर शोर-गुल मच गई । वास्तविकता का पता चल जाने पर शाहगवासी ने मुतक शरीर का मुँह काता करवा के तथा नगर में घुमवाकर अंत में दफन करवा दिया तथा ईराक से सौदागर तथा कुतबती को बुलाकर कुतबती के सत्य एवं शाहस की प्रशंसा करते हुए ५० हजार मुद्राओं से पुरस्कृत किया ।

कुतनात्मक -विवरणः:-

उपर्युक्त तीनों कथाओं की घटनाओं में प्रायः साम्य है । इनमें कवि ने कथा के आशय के अनुसार तीनों नायिकाओं के नाम पर ग्रंथ का नामकरण करते हुए सभी में लगभग एक-सी कथा बसलाई है । नबी, मुहम्मद आदि की बंदना तथा शीत-सत्य की विशेषता से कथा का प्रारम्भ, इन नायिकाओं का सौदागरों की पत्नी होना, उनके पतिव्रतों का व्यापार के लिए परदेश जाना, किसी राजा या सामान्य व्यक्ति का उन पर मोहित होना, कुटुम्बों की अराजकता पर प्रेमियों का जाना, फिर प्रेमियों की दुर्गति आदि सभी प्रसंग मिलते जुलते हैं । कवि ने इन सतपरक प्रेमालयनों में शीत एवं सत्य का महत्व दिखाने के लिए अन्य भारतीय तथा अभारतीय कथाओं की भांति विभिन्न नामों से थोड़ा-बहुत घटनाओं में हेर-फेर कर इनकी रचना की है ।

तीनों कथाओं के कथानक का प्रारम्भिक अंश लगभग एक-सा है । इनमें तीनों नायिकाएँ सौदागर की पत्नियाँ हैं । सतबती, शीतबती तथा कुतबती तीनों के पतिव्रतों के परदेश जाने पर क्रमाः धूर्त, बाजदार तथा राजा कुतुबुदीन मोहित होते हैं और तीनों धूर्त अपनी कुटुम्बों को भेजकर मिलाना चाहते हैं, पर तीनों में नायिकाएँ अपनी पातिव्रत की रक्षा करती हैं । कुटुम्बों के ऐसे प्रसंग कवि नाट्ट के "वीसतदेव रास"(सं० १४०० के लगभग)^१ में राजमती के सतीत्व को छिगाने के लिए, कवि साधन कृत "मैनासत"(सं० १६२४ के पूर्व)^२ में मैना के सतीत्व को छिगाने के लिए, नारायणदास की 'छिताईबाती'

१- वीसतदेव रास- सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ५९, प्र० संस्क० ।

२- डा० माता प्रसाद गुप्त: 'हकान के हिन्दी और मैनासत'- लेख, हिन्दुस्तानी भाग २९, अंक ३, १९५९ ई० ।

"कथा कुतर्बती" में नायिका कुतर्बती अंत में राजा कुतुबुद्दीन को बैरियों की सहायता से मुसलों से मरवाकर रात को सड़क पर फिफवा देती है और उसी रात अपने पति के पास ईराक पहुँचती है। सुबह राजा के मृतक शरीर का मुँह काता करवा कर उसे गधे पर सारे बाजार में घुमवाया जाता है और कुतर्बती के साहस एवं पातिव्रता के लिए ५० हजार पुरस्कार दिया जाता है। कवि साधन के मैनासत^१ में मैना अंत में इसी प्रकार मालिनि कुटनी का मुँह काता करवा कर तथा गधे पर बैठाकर बाजार में घुमवाती है। "कथा-सरित्सागर" के उदयन की कथा में देवकिमा के साहस एवं पातिव्रत पर ऐसे ही यहाँ का राजा पुरस्कृत करता है।

उस तरह समग्रता की दृष्टि से सत्य की उन तीनों कथाओं के कथा-नों में घटना-साम्य तो नहीं, पर पूर्णतः भाव-साम्य है। सर्वमें नायिकाएँ अपने पातिव्रत की रक्षा करती हुई विधित की गई हैं। उनमें "कथा सीतर्बती" का कथानक "कनकमंजरी" के तथा "कथा कुतर्बती" का "मैनासत" के अधिक निकट है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार "कवि काशीराम औरंगजेब के सूबेदार निरामतर्बा के आश्रित कवि थे। राजकुमार लक्ष्मीचन्द के लिए यह कथा लिखी थी।"^२ इससे स्पष्ट है कि वाक्कवि (न्यामतर्बा) ने बहुत कुछ अपनी "सीतर्बती" कथा का आधार इसी की बनाया होगा। ऐसे ही कथासरित्सागर की उपर्युक्त कथा से दोनों कथाओं की घटनाओं में अल्प-साम्य है। उस समय समस्त अरबी, फ़ारसी तथा हिन्दी कथा-साहित्य की लोक वा वार्ता-साहित्य में ऐसी बहुत-सी सत्य कथाएँ लिखित या मौखिक रूप में प्रचलित थी।

कथा चन्द्रसेन राजा सीत निषान

कथावस्तु:-

चन्द्रपुरी का राजा चन्द्रसेन हर तरह से सम्पन्न होने पर भी अपनी शादी नहीं करता। प्रधान के बहुत समझाने पर उसने प्रधान को गोनागिरि

१- "मैनासत पहले "लोरकहा" (चंदायन) के एक प्रसंग के रूप में रचने गया था, जिसका प्राचीनतम रूप उसके लोरकहा पाठ में मिलता है, उसके बाद किसी समय इस प्रसंग को अलग कर स्वतंत्र रचना के रूप में प्रकाशित किया गया और कदाचित् उसी समय उसमें चंदनादि की पंक्तियाँ भी रख दी गयीं।"

डा० माताप्रसाद गुप्त, लोरकहा और मैनासत-लेख, भारतीय साहित्य, सन् १९५९ ई०
२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३२४, १९५८ ई०।

के राजा के पास भेजा । राजा ने प्रधान का प्रस्ताव स्वागत कर उसके साथ अपनी राजकुमारी शीलनिधान को पञ्चाङ्गिणि विवाह कर दिया । इधर प्रधान के जाने के बाद राजा चन्द्रसेन ने एक सौदागर द्वारा ले जाती हुई तीन चिरियों (चेरियों) के रूप पर मोहित हो उसे मुँह माँगा डेढ़ लाख रुपया देकर उन्हें छोड़ दिया और तीनों को अपनी रानी बनाया । प्रधान की संवत्ता में राजकुमारी शीलनिधान के जाने पर राजा ने चारों रानियों के लिए चार महल बनवा दिये और बारी-बारी से सबसे मिलता रहा, किन्तु तीनों चेरियों के अधिक रूपवती होने से राजा शीलनिधान की अपेक्षा इन्हीं से अधिक प्रेम करता था । शीलनिधान पति द्वारा अपेक्षा करने पर भी अपने पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करती थी^१।

एक दिन राजा चन्द्रसेन को इन सभी रानियों की परीक्षा लेने की इच्छा हुई । बारी-बारी से सभी रानियों के पास जाकर उसने देखा कि पहली पुरवनी अर्द्धरात्रि में उपवन में जाकर एक हथेली से, दूसरी एक लूँटहारा (सारवान) से तथा तीसरी नदी पार जाकर अपने एक अन्य मित्र से मिलती है । इस तरह उनके आवरण की दुर्बलियता जानकर राजा परवाताप करते हुए मुनह होते ही तीनों चेरियों को राज्यमोचित दण्ड देकर उन्हें निकाल देता है और शीलनिधान से सप्रेम मिलकर प्रायश्चित्त करता है और उसे पटवानी बनाता है । शीलनिधान अपने वास्तविक शील का परिचय देती है । कवि नीच कुल की निन्दा तथा अपने अनुकूल से जादी करने की ओर संकेत करता हुआ कथा समाप्त करता है^२।

जानकवि के इस प्रबंध का कथानक मिलकुल लौकिक स्तर का है । राजा का चेरियों से प्रेम और पुनः परवाताप तो कवि की कल्पना ही है । इसमें कवि केवल शीलनिधान के पातिव्रत-सत्य की दृढ़ता का निर्वाह दिखाना चाहता है और यही उसके कथानक का मूल है । अन्य सत-परक प्रमाखानों की भांति इसमें

१- समरी निसि सेवा करी, कर जोरे चितु बाव ।

नाहि बनायी राव हौं, चेरिनि कै सौ भाव ॥

२- पैसी जाकी होइ कुल, तैसी ताकी रीति ।

निरकुल सौ कवि जान कहि, कोई करहुं निन पीति ॥

नायिका शीलनिधान का सत्य एवं शील ही उभड़ा गया है, किन्तु कवि ने वहाँ अपने सत्य सतपरक प्रेमाख्यान "कथा सतवती", "कथा शीलवती" तथा "कथा कुलवती" में नायिकाओं को अपने पातिव्रत-की रक्षा किसी पुर्त या कुटनी आदि से करते हुए चित्रित किया है। वहाँ उसमें नायिका शीलनिधान की एक निष्ठा द्वारा उसके पति बन्धुसेनको सही रास्ते पर लाया गया है। और शीलनिधान की महत्ता प्रदर्शित की गई है। शिवरदास काव्य कृत "सत्यवती कथा" (सं० १४५८) के कथानक से इसका भाव -साध्य है। यद्यपि दोनों कथाओं के प्रारम्भिक अधिप्राय विलकुल भिन्न हैं किन्तु अंत में जिस तरह शील-निधान अपने पातिव्रत पर बटस रह कर पति पर विषय पाती है वैसे ही सत्य-वती भी अपने धर्म पर अडिग रहकर राजकुमार वसुपर्ण को अभिताप से मुक्त कराती है।

कथा निरमल

कथावस्तु:-

कवि कथा का प्रारम्भ शील एवं सत्य की महिमा से करता है। एक दिन पातिशाह किसी मंदिर से दर्शन करके लौटते हुए एक मकान के द्वार पर लड़ी बिधवा स्त्री निरमल की आँखों पर मोहित हो गया। घर जाकर उसने अपनी धाई को उसे मिलाने के लिए भेजा। धाई के बहुत कहने तथा प्रलोभन देने पर भी वह उसकी बातों में न आई। धाई की असफलता के बाद पातिशाह ने स्वयं जाकर उससे उसके नेत्रों के प्रति अपनी आसक्ति की चर्चा की। उस पर बिधवा निरमल ने अपनी दोनों आँखें निकाल कर दे दीं। उस दिन से पातिशाह अपने कारनामों पर इतना लज्जित हुआ कि घर स्त्री को देखना बन्द कर दिया। और बिधवा निरमल का सत्य जमर रहा।

कथा का आधार:-

"कथा निरमल" से मिलती जुलती कहानियाँ अरबी साहित्य की प्रसिद्ध

:- देखा छत्रपति अधिक लबायी । पछतावत अपने घर जायी ॥

बहुरी जब ली बीयी साहि । घर नारी की करी न बाहि ॥१३॥

पुस्तक "अनुसुप्त-रजसुप्त-हानी कृत "किताबुल जगानी" तथा अहमद अमीन, अनुसुप्तनाम हार्दून आदि कृत "अल-मकदुलफरीद" (भाग, १) में "नाइला" की कथा के रूप में, आतक की "चेरी गाथा" के रूप में "गुभा" की कथा तथा अन्य अनेक राजस्थानी लोक-कथाओं में मिलती है। अरबी साहित्य के ऐतिहासिक कहानी-संग्रहों में नाइला की कथा बहुत प्रसिद्ध रही है। कथानक की दृष्टि से उपर्युक्त सभी रचनाएँ आत्कवि के निकट हैं, किन्तु रचना-काल, नाम-साम्य तथा अन्य कथाओं के प्रोतों के आधार पर नाइला की कथा ही कवि की कथा का आधार कही जा सकती है। रचना-काल की दृष्टि से अरबी के उन्नत ग्रंथ निज़ामी के बहुत पहले की रचनाएँ हैं। "कथा निरमल" तो उनके बाद की सं० १००० की रचना है। "नाइला" तथा "निरमल" दोनों विधवा स्त्रियाँ हैं। दोनों के नाम पर ग्रंथ का नाम रक्ता गया है। दोनों नामों में ध्वनि-साम्य भी है। गुभा तो विधवा न होकर एक भिक्षुणी है।

कथानक के तुलनात्मक विश्लेषण से, कथा निरमल तथा नाइला दोनों कथाएँ लगभग एक-सी ह सिद्ध होती हैं। जिस तरह विधवा निरमल के ऊपर एक पातिशाह आकर्षित होकर अपनी छाड़ को कुटनी के रूप में उसे मिलाने के लिए भेजता है वैसे ही बादशाह मुजावियः विधवा नाइला पर मोहित होकर चेरी की कुटनी के रूप में भेजता है। दोनों में साक्षात्-दर्शन से आकर्षण हुआ है। "गुभा" की कथा में तो एक भला जादूमी आकर एकाएक रास्ता रोक लेता है और मार्गच्छेद होने के लिए उसे जाप्य करता है। इसमें चेरी या छाड़ का कोई प्रयोग नहीं है। नाइला में जहाँ दोनों विधवाएँ कुटनियों से बचकर अपने पातिव्रत-धर्म की रक्षा करती हैं वहाँ गुभा भिक्षुणी रूप में भले जादूमी की शरीर की नरकरता और क्षण-भंगुरता पर एक लम्बा व्याख्यान देती है।

चेरी या छाड़ के असफल होने पर जिस तरह "कथा निरमल" का पातिशाह निरमल के पास जाकर उसकी आँखों के प्रति आकर्षित हो उनकी विशेषता बतलाता है और इस पर निरमल अपनी दोतों आँखें निकाल कर दे

१- पृ० ९१, १९४० ई०, प्रकाशित-महम्मदअनुसुप्तनामाली फ़ारसी नामः बन्नाबर, काहिरा।

२- भरतसिंह उपाध्याय-"चेरी गाथाएँ" में "गुभा की कथा"-बौद्धवाँ सर्ग, पृ० ९४,

देती है। बादशाह मुनाबियः द्वारा नाइजा के दांतों के सौन्दर्य की विशेषता बताने पर वह अपने सब दांत निकाल कर दे देती है। शुभा तो भी नादमी को निरमल की तरह ज्यों ही निकाल कर देती है। सम्भव है कि जानकमि इस अभिप्राय में शुभा की कथा से प्रभावित हुए हो, किन्तु "दांत निकालकर देने" का अभिप्राय लोककथाओं में उस समय बहुत अधिक प्रचलित रहा है। साथ ही दांतों की अपेक्षा जालों को निकाल कर देने में अधिक रोमांचकता है। इसलिए दांतों के रत्नान पर जालों का उपयोग किया है।

कथानक का अंत दोनों का एक-सा है। दोनों के बादशाह लज्जित होकर पर निजियों की देवता बन्द कर देते हैं तथा दोनों विधवाओं का साथ ग्रहण रहता है। शुभा की कथा का अंत इससे भिन्न है। शुभा युवक से मुक्त होने पर बुद्ध भगवान के पास जाती हैं और प्रार्थना करने पर अपनी जालें पुनः वापस पा जाती हैं। इस कथा के माध्यम से बुद्ध भगवान का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है जो कि उपर्युक्त दोनों कथाओं में नहीं है।

(ग) कल्पित या अज्ञात कथाधार

कथा कलावती

कथावस्तु:-

बिलासपुर के राजा सिंघरव तथा रानी कन्कावती संतान-विहीन थे बहुत दुःखित रहते थे। एक दिन स्वप्न में सुरपति ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। समय बीतने पर कन्कावती के पुरन्दर नाम का एक सुन्दर पुत्र पैदा हुआ जो अत्यन्त विद्वान हुआ। अपने सौन्दर्य के गर्व से उसने आठ विवाह किया। पुरन्दर एक दिन मृगया के लिए जंगल में गया। वहां गिरिवर्तगढ़ के राजा रत्नचूर द्वारा छोड़े गये रत्नमालपुर के एक सूफ़े तथा एक अन्य पथिक द्वारा भोगपुरी नगरी के राजा सेतवै तथा रानी रतनावती की पुत्री कलावती का अनुपम सौन्दर्य-वर्णन सुनकर उस मोहित हो गया और उसके विरह में व्याकुल रहने लगा। एक दिन कुंवर पुरन्दर योगी-वेष में बीणा लेकर उसे पाने के लिये घर से निकल पड़ा और भोगपुरी पहुंच कर बीणावादन में अपनी सारी व्यथा गाता फिरता। वहां के राजा सेतवै ने उसे अपने महल में बुलवाया। उसके

कीणागदत से प्रभावित होकर राजकुमारी कलावंती उस पर मोहित हो गई । राजा द्वारा राजकुमारी के लिए कोई योग्य घर चुनने पर उसने पुरन्दर को ही बताया । बाद में राजा द्वारा पुरन्दर के प्रति विश्वास प्रकट करने पर वह बेशर्त बदलकर पुरन्दर रूप में सामने आया और महज ही दोनों का पाणिग्रहण हो गया । पुरन्दर कलावंती के साथ स्वदेश लौटकर आनन्द रहने लगा ।

विरलेखण:-

यह कथावस्तु बहुत लीची-सी है इसमें कवि की कोई नवीनता नहीं है । इस प्रकार के प्रसंग प्रेमाख्यान साहित्य में भरे पड़े हैं । वात्सल्य की "कथा कौतुहली", "कथा कलावंती" आदि में तथा जयसी के "पद्मावत" आदि अन्य प्रेमाख्यानों में नायकों में प्रेम का उदय इसी प्रकार गुण-वर्णन से हुआ है । योगी-वेश में प्रेमाख्यानों में नायकों के घर से निकलने का अभिप्राय भी बहुत प्रचलित है । कवि के कथा कलावंती, कथा रूपमंजरी, कथा रतनमंजरी आदि में नायक योगी-वेश में निकलते हैं । इन दोनों अभिप्रायों के आधार पर ही कवि ने इस कथा का ढाँचा बड़ा किया है । यद्यपि कवि ने इसकी कथा की प्राचीनता की दुहाई दी है^१, पर इसका आधार कोई पूर्व प्रचलित कथा नहीं लगती । सम्भव है कि उस समय राजस्थान के लोक-साहित्य में इस ढंग की कोई कथा प्रचलित रही हो पर मुझे तो लगता है कि कवि ने नायक पुरन्दर एवं नायिका कलावंती की कल्पना कर इन उक्त दोनों अभिप्रायों के आधार पर यह कथा निर्मित कर दी है । "कथासरित्सागर" (भाग-२) में "कलावंती" नाम की एक कथा मिलती है, पर उसका कथानक इससे बिल्कुल भिन्न है^२।

कथा कलावंती

कथावस्तु:-

कवि अन्य कथाओं की भाँति नहीं, मुहम्मद, रसूल आदि की वंदना तथा प्रेम की महत्ता से कथा प्रारम्भ करता है । भरवन्गरी के राजा भरघ के अनेक रानियाँ रहने पर भी कोई संतान नहीं । अनेक धार्मिक अनुष्ठानों के बाद

१- कहत जॉन यह कथा पुरानी । मैं सुनि बाँधी जैसे जानी । (जी०-३)

२- अनु० केदारनाथ शर्मा सारस्वतः पृ०-२८३, १९६१ ई० ।

पुत्र "परमरूप" की प्राप्ति हुई। एक दिन कुंवर परमरूप स्वप्न में एक वनिज सुन्दरी को देखकर उसे पाने के लिए विरह में विकल हो उठा। राजा ने कुंवर की व्याकुलता को देखकर उसे संतोखा देने के लिए क स्वप्न में देवी हुई सुन्दरी के समान एक वनिज बनवाया। उस वनिज को देखकर एक विप्र ने बताया कि वह वनिज सिंधपुरी के राजा सिंध की पुत्री कन्कावती का है।

कन्कावती का परिवार पाकर राजा भरव मंत्री तथा योगी-वेश धारण किए हुए कुंवर के साथ ४०० कीस दूर सिंधपुरी के लिए सेवा लेकर चल दिया। वर विप्र ने पहले ही जाकर कन्कावती के समान "परमरूप" का सौन्दर्य-वर्णन करके उसके हृदय में परमरूप के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। राजा भरव ने सिंधपुरी पहुंचकर सर्वप्रथम मंत्री द्वारा राजा सिंध के पास दोनों के विवाह का संदेश भेजा, किन्तु राजा सिंध के सहमत न होने पर दोनों में घोर युद्ध हुआ। युद्ध में राजा भरव हार गये तथा परमरूप को एक सन्यासी जंगल में ले भागा। जब कन्कावती परमरूप के विरह में व्याकुल रहने लगी। विप्र परमरूप को जोबता हुआ उसे जंगल में सन्यासी के नाम में पाकर कन्कावती तथा परमरूप के बीच संदेश-वाहन का कार्य करने लगा। वर सन्यासी ने परमरूप को "कच्छपनिधि" विद्या सिखाकर उसे बदराय रूप में विप्र के साथ सिंधपुरी पहुंचा दिया। कन्कावती से मिलने पर दोनों के संभोग के लिए विप्र ने लोक-मर्षादा का ध्यान रखते हुए विवाह-श्रिता की^१। थोड़े समय बाद परमरूप कन्कावती के साथ स्वदेश भरवनेर वापस आया।

राजा सिंधराय की पुत्री की बदरमता का समाचार मिलने पर उसने भरवनेर पर जाकुमण कर दिया जिससे नगर के जाधे लोग खंड हुए तथा शेष पानी में बहने लगे। कुंवर परमरूप तथा कन्कावती भी बहकर कुमाः राजा जगराय तथा राजा जगपति राय के वहां पहुंचे। दोनों^{की} उन लोगों ने पुत्र एवं पुत्रीवत् ग्रहण किया, पर दोनों एक दूसरे के वियोग में दुःखी रहने लगे। उस स्थिति को देखकर बाद में उन लोगों ने दोनों का विवाह सम्पन्न करवा दिया।

१- विगु ज्यादा विगु बैठिहूँ, कहा कई करतार ।

कुलनि कलंक कलंक हूँ, गुर की लागे गार ॥

दोनों फिरही पुनः मिलकर स्वदेश वापस जाकर शांत रहने लगे ।

विलेखः:-

यद्यपि कवि ने इस कथा की प्राचीनता का उल्लेख किया है^१, पर प्रसुत लेखक को प्रवास करने पर भी इसका कोई पूर्व आधार न ज्ञात हो सका । इसमें जिस तरह योगी "कच्छपनिधि" बिष्णु सिखाकर नायक-नायिका को प्रदूषण कर देता है वैसे ही कवि की "कथा रूपमंजरी" में एक योगी रूपमंजरी तथा ज्ञानसिंध को मंत्र द्वारा प्रदूषण कर देता है तथा "कथा तमीम जन्तारी" में शाह-परी एक मंत्र सिखाकर नायक तमीम को रक्षा करती है । अरबी तथा फ़ारसी कथा-साहित्य में इस तरह दुष्टा द्वारा नायक-नायिका की रक्षा या उन्हें प्रदूषण कर देने का अभिप्राय अनेक कथाओं में मिलता है । इसके अतिरिक्त नायिका के पिता द्वारा आक्रमण से दोनों का पानो में बहकर विपरीत दिशा में लगना ही इस कथा का मुख्य अभिप्राय है जो हिन्दी कथा-साहित्य की देन हो सकती है ।

कथा रूपमंजरी

कथावस्तु:-

हस्तिनापुर के राजा के अनेक पत्नियों में रानी प्रभावती का पुत्र ज्ञानसिंध था । ज्ञानसिंध का अनिष्ट मित्र न्यानसिंध था । दोनों एक साथ खेलते, खाते, पढ़ते तथा ज्ञान की चर्चा करते हुए समय व्यतीत किया करते थे । एक दिन रात को बातें करते हुए बहुत विलम्ब से दोनों सोये । इसी रात को ज्ञानसिंध ने एक स्वप्न देखा और वही स्वप्न दूसरे दिन पुनः रात को देखा । सुँठने पर ज्ञात हुआ कि स्वप्न में जाने वाली सुन्दरी कंकनपुर के राजा कर्न तथा रानी हंसगवन की पुत्री रूपमंजरी है । राजकुमार ज्ञानसिंध अपने मित्र न्यानसिंध के साथ उसकी प्राप्ति के लिए घर से निकल पड़ा । चार माह के बाद अपने ननिहास पहुँचकर वहाँ रूपमंजरी का एक चित्र देखा । पुनः वहाँ से चलकर दोमाह

:- दृढ़ि तही गृहु कथा पुरानी । ज्यों जानी तिहि भाँति बणानी ॥

(बौ०-४) ।

के बाद केकनपुर पहुँचा और वहाँ मातिलिनि को मुद्रा देकर रूपमंजरी से मिलने की बात निश्चित कर ली । मातिलिनि के प्रयास से उपवन में दोनों की भेंट हुई । इसी बीच में एक तपस्वी (गुरु) दोनों को सफलता का आशीर्वाद देते हुए राजा-रानी के बिना जाने ही दोनों की गाँठि जोड़कर विवाह सम्पन्न कर दिया^१ । गुरु की कृपा से दोनों अपने देश जाने ही वाले थे कि राजा को श्वर मिलने पर वह क्रोध से दोनों को होजने चला, किन्तु गानसिंघ के पुनः प्रार्थना करने पर तपस्वी ने दोनों का रूप-परिवर्तन कर योगी-योगिनि-वेश में हरितना-पुर पहुँचा दिया और दोनों माता-पिता से मिलकर सान्द दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने लगे ।

विवरलेखणः-

हिन्दी के प्रसिद्ध भक्तकवि नन्ददास ने भी इसी नाम की एक छोटी-सी रचना 'रूपमंजरी' (सं० १६२५) लिखी है, जिसमें निर्मलपुर के राजा धर्मवीर की पुत्री रूपमंजरी तथा कृष्ण की प्रेम-कथा है । कुछ विद्वान इसकी कथावस्तु को नन्ददास के व्यवितगत जीवन पर आधारित, कुछ काल्पनिक तो कुछ ऐतिहासिक मानते हैं । १५२ वैष्णवों की वार्ता में रूपमंजरी अकबर की रानियों में से एक बताई गई है जोकि अकबर से प्रेम न करके नन्ददास से मिलने आकाश में नित्य जाया करती थी । इस तरह प्रस्तुत रचना में इतिहास एवं कल्पना का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है । वास्तविक रूपमंजरी की कथावस्तु से यह बिल्कुल भिन्न है केवल दोनों युवों का नाम-साम्य मात्र है । कवि स्वप्न एवं विष दर्शन द्वारा प्रेम का उदय कराकर मातिलिनि द्वारा दोनों का उपवन में मिलन और गुरु द्वारा विवाह सम्पन्न^{पर} कथा पूर्ण किया है । इसमें कवि का उद्देश्य केवल गुरु की महिमा का प्रदर्शन मात्र है । मातिलिनि द्वारा नायक-नायिका को उपवन में मिलाने का अभिप्राय हमारे प्रेमात्मक-साहित्य का बहुत प्रचलित अभिप्राय रहा है । क्या कवि की कोरी कल्पित है जो "कहा कलावती" की भाँति दो अभिप्रायों पर आधारित है ।

१- गाँठि बहूनि की से के जोरी । कभू न दूटै काहुँ तोरी ॥

भैरु गाँठि पुनि गुर की दर्द । झुलत न नैकुमहापुरि गई ॥

बैसी कठुप की गति जोली । भैरु न सुभयो सखी सहेली ॥१८॥

कथा रतनमंजरी

कथावस्तु:-

प्रेम के प्रारम्भ के सात पन्ने उपलब्ध नहीं हैं । प्राप्त अंश में कवानक का प्रारम्भ नायिका रतनमंजरी के नव-शिक्ष वर्णन से मिलता है । रतनमंजरी तथा नायक मधुसूदन में स्वप्न-दर्शन द्वारा प्रेम का उदय होने पर दोनों स्वप्न में देखे हुए रूप का चित्र बनवाकर निरन्तर उसी को देखते हुए विरह में व्याकुल रहने लगे।

एकदिन कुंवर मधुसूदन शिकार के लिए बाहर गया । वहाँ सिंह को मारकर उसने एक पक्षी को फँड़ना चाहा कि पक्षी (गुरु) उसे लेकर उड़ गया और उसे ले जाकर ऐसे स्थान पर छोड़ा जहाँ पर अपने स्वप्न में देखी हुई सभी चीजों को पा गया ।

तालाब में एक दिन अपनी कुछ सखियों के साथ स्नान करती हुई रतनमंजरी को बुढ़ा की ओट से देखकर कुंवर मूर्छित हो गया । राजकुमारी ने कुंवर के पास जाकर उसका परिवर्ण किया । कुंवर ने अपने को बंदपुरी के राजा जयचंद का पुत्र मधुसूदन बताता हुआ अपनी सारी विरह तथा स्वप्न की कथा कह सुनाया । इससे रतनमंजरी पहले तो बहुत क्रोधित हुई, किन्तु बाद में अपना चित्र देखकर अत्यन्त हर्षित हुई । सखियों ने वह समाचार कुमारी के माता-पिता तक पहुँचाया । राजा ने प्रसन्न होकर दोनों का विवाह सम्पन्न कर दिया । दम्पति सान्नेद विवाह विवाह का आनंद लेते रहे कि इसी बीच में एक दिन उपवन में कुंवर ने एक पक्षी फिर फँड़ना चाहा, किन्तु वह लेकर उसे पुनः उड़ गया । इससे कुमारी विरह में व्याकुल रहने लगी ।

पक्षी ने कुंवर को लेकर जंगल में एक योगी के पास छोड़ा । वहाँ उसे बनेक कष्ट मिलें । एक देव ने, जोकि रतनमंजरी का प्रेमी था, क्रोधित होकर कुंवर को एक गुफा में गिरवा दिया । वहाँ एक सिद्ध (गुरु) मिला जिसने उदयपुरी का मार्ग दुःसाध्य सबभर कर उसे सहायतार्थ दो बाण दिये । रात्रि में बाण की सहायता से देव, हाथी, सर्प, राक्षस आदि का संहार करता हुआ कुंवर राजा उदयभान के पहाँ पहुँचा । राजा ने उसे उदयपुरी पहुँचा दिया जहाँ वह रतनमंजरी तथा परिवार के अन्य लोगों के साथ स्वदेश आकर तथा अपने माता-पिता से मिलकर अत्यन्त सुखपूर्वक राज्य करता हुआ कालयापन करने लगा ।

विवरलेखन :-

जानकवि की यह कथा केवल "पक्षी द्वारा उड़ा ले जाने" के अभिप्राय पर आधारित है । "नायक को पक्षी द्वारा उड़ा ले जाना" लोक-कथाओं में प्रयुक्त काल्पनिक अभिप्राय है । "पंचतंत्र" तो मनु-पक्षियों की ऐसी कहानियों का अनाम-भण्डार ही है । "कथासरित्सागर" में भी अनेक ऐसी कहानियाँ मिलती हैं । अरबी तथा फ़ारसी कथा-साहित्य की अनेक कहानियों में भी यह अभिप्राय भरा पड़ा है । "अलफ़-लैला" की बहुत-सी कथाओं में पक्षी नायकों को उठाकर एक घर में एक खान से दूसरे खान पर पहुँचा देते हैं + जहाँ पहुँचना उनके सामर्थ्य के परे होता है । इससे स्पष्ट ही नायक अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है । सम्भवतः जानकवि ने अरबी फ़ारसी की कथाओं से यह अभिप्राय लेकर कल्पना के मिश्रण से इस कथा की रचना की है । कवि ने इसके प्रतिरिक्त "कथा-कवसावती", "कथा रत्नावली", "कथा तमीम अन्सारी" तथा "कथा बसुकिना विरही" में भी इस अभिप्राय का उपयोग किया है ।

- - -

१- विशेष विवरण के लिए देखिए: अध्याय -३ में "कथा-सम्बन्धी अभिप्राय"।

अध्याय - ३

कथा - विन्यासः

(क) कथानक-संगठन

(ख) प्रभिप्राय (Motifs)

(क) कथानक - संगठन

जानकवि सौमिक प्रेमाख्यानों के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके प्रेमाख्यानों का उद्देश्य लोक-रंजन है जिससे इन्होंने तत्कालीन प्रचलित प्रेमादीपन की परम्परा एवं सामग्री-का पुरा-पुरा उपयोग किया है। जहाँ तक इनके कथानक - संगठन का संबंध है समस्त प्रेमाख्यानक-काव्य हिन्दुओं के समान ठहरते हैं यद्यपि नबी, मुहम्मद, निर्बन, हजरत, बारबार आदि नामों की स्तुति, जहाँगीर-शाहजहाँ तथा औरंगजेब के राज्य-वैभव और उनके शाहवृत्त की प्रशंसा, तथा कुछ ग्रंथों के अंत की दृष्टि से अन्य ऊपरी प्रभाव भी लक्षित होते हैं।

दाम्पत्य और स्वच्छंदतापरक प्रेमाख्यानों में पुन विवोग में राजा ज्योतिष्णी, सिद्ध, ब्राह्मण या धार्मिक गुरु से सलाह लेते हैं। "कथा सुभटराइ" में सूरजमल के राजा सूरजमल को बार रातियाँ रहने पर भी एक सिद्ध द्वारा प्रत्येक रातियों को एक-एक दाहफल लाने के लिए देने पर उनमें एक रानी को पुन सुभटराइ उत्पन्न हुआ^१। "कथा पुहुपरिका" में श्रीनार कुन्व के राजा भूपाल को पुन न उत्पन्न होने पर बहुत दान - पुण्य करने के परचाह पुन पुन जातम उत्पन्न हुआ^२। "प्रवर्तितमनु" में जराव देश के जरावी

१- चौ० - १ ।

२- चौ०-१९ तथा २० ।

की ईश्वरी-मुक्त स्तुति तथा अनेक दान-पुण्य करने पर पुत्र मन्त्र उत्पन्न हुआ ।
 "कथा रतनावती" में अमृतपुरी के ऐश्वर्याशाली एवं समृद्ध राजा जगतराज निम्नस्तान
 में विनित्त हो जनवास लेने जा ही रहे थे कि कुछ ज्योतिषियों ने जाकर तीसरे
 दिन संतानोत्पत्ति-सम्बन्धी भविष्य की सूचना देनेको कहा और तीसरे दिन
 ज्योतिषियों ने आशावन्त उतर देकर कहा कि उदयभान की पुत्री जगरानी से
 विवाह करने पर पुत्र उत्पन्न होगा । मंत्री जगजीवन को उदयभान के यहाँ अनेक
 रत्न-गदार्थ के साथ भेजा । राजा उदयभान ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपनी पुत्री
 जगरानी को मंत्री के साथ बिदा कर दिया । ज्योतिषियों के कथनानुसार
 यथासमय पुत्र महिमोहन उत्पन्न हुआ^१। इसी तरह "कथा कन्कावती"^२ में भरतनेर
 नगरी के राजा भरत तथा "कथा ज़रदसेरपतिसाह"^३ में राजा ज़रदसेर की
 पुत्र-विशोग हुआ है । ये सभी उत्पन्न पुत्र ही इन ग्रंथों के नायक हुए हैं ।

"ग्रंथ तैत्तिमनू", "कथामधुकरमातली", "कथाकतंदर" तथा "कथा
 वसुकिमाधिरही" जैसे कुछ ग्रंथों को छोड़कर शेष सभी ग्रंथों के नायक राजकुमार हैं
 और प्रेम के पथिक रूप में चित्रित हुए हैं । "कथा रतनावती" का नायक राज-
 कुंवर महिमोहन अमृतपुरी के राजा जगतराज, "कथा कन्कावती" का नायक
 परमरूप, भरतनेर नगरी के राजा भरत, "कथा सुभटराज" का सुभटराज सूरजनगर
 के राजा सूरजमत, "कथानलदमवती" का नल उज्जैन नगर के राजा नीरसेन, "कथा
 पुहुपवरिष्ठा" का पुहुपजीलम नीनगर के राजा भूपात, "कथा कलावती" का
 नायक पुरंदर, "कथा कलावती" का इन्दुवदन, "कथा कौतूहली" का सरबंगी
 आदि सभी राजाओं के पुत्र हैं ।

इन राजकुमारों के उत्पन्न होने के उत्प-काल में ही इनके शिक्षा-
 की राज्याधीन व्यवस्था होती है । कथा कलावती^४, कथा सुभटराज^५, कथा
 पुहुपवरिष्ठा^६, कथा रूपमंजरी^७, कथा छवितागर^८, कथा रतनावती^९ आदि ग्रंथों

१- चौ०-१० तथा ११ ।

२- चौ० - ७ ।

३- चौ० - १८ ।

४- चौ०- ६ ।

५- चौ० - ४ ।

६- चौ०-२४ ।

७- चौ० - ६ ।

८- चौ० - १ ।

९- चौ० १७ तथा १८ ।

में उसका स्पष्ट उल्लेख है । ग्रंथ सैयमजनुं, कथामधुरपातती तथा कथारूपमंजरी में "चटसार" में पढ़ने का प्रसंग है ।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कवि ने अपने अधिकांश ग्रंथों में कहानी के पूर्व प्रचलित रूप की चर्चा भी की है जिसका विस्तृत विवेचन अध्याय २ में किया जा चुका है ।

इस तरह कवि के इन प्रेमास्थानों के मूल कथानकों का गठन प्रेम के विशेषा संदर्भ में होने से सभी प्रेमास्थानों की कथा-वस्तु प्रेम की कीली पर घूमती है और सभी कथानक इसी केन्द्र-बिन्दु पर अपनी परिधि बनाते हैं । प्रेम के कारण ही इनमें गति तथा जीवन प्राया है ।

प्रेम का उदय तथा संकल्प:-

प्रेम एक मानवीय प्रवृत्ति है । इसका उद्भव इन नायकों में स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, साक्षात्-दर्शन या गुण-वर्णन से हुआ है । "कथाकनकावती" में राजकुंवर परमरूप एक दिन स्वप्न में एक अन्तिम सुन्दरी का दर्शन कर विरह में व्याकुल हो उठा । राजा कुंवर की व्याकुलता को देखकर उसके स्वप्न में देहे जैसे रूप का चित्र बनवाया । एक विप्र ने चित्र का परिचय सिंहपुरी के राजा जगपतिराय की अशुभनी कनकावती का बताया और सिंहपुरी जाकर कनकावती के समक्ष परमरूप का गुण-वर्णन करके उसके हृदय में राजकुंवर के प्रति अनुराग उत्पन्न कर दिया^१। "कथाकामलता" में हंसपुरी का राजा रसाल एक रात स्वप्न में एक सुन्दरी से मिलते पाया । राजा के वर्णित छवि के अनुसार प्रधान कुशवंत ने एक चित्र बनवाकर पथ में रखा दिया । एक पक्षिक के द्वारा चित्र को सुन्दरपुरी की शासिका कामलता का बताते पर मंत्री राजा रसाल का एक चित्र बनवाकर सुन्दरपुरी के मार्ग में रखवा दिया । और संयोग से इस चित्र को देखकर कामलता के हृदय में प्रेम उत्पन्न हुआ^२। "कथा रूपमंजरी" में भी शानसिंघ का रूपमंजरी के प्रति प्रेम स्वप्न-दर्शन से उदय हुआ है^३। "कथा रतनमंजरी" में मधु-सूदन तथा रतनमंजरी में प्रेम का उदय स्ने स्वप्न-दर्शन से होने पर दोनों एक

१- चौ० - १० । २- चौ० - ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ तथा १६ ।

३- चौ० - १३ ।

दूसरे का चित्र बनवाते हैं^१। 'कवान्तदम्बती' में उस तथा दम्बती में प्रेम का प्रादुर्भाव गुण-वर्णन, स्वप्न-दर्शन तथा चित्र-दर्शन से हुआ है^२। 'कवारतनावती' में राजकुंवर महिमोहन के हृदय में पिता द्वारा दी हुई मुद्रिका पर अंकित अप्सरा रतनावती के चित्र-दर्शन से प्रेम प्रादुर्भूत हुआ है^३। 'कथा कामरानी वा पीतमदास' में राजकुंवर पीतमदास को काबू देश में एक शिला पर अंकित राजा रावहरिदास की पुत्री कामरानी के चित्र-दर्शन से प्रेम उदित हुआ है और अपने चारों पित्तों की सहायता से उसे प्राप्त करता है^४। 'कथाकबलावती', में एक लोहा के द्वारा गुण-वर्णन पर रूपनगरी का राजकुंवर इन्दवदत्त तथा मदन नगरी की राजकुमारी कबलावती में प्रेम का आविर्भाव हुआ है और चित्रकारों द्वारा चित्र बनवाने पर इनके प्रेम की पुष्टि हुई है। 'कथाकलावती' में राजकुंवर पुरंदर के हृदय में एक पथिक द्वारा राजकुमारी कलावती के गुण-वर्णन से प्रेम उदित हुआ है। 'कथा कौतुहली'^५ में राजकुंवर सरबंगी को दो बनवारों द्वारा छविनेर देश की राजकुमारी कौतुहली, 'कथाछोता' में परिव्रज विद्या के राजा राम को छीता, 'कथामोहनी' में मोहन का मोहनी तथा 'कथा सतवती' में एक भूत की सतवती के गुण-वर्णन से प्रेम उत्पन्न हुआ है।

'प्रमत्तसिम्बन्ध' में सीता तथा मन्नु में प्रेम का उदय पाठशाळा चटसार में साक्षात्-दर्शन से हुआ है^६। इसके अतिरिक्त साक्षात्-दर्शन से प्रेम का प्रादुर्भाव सतपरक प्रेमाख्यानों में हुआ है। 'कथा कुलवती'^७ में भारीसे से भाँकती हुई कुलवती के प्रत्यक्ष दर्शन से राजा कुतुबुद्दीन को, 'कथा निरमल' में विधवा निरमल को द्वार पर खड़ी देखकर एक पातिशाह को 'कथा सीतवती' में भारीसे से भाँकती हुई सीतवती के प्रत्यक्ष दर्शन से एक जाबदार को^८,

१- चौ० - ७३ तथा ९१। २- चौ० - १८ ।

३- चौ० - १९ । ४- चौ० - १ तथा २ ।

५- चौ० - १९ । ६- चौ० - २ ।

७- कुलवती कौरूप तक, गई कुतब बुधि भूति ।

मैना नि कै जागी रही, मन्नु साँझ-सी फूल ।

८- चौ० - ७८ ।

‘कथा मधुकरमातली’ में मातली को बटमार में पड़ने जाते समय प्रत्यक्षा दर्शन से रतन सौदागर का पुत्र मधुकर को तथा ‘कथा बन्दूसेन राजा सीतनिधान ’^१ में एक सौदागर द्वारा लेकर लेवने जाते हुए तीन मित्रों के प्रत्यक्षा-दर्शन से राजाबन्दूसेन को^२ प्रेम का उदय हुआ है ।

स्वप्न-दर्शन से प्रेम-प्रादुर्भूत होने पर किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु चित्र-दर्शन, गुण-वर्णन या प्रत्यक्षा दर्शन का कारण कभी तो ब्राह्मण या पयिक तो कभी तोता बयवा अन्य पक्षी हुआ करते हैं । ‘कथा कन्कावती ’ में एक विप्र द्वारा चित्र का परिचय देने पर दोनों में प्रेम की वृद्धि हुई है । ‘कथाकलावती ’ में एक पयिक द्वारा गुण-वर्णन करने पर नायक पुरंदर में प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ है । ‘कथा कामलता ’ में भी चित्र के परिचय का माध्यम पयिक ही है^३ । ‘कथाकौतुहली ’ में नायक सरवंगी के गुण-वर्णन के माध्यम छविनेर देश के दो बंगारे हैं । ‘कथा कलतावती ’ में तोता नायक-नायिका के बीच एक दूसरे के गुण-वर्णन तथा चित्र-दर्शन का माध्यम है^४ ।

प्रेम का उदय होते ही कभी-कभी इन प्रंथों के नायक-नायिकाओं में मिलन की विकलता दीखती है । कविन ने अपने समस्त प्रंथों में इसका विस्तृत चित्रण किया है ।

दान्म्यत्व परक प्रेमास्वानों में ‘कथारूपमंजरी ’ में ज्ञान-सिंध^५ ‘कथाकन्कावती ’ में राजकुंवर परमरूप , ‘कथा रतनमंजरी ’ में राजकुंवर मधुसूदन^६ तथा ‘कथा कामलता ’ में राजा रसातल^७, स्वप्न में नायिकाओं का दर्शन कर विकल हैं । ‘कथारतनावती ’ में राजकुंवर महिमोहन मुद्रिका पर अंकित चित्र-दर्शन से विकल हैं^८ । ‘कथा कलतावती ’ में राजकुंवर इन्दवदन तथा राजकुमारी कलतावती तोता के द्वारा एक दूसरे का गुण-वर्णन कर विकल हैं^९ । ‘कथा नलदमवती ’ में नल तथा दमवती स्वप्न से जागते ही व्याकुल हैं^{१०} ।

दमवती-नली

१-बी० - ९ । २- बी०- ५ । ३- बी० १६ ।

४-बी०- ५९ तथा ६० । ५- बी०- २६ । ६-बी० -६६ ।

७- बी०- ७ । ८- बी०- २० । ९-बी०- ५५ ।

१०- बी०कित वक्रित रहनी नलराह । जीवी पीवी कपु न मुहाह ।

नामिल नीद ना दिख कल परै । दीया धिम सनेह मैं जरै ॥१९॥

बन दमवत सोवति जागी । हाई हाई करि रोवन लागी ॥

सपुन लखी ली प्रगट न पायी । रोवत ही सब छौंस गवायी ॥२०॥

दम्पती तो इतना विकल हो जाती है कि स्वप्न में देखे जैसे रूप का बिज्र देखे बिना जीवित नहीं रहना चाहती^१ । "कथा कौतुहली" में नायक सरसंगी साक्षात् दर्शन से मूर्छित है^२ । "कथा मोहनी" में मोहन गुण-बवण से व्याकुल है^३ । "कथा पुहुपहरिणा" में नायक विकल होते ही पिता से कहता है-

मेरी ज्यौ मेरे कर नाही । देखात नाहि पर्यौ ज्यौ छाही ॥
मेरे हाथ बात ना मन की । तारें कछु न सोयी तन्की ॥२५॥

सतपरक प्रेमास्थानों में 'कथा सीतबंती' में बाबदार तथा 'कथा कुलबंती' में राजा कुतुबुद्दीन भरोखे से नायिकाओं का साक्षात् दर्शन कर, "कथा निरमल" में एक पातिशाह विषया निरमल तथा "कथा छीता"^४ में राजाराम छीता के गुण-बवण से विकल है । इसी तरह कथा "मधुकरमालती" में मधुकर तथा पातली साक्षात्-दर्शन से मूर्छित है ।

स्वच्छन्दता-परक प्रेमास्थानों में प्रथम "सैतेमजनू" में सैला तथा मजनू दोनों एक दूसरे के विरह में इतने व्याकुल हैं कि मजनू बीरा होकर बन-बन रोता तथा विलपता फिरता है, वह पिता को नहीं पहचान पाता, तथा अपने मन को नहीं सम्झात पाता^५ । इधर सैला विरह की ज्वाला में विदग्ध हो, भूख, प्यास, निद्रा आदि सब भूल गई है^६ । अथात्म परक प्रेमास्थान "कथा बलुकिमा विरही" में नायक बलुकिमा की हज़रत की याद जाते ही विरह में विकल हो उठता है^७ ।

१- याकौ नाहिन देखी करि हौ । नितदेह तो पल में मरिही ॥२०॥

२- बहु छवि देखात ही मिरि गयी । मामहु प्रिगी भेट ना भयी ॥२८॥

३- नीद भूछा तिसना मिटी, चित बड़ी चित माहि ।

जौ ऊत जाँव न जीव डरि, तौऊ जीवत नाहि ॥

४- वी०- ६ ।

५- वी०- ८ तथा १५ से १७ तक ।

६- वी०- ७ ।

७- वी०- ११ ।

प्रेम के मूल रसम को जानने के पूर्व कुछ प्रयोगों में नायकों की विरह विकलता पर उनके अभिभावक उपचार कराते हुए दी गयी है, पर विरह-रोग में दवा क्या कर सकती है? "कथा रतनमंजरी" में राजा जयचन्द राजकुंवर मधुसूदन का उपचार तो कराते हैं, किन्तु हमारे कुछ लाभ नहीं होता^१। इसी प्रकार "कथा पुटुपवरिणा"^२, "कथा नलदमयंती"^३ तथा "कथा कौतूहली"^४ में नायकों के विरह विकलता पर उनके माता-पिता उपचार कराते हैं। कथा कौतूहली में स्थिति भिन्न है। स्वयं राजकुमारी कौतूहली बाग में माली-वेश में राजकुंवर सरबंगी को मूर्च्छित पाकर उपचार कराती है। "प्रथम लैल मजनू" तथा "कथा मधुकर मालती" में प्रेम प्रत्यक्षा हो जाने पर मजनू के पिता अरबी मजनू को लेकर मक्का^५ तथा मधुकर के पिता रतन मधुकर को लेकर विदेश^६ चले जाते हैं।

प्राप्ति के प्रयत्न तथा साधन-

प्रेम का पूर्ण प्रादुर्भाव हो जाने के परचात प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए कथानक के विकास का द्वितीय चरण तब प्रारम्भ होता है जब प्रेमी अपने प्रिय की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व छोड़कर विभिन्न प्रयत्न करते हुए दिखाई पड़ते हैं। विकास-क्रम में इन नायकों का प्रयत्न कभी विवाह के पूर्व, कभी विवाह के परचात, तो कभी इन दोनों अवस्थाओं में विभक्त किया गया है। "कथा कलावंती" में नायक पुरंदर कलावंती की प्राप्ति के लिए योगी-वेश में प्रिय छाला, कंधा, माता, मादि धारणकर, वीणा-वादन में व्यथा प्रकट करता हुआ घर से निकलता है^७। कथा रतनमंजरी में मधुसूदन का रतनमंजरी से पाणिग्रहण हो जाने के परचात पक्षी द्वारा उड़ा ले जाने पर वह एक योगी से दीक्षा लेकर योगी-वेश में कंधा, माता

१- बी०- ६८ २- बी० ४६ ।

३- बी०- २० तथा २१ । ४- बी०- २० ।

५- बी०- २० ६- बी० - ४ ।

७- बी०- १९ ।

छाता, मुंडा, डंडा, बीणा, बप्पर, मेकली, गुंग, भस्म आदि धारण कर वन में भटकता है^१। "कथा छीता" में राधा राम तथा छीता की तीन वर्ष की सगाई निरिक्त होने के बीच, जलाहरी नारा छलपूर्वक छीता की दिल्ली ले जाने पर, राजाराम योगी-वेश में बीणा-वादन करता हुआ दिल्ली पहुंचता है^२। "कथा रूपमंजरी" में ज्ञानसिंह तथा रूपमंजरी गुरु के कृपा से योगी-योगिनि-वेश में छिपकर अपने देश हरिनापुर जाकर सानंद माना-पिता से मिलते हैं^३।

योगी-वेश के अतिरिक्त नायक अन्य वेश धारण करते हुए भी दिवारा देते हैं। "कथा कौतूहली" में नायक सरबंगी माली-वेश में, "गंवसैलमजनुं" में मजनुं तथा बनकर भिवारी-वेश में, "कथा नलदमयंती" में दुबारा स्वयंवर में नल वेश बदलकर, ६ तथा "कथासंतवती" में एक झूठे सौदागर का वेश ग्रहण कर प्रयत्नशील है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रबंधों में यथा कथा कबलावती, कथा पुहुपवरिष्ठा कथामधुकर मालती, कथा रतनावती, कथा सुभटराई, कथा छविनागर, कथा मोहनी आदि में नायक सहजवेश में विभिन्न प्रयत्न करते हुए विविरित हुए हैं।

नायक के प्रेमास्पद के प्रयत्न में मित्र-गण, गुरु, सिद्ध, सन्यासी, बूढ़ या महापुरुष, ब्राह्मण, पक्षि, मात्स्य, कुटुम्बिका, वैरिया, सत्तिया तथा जाधि-देवी-शक्तियों में अप्सराएं या परिया, विभिन्न पक्षी एवं तोता, जंगली जानवर तथा पवन आदि सहायक साधन रूप में प्रयुक्त हुए हैं जो विभिन्न घटना-बढ़ों के मध्य कथानक के विकास तथा कुतूहल की सृष्टि में सहायक हुए हैं।

"कथा रतनावती" में मंत्री-पुत्र उत्तम, "कथा रूपमंजरी" में मंत्री-पुत्र ज्ञानसिंह, "कथा सुभटराई" में मंत्री के चार पुत्र तथा "कथा पुहुपवरिष्ठा" में मित्र महानंद नायक के प्रयत्नों में सहायक हैं। "कथा कामरानी वा पीतमदास" में राजकुंवर पीतम-दास कैसाव सौदागर, सुरंगिया, बड़ई-पुत्र तथा काछी-पुत्र

१- बी०- १८३ तथा १८४ ।

२- बी०-३१ तथा ३२ ।

३- बी०- ४१ तथा ४३ ।

४- बी०- २५, ३४, ४० तथा ४१ ।

५- बी०- १० ।

६- बी० - १२० ।

७- बी० - ८, ९ ।

८- बी०- ६, ७ ।

९- बी० - ५६, ५७ ।

कामरानी के प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं । इन पाँचों मित्रों के कथा का महत्व ही इस ग्रंथ का मूल है^१।

"कथा रूपमंजरी" में तपस्वी गुरु नायक-नायिका का पाणिग्रहण गठबंधन से कर मंत्र से रखा करते हुए योगी-योगिनी केस में हरितनागुर पहुँचा देता है^२। "कथा मधुकर्ममालती" में गुरु ही मधुकर को गान्धारी के पास उसे यढ़ाने भेजता है^३। "कथा कनकावती" में गुरु ही नायक इन्दुवदन् को "मुरी" देकर पत्नी से रखा करते हुए कनकावती से मिलाता है^४।

"कथा रत्नमंजरी" में एक "सिद्ध" राजकुंवर मधुसूदन को दो बाण देकर देव, दानव, हाथी, सर्प आदि से रखा करता है^५। "कथा रत्ननावती" में राजकुंवर महिमोहन को सहायता एक "पुरुष" करता है^६। "कथा तमीम जन्मदारी" में बाग से एक "बुद्धपुरुष" नायक को उसके देश पहुँचाने में सहायक होता है । "कथा कामरानी वा पीतमदास" में एक "पुरुष" इन चारों मित्रों को कामरानी तक पहुँचाने का सारा भेद बताता है^७। "कथा कनकावती" में परमरूप के बुद्ध में नायक होने पर एक "सन्ध्यासी" सहायता करता है^८।

"कथा छीता" में एक विप्र राजाराम को दर्शनार्थ आई हुई छीता का दर्शन कराता है^९। "कथा नन्दमर्त्यती" में विप्र सुदेव भीमसेन के कहने पर दमर्त्यती का पता लगाता है । "कथा कनकावती" में एक ब्राह्मण दोनों के बीच संदेश-एवं पत्र-वाहन का कार्य करता है^{१०}। इसी तरह "ग्रंथसौमित्र" में बटाऊँ, बुद्ध-सवार, पथिक, वैद तथा मज्जू का मामा सलीम सैला मज्जू के बीच विरह-भाव-युक्त संदेश और पत्र-वाहन का कार्य करते हैं^{११}।

१- चौ०- १ ।

२- चौ०- ३८, ४१ तथा ४२ ।

३- चौ०- १ ।

४- चौ०- १२८ ।

५- चौ० २११ ।

६- चौ० -६९ ।

७- चौ०- १ - फिरत फिरत पुरुषका इक पायी ।तिन बहु सगरौ भेद बतायौ॥

८- चौ०- २६ ।

९- चौ०- ८ ।

१०- चौ० - २०, २३, २४, २६, २७ तथा ३८ ।

११- चौ०- ४६ तथा ४७ (बटाऊँ) ।

चौ०-४३, ४४ तथा ४५ तथा दोहा-१-२३, १-२७ तक (बुद्धसवार)

चौ०- ४६ (मामासलीम) ।

चौ०- ४७ (वैद) ।

"कथा रतनावती" में राजकुंवर पहिमोहन अप्सरा रतनावती से शादी करता है और पद्मिनी अप्सरा उसे मिलने का पुरा रानना बताती है^१। "कथा तमीर्मवसारी" में एक शाहपरी दुवा सिवाकर तमीम को रक्षा भूत, प्रेत आदि से करती है^२। "कथा बलुकिवाविरही" में अप्सरा ही फिरिस्तों के पाग जाने का रास्ता बताती है^३। "कथा पुहुपरिशा" में निरमलदे तथा परमलदे दोनों बहनें झुकेसी से मिलने में पुरस्कारण की सहायता करती हैं। "कथा मधुकरमावती" में नाव फट जाने पर एक अप्सरा मावती को किनारे पहुंचाने में मदद करती है।

"कथा रतनावती" के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ "कथा रतनमंजरी", "कथा - कवलावती" तथा "कथामलदमवती" में देवता नायकों को कष्ट देते धिक्कित किए गये हैं जबकि "कथा रतनावती" में एक देव नायक को रक्षा करता है^४।

सतपरक प्रेमाख्यानों में "कथा सीतवती" में सुनारिन तथा रंगरेखिन दो दूतियां, "कथाकुतवती" में नाडनि, चुरिवाडनि, अप्पोतिणिन, चितेरिन तथा डौमनी पांच दूतियां तथा २० पाडयां, "कथा सतवती" में पानवारिन, कल-वारिन, मातिन तथा योगिन चार कुटुम्बियां तथा "कथा निरमलदे" में एक पाड नायिकाओं का सम्म रङ्गाने के लिए अनेक प्रयत्न करते दी जाती हैं। किन्तु अंत में सभी असफल रहती हैं।

"कथा कीतुहती" में एक दाई राजकुमारी कीतुहती को सरबंगी के बाग में बेश बदलकर रहने का गुप्त-संदेश देती है^५। "कथा किंङ्कलां देवलदे" में किंङ्कलां की चार बैरियां तथा देवलदे की चार सखियां दोनों के बीच संदेशवाहन का कार्य करती हैं^६। "कथा मलदमवती" में केसनी सेविका दुबारा रत्नमंजरी में दमवती के मल-के गुप्त-वेश का संदेश देती है^७। "कथा रतनमंजरी" में सखियां ही रतनमंजरी के उदित-प्रेम का संदेश उसके माता-पिता को देती हैं^८।

१- चौ०-८२: कह्यो पद्मनी-सुनि सुत राइ । हौं तुहि देहों पंथ बताइ ॥

कहिहौं अपनी [†]जाकी बात । बहुदि मिलन की [†]सिखाऊं बात ॥

२- चौ०- ६७ ।

३- चौ०- ८० ।

४- चौ०- १३२ ।

५- चौ०-६५: दाई कीतुहल में जाई ।

भेद भ्रम की बात जनाई ॥

६- चौ०- २५ ।

७- चौ०- १२७ ।

८- चौ० - १४२ ।

"कथा रूममंजरी" ^१ में मातलिन द्रव्य-प्रलोभन से उपवन में नायक को नायिका से मिलाने और "कथा कामरानी वा पीरमदास" ^२ में मातलिन ही द्रव्य-प्रलोभन से कामरानी के पास बिज से जाने में सहायता करती है। "कथा कौतुहली" ^३ में माती-मातलिन नायक सरबंगी को पुत्रवत् मानकर नायिका कौतुहली से मिलाने में उसकी पूरी मदद करते हैं ^४।

"कथा त्रिवेदीवन्दे", "प्रवर्तितमन" ^५ तथा "कथानन्दमंजरी" ^६ में नायक-नायिकाओं के बीच पक्षी संदेश-वाहन का कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त अनेक पक्षी तथा रंगली जानवर भी कथानक के विकास में नायकों की मदद करते हुए दिखाई देते हैं। "कथा रत्नावती" में पक्षी राजकुंवर महिमोहन को उड़ा कर आकाश से जाता है, जहाँ पद्मिनी बप्सरा उसे सिंहलदीप ले जाती है और रत्नावती के प्राप्ति का साधन बताती है ^७। "कथा रतनमंजरी" में पक्षी दोबार कुंवर मधुसूदन को उड़ाता है। पहली-बार उड़ा ले जाकर ऐसे उपवन में छोड़ता है जहाँ स्वप्न में देखी हुई ^{सभी} चीजों का स्वर्लोकन करता है और द्वितीय पर तिसी हुई रतनमंजरी को प्राप्त करने की सूचना पाता है ^८। दूसरी बार पुनः वह पूर्व स्थान पर लाकर छोड़ देता है जिससे दोनों में वियोग होता है ^९। "कथा तमीमंजरी" में प्रेत उड़ाकर मदीना, गुजुरमुर्ग पक्षी उड़ाकर कौहनूर तथा बादल उड़ाकर उसके देश को वापस लाते हैं ^{१०}। "कथा बलू-किवाविरही" में स्वाज्ञास्त्र के कहने पर एक पक्षी पहर में ही बलूकिया को "बैकुण्ठ" से उड़ाकर उसके घर पहुँचा देता है ^{११}। "कथा नन्दमंजरी" में नायक-नायिका के बीच पक्षी पत्र एवं संदेश-वाहन का कार्य करता है ^{१२}। "कथा-कवलावती" में पक्षी तथा पक्षी दोनों कुंवर को उड़ाते हैं। तोता कवलावती को

१- चौ०-२८ ।

२- चौ० - ७ ।

३- चौ० - २२ से २४ तक ।

४- चौ० १२ से २२ तथा ४३ ।

५- चौ०-२२ तथा सबैवा-२६ ।

६- चौ० - ७० से ७२ तक ।

७- चौ०- १११ से १२० तक ।

८- चौ०-१६६ तथा १८० से १८२ तक ।

९- चौ०-६८ से ७० तक (प्रेत)। चौ०-८० से ८१ (गुजुरमुर्ग)। चौ०-१४८ तथा १४९

(बादल) ।

१०- चौ० - १२३ ।

११- चौ०-४०-४२ तथा ४६ ।

को बँडता हुआ दोनों के बीच पत्र एवं सदेश-वाहन का कार्य करता है^१। "कथा-भीमवती" में तोता संस्कृत पढ़कर शीमवती की बुराई करता है ।

जन में विभिन्न जंगली जानवर नायकों की रक्षा करते विवशित किए गये हैं । "कथानन्दमयती" में सर्प देव रूप में जन की तर तरह से सहायता करता है उसके शोक में दुःखी होता है, उसे केवली-वस्त्र पहनाता है तथा राजा नन्दकर जयोत्था के राजा श्रितपर्ण के यहाँ भेजता है^२। "कथा बलुकिवाग्विरही" में सर्प जादि हज़रत के नाम पर सहायुभूति प्रकट करते हैं^३। "प्रणयैतै मजनुं" में पशु जन में भटकते हुए मजनुं की सेवा करते हैं । दुःख में दुःखी होते हैं और मजनुं द्वारा कष्ट पर शरीर त्यागने पर रोते हैं^४।

विघ्न-बाधाएँ:-

समस्त प्रेमाख्यानों के कथानक पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि प्रेम का भूता साध्य प्रिया के प्रेम का संकेत पाते ही उससे प्रभावित होकर प्राप्त हेतु विभिन्न साधनों में प्रवृत्त होता है । वह अपने पिता का घर छोड़कर कभी मंत्री-पुत्र तथा कभी जकेले योगी-वेत में गन्तव्य मार्ग पर चलता है । मार्ग में नाना प्रकार की कठिनाइयों (भयंकर, सूफानी समुद्र, उजाड़ जंगल, पर्वत, जौह आदि) को भेजता हुआ अग्रसर होता है । ऐसे ही प्रयत्नों के बीच देव, अप्सराएँ, परियाँ, राक्षस, भूत, प्रेत, ठा, तंज, मंत्र, जादू-टोना, सर्प, भयंकर पशु, तथा पक्षियों की योजना बारम्बार एवं कुतूहल की वृद्धि करते हैं । बाध्यात्मिक पक्ष में यही प्रेम-मार्ग की बाधाएँ हैं, किन्तु इन बाधाओं के रहते हुए भी उन्का मार्ग अवरुद्ध नहीं होता । नायक अपनी सिद्धि प्राप्ति-हेतु सर्वत्र त्याग कर भयंकरता, दुरहता तथा प्रलोभन पर ध्यान न देकर जागे बढ़ता है और अंत में सफलता प्राप्त कर ही स्वदेश प्रत्यावर्तन करता है ।

१- बी०- १६३ तथा १६५ ।

२- बी०- १५, १६, १८ तथा १९ ।

३- बी०- ३९ ।

४- बी०- ५२ तथा ६० ।

"कथा कलावती" में पुरन्दर, "कथा रतनर्मजरी" में मधुसूदन, "कथाछीता" में राजा राम योगी-वेश में, "कथा कौतुहली" में सरांगी माती रूप में तथा "कथा नन्दमर्षती" में नल गुप्त-वेश में प्रयत्नशील है । समुद्र में भंवर या तुफान जाने से नाव फट जाने से "कथा कल्लावती" में इन्द्रवदन् तथा कल्लावती^१, "कथा रतनावती" में महिमोहन तथा पित्र उत्तम^२, "कथा मधुकरमालती" में मधुकर तथा मानती^३ तथा "कथा पुहुपकरिष्णा" में सुरपति तथा महानन्द एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और बहुत दिनों तक कष्ट रहते तथा भटकते हैं । पक्षियों द्वारा उड़ाने पर भी नावकों को शारीरिक कष्ट होता है पक्षी लेवाकर प्रायः किसी वन या निर्जन स्थान पर छोड़ते हैं जहाँ वे जनेक तरह का कष्ट पाते हैं । "कथा क रतनावती" में कुंवर महिमोहन, "कथा रतनर्मजरी" में कुंवर मधुसूदन, "कल्लावती" में कुंवर पुरन्दर तथा "कथा बलुकि्या विरही" में बलुकि्या को देव या पक्षी उड़ाते हुए दीखते हैं ।

इन्के अतिरिक्त भूत, प्रेत, ऋग, देवी, देवता, राजास, वषा, सर्प तथा जंगली जानवर आदि द्वारा बन्ध कष्टों का विवरण कुछ प्रमुख ग्रंथों में इस तरह है-

"कथा कल्लावती" में दर्शय्यति को साथ सीते हुए "इन्द्रसभा" में ले जाना और पुनः वापस लाने पर देव-गणा कल्लावती से इन्द्रवदन् को मतग कर उसे जंगल में ले जाकर छोड़ देते हैं^४। जहाँ हाथी, सर्प, भूत, प्रेत, आदि से कुंवर कष्ट पाता है^५। इस कल्लावती के ऊपर एक देव मुग्ध होकर जनेक कष्ट देता है^६। नाव फट जाने के बाद दोनों के विलग होने पर राजकुंवर को परिया पर्वत पर ले जाकर उसे खोह में गिरा देती है^७।

१- चौ०-१५२: कणाटि नाव दस वाटन भई । ईद कहूँ कल्ला कहूँ भई ॥

सगरा संग बूझी मधि पानी । जीयत नवे राइ जी रांनी ॥

ये बिछोह मैसी बिधि दीनी । मरिबेहूँ ते जागर कीनी ॥

२- चौ०- १५, ३६ ।

४- चौ०-८६ ।

६- चौ०- १२९ ।

३- चौ० - १५ ।

५- चौ०-१०९, १११, ११५ तथा ११६ ।

७- चौ०- १६२ तथा १६५ ।

"कथा बलुकिवा बिरही" में ईश्वरी-मुह बलुकिवा की स्थिति में रास्ते में नामक बलुकिवा को लुट, सर्प, बीभी ब्राह्मण, पिपरमते, जहराडल पक्षी आदि सभी मिलाते हैं, किन्तु हजरत के नाम पर उतना कष्ट नहीं देते हैं। "कथा रतनमंजरी" में एक देव कुंवर मधुसूदन को छल करके वन में ले जाता है और रतनमंजरी की बलभ्यता प्रकट कर अनेक कष्टों के साथ उसे गिरधर में गिरा देता है^१, जहाँ एक सिद्ध के दिए हुए दो अग्निपाणों की सहायता से अन्य देव, हाथी, सर्प, राक्षस आदि का संहार करता हुआ वह उदयपुर के राजा के यहाँ पहुँचता है। "कथा नलदम्पती" में गुजा में सब कुछ तार जाने के बाद नल तथा दम्पती दोनों जंगल में अनेक कष्ट सहते फिरते हैं^२। एक दिन नल दम्पती को छोड़कर बिलग हो जाता है। जिससे एक ओर दम्पती अकेले सर्प, बटारु, बाघ, पशु, नदी, पर्वत, राक्षस आदि के बीच कष्ट भोगती हुई भटकती है तो दूसरी ओर नल वन में जङ्गल-सर्पों के बीच अठिरी रात में अनेक कष्ट सहता हुआ भटकता है।

"कथा रतनावती" में समुद्र में नाव फट जाने के बाद राजकुंवर मही-मोहन तथा मंत्री-पुत्र उत्तम दोनों एक दूसरे से बिलग हो जाते हैं और दोनों विपरीत स्थानों में भटकते हुए मीन, सूर्यवंशी कमल, कुकनसपक्षी, हर्षाम, अनेक वृक्ष, उज्जर गाँव आदि अनेक कुतूहलपूर्ण दृश्यों का अवलोकन करते हैं^३। कुंवर पर एक अग्नि मोहित होती है उसको तिरस्कृत करने पर वह कष्ट देती है। एक दिन वह लकड़ी लाते जंगल में जाता है जहाँ सर्प, दानव, देव, भूत, प्रेत, तुरंग आदि से अनेक कष्ट पाता है^४। एक देव उड़ा ले जाकर उसे गढ़ में रखता है।

"कथा मधुकरमालती" में मालती के रूप पर अनेक बादशाह, उनके प्रधान, मंत्री आदि मोहित होते हैं, किन्तु पातिव्रत-सत्य पर दृढ़ होने से तथा प्रणय-संबंध न स्वीकार करने से वह सब जगह कष्ट पाती है। तुर्किस्तान के छत्रपति के दामाद को तिरस्कृत करने पर बर्बरानि में संदूक में बंद करवा के पानी में

१- चौ०- २०४, २०७, २०९, तथा २१० । २- सूर्या-४१ तथा चौ०-६८, ७२ तथा ८१ ।

३- चौ०- ४५ से ५४, ९० तथा १०० से ११२, ११५ तथा ११६ ।

४- चौ०- १९, ४३ तथा ५८ से ६३ तक ।

फिक्कवा देता है^१। एक अन्य बादशाह के प्रणय न रतीकार करने पर भाकसी में फेकवा देता है, और उसे हाथी से कुलवाना चाहता है^२। इधर कुंवर मधुकर भी साय में गुप्त-वेश में टहलते हुए कष्ट सहता रहता है। एक मछली के पेट से पांव-रत्न पाने पर उसे देकर मधुमातली^३ को छुड़ाता है और दोनों एक साथ अपने देश नाव में लौट ही रहे थे कि नाव फटने से दोनों अलग होकर किनारे जा लगे। वहां भी एक पाकिशाह मातली पर मोहित होकर अपने बेरियों से उसे अनेक कष्ट दितवाता है और उसे रेत में फेकवा देता है। बाद में जगदाद के हार्दून रसीद ने दोनों की प्रेम-परीक्षा लेकर विवाह-संपन्न करवा दिया। इस तरह पातिव्रत-धर्म पर एकनिष्ठ होने से मातली को तथा साय ही मधुकर को अनेक कष्ट सहने पड़े हैं।

"प्रियतैलमयनू" में तैला तथा मयनू एक दूसरे के वियोग में अनेक कष्ट सहते हैं। मयनू जीरा बनकर जहरी रात में वन-वन भटकते हुए नदी, पर्वत, जंगली जानवर, वायु, पक्षि, आदि से जातें करता तथा गर्म जिला पर सोता है और अनेक शारीरिक कष्ट सहता है फिर भी उसे तैला नहीं मिल पाती। अंत में तैला के कड़ पर जाकर शरीर त्याग देता है। जिससे दोनों का मिलन सदा के लिए बन्धाव एवं शारवत हो जाता है।

"कया कन्कावती" में भरमनेर तथा रावासिंघ के मुँह से नायक-नायिका का पानी में बहना^४, "कया छीता" में अताउरीन का छत-पूर्वक छीता को दिल्ली से जाना, छीता का प्रेम का प्रेम न करना तथा रावाराम को योगी-वेश में जाना, "कया क़िज़ा देवतदे" में रानी कबलाकुली का क़िज़ा एवं देवतदे को अलग कर देना^५, "कया जरदसेर पतिसाह" में जरदसेर तथा बहमन का मुँह और गर्भावस्था में रानी को निकालना, आदि विभिन्न कठिनाइयों के प्रसंग हैं।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त शेष अन्य प्रयोगों में नायकों में कठिनाइयों का चित्रण उतना व्यापक नहीं है। नायक सहज ही बड़े प्रयत्न से नायिकाओं

१- चौ०- ९ तथा १० ।

२- चौ०- १३ ।

३- चौ०- ५६ तथा ५७ ।

४- चौ०- २६ ।

के पाने में सहायक हुए हैं । मत्परक प्रेमात्मानों में नायिकाओं का राज्य डिगाने के लिए सन-नायकों द्वारा उन्हें कष्ट प्रशस्ति दिया जाता है, किन्तु इससे उन्हें सफलता नहीं मिलती ।

प्रतागम-सुखान्त और करुणान्त:-

कथानकों के अंत की दृष्टि से समस्त प्रेमात्मानक लाव्य दोभागों में बंटते हैं- सुखान्त तथा करुणान्त । कवि के "कथा नतदमर्षती", "प्रियसैलैमार्ग" तथा "कथा कलावंत" को छोड़कर शेष सभी प्रिय सुखान्त हैं ।

साधारणतः इनके समस्त सुखान्त प्रीतियों में नायक या नायक-नायिका प्रेम-मार्ग की विघ्न-बाधाओं को पार करने के उपरान्त कभी दोनों के विवाह सम्पन्न होने में, तो कभी पाणिग्रहण के परवात् पुनः मिलन में ही कथानक का अंत नहीं हुआ है, बल्कि राजकुमारों के माता-पिता की स्मृति जाने पर धन-सम्पत्ति तथा राजकुमारी के साथ विदा होकर स्वदेश प्रत्यागमन और अपने माता-पिता से मिलकर राज्य सुख भोग करने में हुआ है ।

"कथा कलावंती", "कथा मोहन", "कथा छविसागर", "कथा कौतुहली", "कथा कामलता", "कथा रतनावती", आदि में नायकों के प्रयत्न से तथा "कथा कलावंती", "कथा छिता", "कथारूपमंजरी", "कथा कलमरानी का पीतमदास" तथा "कथामधुरमातली" में नायक-नायिका के प्रयत्नों से विवाह-सम्पन्न हुआ है । "कथा पुष्पवर्णिता" में सुरपति तथा सुकेशी का विवाह-पुरुषोत्तम की परीक्षारी भावना से सम्पन्न हुआ है । इन प्रीतियों में कथानकों का अंत पाणिग्रहण के बाद हुआ है । "कथा कलावंती" में इन्दु-वदनु तथा कलावंती और "कथा रतनमंजरी" में मधुसूदन तथा रतनमंजरी के विवाह-सम्पन्न होने के बाद इनका भटकते हुए बहुत दिनों तक अनेक कष्ट सहन कर पुनर्मिलन में कथा का अंत हुआ है । इन दोनों ही सुखान्त स्थितियों में उपर्युक्त सभी प्रीतियों के नायक अपने देश वापस जाकर माता-पिता से मिलकर राज्य-सुख भोग करते हैं ।

मत्परक प्रेमात्मानों में कथानकों का अंत नायिकाओं के पातिव्रत-सत्य की रक्षा तथा नायकों के पुनर्मिलन से हुआ है । अध्यात्मपरक प्रेमात्मान

"कथा बतुकिमा विरही" में इसराइल जाति के विरही बतुकिमा के दीवरी-मुख तादात्म्यता के बाद पुनः घर लौटने में कथा का अंत हुआ है ।

करणान्त काव्य दो तरह के हैं-

- (१) वे काव्य जो स्पष्ट रूप से करणान्त हैं ।
- (२) वे काव्य जो वास्तव में तो हैं सुवान्त, पर करणान्त जैसे दिखाई पड़ते हैं ।

पहले वर्ग के अन्तर्गत "प्रियतैमवतु" तथा "कथा कतंदर" है । "प्रियतैमवतु" में लैला तथा मजनू को उज्जैननाम की मृत्यु के बाद भी मिलाया नहीं गया है, बल्कि लैला के सती होने के बाद मजनू जाकर कब्र पर अपनी शरीर त्यागता है । जिससे दोनों का एकनिष्ठ निर्मल प्रेम संसार में अमर हो जाता है^१। "कथा कतंदर" में मसीह जाति का सेवक कतंदर पातिहाह के परानाप पर भी अंत में चारों बेरियों से मिल नहीं पाता, और कथान्त दुखान्त रह जाता है ।

नायक

दूसरे वर्ग में "कथा नसदमवंती" में नायिका के पाणिग्रहण के बाद तीन वर्ष तक भटकते हुए अनेक कष्ट सहने के बाद पुनः उन्का मिलन हुआ है । उन्केन जाकर पुनः जुवा खेलने और नल द्वारा सारा राज्य पाकर सानंद रहने में कथान्त का अंत नहीं हुआ, बल्कि कुछ अवधि बीतने पर नल रोगी होता है और उसकी मृत्यु पर दमवंती सती हो जाती है^२ और बड़ा लड़का उन्द्सेन राज्य सुख का भोगता होता है । इसमें जहाँ नायक घर जाकर पुनः जुवा खेलकर राज्य पाता है, एक तरह से यही पर कथा समाप्त हो जाती है, पर कवि कथा की "मुगावती" तथा "पदमावत" की तरह जागे भी ले जाता है जिससे इसके कथान्त-संगठन में अन्य प्रयोगों की अपेक्षा विविधता आ गई है ।

इन समस्त सुवान्त तथा करणान्त कथान्तों में समय के क्रम से कहानी कही गई है । "कथा नसदमवंती" तथा "प्रियतैमवतु" में नायक-नायिका के जन्म से कथान्त का आरम्भ किया गया और उनकी मृत्यु में कहानी की

"कथा कसकिया किरही" में इसराइल जाति के किरही कसकिया के ईश्वरी-मुख तादात्म्यता के बाद पुनः घर लौटने में कथा का अंत हुआ है ।

करुणान्त काव्य दो तरह के हैं-

- (१) वे काव्य जो स्पष्ट रूप से करुणान्त हैं ।
- (२) वे काव्य जो वास्तव में तो हैं सुवान्त, पर करुणान्त जैसे दिखाई पड़ते हैं ।

पहले वर्ग के अन्तर्गत "ग्रंथलैलैमजनुं" तथा "कथा कलंदर" है । "ग्रंथलैलै-मजनुं" में लैला तथा मजनुं की इज्जतताम की मृत्यु के बाद भी मिलाया नहीं गया है, जबकि लैला के सती होने के बाद मजनुं जाकर कब्र पर अपनी शरीर लागता है । जिससे दोनों का एकनिष्ठ निर्मल प्रेम संसार में बरकरार होता है^१। "कथा कलंदर" में मसीह जाति का सेवक कलंदर पातिशाह के परवानाम पर भी अंत में चारों बेरियों से मिल नहीं पाता, और कथानक दुखान्त रह जाता है ।

नायक

दूसरे वर्ग में "कथा नलदमवती" में नायिका के पाणिग्रहण के बाद तीन वर्ष तक भटकते हुए अनेक कष्ट सहने के बाद पुनः उनका मिलन हुआ है । उज्जैन जाकर पुनः जुवा लेने और नल द्वारा सारा राज्य पाकर सान्ने रहने में कथानक का अंत नहीं हुआ, जबकि कुछ अवधि जीतने पर नल रोगी होता है और उसकी मृत्यु पर दमवती सती हो जाती है^२ और बड़ा लड़का उज्जैन राज्य सुख का भोगता होता है । इसमें जहाँ नायक घर जाकर पुनः जुवा लेकर राज्य पाता है, एक तरह से वही पर कथा समाप्त हो जाती है, पर कवि कथा की "मुगावती" तथा "पद्मावत" की तरह आगे भी ले जाता है जिससे इसके कथानक-संगठन में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा विशिष्टता पा गई है ।

इन सम्पन्न सुवान्त तथा करुणान्त कथानकों में समय के क्रम से कहानी कही गई है । "कथा नलदमवती" तथा "ग्रंथलैलैमजनुं" में नायक-नायिका के जन्म से कथानक का आरम्भ किया गया और उनकी मृत्यु में कहानी की

परिसमाप्ति हुई है। समस्त सुखान्त रचनाओं की परिणति वैवाहिक संबंध एवं मिलन के बाद नायकों के स्वदेश लौटने में की गई है। अतएव ये प्रेमाख्यान भारतीय संस्कृति के सच्चे-रूप का उद्घाटन करते दीख पड़ते हैं। उनकी कृमिक परम्परा का अध्ययन भारतीय समाज के सांस्कृतिक विकास में हमें पूरी सहायता प्रदान कर सकता है।

घटना-क्रम तथा पात्र:-

यद्यपि जानकवि के प्रेमाख्यानों में विषय के वस्तुतः घटनाओं में सामान्य अन्तर होना स्वाभाविक है, लेकिन कवि के समस्त प्रेमाख्यानों के कथानकों की घटनाओं का स्वरूप से उस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है - नायक वा नायिका के माता-पिता का परिवार, पुत्र-विवाह, अन्य विवाह, धार्मिक-अनुष्ठान, जय-तप, युवा-पाठ वा बरदानादि विभिन्न उपकार, संतानोत्पत्ति, भविष्यवाणी, राज्याभिषेक शिखा, यवा समय प्रेम का उदय, नायकों की विकसता तथा वैधोपचार, प्राप्ति के लिए प्रयत्न, प्रयत्न में सहायक मंत्री-पुत्र वा नायक के अन्य मित्र, विप्र, पण्डित, गुरु, सन्यासी, महापुरुष वा बृहपुरुष, परिवार तथा अप्सराएँ, स्नातृकुल, दानव, देव, कुटुम्बिकाँ, जंगली जानवर, विभिन्न पक्षी तथा तोते, पवन, नायिका का परिवार, प्रेमघटक रूप में बैरियाँ, सत्तियाँ, नव-शिव वर्णन, नायिका की उत्सुकता, नायक के प्रयत्न की तीव्रता, विरोध वा विघ्न, नायक का विजय, पाणि-ग्रहण वा पुनःमिलन, नायक का स्वदेश प्रत्यागमन, सुखमय जीवन आदि के साथ कुछ कथाओं में स्वदेश गमन के पश्चात् नायक का निधन तथा नायिका का स्ती होना भी मिलता है।

हम सम्पूर्ण घटनाओं की संयोजना के तारतम्य को "कार्यान्वय" कहते हैं। इसके अन्तर्गत कथा के तीन भाग आदि, मध्य तथा अंत किए जा सकते हैं। १- नायक का नायिका के प्रति प्रेम उदय होने तथा गृह त्याग तक, कथा का आदि। २- मार्ग में कष्ट एवं नाचाप पार करके अंत में प्रियतमा की प्राप्ति तक, कथा का मध्य। ३- देश पुनरागमन, कथा का अंत है।

कवि ने अपने कथानकों में दृढ़िगत, ऐतिहासिक वा पौराणिक और कल्पित तीनों प्रकार की घटनाओं का उपयोग किया है। दृढ़िगत घटनाएँ लोक-

का सन्निवेश कवि को अभीष्ट होता है। भाव के लिए परिस्थिति की अनु-
रूपता आवश्यक है। कवि में ये भावात्मक स्थल प्रायः कथा प्रवाह के मध्य
दिखाई देते हैं। यथा- पुत्र-विशोग, नायक के प्रस्थान पर पिता तथा माता
का शोक, नायक के प्रति मानवीय तथा अमानवीय पात्रों की सहाय्य, प्रेम
मार्ग की कुरूपता, मातृ-गृह में कुमारियों की खल-झुंझ, नायक-नायिका
का संयोग तथा विशोग, विशोग-संदेश, पुनः मिलन, दुष्टियों या कुटुम्बों से
सतीत्य की रक्षा, प्रतिद्वन्द्वी-मर्दन, स्वदेश पुनरागमन, सती होने के दुःख
आदि ऐसे ही स्थल हैं। ऐसे स्थलों पर कवि की लेखनी अधिक भावुक एवं
सहाय्य पूर्ण हो गई है। ये स्थल लगभग सभी कथाओं में मिलते हैं।

मध्ययुग में प्रायः लेखकों का ध्यान घटनाओं की व्यंजना एवं स्थिति पर
बहुत कम रही है। लेखक उस बात का कदापि परवाह नहीं करता था कि कौन-
सी घटना को किस प्रकार समझने से कैसा प्रभाव उत्पन्न होगा और किस
घटना को कहाँ रखने से कथानक सबसे अधिक प्रभावपूर्ण हो सकता है। वह
तो "माँनी - दादी" की कहानी की भाँति कथानक को बिखेरता चलता है।
इसीलिए आज के पाठकों के लिए यह लौकिक+ कथा -साहित्य एक प्रकार
से मनोरंजन बिहीन-सा लगता है।

प्रेमाख्याओं में पात्रों का विशेष महत्व है। विभिन्न समय तथा
विषय परिस्थितियों के मध्य पात्रों का उन्धान-पतन प्रदर्शित करने में कवियों
को जहाँ एक ओर कथा में संगति बैठाने का प्रयास करना पड़ता है वहीं दूसरी
ओर अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए भी प्रयास करना पड़ता है। इस दृष्टि से
कथानक मानवीय तथा अमानवीय दोनों प्रकार के पात्रों के सहारे कथानक
का विकास किया है। मानवीय पात्रों में प्रथम के नायक-नायिका तथा मंत्री-
पुत्र या अन्य मित्र, बुद्ध, ब्राह्मण, पण्डित, ज्योतिषी, सिद्ध या सन्नासी,
गुरु-माता, मातृमित्र, वैरियाँ, सखियाँ, कुटुम्बिकाँ आदि हैं। ये पात्र प्रायः
नायक या नायिकाओं की उनकी विप्लव परिस्थितियों में सहायता करते हुए
दिखाई पड़ते हैं।

"कथा रतनावली" में मंत्री-पुत्र उत्तम, "कथा-रूपमंजरी" में मंत्री-पुत्र
न्यायसिंह, "कथा सुभट्टराज" में मंत्री के चार पुत्र, "कथा कामरानी" या
पीतमदास" में चार मित्र तथा "कथा पुष्पवर्जिता" में मित्र महानन्द नायकों

की सहायता करते दीखते हैं । "कथा कक्कावती" तथा "कथा छीता" में ब्राह्मण, "कथा कलावती", "कथा कामला" तथा "प्रियलैलामनू" में पथिक, "कथा रतनावती", "कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा तमीम बंसारी" तथा "प्रियलैलामनू" में बुद्ध, "कथा कक्कावती", "कथा रूपमंजरी" तथा "कथा मधुकरमातली" में गुरु, "कथा रतनमंजरी" तथा "कथा कक्कावती" में सन्नाती, "कथा कौतूहली", "कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा रूपमंजरी" में माली वा मालिन, "कथा रतनमंजरी", "कथा कौतूहली" "कथा त्रिभुजा देवतदे" "कथा नलदमवती" में बैरियाँ, सखियाँ वा भाइयाँ तथा सतपरक प्रेमास्थानों में "कथा कुतवती", "कथा सतवती", "कथा सीतवती" और "कथा निरमल" में कुटुम्बियाँ वा दूतियाँ आदि नायक-नायिका के मध्य उनकी विभिन्न परिस्थितियों में प्रवृत्त करते विवक्षित किए गए हैं ।

मानवीय पात्रों में देवता, अप्सराएँ, परियाँ, भूत, प्रेत, ठग, राजास, यक्षा, विभिन्न जंगली जानवर तथा-हाथी, घोड़े, ऊँट, सर्प, सिंह आदि, पक्षियों में तोड़ा, ज्वराइल, शुतुरमुर्ग आदि—ये सभी विभिन्न परिस्थितियों में कभी नायक के विघ्न-बाधाओं में सहायता करते हुए तो कभी उसे कष्ट देते हुए विवक्षित किए गए हैं । इनकी उपस्थिति से नायक के विकास में बड़ी सहायता मिलती है । कभी ये एक दम मानवीय आवरण करते हुए दिखाई देते हैं । ऐसे पात्रों का समावेश केवल कथा की स्वाभाविक गति के हेतु ही हुआ है ।

"कथा कक्कावती" तथा "कथा रतनमंजरी" में देवता कष्ट देते हुए, "कथा रतनावती" में नायक को पुरस्कारान पर डूबा ले जाते हुए तथा "कथा नलदमवती" में दोनों बार स्वयंवर में छल करते हुए दिखाये गए हैं । "कथा पुण्यवरिष्ठा", "कथा रतनावती", "कथा बलूकिया विरही", "कथा मधुकर मातली", "कथा तमीम बंसारी" में अप्सराएँ तथा परियाँ नायक की सहायता प्रदान करती हैं । "कथा रतनावती", "कथा तमीम बंसारी" "कथा बलूकिया विरही" तथा "कथा कक्कावती" में जंगल में नायकों को भूत, प्रेत, ठग, अनेक कष्ट देते हैं । "कथा रतनमंजरी", "कथा रतनावती", "कथा सुभटराज" में नायकों को राजास कष्ट देते हैं, किन्तु वे सब का संहार करते

हुए जागे बढ़ते हैं। "कथा रतनावती", "कथा रतनमंजरी", "कथा बसुकिमा विरही", "कथानलदम्पती", "कथा कुभटराज", "कथा कवतावती", "ग्रंथ लेलीमजनुं" में सर्प, हाथी आदि जंगली जानवर कभी कष्ट देते तो कभी नायक की सहायता करते हैं। "कथा बसुकिमा विरही", "कथा तमीम बंसारी" "कथा रतनावती", तथा "कथा रतनमंजरी" में पक्षी नायक को बहुत दूर एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ा ले जाते हैं इससे नायकों को शारीरिक कष्ट तो होता है, किन्तु सैकड़ों वर्ष की यात्रा सत्र ही सम्पन्न हो जाती है और कथानक को नई परिस्थिति मिलती है। "कथा कवतावती" में तोता नायक-नायिका के बीच संदेश तथा पत्र-वाहन का कार्य करता है।

कवि ने ऐतिहासिक एवं काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्रों की अवतारणा की है। "कथा शिशुतां देवतदे", "कथा जरदसेर पतिसाह", "कथा बन्दसेन राजा सीतनिधान" तथा "कथा छीता" में कवि ने ऐतिहासिक पात्रों के साथ काल्पनिक पात्रों को प्रयुक्त किया है। "कथा छीता" में अलाउद्दीन का नाम ऐतिहासिकता का परिचायक है, किन्तु इन्का चरित्र ऐतिहासिक न होकर कवि कल्पित है। "कथा मुहुषवरिणा" में पुराणोत्तम तथा "कथा छीता" में अलाउद्दीन की परोपकारी भावना कवि का एक निश्चित प्रयोग है। कवि ने पात्रों का प्रयोग एवं नामकरण प्रायः ग्रंथों के विषय के अनुकूल ही करने की चेष्टा की है। इन्का विस्तृत विवेचन अध्याय -६ में, "चरित्र और स्वभाव-चित्रण" के अन्तर्गत किया गया है।

मुख्य-संवेदना:-

समस्त हिन्दी प्रेमालम्बानों की मुख्य-संवेदना सच्चा-प्रेम है। सम्पूर्ण काव्यों के कथानक इसी केन्द्र - बिन्दु पर अपनी परिधि बनाते हैं। प्रेम के कारण ही इन कथायों में गति का संवार होता है और जीवनी शक्ति जाती है। यदि इनमें के प्रेम को निकास दिया जाय तो कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। वे सारी कथा-वस्तुएं मानों इन दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओं की परीक्षा-सी लेती हुई जात होती हैं। कथानक के अंत का सार वही निकलता है कि नायक-नायिका दोनों एकनिष्ठ प्रेमी थे और मिलन या अंतिम क्षण तक परस्पर एक दूसरे के लिए तड़पते रहे।

"कथा मधुकरमातली" में मातली के रूप-सौन्दर्य पर बनेक व्यक्तियों द्वारा मोहित होने, तथा कष्ट और प्रलोभन देने पर भी मातली किसी से प्रेम नहीं करती । वह एक-निष्ठ भाव से मधुकर के प्रेम में जटल रहती है । अंत में बगदाद में हार्दून रशीद द्वारा परीक्षा लेने पर वह तारी उतरती है और दोनों का विवाह सम्पन्न होता है । इसी तरह "कथा छीता" में भी जलाउद्दीन राजा राम तथा छीता की परीक्षा लेकर दोनों का विवाह सम्पन्न करवाता है ।

"कथा सुभटराड" में राजकुंवर सुभटराड की उदीची-प्रतीची तथा बगची के राजाओं ने परीक्षा लेकर उसका विवाह किया है । उसमें जैसे नायक की परीक्षा ही ग्रंथ का मूल है । "कथा रतनमंजरी" ^१ तथा कबलावती" में विवाहोपरान्त तथा "कथा रतनावती" में विवाह के पूर्व नायक-नायिका की बनेक कष्ट पूर्ण परिस्थितियों में डालकर सच्चे-प्रेम की परीक्षा की गई है । "कथा नलदम्यंती" में स्वयंवर में देवताओं ने दोबार छल करके परीक्षा ली है । "कथा पुहुपवरिजा" में प्रेमपुरी की सुकेसी को उसकी माता दूमनिधि लोक लज्जा के पक्षी बना देती है फिर भी वह अपने प्रेम में दुहरहती है और अंत में पुरनछोतम की परीपकारी भावना से ही सुरपति से उसका विवाह सम्पन्न होता है ।

सतपरक प्रेमाख्यानों में नायिकाएं बनेक कष्टों और प्रलोभनों के बाद अपने पातिव्रत-सत्य पर दृढ़ रह कर प्रेम की परीक्षा में तारी उतरती है । "कथा चन्द्रसेन राजा शीलनिधान" में शीलनिधान के प्रेम की शीलता पर जटल रहने से राजा चन्द्रसेन अंत में तीनों चेरियों को निकाल कर पाषाणाप करता है ^२ । "कथा निरमल" में विधवा निरमल पातिव्रत के मोहित होने पर अपने पातिव्रत-सत्य के बचाव के लिए दोनों जहें तक निकाल कर दे देती हैं । "कथा-

१- दोहा- पैसु पंथ की जांनकहि, जरथ महा अति गूढ़ ।

सो कैसे कै समुझिहैं, भरी बिमुरा मूठ ॥

२- चौ०- राखे दौरि भरी जंकवारि । कह्यो न मैं तू समझी नारि ॥

जब तू ही पटरानी कीनी । सगरी तबी कीनिहूं लीनी ॥

भल भयी बुहि सीत सहाइ । जिन सब पकरि लगाई पाइ ॥

बी कुवात बी पीति लगावै । सो मेरी नाई पछितावै ॥ १६॥

सी तबती", "कथा सतबती" तथा "कथा कुतबती" में नायिकाएं कृपा: राजा कुतुबुद्दीन, बाजदार एवं एक धूर्त द्वारा भेजी हुई कुट्टिमियों के प्रलोभनों का मर्दन कर अपने सच्चे प्रेम का परिचय देती हैं ।

प्रेम के साथ विरह का अनिवार्य संबंध है । प्रेमी के हृदय में सदैव यह उत्कट लासला बनी रहती है कि वह प्रिय का संयोग प्राप्त करे । प्रिय से संयोग तब तक नहीं प्राप्त होता जब तक कि साधक विरह की जांच में तपकर निश्चय नहीं जाता तथा सांसारिक वासनाओं से मुक्ति नहीं पा जाता । सच्चे-प्रेम के लिए एकनिष्ठता, हृदय की पवित्रता, अहंकार का तोष, क्रोध, ईर्ष्या की समाप्ति आदि अनिवार्य हैं । "ग्रंथसैलमञ्जरी" में सैता तथा मजनू प्रेम मार्ग की अनेक कठिनाइयों को सहते हुए विरह में संतप्त होकर सच्चे-प्रेम का परिचय देते हैं^१ । जहाँ सैता इज्जतनाम के मरने के बाद सती होकर पातिव्रत-प्रेम की सत्त्वता का परिचय देती है वहीं मजनू उसके कब्र पर आत्मसात् होकर विरही-प्रेम की सच्ची दृढ़ता दिखाता है । सर्वमुक्त दोनों का प्रेम कितना एकनिष्ठ, सच्चा एवं उज्ज्वल है जो दोनों को अबाध रूप से एककुण्ठ में मिसता है ।

इस तरह इन प्रेमात्मानों के प्रेम-पंथ की विवेचना ही कथानक का मुख्य लक्ष्य है । नायिकायिक एवं प्रासंगिक दोनों प्रकार की कथा-वस्तुएं प्रेम की ही कीली पर घूमती हैं । प्रेम कभी निष्फल नहीं जाता । वह बड़ी से बड़ी नायकियों का समाना सफलता से कर सकता है । उसका हेतु कुछ भी हो, किंतु प्रेम सदा^{प्रेम} ही रहता है । यही इन प्रेमात्मानों की मुख्य-संवेदना है ।

एकरूपता और उसके कारण:-

समस्त प्रेमात्मानों के कथानकों के विधानों में एक प्रकार का विविध साम्य दीख पड़ता है । वही एक तरह से नामक-नायिका में प्रेम का प्रादुर्भाव,

१- दोहा:- पैसु पंथ बति कठिन है चल न सकत है कोइ ।

तापर जाय क्रियाल हूँ, सुगम भली तिहं होइ ॥

२- निर्वल दर्शन पैसु की, जामै सुभत पीय ।

नाह भेह तैं पाईये, कहत जान सुनिबीय ॥

वही विरह की विकलता, वही मिलन के विभिन्न प्रयास एवं दुरुहताएँ, वही कठिनाइयों में फँसी हुई नारी या नायक का उद्वार, वही जंगलों, पहाड़ों एवं टीलों की पुष्पभूमि, वही समुद्र की यात्रा तथा तुफान, वही युद्ध में शत्रु-कत्ता-प्रदर्शन, वही बटना-बड़ों में विभिन्न उपादानों का प्रयोग, वही दृढ़िगत भावात्मक-स्वलों का प्रसंग, वही कथानक की पूर्णता जाति सभी बातें लगभग सम्पन्न काव्यों के कथानकों में एक-सी पाई जाती हैं जोकि प्रेमाख्यान का एक विशिष्ट गुण है। परशुराम बहुवैदी का विचार है कि "विशुद्ध प्रेमाख्यान वे ही कहे जा सकते हैं जो यथा सम्भव अपने पूर्व रूपों में ही बने जा रहे हों या जिसके ऊपर किसी प्रकार के कृत्रिम सुधार की चेष्टा न की गई हो।"

इससे स्पष्ट है कि शुद्ध प्रेमाख्यानों में विभिन्न उपादानों की परम्परागत एक रूपता होनी स्वाभाविक है। इसका मूल कारण यह हो सकता है कि प्रेमाख्यान-साहित्य में केवल पुरुषों एवं स्त्रियों की प्रेम-कहानियों का ही समावेश किया गया है और उसमें भी यौन-सम्बन्ध की प्रधानता है। वात्सल्य एवं स्नेहभाव की उपेक्षा मिलती है। प्रेमी-प्रेमिका के प्रेमासक्ति का मूल कारण प्रायः रूप-सौन्दर्य, प्रत्यक्षदर्शन, विज-दर्शन या गुण-बखण्डना करता है। "इस प्रकार के प्रेम को वस्तुतः दाम्पत्य-भाव या मायुर्विक भाव की संज्ञा दी जाती है किन्तु अपनी व्यापकता के कारण के कारण वही पूर्ण प्रेमभाव का भी धोतक है।" प्रेमभाव की अभिव्यक्ति की पूर्ति ही इन कवियों का मुख्य लक्ष्य है जिसके विभिन्न कथाओं में एकरूपता जाना स्वाभाविक है। लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेमाख्यानों में यह रूप मिलता है। प्रेमाख्यानों में इस एक रूपता के स्वीकार करने की परम्परा का संबंध भारतीय साहित्य के अतिरिक्त अन्य साहित्यों में भी मिलता है।

नव-शिशु वर्णन और उसका उद्देश्य:-

कवि ने कभी नायकों के प्रेम-पथ का पथिक बनने के पूर्व तो कभी बाद में नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य को महत्व देने के लिए नवशिशु का वर्णन किया

1- परशुराम बहुवैदी- "भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा"-पृ० 2, 1944 ई०।

2. वही - पृ० 123।

है । वास्तव में, यह सब रूप-सौन्दर्य ही तो नायकों में विकसित होता है जो योगी बनकर निकलने के लिए विवश हो जाता है । प्रेम और रूप का अन्योन्यात्म्य संबंध है । संसार में जहाँ कहीं भी रूप है वहाँ प्रेम का आकर्षण है इसलिए प्रेमात्मान कवियों ने प्रेम का उदय दिखाने के लिए नायिकाओं के नल-शिशु का चित्रण किया है । इस नल-शिशु वर्णन के साथ सौन्दर्योपकरणों की चर्चा भी मिलती है । नायिकाओं के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों तथा- माँग, भ्रू, केश, अलक सीस, ललाट, भौंह, नासिका, कपोल, जखर, मुख, दाँत, रसता, ठोड़ी, श्रवण, ग्रीवा, भुज, अंगुली, कूब, पेट, नाभि, पीठ, कितंब, कटि, जाँघ, चरण आदि का अनेक उपमाओं द्वारा वर्णन किया है ।

"कथा कवलावती" में राजकुंवर इन्दुवदत्त तोता द्वारा मदनमंजरी की राजकुमारी कवलावती के अंग-प्रत्यंग का विस्तृत वर्णन सुन्दर मोहित हो जाता है और तोते के साथ एक चित्रकार भेजकर तुरन्त चित्र मंगवाता है^१। "प्रिय रतनमंजरी" में मधुसूदन अवधन में ही रतनमंजरी के नल-शिशु तथा सौन्दर्योपकरणों का विस्तृत वर्णन सुन्दर आकर्षित होता है और तेलने के बहाने दोनों राधा-कृष्ण की भाँति प्रथम मिलन में ही एक दूसरे का परिचय पाकर आतिथन करते हैं । विष्णुदेव पर विषय होता है^२। जिससे कथानक का विकास शुरू होता है । "कथा नलदमयंती" में दमयंती के नल-शिशु तथा नल के रूप-सौन्दर्य की चर्चा से दोनों एक दूसरे की ओर पूर्वानुराग से आकर्षित होते हैं और उनका प्रेम डमड़ पड़ता है^३ । "कथा रतनावती" में नल-शिशु का वर्णन महिमोहन में प्रेम के उदय कराने की स्थिति में नहीं किया गया है, बल्कि रास्ते में मिली हुई पद्मिनी द्वारा वर्णन कराके नायक में रतनावती के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता और तीव्रता की उत्पत्ति बढ़ाई गई है^४। इसी प्रकार "कथा सुभट्टराज" में जवाही, के हावा की पुत्री^५ शादी हो जाने के बाद नल-शिशु वर्णन हुआ है । "कथा कौतूहली" में दो राहियों द्वारा कौतूहली के नल-शिशु वर्णन, "कथा पुष्पवरिणा" में पद्मी द्वारा सुकेसी के नल-शिशु वर्णन,

१- चौ०- ५५ तथा ५६ ।

२- चौ० - ६२, ६३, ६४ तथा ६६ । ३- चौ०- १८ ।

४- चौ०- ८० ।

"कथा रूपमंजरी" में स्वप्न में रूपमंजरी के नव-शिख-दर्शन तथा "प्रवर्तितमयं", "कथाछाँटा", "कथा मधुकरमातली", "कथा कलानती", "कथा कनकवती" आदि में कवि द्वारा नायिकाओं के नव-शिख वर्णन से नायकों के हृदय में प्रेम का संसार तथा दुःखता की भावना प्रवर्त हुई है। "कथा मोहनी" तथा "कथा छवितागर" में नायक नव-शिख वर्णन सुनकर ही वे पहेलियों का उत्तर देने का दृढ़ संकल्प करते हैं।

समस्त नव-शिख वर्णन साहित्यिक दृष्टि है। जैसे-पिटे परम्परागत उपमानों के प्रयोग से कभी भी कोई नवीनता नहीं है। यह केवल नायकों के प्रेम उभारने में सहायक हुआ है। जो कि कवि का अभीष्ट लक्ष्य है।

विरह वर्णन की प्रमुखता और उसका महत्व:-

मधुसूदन-प्रेम-साधना की भाँति कवि के समस्त ग्रंथों में विरह की उतनी व्यापकता नहीं मिलती, फिर भी संयोग की अपेक्षा विरह के चित्रण अधिक व्यापक हैं। कवि को प्रेम-साधना की अभिव्यक्ति देनी है। प्रेम के साथ विरह का अनिवार्य संबंध है। प्रेमी के हृदय में प्रेम का उदय होते ही प्रिय के संयोग की उत्पत्ति बढ़ने लगती है। प्रिय से मिलने के लिए आवश्यक है कि प्रेमी संसार की समस्त बाधनाओं से मुक्ति पा जाय। वह प्रिय का संयोग तब तक नहीं प्राप्त कर सकता जब तक विरह की जाँच में तपकर हृदय की कलुषता नष्ट नहीं कर देता या निरुद्ध नहीं जाता और घर का बंधन छोड़ नहीं देता। विरह बढ़ाने से और बढ़ता है, व्यापक होता है और विस्तार पाता है। जिसके हृदय में विरह उत्पन्न हो जाता है, वह प्रिय के अतिरिक्त और किसी की चिन्ता नहीं करता। विरह की इसी व्यापकता के कारण संयोग की अपेक्षा विरह के विभिन्न प्रसंगों की विशेष उद्भावना कवि ने कभी नायक तब कभी नायक-नायिका दोनों में की है।

१- विरह बसै जाके मुखनैन । देखे पिय भाँजी प्रिय बैन ॥

विरह रोग उपवै वैहि कान । मीठ नाँव बिनु मुखनैन जान ॥ ५२॥

दो०-प्रेम बन्धो वैहि जान में, ताकी बानन चिन्त ।

जई जई नैन पसारिहैं, तह तह देखी भिंत ॥

विरह का विषय स्वतंत्र तथा प्रकृति के सहारे दोनों रूपों में किया है । वारहमासा के विषय में कभी प्रकृति उद्दीपन के रूप में तो कभी नायक या नायिका से संयुक्त होकर विरहिणी के रूप में दुःख में दुःखी दिखाई पड़ती है । "कथा पुहुपवरिणा", "कथा कलावंती", "कथा कौतुहली", "कथा रतनमंजरी" तथा "कथा कलावंती" में नायिकाओं के विरह में तथा "कथा कलावंती" में नायक इन्दुवदन् के विरह में प्रकृति का विषय उद्दीपन रूप में हुआ है । "कथा रतनमंजरी" में वारहमासे के साथ तीन मौसमों का और "कथा सुभट्टराज" में छः ऋतुओं के रूप में प्रकृति का विरह विषय भी उद्दीपन रूप में ही है । संयोग रूप में केवल "कथा रतनमंजरी" में वारहमासा का और "कथा रतनावती" में छः ऋतुओं का वर्णन हुआ है । इनके समस्त वारहमासे के वर्णन बसाह से शुरू होकर बैठ में समाप्त हुए हैं ।

स्वतंत्र रूप में विरह वर्णन प्रायः सभी ग्रंथों में मिलता है । जिनमें "ग्रंथ सैतमन्त्र", "कथा रतनमंजरी", "कथा कलावंती", "कथा कौतुहली देवतदे", "कथा कलावंती", "कथा पुहुपवरिणा", "कथा नन्दमंजरी", "कथाकलंदर", "कथा मधुरमासती" और "कथा बसुकिना विरही" प्रमुख हैं ।

कथा कलावंती में कवि स्पष्ट कहता है कि सुख की प्राप्ति के लिए साधक को दुःख सहना ही पड़ता है-

बड़े पुरातन में ईतथ्यो, जान तेहु कहि जान ।

सुख कावै दुख देखिनि, तो सुखु होइ नन्दान ॥

विरह-व्यथा में पूर्णरूपेण परिपक्व हो जाने के पश्चात् उसे संयोग सुख का लाभ होता है

विरह पय जो मरि मरि जीवे ।

जगित जकर महारस पीवे ॥

एक बार विरह उदय हो जाने पर फिर उसे शान्ति करने का कोई उपाय नहीं मिलता, बाहे उसकी औषधि धन्यन्तर ही क्यों न करें ।

विरह रोग उपन्यो घट माही । ताकी औषधि तुम पहि नाही ॥

जो ठठि जावै जाय धन्यन्तर । जानत नाहिं कहा मन अंतर ॥

(कथा पुहुपवरिणा, चौ० ४०) ।

वास्तव में विरहिणी मिलन की वास पाकर ही जीवित रहती है-

विरहिनि जीवत वास मिलन की ।

हिय मैं हरिणा पिवा मिलन की ॥

(कथा रतनमंजरी, बी० १००)

"ग्रंथलैलैमवतुं" में लैला तथा मवतुं वाजीवन विरह में व्याकुल रहकर एक दुसरे से मिलने के लिए तड़पते तथा कष्ट उठाते हैं और अंत में विरह में ही दोनों आत्ममाहुति कर देते हैं । तबमुक्त विरह में तपे हुए व्यक्तित्व का पुनः तक बल जाता है -

विरहा नल ते तन जरे, कहु न रह्यो ता मांहि ।

और और जी जीरिये, तां रत निकसत मांहि ॥

विरह की इसी महत्ता से कवि ने अपने प्रेमाख्यानों में संयोग की प्रेषणा विरह की चर्चा यथेष्ट की है । मुक्तक ग्रंथों के रूप में भी "विबोग सागर", "विरहसत", "वारहमासा" जैसे ग्रंथों की रचना की है । इसका विस्तृत विवेचन अध्याय ५ में विप्रलम्भ गुंगार के साथ किया गया है ।

कथानकों की अन्य विशेषताएँ:-

इन प्रेमाख्यानों के वस्तु-विन्यास दुःख-काष्ण की भांति घटना प्रधान हैं जो कथानक में रोचकता लाने के लिए नाटकीय शैली की भांति प्रयुक्त हुए हैं इसलिए नाटकीय कथावस्तु की भांति इन प्रेमाख्यानों की कथावस्तु की भी प्रारम्भ, प्रवर्तन, प्राप्त्याशा, निवृत्ताप्ति, तथा फलागम में विभाजित किया जा सकता है ।

कथानक के प्रारम्भ में सतपरक प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त लगभग अन्य समस्त प्रेमाख्यानों में एक संतानहीन राजा का वर्णन मिलता है जिसमें किसी सन्वासी, देवता या गुरु के धार्मिक-अनुष्ठान, जप-स्तप, योग या व्रतदान से संतान प्राप्ति होती है और अन्य-काल में ही इनकी शिवा की व्यवस्था हो जाती है । कभी-कभी ज्योतिषी या गुरु भविष्यवाणी भी करते हैं । यहाँ तक हम कथानक की भूमिका कह सकते हैं । इसके बाद ही नायक तथा नायिका प्रेम के उदय के लिए कवि स्वप्न-दर्शन, विष-दर्शन, प्रत्यक्षा-दर्शन

या गुण-वर्णन को अपनाया है। स्वप्न-दर्शन के अतिरिक्त अन्य साधनों में मंत्री-पुत्र, ब्राह्मण, पणिक, पक्षी, तोते, पवन, चेरियां या दासियां आदि मायम का कार्य करते हैं। प्रेम के प्रादुर्भूत होते ही नायक विकल हो उठते हैं और उनके अधिभावकों द्वारा उपचार कराया जाता है।

"प्रयत्न" की अवस्था तब आरम्भ होती है जब नायक अपना मार्ग-रथ त्यागकर नायिका के प्राप्त हेतु पर से चलता है। साधारणतः ऐसे प्रयत्नों में विदेश की यात्रा का वर्णन मिलता है। इसी प्रयत्न के बीच विभिन्न साधनों-गुरु, देवी-देवता, अप्सराएं तथा परिचां, ब्राह्मण, पवन, जंगली जानवर, पक्षी, तोते, भूत, प्रेत, ठग, दानव, चेरियां, सखियां, मानिनि आदि का सम्मिश्रण कवन कथानक में कुतूहल वृद्धि तथा गति देने के निमित्त हुआ है।

विभिन्न प्रयत्नों के उपरान्त जब नायक-नायिका के नगर उसके उपवन या उसके समक्ष पहुंच जाता है तो उस समय उसकी "प्राप्तयाशा" होने लगती है। राजाशा या अन्य देवी प्रकोप से दोनों के दर्शन के परचातु पुनः बिछोह हो जाता है और दोनों एक दूसरे से दूर हो जाते हैं। नायक के साथ नायिका भी वियोग में व्यथित रहने लगती है क्योंकि जब नायिका के हृदय में भी प्रेम उत्पन्न हो जाता है। दोनों का मिलन दुर्लभ प्रतीत होने पर भी दोनों दिगुणित उत्साह एवं संतुष्टता से प्रयत्नशील रहते हैं। कथानक की ऐसी स्थिति को हम "निवृत्ताप्ति" कहते हैं।

नायक के प्रयत्न, शीघ्र तथा देवी शक्तियों की अनुकूलता से कथा प्रवाह पुनः फल की ओर उन्मुख होता है और नायक-नायिका के मिलन या विवाह-सम्पन्न होने में साधारणतः कथानक का अंत हो जाता है। इसे "फलप्राप्त" की स्थिति कह सकते हैं। कवि के कुछ ग्रंथों में मिलन ही "फलप्राप्त" नहीं होता, बल्कि जीवनान्त के शांति पूर्ण अवसान में कथा का अंत हुआ है। यथा-ग्रंथ कैतव्यजनुं, कथा नलदमयंती।

आधिकारिक कथाओं के साथ प्रासंगिक कथाओं का समावेश भी कवि के कुछ ग्रंथों में मिलता है। आधिकारिक कथा का प्रारम्भ किसी निरुसंतान राजा की संतान प्राप्ति के प्रयत्न के वर्णन से होता है इसी संतान की

प्रेम-कथा का वर्णन सम्पूर्ण काव्य में मिलता है । प्रासंगिक कथाओं का समा-
वेश आधिकारिक कथाओं में उत्कृष्टता, रोचकता या गतिवृद्धि के लिए हुआ है ।
नायक की भाँति कभी-कभी नायक के मित्र की भी प्रेम कहानी चलती रहती
है । नायक के मिलन के परवात् मित्र की भी प्रिय की प्राप्ति होती है । यथा-
"कथा रतनावती" में मंत्री-पुत्र उग्रम तथा पद्मिनी, "कथा कतंदर" में मंत्री के चार
पुत्रों, "कथापुहुपवरिष्ठा" में मित्र महानंद, तथा मरमलदे तथा "कथा कामरानी
वा पीतमदास" में चार मित्रों का विवाह-सम्पन्न नायक-नायिकाओं के बाद
हो हुआ है । कहीं-कहीं नायक से नायिका के अतिरिक्त अन्य सुन्दरी के
मोहित होने की कथा भी चलती रहती है, किन्तु नायक विमुक्त होकर अपने
रास्ते चलता जाता है । यद्यपि उसे कष्ट अवश्य मिलता है । यथा-"कथा रतना-
वती" में जंगिनि नायक से प्रेम करना चाहती है । इसी तरह नायिकाओं पर
भी अन्य व्यक्ति मोहित होते हैं, किन्तु नायिकाएँ सबको ठुकराते हुए जागे
बढ़ती हैं । यथा - "कथा मण्डरमालती", "कथाकवलावती" जैसी-आदि । "कथा
सुभटराइ" में कथानक इस रूप में त्रिकोण का रूप ले लेता है । उदीची, प्रतीची
तथा जवाची, तीनों देशों के राजाओं ने अपनी-अपनी राजकुमारियों का
विवाह नायक के साथ किया है ।

इन आधिकारिक के साथ प्रासंगिक कथाओं का संगुणन बड़े ही
कुशलता से हुआ है । किसी ऐसी घटना का वर्णन कवि ने नहीं किया है कि
जिसका संबंध आवश्यकता से अधिक हो । ये प्रासंगिक कथाएँ काव्य में रोचकता
लाने के साथ कथा में कुतूहल की वृद्धि करती हैं ।

इन काव्यों में नायक-नायिका दोनों अपने निकट के किसी नायिका-
नायक के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं । नायक प्रायः दूर की किसी नायिका
के प्रति आकर्षित होता है और पारिवारिक बंधन से उदासीन होकर अपने
संबंधियों की सलाह की अवहेलना तक करता है ।

प्रत्येक ग्रंथ के मूल कथानक के पूर्व कवि ने नायक-नायिका का
सविस्तार परिचय दिया है जोकि प्रेमात्मक कथा-साहित्य की विशेषता है ।

कवि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए इन कथानकों के विकास में
परिस्थिति के अनुकूल वहाँ, जैसे- किस रूप में जाहा है वहाँ, जैसे, उस रूप में
घटनाओं की उद्भावना कर कथानक को मोड़ता, खींचता तथा उभाड़ता गया

है। ऐसी स्थिति में कथानकों में बटना-बाहुल्य तथा अस्वाभाविक स्थलों का जाना स्वाभाविक है। अक्सर से मानव का विवाह, पदारी, प्रेत, तथा नादल द्वारा मनुष्य को उड़ाना, मंत्र से मानव का रूप बदल लेना या बदराय कर देना अथवा अन्य संकटकारीन परिस्थिति में किसी सहृदय व्यक्ति का अनामक वा जाना और रक्षा करना आदि ऐसी ही बटनाएँ हैं।

विवाह-सम्पन्न होने के परचातु नायक कुछ समय तक नायिका के घर पर^{ही} रहते चित्रित किये गये हैं। कभी स्वप्न में या वैसे ही अनामक घर की याद आने के परचातु नायिका के माता-पिता से आज्ञा लेकर, वयोवित विदाई के साथ दोनों नायक के घर वापस लौटते हैं।

विवाहोपरान्त अपने देश को वापस लौटते समय प्रायः कभी-कभी नायकों की शत्रुओं से युद्ध करना पड़ता है, किन्तु नायक उक्तको पराजित करके ही अपनी राजधानी में प्रवेश करता है।

कथानकों में भावात्मक स्थलों की अपेक्षा वर्णनात्मक स्थल अधिक हैं। यद्यपि कवि ने अपनी काव्य-प्रियता से अक्सर पाने पर भावात्मकता को भूला नहीं है और संगीत की विभिन्न राग-रागिनियों, बाजों के नाम, दान, कामा, यमा, शौर्य, रूप-वर्णन, विरह एवं संयोग की अवस्था आदि का वर्णन किया है, किन्तु यह वर्णन दृढिगत और कवि बहुश्रुता का परिचय मात्र है।

कथानकों में संयोग का चित्रण बहुत हुआ है। कवि नायक-नायिका के संयोग का बरा-सा अक्सर पाने पर भी चुकता नहीं। यह अक्सर नायक-नायिकाओं में कभी विवाह के बाद तो कभी विवाह के पूर्व चित्रित हुआ है। मुद्देगलकारीन वितासमय वातावरण ने लौकिक सुंगार के नग्न चित्रण या शान्तों, सुफिरों तथा अज्ञानियों के प्रभाव से वह संयोग वर्णन कहीं-कहीं अस्पर्शित हो गया है।

“कथा मोहनी” तथा “कथा छविस्तार” में नायिकाएँ पहेलियाँ बुझाती दिवारी देती हैं। इस प्रसङ्ग में जहाँ एक ओर लोकगीतों के परम्परा का अनुसरण मिलता है, वही दूसरी ओर भारतीय धर्मशास्त्रों का सैद्धान्तिक पक्ष परिलक्षित होता है। संहितानों में पुरोहितों के द्वारा पहेलियाँ बुझाने की प्रथा मिलती है जो दृष्ट को प्रसन्न करने के लिए किया करते थे। अनामक चित्रणों में भी प्रश्न पूछने की प्रथा मिलती है। सम्भवतः वहाँ कवि ने नायक

की बुद्धि या उत्कर्ष का प्रभाव दिखाने के लिए प्रयुक्त किया है ।

कवि ने प्रायः अपने समस्त प्रेमाख्यानों में वारहमासा का वर्णन नायक-नायिका के विरह को उद्दीपन करने के लिए ही विशेषा किया है । स्वतंत्र रूप में भी संयोग की अपेक्षा विरह का विवर्ण अधिक किया है ।

इन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक तीनों प्रकार के कथानकों तथा पात्रों का उपयोग किया है । "कथा नन्दमर्षती" पौराणिक प्रेमाख्यानों में विशेषा प्रसिद्ध रहा है । ऐतिहासिक कथानकों के रूप में "कथा किन्नरा देवतदे", "कथा छीता", "कथा वरदसेर पातिसाह" हैं । इनमें ऐतिहासिक घटना के स्थान पर कहीं-कहीं केवल ऐतिहासिक नाम ही मिलता है । "कथा-छीता" में जलाउद्दीन ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी उसका चरित्र कवि-कल्पित है ।

इन कान्यों का आदि अंत न तो मूल कथानक से प्रारम्भ ही होता है और न परिसमाप्ति ही । प्रत्येक ग्रंथ के प्रारम्भ में मनुष्य-वृद्ध, शाहीवृद्ध की प्रार्थना, कथा की प्राचीनता का उल्लेख आदि रहता है और अंत में मूल कथा समाप्ति के बाद कवि वाक्य तथा पुष्पिका रहती है । साथ ही इन ग्रंथों की एक विशेषता यह भी है कि इन ग्रंथों के कथानक के आकार एवं स्वरूप के अनुसार उनके प्रारम्भ एवं अंत का परिवर्ध-विस्तार मिलता है ।

कथानक की इन विशेषताओं के साथ उनके समस्त कथाओं में सामान्य एक सूत्रता, एकरूपता या एकांगीपन मिलता है जोकि इन प्रेमाख्यानों के कथानक-संगठन की मुख्य विशेषता ही है ।

कथा-संगठन --- तुलनात्मक

यहाँ जानकवि के प्रेमाख्यानों के कथानक - संगठन की मुख्य-मुख्य विशेषताओं की तुलना सूफी तथा बसुफी के प्रमुख प्रेमाख्यानों के कथा-संगठन से निरूपित की गई है ।

जानकवि के प्रेमाख्यानों में प्रायः राजकुमार ही नायक विवर्णित हुए हैं । सूफी तथा बसुफी कान्यों के नायक भी प्रायः राजकुमार ही लिए गए हैं । "पद्मावत" का नायक रतनसेन धितीड़ के राजा विजयसेन, मंभू नकृत "मधुमावती" का मनोहर कर्मगिरि के राजा सुरवर्धन, "मृगावती" का नायक राजकुंवर चन्द्रगिरि

के राजा गणपतिदेव, "चित्रावती" का नायक सुजान नेपाल के राजा धरमेश्वर, "छिताईवार्ता" का सुजान सौरसी के राजा नारायण, तथा "पुहुपावती" का राजकुंवर के राजपुर के राजा प्रतापति के पुत्र हैं ।

"कथा कल्पावती", "कथा पुहुपरिष्ठा", "कथा रत्नावली", "कथा सुभट्टराइ" आदि में जिस तरह राजाओं के संतान न होने का विषय रहता है उसी तरह सूफ़ी तथा बसूफ़ी के कुछ काव्य-ग्रंथों में यथा-"मृगावती", मंभान्कृत "मधुमावती", "चित्रावती", "सैफुलमुलूक व बदीउलमास", "कथा सत्यवती", "कथा रत्नरत्न", "पुहुपावती" आदि में भी राजाओं की पुत्र-विषय हुआ है और अनेक धार्मिक-अनुष्ठानों, पूजा-पाठ, जप-तप या वरदान से पुत्र की प्राप्ति हुई है । यही उत्पन्न संतान ही इन काव्यों में नायक हुई है ।

पुत्रोत्पत्ति के उपरांत कभी-कभी ज्योतिष्गी या पंडित नायक के लिए भविष्यवाणी करते हुए दिखाई देते हैं । "कथारत्नावली" में जिस तरह ज्योतिष्गी कुंवर महिमोहन के लिए भविष्यवाणी करते हैं कि १४ वर्ष के बाद कष्ट भोगना पड़ेगा तत्पश्चात् अभीष्ट की प्राप्ति करते हुए सब सुखों का भोगता और राजा होगा^१ तथा "कथा नलदमयंती" में भविष्यवाणी न होकर दो बार स्वयंवर में आकाशवाणी हुई है । उसी तरह मंभान्कृत "मधुमावती"^२ तथा "मृगावती" के नायक राजकुंवर, "पद्मावत" के रत्नसेन^३, "चित्रावती" के सुजान के लिए भविष्यवाणी हुई है । इस भविष्यवाणी का महत्व केवल उत्तरी भारत के प्रेमाख्यानों में ही है, दक्खिनी के प्रेमाख्यानों में नहीं ।

प्रेम का प्रादुर्भाव जानकवि के नायकों में गुण-कवण, स्वप्न-दर्शन, विम-दर्शन या प्रत्यक्ष-दर्शन की भांति सूफ़ी तथा बसूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों

१- चौ०-१३ ।

२- चौदह बरिस एगारहमासा । नवमें दिन पुनि व प्रगासा ॥

जन्म सतरां ससि तारा । मिलै सजन कोइ प्रेम पियारा ॥

बुधवार बीक की राती । उपरै प्रेम कुंवर के छाती ॥

तेहि विषोग हो कुंवर विषोगी । बरिस एक भी दिसा के बीगी ॥

३- उम्ह - ७१ ।

(६६-५१)

में भी हुआ है। सूफ़ी प्रेमाख्यान 'पद्मावत' में सुफ़ी के द्वारा गुण-वर्णन है^१ - संभ्रान्त 'मधुमावती' तथा 'जानकीप' में प्रत्यक्षा + दर्शन से, 'विजावती' तथा 'सैफुलमुल्क' व 'दीरुसुमात' में विज-दर्शन से, 'कुतुबपुरतरी' में स्वप्न-दर्शन से प्रेम उत्पन्न हुआ है। असूफ़ी प्रेमाख्यानों में 'ढोलामादुरादूहा' 'माधवानलकामंदला' में प्रत्यक्षा-दर्शन से, 'रसरतन' में स्वप्न-दर्शन से, 'वीरदेवरास' तथा 'छितार्थवार्ता' में विवाह के अनन्तर प्रेम का प्रारम्भ हुआ है।

प्रेम का उदय होते ही जिस प्रकार जानकवि के नायकों में मूर्धितानुभावा जाती है उसी प्रकार सूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों में भी विकलता प्रारम्भ होती है। 'पद्मावत' में रतन्सेन की पद्मावती के गुण-वर्णन से पूर्व की लहर जा जाती है^२। 'मृगावती' में नायक राजकुंवर, संभ्रान्त 'मधुमावती' में मनोहर, 'विजावती' में सुजान^३ तथा 'कुतुबपुरतरी' में नायक प्रेम्हा उदय होते ही परेशान एवं मूर्छित हो जाते हैं। असूफ़ी प्रेमाख्यान 'ढोलामादुरादूहा' तथा 'रसरतन' में नायकों में विकलता की स्थिति साधारण ही है।

जानकवि के कुछ ग्रंथों के नायकों की भांति सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायक भी प्रेम की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व छोड़कर योगी-वेश में विभिन्न प्रयत्न करते चित्रित हुए हैं। 'मधुमावती' में मनोहर 'पद्मावत' में रतन्सेन, 'विजावती' में सुजान, 'मृगावती' में नायक राजकुंवर तथा 'रसरतन' एवं 'सदयवत्सलावर्तिगा' में नायक योगी-वेश में निकलते हैं। दक्षिणी प्रेमाख्यानों में नायक योगी बनकर नहीं निकलते।

जानकवि के ग्रंथ सैतमयन में जिस प्रकार मयनू बीरा होकर विरह में डूब डूब भटकता है और बड़टानों से टकराता है उसी तरह फ़ारसी के प्रेम-कथात्मक मसनवियों में निज़ामी तथा बमीर कुसरो का मयनू चित्रित किया गया है।

१- हीरामन की कमल बहाना । सुनि रावा होइ भंवर भुलाना ॥छंद-१४॥

२- सुनतहि रावा गा मुखछाई । जानहुं तहरि पुरज के जाई ॥छंद-११९॥

३- सुधि बिहरी सुधि रही न हीये । गा बीराइ प्रेममद पीये ॥छंद-८५॥

वाङ्मय में "क्या कौतूहली", "क्या छीला" तथा "क्या कलावती" में नायकों की संगीत-कला तथा वीणा-वादन में निरह प्रदर्शित करते हुए नायिकाओं से मिलते विवृत किया है। "क्या कौतूहली" में तो संगीत ही दोनों के मिलन का माध्यम है। असूफी प्रेमाख्यान "माधवानल कामकंदला", "छिताईवार्ता", "रसरतन", "पुहुपावती" आदि में भी नायक-नायिका के मिलन का माध्यम संगीत ही है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों से संगीत नायक-नायिका के मिलन का माध्यम नहीं है। यद्यपि नायक कहीं-कहीं किंगरी बजाते तथा राग बजाते बरस दीखते हैं। फ़ारसी के सूफी-सम्प्रदाय वाले कवि संगीत की महत्व दिए हैं और उसे "गिज़ाये-रूह" कहा है। विरतिमा-संप्रदाय में भी महत्व दिया गया है।

जिस प्रकार वाङ्मय के नायकों की प्रिय की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की प्रेम-मार्ग की बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं उसी प्रकार हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के नायकों को भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। "पद्मावत" का रतनसेन योनी-वेश में सागर की तूफ़ानों से टकराता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचता है। गढ़ पर आक्रमण करने से बंदी बनाया जाता है और शूरी की आश होने पर हीरामन सुगुणा की सहायता से बचता है। "विजावती" में सुजान गुफा में फँका जाता है उसे वहाँ ब्रजगर मिलता है। लोक-मर्दा के कारण उसका पिता उसे हाथी से कुचलवाता है। मधु-मालती में मनोहर समुद्र की तूफ़ान में नौका फटने से काष्ठफलक के सहारे एक बर के किनारे राक्षसों से मुक्त करता है। इसी तरह "चंदबदन और महिमार" तथा "कुतुबपुरतरी" में कठिनाइयों का विशद चित्रण है। असूफी प्रेमाख्यानों में कठिनाइयों का चित्रण इतने विशद रूप में नहीं किया गया है। यद्यपि नायकों की परिस्थितियाँ कम नहीं भेलनी पड़ती।

वाङ्मय के नायक-नायिका शिवमंदिर में नहीं मिलते। बल्कि "क्या कौतूहली", "क्या पुहुपरिणा", "क्या रूममरी" और "क्या रतनावती" में उप-वन या लोवर के किनारे मिलते विवृत किए गये हैं। सूफी प्रेमाख्यानों की नायिकाएँ शिवमंदिर में नायकों का दर्शन करती हैं। "पद्मावत" में पद्मावती रतनसेन से शिवमंदिर में मिलती है। "मुगावती" में मुगावती मंदिर में मिलती है और सिंहासन पर बैठकर दोनों प्रेमात्मा करते हैं। "विजावती" में सुजान तथा विजा-

सखी रूपनगर के शिवमंदिर में भेट करते हैं । इसी तरह असूफ़ी प्रेमाख्यान "रसरतन" में नायक-नायिका शिवमंदिर में मिलते हैं ।

प्रेम-बटक, संदेश-बाहन या पत्र-बाहन के रूप में जानकवि ने दाई, सखी, बैरी, मालिन, डाढ़ी, ब्राह्मण, पणिक, पक्षी, तोता, अप्सरा या पवन को विव्रित किया है इसी तरह सूफ़ी तथा असूफ़ी के अन्य प्रेमाख्यानों में भी उपयोग हुआ है । "पद्मावत" में तोता, "विज्जावली" में परेवा, मधु-मालती में अप्सराएँ, चतुर्भुज की "मधुमालती" में वैतमाल सखी, "रूपमंजरी" में इन्दुमती सखी, "नैषध" महाकाव्य में हंस, "नन्दमंजरी" में भाटिनि, "पुहुपावती" में मालिनि, "प्रेमप्रगास" में मैनावली प्रेम-बटक का कार्य करती हैं । "डोलामारू दूहा" में डाढ़ी, "वीरसतदेवराय" में रंजित, "केलिद्विसननविमर्षी" में ब्राह्मण "रसरतन" में विद्यापति नायक तोता संदेश-बाहन का कार्य करते हैं । वपभंग का "हंदेशरासक" तो संदेश का ही काव्य है "रामचरितमानस" में हनुमान भी सीता के पास संदेश लेकर जाते हैं । इस तरह यह संदेश भेजने की परम्परा बहुत प्राचीन रही है ।

जिस तरह जानकवि के "कथा रतनमंजरी" में एक पक्षी गुरु का कार्य करता है, उसी प्रकार "पद्मावत" में हीरामन सुग्गा, "विज्जावली" में परेवा तथा "प्रेमप्रगास" में मैना पक्षी गुरु का कार्य करते हैं ।

दास्यत्वपरक तथा स्वच्छंदता परक प्रेमाख्यानों में जिस प्रकार रीतिकाल के प्रभाव से जान कवि जरा-सा मौका पाने पर संभोग का विव्रण करने में नहीं चूकते, उसी तरह असूफ़ी प्रेमाख्यानों में कवि इसका विशद विव्रण किए हैं। गणपतिकृत "माधवानल कामकंदला"- प्रबन्ध में बिलास एवं केलि का सविस्तार वर्णन है । चूड़ियों के टूटने, हार के मर्दन हटने, आभरणा उतरने तथा घाट के भार न सह सकने का विव्रण मिलता है^१। "छित्ताईबाबाई" में छित्ताई तथा सौरसी

१- चूड़ी सखि चटकी गई । रत्तिठ मुताइत हार ॥

आभरणा उतरि परह । घाट समइ नहि भार ॥

माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० -१०६, चंडीदा ।

के केति-झोड़ा का विस्तृत वर्णन है^१। "डोलामारुरादूहा" में डोला को मारवणी के साथ रमण करते हुए चित्रित किया गया है^२। "प्रेमप्रगास" में छण्णदास ने कुंवर तथा जानमती के मिलन के समय भय और लज्जा के अतिरिक्त कंथित वंग, प्रसन्न तथा बहुराते वंशों का वर्णन किया है^३। "वैलिकिसनरन्निमणी"^४ तथा "सदयवत्सवालिंगा" में भी संभोग का विस्तृत वर्णन है। सूफ़ी प्रेमाख्यानों में संभोग के चित्रण का अभाव है। निज़ामी तथा ज़ामी में कहीं भी संभोग का चित्रण नहीं हुआ। ज़ायसी तथा मंथन में संभोग का वर्णन भारतीय प्रभाव के कारण है। संस्कृत - साहित्य में नैषध महाकाव्य, कुमार संभव, गीतगोविन्द आदि में कामशास्त्रीय आधार पर संभोग का चित्रण हुआ है।

जानकवि के प्रेमाख्यानों की अपेक्षा विरह की तीव्रता सूफ़ी प्रेमाख्यानों में विशेष पाई जाती है। असूफ़ी प्रेमाख्यानों में विरह की महत्ता उतनी नहीं है।

विवाह के विभिन्न रूपों में सम्पन्न होने के रीति-रिवाजों का पैसा विस्तृत चित्रण जान कवि ने किया है वैसे ही असूफ़ी कवि अपने प्रेमाख्यानों में करते हैं। सूफ़ी कवि एक ही रूप में विवाह के रीति-रिवाजों का वर्णन करते - हैं। "पद्मावत", "पद्मावती", "जानदीप", "चित्रावली" आदि में इसका विस्तृत वर्णन है। असूफ़ी प्रेमाख्यान "डोलामारुरादूहा" में जाल-विवाह कराया गया है। "वीरसतदेवरास"^५, "छितार्जवार्ता"^६ तथा "वैलिकिसनरन्निमणी"^७ में ब्राह्मणों द्वारा शुभ लगन विचार कर, मंडप तथा कलश सजाकर, मंगलगान और वेदीज्वार आदि के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ है। विवाहोपरान्त नायक-नायिका

१- छंद- १९१, १९२, १९३ तथा २००।

२- डोलामारुरादूहा- सम्पा० रामसिंह, छंद- ५९१ से ५९३ तक, छि० संस्क०।

३- कंथित वंग प्रसन्न अभी, वंश जुगल बहुराह।

वरन्ध कंध कीहु उपर सम, वचन बकती नहीं जाइ ।। (प्रेमप्रगास-विषमा-२४२)।

४- छंद- १०६ से १०८ तक।

५- छंद- ७, ८, ९, १० तथा ११। ६- छंद- १४८, १४९, १५० तथा १५८।

७- छंद- १४९, १५० तथा १५८।

शयन गृह में जाते हैं ।

जानकवि के "कवानतदमर्षती" में जिस तरह नल तथा दमर्षती का विवाह रविवर द्वारा हुआ है उसी प्रकार "लक्ष्मणेन पद्मावती", "प्रेमप्रगास", "पुष्पावती" तथा "रत्नरत्न" में भी ।

जिस प्रकार जानकवि के प्रेमाख्यानों में कभी विवाह सम्पन्न होने के बाद तथा कभी विवाह के पूर्व कथाओं का विकास हुआ है, उसी तरह सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों में भी पाया जाता है ।

जानकवि के कुछ प्रेमाख्यानों के नायक वा नायक के पिता दो या अनेक रानियाँ रखते हैं उसी तरह सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायक भी दो या बहुविवाह करते विधित हुए हैं । मर्यादित "मधुमावती" को छोड़कर उत्तरभारत के लगभग समस्त प्रेमाख्यानों में नायकों के जीवन में प्रायः दो नायिकाएँ प्रवेश करती हैं । असूफ़ी प्रेमाख्यान "डीनामारादुहा", "मैनासत", "प्रेमप्रगास", "सदयवत्सलाभिरिंगा", "लक्ष्मणेन-पद्मावती" में नायकों के दो-दो पत्नियाँ हैं । "छिताईवार्ता" में संख्या अनेक है ।

जानकवि के सतपरक प्रेमाख्यानों में जिस प्रकार कुटुम्बां याकर नायिकाओं का सतीत्व नष्ट करना चाहती है उसी प्रकार असूफ़ी प्रेमाख्यान बीसल-देवरास, छिताईवार्ता, मैनासत, आदि में कुटुम्बां नायिकाओं का सत्य ढिगाना चाहती हैं । ये नायिकाएँ अपने सत्य पर अटिग रहकर अपने सत्य की परीक्षा देती हैं । सूफ़ी प्रेमाख्यानों में वह प्रसंग नहीं मिलता ।

जिस प्रकार जानकवि ने विरहावस्था को व्यक्त करने के निमित्त बारहमासा का वर्णन किया है उसी प्रकार सूफ़ी प्रेमाख्यान "पद्मावत", "विजावली", "मुगावती", "जानकीप" आदि तथा असूफ़ी प्रेमाख्यान "मैनासत", "बीसलदेवरास" आदि में बारहमासा का उपयोग किया गया है । जानकवि के सभी ग्रंथों में बारहमासा कह वर्णन असाढ़ से प्रारम्भ करके चैथ में समाप्त किया है । किन्तु "विजावली" में चैथ से तथा "पद्मावत" में असाढ़ से प्रारम्भ हुआ है । जिस तरह जानकवि के "कथा सुमटराइ" तथा "कथा रत्नमयरी" में क्रमशः षट्सु एवं तीन मौसमों का वर्णन है उसी प्रकार "पद्मावत" तथा "विजावली" में भी षट्सुओं का वर्णन हुआ है ।

नायिकाओं के सौन्दर्य को महत्व देने के लिए जानकवि की भाँति सूफ़ी तथा असूफ़ी कवि भी नव-शिक्ष का वर्णन करते हैं ।

शाण्डिकारिक कथाओं की भाँति प्रामाणिक कथाओं का उपयोग जान कवि की तरह सूफ़ी तथा असूफ़ी कवियों ने भी किया है ।

नायक-नायिका के विवाह-सम्पन्न होने या मिलन के बाद स्वदेश वापस आकर कालमापन करने में किस प्रकार जानकवि कथाओं का जत किया है उसी प्रकार सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमास्थानों के कवियों ने भी किया है । जानकवि ने अपने ग्रंथ "कथानतदमर्षती" में दोनों के स्वदेश लौटने के बाद ही कथा समाप्त नहीं की है, बल्कि नल की मृत्यु पर दमर्षती का सती होना तक चित्रित किया है । उसमें एक तरह से दोनों के स्वदेश वापस जाने पर कथा समाप्त हो जाती है, किन्तु कवि ने कथा को और भी आगे बढ़ाकर उसे दुखान्त बनाया है । ऐसे ही "पद्मावत" तथा "मृगावती" में भी नायक की मृत्यु पर नायिकाएँ सती हुई हैं । जानकवि के "ग्रंथसैमजनु" में इबनसलाम की मृत्यु होने पर लेला सती होती है और मजनु भी जाकर लेला के कब्र पर प्राण त्याग देता है । इसी प्रकार फ़ारसी के सूफ़ी प्रेमास्थानकारों में निज़ामी का मजनु भी कब्र पर आत्म-त्याग किया है ।

यद्यपि सभी प्रेमास्थानों के कथानक - संगठन में एक रूपता मिलती है, किन्तु सूफ़ी प्रेमास्थानों में यह एकरूपता असूफ़ी तथा जानकवि के प्रेमास्थानों की अपेक्षा विशेष है । असूफ़ी प्रेमास्थानों की भाँति जानकवि के कथानक-संगठन में घटना वर्णन, वस्तु-चित्रण, रूप-गठन आदि में विविधता मिलती है ।

(त) अभिप्राय (Motifs)

सामान्यतः अभिप्राय और दृढ़ि शब्द का प्रयोग हिन्दी में एक दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है। अभिप्राय जिसे अंग्रेजी में 'Motifs' (मोटिफ) कहते हैं। हिन्दी में इसे डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कथानक-दृढ़ि' तथा डा० रामसिंह तोमर ने 'कथाभाव'^१ शब्द से अभिहित किये हैं। हिन्दी के कुछ अन्य विद्वानों ने कथा-परिधान या कवार्प, मूल-भाव, कथा-नक का मूलतत्वाणा या मुख्यतत्वाणा कहकर परिचय दिया है, किन्तु ये शब्द उपयुक्त नहीं मान पड़ते। हिन्दी में किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में हम यहाँ विशेषतः 'अभिप्राय' शब्द का ही व्यवहार करेंगे।

हिन्दी में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक चरितकाव्यों पर विचार करते हुए लिखा है कि 'ऐतिहासिक चरित कालेक सम्भावनाओं पर अधिक बल देता है। सम्भावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथानक की गति और प्रभाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं जो बहुत मोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक दृढ़ि में बदल गये हैं'^२। इस तरह द्विवेदी जी ने अभिप्राय तथा दृढ़ि शब्द का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त किया है। अंग्रेजी विद्वान शिप्ले के अनुसार- 'अभिप्राय उस शब्द अथवा एक सचि में होते हुए विचार को कहते हैं जो समान परिस्थितियों में अथवा समान मनःस्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा एक ही वाति की विभिन्न कृतिकों में बार-बार आता है'^३। इससे स्पष्ट है कि अभिप्राय विभिन्न देशों में व्याप्त या एक ही देश में विभिन्न कालों में विकसित, कथाओं में बार-बार प्रयुक्त होने वाली किसी

१- प्राकृत और अपभ्रंशसाहित्य, पृ० २०१, १९१४ ई०।

२- हिन्दी साहित्य का आदिकाल- पृ० ८०, १९५० ई०।

३- Motif-A word or a pattern of thought which recurs in a similar situation or to evoke a similar mood within a work or in various works of a genre.

Shiple- 'Dictionary of the world-Literature:

छोटी घटना जयवा विचार के रूप में कथा के घटना प्रवाह को मोड़ने, निर्माण करने, विकसित करने तथा एक निश्चित दिशा देने वाला तत्व होता है। इन घटनाओं में ऐसी सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं जिसे वे एक ही साथ में ढली जान पड़ती हैं। स्टिथ यामसन महोदय का विचार है कि अभिप्राय कथा का लघुतम तत्व है जो परम्परा में निरंतर रूप से रहने की शक्ति रखता है। इस प्रकार की शक्ति रखने के लिए उसमें कुछ नसाधारणता और अपूर्णता होनी चाहिए। अभिप्राय कथानक के निर्माण तत्व है^१।

अभिप्राय कथानकों के मूलतत्त्व या लोककथात्मक रूप हैं। इनके बिना लोक-कथाओं का अस्तित्व निर्मूल है। जिस तरह कथानक के बिना कथा का अस्तित्व नहीं, वही प्रकार इन अभिप्रायों के बिना लोक-कथाओं का। अभिप्राय कहानी रूपी वाक्य का शब्द रूप है जिसे वाक्य रूपी जवाब कहानी बनती है। यह कथानक के सभी अंगों को अपने में समेटे रहता है और इसी के माध्यम से समस्त लोक-कथाओं की एकता अभिव्यक्त की जाती है। म्युम-फ्रील्ड के शब्दों में वे कथा से उसी प्रकार संबंधित हैं जिस प्रकार शब्द वाक्य से। कथानक को विस्तार एवं निश्चित दिशा देने के लिए इन कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा कथाकारों ने कुछ ऐसे सामान्य घटना-परक अभिप्रायों का सहारा लिया है, जिन्हें कथानक का "विस्तार-विन्दु" कहा जा सकता है।

अभिप्राय साहित्य की विभिन्न विधाओं—कला, काव्य, कथा, संगीत, आदि में विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जा रहा है। "कला" में अभिप्राय कोई काल्पनिक या वास्तविक वस्तु होती है। "कोई वस्तु जयवा अवत, सजीव या निर्जीव, प्राकृतिक या काल्पनिक वस्तु, जिसकी उत्पत्ति एवं अतिरंजित आकृति मुख्यतः साजावट के लिए किसी कलाकृति में बनाई जाय^२।" काव्य में अभिप्राय उस परम्परा या विचार को कहते हैं जो नैतिक तथा जगत्सूत्रीय होते

१- लोक साहित्य विज्ञान, डा० सत्येन्द्र, पृ० २७३, १९६२ ई०।

२- भारत की विमर्शना- रामकृष्णदास।

कथा में उसकी छाप होना स्वाभाविक है। बंगाल की कथाएँ बंगाली रंग में रंगी हुई, पंजाब की पंजाबी में, राजस्थान की राजपूती, तथा गुजरात की कथाओं पर गुजराती रंग बड़ा हुआ दिखाई देता है। इन कथाओं के साधारणीकरण की दृष्टि से भी देशीय रंग पाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि इन पर देशीय रंग वर्तमान न रहे, तो न तो उनका वास्तविक निर्माण ही सकता है और न उसका सच्चा आनन्द ही उठाया जा सकता है।

हजारों वर्षों से मानव-विकास के इतिहास में भी इन अभिप्रायों के विभिन्न तत्वों में विकास, अभिवृद्धि एवं रूपपरिवर्तन होता रहा है। यदि संतुलित दृष्टि से देखा जाय तो उपनिषद् से अपभ्रंश और मध्यकाल से आतोष्य काल तक इन कथा बन्ध-सम्बन्धी अभिप्रायों का स्वरूप दबलता रहा है। काशान्तर से अनेक नवीन अभिप्राय स्थापित होते रहे और बहुत से अभिप्राय अप्रवर्धित होते गये हैं। अपभ्रंश के कथा-काव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें संस्कृत कथाओं के अनेक अभिप्रायों का निर्वाह किया गया है। यद्यपि इन अभिप्रायों का उपयोग संस्कृत काव्यों में उतना नहीं हुआ है जितना अपभ्रंशकाव्यों में। परिवर्ती अपभ्रंश के ऐतिह्यतामूलक साहित्य में ये अभिप्राय विशेषरूप से व्यवहृत हुए हैं और बहुत लोक प्रिय रहे हैं। इसके अनन्तर आदि-कालीन रासों काव्यों एवं भक्ति कालीन सूफी और असूफी काव्यों में कुछ रूप परिवर्तन के साथ नाना प्रकार के अभिप्रायों का व्यवहार किया गया है। जिन काव्यों में ये अभिप्राय वितने अधिक प्रयुक्त हुए हैं उनमें उनका रूप उतना ही लौकिक हो गया है। हिन्दी प्रेमास्वात्मक काव्यों तथा अपभ्रंश के चरित-काव्यों में प्रयुक्त अभिप्रायों का तुलनात्मक अध्ययन डा० रामसिंह तोमर ने सविस्तार किया है। इन्होंने "मधुमावती", "मधुमासती", "मुगावती" और करकण्डुवरिष्ठ" आदि चरितकाव्यों के तुलनात्मक विवेचन के आधार पर बहुत सामान्य अभिप्राय खोज निकाले हैं^१।

अभिप्रायों के अध्ययन का महत्व:-

यहाँ इन लोक एवं प्रेम कथाओं के अध्ययन में कथानकों का इतना महत्व है, वही इन कथाओं को विकास देने, उन्हें एक निश्चित दिशा में अभिवृद्धि

हम से मोड़ने, उनमें विभिन्न उतिरहित घटनाओं को लाने और समझाने तथा गति उत्पन्न करने में इन अभिप्रायों का बड़ा महत्व है। कथाकार वा कवि जिस दिशा में, जहाँ तथा जैसे कहानी को मोड़ना वा प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसके अनुरूप ही अभिप्रायों का प्रयोग करता है। यदि प्रेमाख्याक कहानियों से इन अभिप्रायों को निकाल दिया जाय तो कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। बहुत अधिक प्रवर्धित हो जाने के बाद कथानकों में केवल अंतर्कृति-मात्र के लिए इन्का उपयोग होने लगता है।

अभिप्राय प्राचीन परम्परागत लोक-वाक्यांशों तथा पौराणिक एवं निर्व-धरी आख्यानों में समान रूप से पाये जाने से इनके विभिन्न देशों साहित्य एवं संस्कृति के विकास और उसके मानवीय इतिहास के अध्ययन में सहायता मिलती है। इनमें सृष्टि-शास्त्र, समाज-शास्त्र, पुराण-विद्या, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, ज्योतिष, जीव-विज्ञान आदि सभी शास्त्रों का सम्बन्ध प्रोत विद्य-मान है। भिल्लरेड जार्जर के अनुसार "लोक-कथाएँ जातीय ज्ञान को सुरक्षित रखती हैं तथा जातीय रीति-रिवाज को व्यवहार योग्य ठहराती हैं। वे स्तर और मूल्य निर्धारित करती हैं और जात्य-विश्वास भरती हैं। लोक कथाएँ शक्ति का भण्डार हैं जिनसे ही जातीय जीवन सञ्चलित रहता है।" इस तरह इन अभिप्रायों के अध्ययन का क्षेत्र अब केवल अभिजात साहित्य तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि बहुत व्यापक हो गया है। यह सम्पूर्ण मानव के सम-भाने तथा अध्ययन करने के प्रधान उपकरणों में गिना जाने लगा है। कवि वा लेखक अपने वैयक्तिक प्रतिभा तथा ज्ञान का उपयोग करके इसका संस्कार लोक-साहित्य से शिष्ट-साहित्य में कर एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है। शिष्ट-साहित्य में पहुँचकर कथा का कुछ रूप भिन्न हो बदल जाय, किन्तु अभिप्रायों के विभिन्न उपादान कथानक के मूल तत्वों में वैसे ही बने रहते हैं। वे तत्त्व मानव जीवन की गहराई से लिये गये रहते हैं इसलिए शिष्ट साहित्य में इनकी उपयोग या परित्याग संभव नहीं हो पाती।

आदिम जातियों का विश्वास तथा उनकी संस्कृति के विभिन्न रीति रिवाज अत्यन्त शिष्ट हो जाने के बाद भी इन कथाओं में अभिप्राय रूप में जादूत

हैं। अतीतिक तथा अप्राकृतिक शक्तियाँ जैसे -देवता, राक्षस, भूत, प्रेत, ठग आदि में विश्वास और जादू, टोना, तंत्र-मंत्र आदि तत्त्व आदिम मानव समाज से ही इन कथाओं में अभिप्राय के रूप में अब तक बने आ रहे हैं। मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा जीवन की सुखी एवं उन्नत बनाने के लिए विभिन्न सामाजिक संघर्षों का स्मृति-चिह्न भी इन अभिप्रायों में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का विचार है कि "कथानियों के लिए अभिप्रायों काबंसा ही महत्व है जैसा किसी मकान के लिए ईंट-गारे का, जयवा किसी मंदिर के लिए नानाभांति की सज्जा से ढके हुए शिलापटों का। अभिप्राय द्वारा संस्कृति का परम्परित स्वरूप सुरक्षित मिलता है। प्रादेशिक कथाओं के रूपान्तरों की जन्मगत एकता इन्हीं में परिलक्षित होती है।"

भारतीय अभिप्रायों पर किए गये कार्य

स्विथ वामसन

भारतीय साहित्य में अभिप्रायों पर काम करने वाले विद्वानों में सर्वप्रथम क्रोडन के शिष्य जार्ज वामसन ने अपने संगृहीत कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामस्वरूप कथाओं के प्रकारों या मानक (Types) का एक कोष तैयार किया और इसी की अपने समस्त अध्ययन का आधार बताया। स्विथ वामसन महोदय, जार्ज के इस प्रणाली को केवल एक देशीय या एक प्रदेश की कथाओं के अध्ययन के लिए ही उपयोगी सिद्ध करते हुए समस्त विश्व की कथाओं या सर्वदेशीय कथाओं के अध्ययन का आधार-"अभिप्राय" (Motifs) बताया। इससे समस्त दिशाओं के प्रत्येकक्षेत्रों के कथाओं के कथानकों का सम्यक् अध्ययन किया जा सकता है। संसार भर की कथाओं के तत्वों की समता, एकता, स्वरूप, तथा विकास की समझ एवं अभिव्यक्ति की जाती है। जार्ज के इस प्रकार-कोष का दीर्घकाल तक अध्ययन के परिणाम स्वरूप एक व्यवस्थित "अभिप्राय-अनुक्रमणिका" (Motif-Index) तैयार की।

इस अनुक्रमिका के लिए एक विशाल पुस्तकालय के पुस्तकों की सूची-बद्ध करने का सिद्धान्त भी बताया। और अभिप्राय-कोश का प्रथम-संस्करण "फोक-टेल" (Folk-Tale) नाम से सन् १९३५ ई० में प्रकाशित किया। बाद में सन् १९५० ई० में इसी "फोकटेल" का पुनः परिवर्द्धित एवं बृहत् द्वितीय-संस्करण प्रकाशित किया और इसमें समस्त विश्व की लोक-कथाओं के समता-मूलक भावोंके अभिप्रायों के संग्रह के साथ भारत की कहानियों के पर्याप्त अभिप्रायों को सम्मिलित किया।

अभिप्रायों का वर्गीकरण स्टिव थामसन महोदय ने तीन श्रेणियों में किया। प्रथम:- कर्ताकथाओं में - देवता, असाधारण पशु-प्राणव्यंजक प्राणी जैसे राक्षस, यक्षा, अप्सरा, परिया, भूत, प्रेत, ठग और परम्पदित मानव चरित्र। द्वितीय - कुछ ऐसी वस्तुएँ जो कथा-व्यापार में काम आने वाली होती हैं - यथा जादू की वस्तुएँ, असाधारण रिवाज, अनोखे विश्वास आदि। तृतीय - ऐसी घटनाएँ - जिनमें बहुत से अभिप्राय आ जाते हैं।। इस वर्गीकरण से स्पष्ट है कि अभिप्राय कथानक के सभी अंगों (घटना, चरित्र तथा कार्य) को अपने में समेटे हुए हैं। अंत में उन्होंने बताया कि अभिप्रायों के लिए कहानियाँ, संवारे, धर्मगाथाएँ तथा अनुकृतियाँ संसार के सभी भागों से संग्रह करना एक व्यक्ति के पूरे जीवन की बात नहीं है इसलिए इसके लिए किसी सामूहिक-व्यवस्थित-प्रणाली का उपयोग किया जाना चाहिए।

मैरिस ब्लूम-फील्ड

अमेरिका के ब्लूमफील्ड महोदय ने अपने कई एक शिष्यों के साथ, जिनमें रूबनार्टन, नार्मनब्राउन प्रधान हैं, अमेरिका औरियन्टल सोसाइटी के बनरस की छात्रियों, वालीसवीं, एकतालीसवीं बिल्दों में तथा फिलो-सोफिकल-सोसाइटी के बनरस में कतिपय अभिप्रायों का ऐतिहासिक अध्ययन संस्कृत तथा अंग्रेजी के प्रकाशित संग्रहों के आधार पर किया। इनके इस ऐतिहासिक प्रणाली में विभिन्न कथाओं के पाये जाने वाले एक ही अभिप्राय का विस्तृत अध्ययन किया गया है। वे दीर्घकाल से व्यवहृत भारतीय कथा-साहित्य के सम्यक् एवं सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए हिन्दू-कथा-अभिप्रायों का विश्व-

इन्होंने अपने अध्ययन को "कथासरित्सागर" (The Ocean of Stories) में ज्युमफ्रीट की प्रणाली पर अभिविहित किया । और कथासरित्सागर के अभिप्रायों के अध्ययन में ज्युमफ्रीट, बेनफी, टानी, वेबर, बैकोजी, जर्मन ब्राउन आदि के लेखों तथा टिप्पणियों से विशेष सहायता ली । टानी द्वारा अनूदित "कथा सरित्सागर" के नौ संस्करण का सम्पादन किया और अनेक टिप्पणियों द्वारा पुस्तक के अंत में प्राप्त लगभग १९ अभिप्रायों की सम्ची सूची दिये^१ । इस तरह वेबर के इस कार्य का महत्व मौखिकता की दृष्टि से तो नहीं, किन्तु प्राप्त-सामग्री के आधार पर वैज्ञानिक एवं विस्तृत अध्ययन करने में महत्वपूर्ण है । इस अध्ययन के साथ इन्होंने दूसरे देशों के कथा-साहित्य में प्रस्तुत अभिप्रायों का तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया । इन्होंने स्वयं लिखा है कि "किसी देश के समूचे साहित्य में बार-बार जाने वाले घटनाओं (Incidents) के संकलन और वैज्ञानिक अध्ययन का कार्य अभी प्रारम्भ होने को हुआ है और इससे भी कम काम इन अभिप्रायों और दूसरे राष्ट्रों की लोक-कथाओं में जाने वाले समान अभिप्रायों के तुलनात्मक अध्ययन का^२ ।"

एण्ड्रू लैंग

नृत्य-विज्ञान शास्त्री एण्ड्रू लैंग अपनी पुस्तक "रीति-रिवाज" और पौराणिक विश्वास" (Custom and with) में पौराणिक, निवर्तरी तथा लोक प्रचलित कथाओं का अध्ययन किया और उन्हें परम्परागत मानते हुए बार बार वर्गों में विभाजित किया -(क) प्रकृति-सम्बन्धी लोक कथाएं, (ख) रीति-रिवाज सम्बन्धी कथाएं (ग) देवता तथा पशु का संबंध व्यक्त करने वाली कथाएं तथा (घ) जादू, टोना में प्रयुक्त होने वाली बड़ी-बूटी या पेड़-

१- विस्तार के लिए देखिए:- श्री ब्रजवितास श्रीवास्तव: "पुष्पवीराजराशों में कथानक दृष्टि" पृ. ३५ से ५१ तक, १९५५ ई० ।

२- "The Scientific study and cataloguing of the numerous incidents which continually recur through out the Literature of a country has scarcely been commenced, much less the comparison of such motifs which similar ones in the folklore of other nations. :-

The Ocean of Story, Vol. I, p.30.

पीछों से सम्बन्धित कथाएँ । इस विभाजन से स्पष्ट है कि वर्तमानकाल में इन अभिप्रायों का कोई अस्तित्व^{ही} नहीं है, किन्तु यह विचार अब मान्य नहीं । विभिन्न कथाओं या काव्यों में प्रयुक्त अभिप्राय तो भूतकाल की प्रतिध्वनि के साथ - साथ वर्तमान की दुड़ गवाह हैं ।

हिन्दी में कार्य करने वाले विद्वानों में सर्व प्रथम डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" में भारतीय कथाओं में व्यवहृत होने वाली कुछ प्रमुख रूढ़ियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया और परवर्ती ऐतिहासिक काव्यों के सम्बन्ध में मूल्यांकन के लिए उनका महत्व प्रतिपादित किया । इसके बाद डा० सत्येन्द्र का "ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन" तथा "लोक साहित्य विज्ञान" में लोक कहानियों के अध्ययन के सिलसिले में अभिप्रायों का विश्लेषण, वर्गीकरण तथा टिप्पणी सहित वैज्ञानिक विवरण दिया गया है । मौलिक रूप में अभिप्रायों के अध्ययन का सर्वप्रथम ध्यान इस ओर इन्हीं का है । "कथासरित्सागर", तुन्देलखण्ड, बंगाल, कारवीर, राजस्थान, आतक आदि की कहानियों के अभिप्रायों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया । तथा भारतीय "प्रकारों" के आदि स्रोतों का वैदिक बीज-कथाओं और ब्रज-लोक कहानियों में अनुसंधान भी किया । डा० सावित्री-सरीन ने अपने प्रबन्ध "ब्रज की लोक कहानियों के अभिप्रायों का अध्ययन" में रिट्थ वाससन जैसी वैज्ञानिक-पद्धति पर लोक कहानियों के अभिप्रायों का अध्ययन किया । इन्होंने रिट्थ वाससन के अतिरिक्त लगभग ६०० से अधिक ग्रन्थ अभिप्रायों का उद्घाटन किया । उनका यह नवीन एक अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अभिप्रायों के वर्गीकरण में रोमन अक्षरों के स्थान पर देवनागरी के अक्षर प्रयुक्त किए हैं । श्री ब्रजवितास जीवास्तव ने अपनी पुस्तक "पृथ्वीराजरासोंमें कथानक रूढ़ियाँ" में अभिप्रायों के स्वरूपों, मूल स्रोतों तथा उनके वर्गीकरण पर महत्वपूर्ण कार्य किया है जो ऐतिहासिक काव्यों के अध्ययन में हिन्दी में नये ढंग का प्रथम प्रयास है ।

अभिप्रायों का वर्गीकरण

उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों के पर्याप्त यहाँ हम अन्य विभिन्न विद्वानों के अभिप्रायों के दिये गये वर्गीकरण की सूची न देकर सामान्य तौर

पर अभिप्रायों की दो कोटियाँ - (क) कथा-सम्बन्धी तथा (ख) काव्य-संबंधी, के अन्तर्गत जानकवि के प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त प्रमुख अभिप्रायों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इस विवरण में हिन्दी के अन्य प्रेमाख्यान-काव्यों में पाये जाते वाले अभिप्रायों का भी संकेत तुलनात्मक दृष्टि से किया गया है। यद्यपि कुछ विद्वान् समस्त अभिप्रायों को प्रेमाख्यात्मक - काव्यों के अन्तर्गत कवि-कल्पित मानकर कोटियाँ विभाजित नहीं करते और इन्हें एक ही रूप में प्रयुक्त करते हैं।

(क) कथा-सम्बन्धी अभिप्राय

(१) पुत्र-वियोग तथा विभिन्न प्रवर्तनों द्वारा संतानोत्पत्ति:-

इन प्रेमाख्यानों में कुछ नायकों के पिता पुत्रोत्पत्ति न होने से विवर्तित रहते विवर्तित हुए हैं। किसी धार्मिक गुरु, ज्योतिषी, रिद्ध या ब्राह्मण द्वारा जप, तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, वरदान या अन्य धार्मिक अनुष्ठान से इन कथा के नायकों का अन्य हुआ है। "कथा रतनावती" में राजा जगतराज को ज्योतिषियों द्वारा बताया जाने पर एक अन्य विवाह करने से पुत्र महिमोहन उत्पन्न हुआ है^१। "कथा पुष्पकरिणा" में राजा भूपाल को पुत्र पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिए बनेक दान-पुण्य करना पड़ा है^२। इसी तरह अन्य ग्रंथ "कथा सुभट्टराज" में राजा सूरजमल^३, "कथा कनकावती" में राजा भरत^४, "कथा जयदेव पातिताह" में राजा जयदेव^५ तथा "ग्रंथलैलामञ्जु" में जयवी^६ को विभिन्न प्रवर्तनों के बाद ही पुत्र की प्राप्ति हुई है।

सूफ़ी तथा असूफ़ी के काव्यों में भी यथा-"मुगावती", मंभन्कृत "मधुमावती", "विजयवती", "कथा सत्यवती", "कथा रत्नरत्न" तथा दुलहरन दास की "पुष्पावती" आदि में राजाओं को पुत्र-वियोग रहा है और बनेक अनुष्ठानों या वरदानों से पुत्र प्राप्ति हुई है। "पुष्पीराज रासों" में एक फल को १३ भाग में बाँटकर देने से राजाओं को संतानोत्पत्ति हुई है।

१- वी० - १०, ११।

२- वी० - १९, २०।

३- वी० - १।

४- वी० - ७।

५- वी० - १८।

६- वी० - १।

(२) भविष्यवाणी :-

"कथा रतनावती" में ज्योतिष्णी कुंवर महिमोहन के लिए भविष्यवाणी करते हैं कि १४ वर्ष के बाद उसे कष्ट भोगना पड़ेगा, तत्पश्चात् अभीष्ट को प्राप्त करते हुए वह सब सुखों का भोगता वीर राजा होगा^१। वही तरह "पद्मावत" में रतन्सेन^२, "विजावती" में सुवान^३ तथा "पुद्गमावती", "मृगावती" और ^{मैकुल्लुत} "मधुमालती"^४ में राजकुमारों के लिए भविष्यवाणी की गई है। दक्षिण के प्रेमात्मानों में इस प्रकार की भविष्यवाणी नहीं कराई गई है।

(३) जाकाशवाणी :-

यह भारतीय साहित्य का बहुत प्रचलित अभिप्राय है। संस्कृत काव्यों में प्रायः सब में इसका प्रयोग किया गया है। जाकाशवाणी एक प्रकार से परीक्षा रूप में अलौकिक शक्तियों द्वारा सहायता है। प्रायः किसी पात्र के उत्थान पूर्ण परिस्थिति में ही जाकाशवाणी होती है जिससे उसे पात्र की कठिनाई का समाधान हो जाता है। यह देववाणी होने से इसकी सत्यता भी निश्चित है। "कथानन्दमर्षती" में देवताओं द्वारा स्वयंस्व में दोनों बार जाकाशवाणी हुई है। इसी तरह पृथ्वीराजरासों में सङ्कटों समय में जाकाशवाणी हुई है।

(४) मूर्धितावस्था या विकलता :-

प्रमत्त उदय होते ही इन नायकों में विरह-प्रेम की विकलता विभित की गई है। "कथा कलामती" में राजकुंवर इन्दवदन् तथा राजकुमारी कलामती तोता द्वारा एक दूसरे का गुण-गवण कर, "कथा नन्दमर्षती" में नन्द तथा दमर्षती दोनों स्वप्न में एक दूसरे का दर्शन कर, "कथा रतनावती" में महिमोहन मुद्रिका पर अंकित विष-दर्शन से, "कथा रूपमर्षती" में जानसिंह, "कथा-कलामती" में परमरूप, "कथा रतनमर्षती" में मधुसूदन, तथा "कथा कामलता"

में राजा रसात स्वप्न-दर्शन से, "कथा कौतूहली" में सरबंगी, "कथा सीतवती" में बाबदार, "कथा कुलवती" में राजा कुतुबुद्दीन तथा "कथा मधुकरमानती" में नामक-नायिका दोनों साक्षात्-दर्शन से विकल हैं। इसी तरह "पद्मावती" में रतनसेन तोता द्वारा पद्मावती के गुण-वर्णन से, "मृगावती" में राजकुंवर, "मधुमानती" में मनोहर तथा "विशावती" में सुजान प्रेम का उदय होते ही परेशान तथा मूर्छित हो गये हैं। असूफी प्रेमाख्यान "डोलामाररादूहा" तथा "रसरतन" में भी नायकों में यह विकलता मिलती है।

(५) वैधोपचार:-

प्रेम के मूल रहस्य को जानने के पूर्व नायकों की विरह-विकलता पर "कथा रतनमंजरी", "कथा पुष्पजरिजा", "कथा नन्दमंजरी" तथा "कथा कौतूहली" में अभिभावकों द्वारा गौण की उपचार की व्यवस्था की गई है। इसी तरह "पद्मावती" में रतनसेन की मूर्छा देखकर कुटुम्ब के लोग, गुनी, जीभना, वैद्य तथा मन्त्र-कृत "मधुमानती" और "विशावती" में वैद्य राजकुंवरों की नाड़ी देखते हैं और उनके विरह प्रेम में घायल होने की बात बताते हैं।

(६) अपने समान से शादी करना:-

प्रायः इन काव्यों में नायक या नायिका अपने समान से या मनवाही शादी करने के लिए माता-पिता से जिद करते दीखते हैं। "कथा कौतूहली" में राजकुंवर इन्दुवदनु, "कथा सुभट्टराज" में राजकुंवर सुभट्टराज^१, "कथा रतनावती" में कुंवर महिमोहन तथा "कथा रतनमंजरी" में नामक-नायिका दोनों अपने समान से शादी करने का दुष्ट-संकल्प करते हैं।

(७) पूर्वजन्म की स्मृति:-

"कथा नन्दमंजरी" में नल तथा दमयंती की पूर्वजन्म की स्मृति बातें ही दोनों में पूर्वाज्जन्म से बिना देखे ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है^२।

१- बाप समान न पाऊं बीती । भूति व्याह नहि करिही तीती ॥२३॥

२- कुंवर कही करता की जान । नांवाहू बिनु बाप समान ॥५॥

३- बी० - ॥८॥

इसी तरह असूफी - काव्य "वीरसतदेवराज", "माधवानन्द कामन्दता", ननुभुवदास की "मधुमालती" तथा "सदयवत्सलावलिगा" में पूर्वजन्म की रसुति की कथाएँ कही गई हैं। सूफी काव्यों में पुनर्जन्म की कथा नहीं मिलती।

(=) वेश-परिवर्तन:-

(क) योगी-वेश:-

प्रेम का संवार हो जाने के बाद नायक योगी का रूप धारण कर नायिकाओं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। "कथा कलावती" में पुरन्दर^१, "कथा रतनमंजरी" में मधुसूदन^२, "कथा छीता" में राजा-राम^३, तथा "कथा रूपमंजरी" में ज्ञानसिंध योगी रूप में कथा, छाता, बीणा, सप्पार, भाम आदि की धारणाएँ कर ले निकलते हैं। इसी तरह हिन्दी के सूफी प्रेमालम्बन "मधुमावत" में रतन्नेन^४, संस्कृत "मधुमालती" में मनोहर^५, "विजावती" में सुजान^६, "मृगावती" में नायक राजकुंवर तथा असूफी प्रेमालम्बन "रसरतन" और "सदयवत्सलावलिगा" में भी नायक योगी बनकर निकलते हैं। अपभ्रंश की रचनाएँ "लीलावती कथा", "कर्पूरमंजरी", "बसेहरबरिड" आदि में भी नायक योगी-वेश में नायिकाओं को प्राप्ति-हेतु चलते हैं^७।

(ख) बन्ध-वेश:-

"कथा कौतूहली" में नायक अरबंगी माली-वेश में^८, "कथा कनकावती" में परमरूप एक सन्ध्यासी से "कञ्जपनिधि विद्या"^९ सीकर अदुरय रूप में, "ग्रंथलैलीमजनुं" में मजनुं बन्धा तथा भिलारी-वेश में^{१०}, "कथा नन्दमयंती" में दुबारा स्वयंवर में नर रूप परिवर्तन कर^{११} तथा "कथा सतवंती" में एक घूर्त, सौदागर का रूप ग्रहण कर विव्रित हुए हैं।

१- वी० - १९।

२- वी० - १८३ तथा १८४।

३- वी० - ३१ तथा ३२।

४- छंद - १२६।

५- पृष्ठ - ५१।

६- पृष्ठ १०४।

७- विस्तार के लिए देखिए- डा० रामसिंह तोमर-"प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य" पृ० २७४-२७५, १९६४ ई०।

८- वी० - २५, २४, ४० तथा ४१। ९- दो० - ४०।

(९) बीणा-बादन :-

"कवा कौतूहली", "कवा कलावंती" तथा "कवा छीता" में नायक बीणा बजाते हुए नायिका के प्राप्त-हेतु पर है निरुक्त हैं। बीणा-बादन दोनों के मिलने में बहुत सहायक हुआ है। इसी तरह मसूफ़ी प्रेमाख्यान "छितार्द-वार्ता", "माधवामल कामन्दला", "रसरतन", "पुहुपावती" में भी नायक बीणा-बादन करते हैं। हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में नायक बीणा-बादन नहीं करते हैं, बल्कि किंगरी बजाते या राग बजाते हैं। फ़ारसी के सूफ़ी कवि तथा चिरितया-संप्रदाय वालों ने संगीत को महत्व दिया है।

(१०) मैत्री-पुत्र या मित्र साथ ले जाना :-

वे विभिन्न संकटकारीन परिस्थितियों में नायक के उत्थान प्रवृत्ति में सहायता, सहयोग तथा परामर्श देते हैं। "कवा रतनावती" में मैत्री-पुत्र उत्तम, "कवा रूपमंजरी" में मित्र न्यायतिथि, "कवा सुभट्टराज" में मैत्री के चार पुत्रों, "कवा पुहुषवरिष्ठा" में मित्र महानंद तथा "कवा कामरानी वा पीतमदाल" में चार मित्री को नायक अपने साथ नायिका की खोज में ले जाते हुए चित्रित किए गये हैं। वे मित्र नायक की विभिन्न परिस्थितियों में सहायता करते हैं। नायक के विवाह होने के बाद प्रायः इनका भी विवाह किसी न किसी नायिका से हो जाता है।

(११) नौका दुर्घटना :-

समुद्र यात्रा के समय जलपोत या नाव का टूटना या डूबना और काष्ट-फलक के सहारे नायक तथा उसके मित्र या नायक-नायिका का अलग-अलग दो विपरीत दिशाओं में बहकर जाना और उनकी जीवन-रक्षा, प्रेमाख्यानों का उत्थान प्रवृत्ति अभिप्राय रहा है। "कवा कवतावती" में इन्दुवदन् तथा कवतावती पाणिग्रहण के पश्चात् स्वदेश लौटते समय समुद्र के भंवर में नाव पड़कर टूटने पर दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। और काष्ट-फलक के सहारे जाकर विपरीत दिशा में सगते हैं। इसी तरह "कवा मधुकरमातली" में मधुकर तथा

१- फाटि नाव दल जाटन भई । ईद कई कवता कई गई ।।

सगरी संग बह्यौमधि जानी । जीवत जे राह जी रानी ।।५२।।

मातृती दोनों रविवेश लौटते समय नाव के फट जाने से विपरीत दिशा में बह जाते हैं^१। "कथा रत्नावली"^२ में राजकुंवर महिमोहन अपने मित्र उषम तथा "कथा-पुष्पविरिञ्चा"^३ में पुरनका-म मित्र महानंद से समुद्र में नौका यात्रा करते समय नाव फट जाने से काष्ठ-फलक के सहारे विपरीत दिशा में गये हैं।

ऐसे ही सुफुली प्रेमाख्यान "पद्मावती"^४ में पद्मावती के साथ रतन्सेन के लौटते समय, मयंकृत "मधुमावती"^५ में मनोहर के योगी-वेश में जाते समय, "विजयावती"^६ में सुवान के जाते समय, गवासी कृत "सैफुलमुलूक व पदी उलज-माल"^७ में सैफुलमुलूक को चीन से कुस्तुनगुनियां लौटते समय तथा "कुतुबमुतरी"^८ में भी नायक नौका के तूफान में फँसे हैं। असुफुली प्रेमाख्यान "पुष्पावती" में भी राजकुंवर की नौका दुर्घटना-ग्रस्त हुई है। "कथा सरित्सागर", "दशकुमार-विरित", "समरादित्यविरित", तथा "पार्वनाथ-विरित" में भी इसका बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। ग्रीष्मी के कथा - साहित्य में इस दृष्टि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। शेक्सपियर के "टेम्पेस्ट" में नौका-दुर्घटना हुई है।

(१२) उजाड़ जंगल में कष्ट सहना: क

नायक, नायिका या नायक के मित्र कभी-कभी जवानक या किसी घटना के बाद उजाड़ जंगल में पहुँच जाते हैं और भटकते हुए अनेक कष्टों का सामना करते हैं। "कथा नलदम्वती" में युवा में सब कुछ हार जाने के बाद नल तथा दम्वती जंगल में भटकते अनेक कष्ट सहते हैं^९। "कथा कवलावती" में एक देव दैम्यसि इन्दवदन् तथा कवलावती को "इन्द्रसभा" से उठा ले जाकर जंगल में छोड़ देने से दोनों बहुत दिनों तक अनेक कष्ट सहते हैं^{१०}। "कथा रतनमंजरी" में एक देव राजकुंवर की ले जाकर जंगल में छोड़ जाता है^{११}। "कथा तमीम जंसारी" में एक

१- बी० - १५।

२- बी० - १५।

३- बी० - ६४।

४- छंद- ३९०।

५- पु० - ५४।

६- पु० - २३२।

७- पु० - ७१ तथा ७२।

८- पु० - १९६ से २०१ तक।

९- सवैया- ४१ से ४ तक तथा बी० - ६८ से ८८ तक।

१०- बी० - ९६ से १२२ तक।

११- बी० - २०१-२२० तक।

मातली दोनों रजदेश लौटते समय नाव के फट जाने से विपरीत दिशा में बह जाते हैं^१। "कथा रत्नावली"^२ में राजकुंवर महिमोहन अपने मित्र उषम तथा "कथा-पुहुपवरिका"^३ में पुराणीम मित्र महानंद से समुद्र में नौका पाया करते समय नाव फट जाने से काष्ठ-फलक के सहारे विपरीत दिशा में बगे हैं।

ऐसे ही सूफ़ी प्रेमाख्यान "पदमावली"^४ में पदमावली के साथ रतनसेन के लौटते समय, मीमांसा "मधुमावली"^५ में मनोहर के योगी-वेश में जाते समय, "विभावली"^६ में सुवान के जाते समय, गवासी कृत "संफुल्लमुलूक व पदी उलूक-माल"^७ में संफुल्लमुलूक की बीन से कुस्तुनुस्त्रियाँ लौटते समय तथा "कुतुबमुस्तरी"^८ में भी नायक नौका के तूफ़ान में फँसे हैं। जसूफ़ी प्रेमाख्यान "पुहुपावली" में भी राजकुंवर की नौका दुर्घटना-ग्रस्त हुई है। "कथा सरित्सागर", "दाशकुमार-चरित", "समरादित्यचरित", तथा "पार्वनाथ-चरित" में भी इसका बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। ग्रीष्म के कथा - साहित्य में इस दृढ़ि के ज़ेक उदाहरण मिलते हैं। शेक्सपियर के "टेम्पेस्ट" में नौका-दुर्घटना हुई है।

(१२) उजाड़ जंगल में कष्ट सहना: क

नायक, नायिका या नायक के मित्र कभी-कभी उजाड़ या किसी घटना के बाद उजाड़ जंगल में पहुँच जाते हैं और भटकते हुए ज़ेक कष्टों का सामना करते हैं। "कथा नन्दमर्षती" में जुग में सब कुछ हार जाने के बाद नल तथा दमर्षती जंगल में भटकते ज़ेक कष्ट सहते हैं^९। "कथा कलावती" में एक देव दैर्घ्यसि इन्द्रवदन् तथा कलावती को "इन्द्रसभा" से उठा ले जाकर जंगल में छोड़ देने से दोनों बहुत दिनों तक ज़ेक कष्ट सहते हैं^{१०}। "कथा रतनमंजरी" में एक देव राजकुंवर की ले जाकर जंगल में छोड़ जाता है^{११}। "कथा तमीम जस्तारी" में एक

१- बी० - १५ ।

२- बी० - १५ ।

३- बी० - ६४ ।

४- ईद- १९० ।

५- पु० - ५४ ।

६- पु० - २३२ ।

७- पु० - ७१ तथा ७२ ।

८- पु० - १९६ से २०१ तक ।

९- सबैया- ४१ से ४ तक तथा बी० - ६८ से ८८ तक ।

१०- बी० - ९६ से १२२ तक ।

११- बी० - २०१-२२० तक ।

प्रेत तमीम को ले जाकर जंगल में छोड़ देता है । "कथा रतनावती" में महिमोहन तथा मंत्री-पुत्र उत्तम दोनों नाँका-दुर्बटना से एक दूसरे से विलग होकर उजाड़ जंगल में भटकते हुए अनेक कष्ट सहते तथा कौतुक देखते हैं^१। "ग्रंथ तैलमजनुं" में मजनुं वन-वन भटकता और कष्ट सहता है^२। इसी तरह सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रमात्माओं में भी नायक या नायक-नायिका के दोनों को उजाड़ जंगल में कष्ट सहना पड़ता है ।

(१३) उजाड़ नगर का मिलना: क

इसकी सबसे ज्यादा बर्बा लोक-कथाओं में मिलती है । यह ऐसा अभिप्राय है जिसमें अनेक छोटे अभिप्राय(माइनर मोटिफ़्स) पिरोये रहते हैं । "कथा रतनावती" में मंत्री-पुत्र उत्तम नायक से वलग हो जाने पर एक उजाड़ नगर में पहुँचता है और वहाँ का राजा बन बैठता है^३। इसी तरह "जैन कथा-कोश", "कथा-सरित्सागर", "पंचतंत्र" तथा पंजाब की रोमांटिक कहानियों में इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है ।

(१४) पक्षी का लेकर उड़ना:-

यह कोरा काल्पनिक अभिप्राय है । उसमें पक्षी नायकों को ऐसे स्थान तथा इतने जल्दी उड़ाकर ले जाते हैं जोकि मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर की बात होती है । "कथा रतनावती" में एक पक्षी राजकुंवर महिमोहन को सिंहसलीप उड़ा ले जाता है जहाँ उसे पद्मिनी रतनावती के प्राप्ति का साधन बताती है^४। "कथा रतनमंजरी" में पक्षी दो बार कुंवर मधुसूदन को उड़ाता है । पहली बार उड़ाकर ऐसे उपवन में पहुँचाता है जहाँ नायिका को प्राप्त करने में सहायता मिलती है और दुबारा पुनः पूर्व स्थान पर लाकर छोड़ देता है^५। "कथा बलुकिबा बिरही"^६ में एक पक्षी नायक को कैकुण्ठ तथा "कथा तमीम जंशारी" में एक शुद्धमूर्ति पक्षी ने नायक को कीदतूर, उड़ाकर पत्थर में पहुँचा दिया है ।

१- बी०- ४६ से ११६ तक ।

२- बी०- ५२, ६२ ।

३- बी०- ११६ ।

४- बी०- ७० से ७२ तक ।

५- बी० - १११ से १२० तक तथा १६६ से १८२ तक ।

६- बी० - १२३ ।

७- बी०- ८०, ८१ ।

(१५) जंगली जानवर:-

प्रायः इन कहानियों में हाथी, सिंह, सर्प, चीड़ा, ऊँट, या अन्य जंगली जानवर कभी नायक या नायिका की कठिनाइयों में सहायता करते तो कभी कष्ट देते हुए दिखाने देते हैं। "कथा रतनमंजरी"^१, "कथा रतनावती"^२ तथा "कथा कवलावती"^३ में हाथी, चीड़े, सर्प आदि जंगली जानवर नायकों को तथा "कथा सुभट्टराज"^४ में उदीची, प्रतीची तथा जवानी की राजकुमारियों को कष्ट देते हुए चित्रित किए गये हैं। इसके विपरीत "कथा बलूकिया विरही"^५ तथा "गुणवतीमवनु"^६ में ये जंगली जानवर नायकों की सहायता करते हैं। "कथा नन्दमर्षती"^७ में सर्प कभी नायक की सहायता तो कभी कष्ट देते चित्रित हुए हैं।

(१६) अप्सरारों या परियों:-

प्रायः अप्सराओं एवं परियों की कल्पना सभी देशों में मिलती है। इनका प्रयोग प्रेमास्थानों में नायिका तथा प्रेम-व्यापारदोनों रूपों में किया गया है। इनके संबंध में विश्वास किया जाता है कि वे जब चाहे अदृश्य हो सकती हैं, अपना रूप बदल सकती हैं, किसी को उड़ा ले जा सकती हैं और मानव के साथ प्रेम संबंध स्थापित कर सकती हैं। "कथा रतनावती" में नायक महिमोहन अप्सरा रतनावती से पद्मिनी की सहायता से शादी करता है^८। "कथा पुहुपवरिका" में अप्सराएं निरमल दे तथा परमल दे दोनों जहिन नायक पुरुषोत्तम की सहायता करती हैं^९। "कथा तमीम अंसारी" में एक साहसरी दुवा सिखाकर भूत, प्रेत, ठग आदि से तमीम की रक्षा करती है^{१०}। "कथा बलूकिया विरही"^{११} तथा "कथा मधुकरमातली" में भी अप्सराएं नायक की मदद करते चित्रित की गई हैं। इन सबके विपरीत "कथा कवलावती" में अप्सराएं कुंवर की

-
- | | |
|---|------------------------------------|
| १- चौ०- २१५ से २१८ तक । | २- चौ०- ६३ तथा ९२ ,। |
| ३- चौ०- १०९ से १११ तक । | ४- चौ०- १०, १६ । |
| ५- दोहा - ३४ से ३७ तक । | ६- चौ०- ५२ तथा ६७ । |
| ७- चौ०- ८१, ८२ (कष्ट) तथा ९५ से ९९ तक (सहायक) । | |
| ८- चौ०- ८२ । | ९- चौ० ९७ से ९९ तक । १०- चौ०- ६७ । |
| ११- चौ०- ८७ । | |

ले जाकर पर्वत के लोह में छोड़ देती है जिससे उसे जनेक कष्ट सहना पड़ा है^१। ऐसे ही अन्य सुफुली तथा असुफुली प्रेमाख्यानों में अप्सराओं की कल्पना की गई है। चतुर्भुजदास की "मधुमातली"^२ में विजसारी में अप्सराएँ मनोहर की मदद कर मधुमातली से मिलती हैं।

(१७) देवी-देवता:-

इन कथाओं में देवी-देवता कभी नायक के भाग्य - निर्माता रूप में उनकी सहायता करने जाते तो कभी कष्ट देते दीखते हैं। "कथा रतनावती" में एक देव नायक महिमोहन को रूपगुरी उड़ाकर पहुँचा देता है जहाँ रूपभा की सहायता से रतनावती को प्राप्त करने में सुगमता हुई है^३। "कथा नन्दमर्षती" में दोनों बार स्वयंवर में देवता दम्पती से छल करते हैं तथा बाद में उसकी प्रशंसा करते हैं^४। "कथा कलामती" में देवगण दम्पति को सोते हुए "नन्दमर्षती" में उठा ले जाते हैं और वापस लाने पर दोनों को जलग-जलग जंगल में छोड़ देते हैं जिससे जनेक कष्ट होता है, किन्तु बाद में गरुड की कृपा से कष्ट का निवारण होता है^५। "कथा रतनमंजरी" में एक देव कुंवर को जनेक कष्ट देता है^६।

इसी तरह "पद्मावती" तथा "विजयवती" में शिव एवं पार्वती सहायता करते हुए दीखते हैं। 'पद्मावती' में शिव-पार्वती बेश बदलकर आते हैं। पार्वती रतनसेन की परीक्षा लेती है तथा शिव पद्मावती के प्राप्ति का साधन बताते हैं^७। संसार भर के, विशेषकर जार्ज जातिवों के साहित्य- मुनानी, सैटिम, भारतीय, द्यूटान्ति जादि में ऐसे जनेक प्रसंग भी पड़े हैं।

(१८) राक्षस, बला जादि:-

दानवों की कल्पना किसी न किसी रूप में सभी देशों के कथाओं में मिलती है। इनको अन्य तत्वों के साथ अनुवर रूप में स्वीकार कर

१- चौ०- १५८ से १६२ तक।

२- पु० - २१।

३- चौ० - ११२।

४- चौ०- ५५ से ५८ तक तथा १२३ से १२६ तक।

५- चौ०- ९६ से १२६ तक।

६- चौ० - २०३ से २११ तक।

७- छंद- १०७ से २१६ तक।

लिखा गया है। "कथा पुष्पगिरिजा", "कथा रतनमंजरी", "कथा रतनावती", "कथा सुभट्टराज" तथा "कथा कल्लावती" में राधास वंगल में नायक या नायिकाओं को अनेक कष्ट देते पाये जाते हैं, किन्तु नायक किसी न किसी रूप में इन सब का संहार करते जागे बढ़ते जाते जाते हैं। सुफली प्रेमाख्यान "मृगावती", चतुर्भुजदास की "मधुमावती" तथा "सैफुल-मुलुक व तदी सख्तमाल" में राधासों की कल्पना सहायक रूप में हुई है।

(१९) भूत, प्रेत, ठग आदि:-

देवी-देवताओं में विश्वास के समान ही भूत, प्रेत में विश्वास आदिम मानव-समाज की वस्तु है। समस्त संसार के पुराने धर्मों, लोक-कथाओं तथा शिष्ट-साहित्य में यह विश्वास अभिव्यक्त पाता रहा है। "कथा रतनावती" में वंगल में प्रेत कुंवर की ठग ले जाकर अनेक कष्ट देता तथा भय दिखता है^१। "कथा बलूकिया विरही" में नायक को ईश्वरोन्मुख बनाने में रास्ते में अनेक पिशाच, भूत, प्रेत आदि मिलते हैं, किन्तु नबी का नाम सुनकर कष्ट नहीं देते। "कथा कल्लावती" में देवताओं द्वारा वंगल में छोड़ देने से भूत, प्रेत, नायक तथा नायिका को कष्ट देते हैं^२। "कथा तमीम जंसारो" में पूरा ग्रंथ ही प्रेतों के प्रलय से भरा पड़ा है। प्रेतों को अनेक मंजिले नायक को पार करना पड़ता है। ये कभी कष्ट नायक को देते हैं, तो कभी सहायता करते हैं।

(२०) तंत्र-मंत्र, जादू, टोना आदि:-

भारतवर्ष में इनकी बहुत प्राचीन परम्परा मिलती है। वैदिक काल के जयर्वेद से ही तंत्र-मंत्र, जादू, टोना की बात मिलती है परवर्ती काल में जाकर तो इनका महत्व और बढ़ता गया है। सिद्धों, नाथों तथा योगियों से इनका अनिच्छित संबंध है। लोक-साहित्य तथा प्रेमाख्यान-साहित्य में विशेषकर सुफली प्रेमाख्यान कवियों में योग-सम्बन्धी अधिप्राय खूब अपनाए गए हैं। जादू-टोना तो तंत्र-मंत्र के कोटि की ही गहन विधायें हैं। "कथा-

तमीम जंसारो" में पुरा ग्रंथ तंत्र-मंत्र एवं जादू-टोना की बातों से भरा पड़ा है। साहपरी के मंत्र सिद्धा देने से ही तमीम भूत-प्रेतों के जादू-टोना से अपनी रक्षा कर पाता है। "कवच रूपमंजरी" में एक तपावी के मंत्र से ही नायक-नायिका योगी-योगिनि कैश में हो जाते हैं। "पुष्पकीरावरासों" में कई स्थलों पर मंत्र-तंत्र द्वारा मुद्ग का वर्णन हुआ है।

(२१) जीवित या मृत मछली:-

"कथा रतनावती" में राजकुंवर महिमोहन जनेक कौतुकों के साथ डूबती हुई मीन देखता है^१। "कथा नन्दमर्बती" में जंगल में सरिता के किनारे नल तथा दमर्बती मछली पकड़कर पकाते हैं, किन्तु पकी हुई (मरी हुई) मछली भी विषमिति की अवस्था में पुनः पानी में बली जाती है। यह कौतुहल देखकर दोनों जारवर्मान्वित रह जाते हैं^२। "कथा चन्द्रसेन राजा सीतनिधान" में राजा चन्द्रसेन जब तीसरी बेरी पूरवनी के पास जाता है तो वह एक तैरती हुई मीन देखकर लज्जा से घुंघट बढ़ा लेती है। इस रहस्य को जानकर राजा मीन को मारता है^३। "कथा मणुकरमातली" में मणुकर मछली के पेट से पांच रत्न-पदार्थ पाकर उसे वजीर को देकर मातली को प्राप्त करता है^४। इसी तरह "कथा बलूकिया विरही" में नायक बलूकिया सागर में तैरती जनेक मीन देखता है। मछली के जीवित या मृत होने की यह कल्पना कथाओं में केवल कुतूहल की सृष्टि के लिए ही हुई है।

(२२) किसी महापुरुष या बुद्ध का मिलना:-

"कथा रतनावती" में कुंवर महिमोहन बाग में एक बुद्ध पुरुषा से सलाह लेता है और वह बाग का रक्षक बताता है^५। "कथा कामरानी वा पीतमदास" में एक बुद्ध विग्रह देखकर नायिका के प्राप्त होने की सारी बात बताता है^६। "कथा तमीम जंसारो" में एक "मानव" तथा "बुद्धा-वृत्ती" तमीम को

१- बी०- ६९ ।

२- बी०- ६९, ७० ।

३- दोहा- ११ तथा बी० - १२ । ४- बी० - १४ ।

५- बी०- ६४, ६५ ।

६- बी० - २ ।

पदी ना पहुँचाने में सहायक हुए हैं^१। "ग्रंथसैलमञ्जु" में मञ्जु का पिता एक बृद्ध से मञ्जु के संबंध में सलाह लेते हुए विवक्षित किया गया है^२। इसी तरह "कथा रतन-मंजरी" तथा "कथा नन्दमर्बती" में भी "पुराण" नामकों को सलाह देते हैं। इन बृद्धों की सलाह से कथात्मक को विकास और नायकों को दिशा-निर्देश मिलते हैं।

(२३) गुरु-सहिष्णुता:-

"कथा कवतावती" में गुरु कुंवर इन्दरबदन को "मूली" देख कर कवतावती के पास तक पहुँचाने में सहायक हुआ है^३। "कथा रूपमंजरी" में एक तपस्वी गुरु नायक-नायिका का विवाह गाँउ जोड़कर सम्पन्न कर देता है और मंत्री की सहायता से योगी-योगिनि-वेश में नायक के स्वदेश पहुँचा देता है^४। इसी तरह "कथा छीता" तथा "कथा रतनावती" में गुरु सहायता करते हैं। "कथा मयूरमासती" तथा "ग्रंथसैलमञ्जु" में नायक-नायिका में प्रेम का उदय वषट्पन में ही पाठशाळा में गुरु के निरीक्षण में हुआ है। जिस तरह "कथा रतनमंजरी"^५ में एक पक्षी गुरु रूप में प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार "पद्मावती"^६ में हीरामन सीता तथा "विजयवती"^७ में परेवा पक्षी गुरु रूप में विवक्षित हुए हैं।

(२४) रूप-परिवर्तन:-

किसी सन्ध्यासी, गुरु या जन्म के मंत्रादि के सहायता से रूप-परिवर्तन के ये विभिन्न अभिप्राय इन प्रेक्षास्थानों में कई रूपों में मिलते हैं। यथा- बद्धभुत - विषा सीख लेने से बदरूप होना, मंत्र से वेश-परिवर्तन, किसी विशेष निषेध (Taboo) का उल्लंघन करने पर मानव से पक्षी बना देना, किसी स्त्री के पास उसके पति का रूप धारण करके जाना आदि।

१- द्रो०- ११२ से १४० तक।

२- चौ०- १९।

३- चौ०- १२०, १२८।

४- चौ०- १०- ४२ तक।

५- चौ०- ११९।

६- छंद- २४०।

७- कु०- १८।

"कथा कनकवती" में एक सन्यासी परमरूप को "कच्छपनिधि" किया गया और अद्वय किया है। "कथा रूपमंजरी" में गुरुमंत्र नायक-नायिका को योगी - योगिनि वेश में परिवर्तित दिया है। "कथा पुष्पपरिष्कार" में ^{रूप}कुम्भनिधि जगन्नी पुत्री सुकेसी को लोक लज्जा से बचने के लिए पद्मिनी बना दिया है। "कथा सतवती" में एक धूर्त सतवती के पास उसके पति सौदागर मन्सूर का रूप धारण कर गया है, किन्तु असफल रहा। इसी तरह "साहित्यिक जाफ़ टोरीज़" (Cycle of Stories) में इन्द्र गौतम का रूप धारण कर अहिल्या के पास गये हैं। "कथा सरित्सागर" के कर्त्तव्य सेना की कथा में तथा "पंचतंत्र" में उसके और विभिन्न रूपान्तर मिलते हैं।

इन्के अतिरिक्त नायकों का योगी-वेश धारण करके नायिकाओं के पास हेतु पर से निष्कतमे का विग्रह पीछे किया जा चुका है।

(२५) स्वयंवर:-

"कथा नलदम्पती" में दो बार स्वयंवर का प्रसंग आया है। एक बार नलदम्पती के शादी हेतु तथा दुबारा नल की लीज के लिए। इसी तरह "लक्ष्मणन पदमावती" "पुष्पावती" तथा "रसरतन" में स्वयंवर द्वारा ही विवाह हुआ है।

(२६) परीक्षा-विषयक:-

(क) सत्य की परीक्षा:-

कवि के समस्त सतपरक प्रेमात्म्यानों में नायिकाओं के पति के परदेश चले जाने पर किसी धूर्त या व्यवित द्वारा कुटनियां भेजकर उनके सत्य की परीक्षा ली गई है। "कथा सीतवती" में बाबदार द्वारा दो, "कथा कुलवती" में कुतुबुद्दीन द्वारा पाँच, "कथा सतवती" में एक धूर्त द्वारा चार कुटनियां तथा "कथा निरमल" में एक राजा द्वारा एक पाद भेजकर नायिकाओं के सत्य की डिगामे का प्रवास किया गया है। किन्तु किसी न किसी रूप में नायिकाओं द्वारा इन कुटनियों तथा प्रेमियों की दुर्गति की गई है। "कथा-पुष्कर मातली", "कथा छीता", "कथा विडम्बना देवतदे" तथा "कथा चन्द्रसेन राजा सीतानिधान" में भी नायिकाओं के सत्य की परीक्षा ली गई है, किन्तु

इन्की कसौटी कुछ और है। "कथासरित्सागर" के सम्बन्ध ४ में उपाकीया की कहानी में तथा "वीरसतदेवरास", "छितार्थवार्ता", "मैनासत" एवं वात्स्यायन के "कामसूत्र" में ऐसे ही कुटुम्बों बाँकर नायिकाओं का सत्य चित्रण आता है, किन्तु अन्ततोगत्वा वे सफल नहीं हो पाती।

(ब) तेज या साहस की परीक्षा:-

इसमें नायिकाएँ नायक के बुद्धि, उल्कर्ष, तेज या साहस की परीक्षा लेने के लिये पहेलियाँ बुझाती हैं और बाद में पाणिग्रहण करती हैं। "कथा मोहनी" में नायिका मोहनी द्वारा पूछे गये १० पहेलियों के उत्तर देने पर ही मोहन से विवाह सम्पन्न हुआ है। "कथा छवि सागर" में गुप्तागर काजिदास की तरह छवि सागर की चार पहेलियों का मौन में उत्तर देकर उससे पाणिग्रहण करता है। दुर्गराजदास की "पुद्गुपावती" में भी यह प्रसंग मिलता है।

इस प्रथा में जहाँ एक ओर लोकगीतों के परम्परा का अनुसरण मिलता है, वहीं दूसरी ओर भारतीय धर्म-शास्त्रों का सैद्धान्तिक रूपों यजुर्वेद, संहिता आदि में भी पहेलियाँ बुझाने की प्रथा मिलती है।

(ग) प्रेम-परीक्षा:-

"कथा छीता" में राजा जलाशहीन छीता और राम की प्रेम परीक्षा लेकर दोनों का पुत्रीवत् पाणिग्रहण करवाता है^१। "कथा मधुकरमालती" में बगदाद का बगदाद हार्दून रशीद मधुकर एवं मालती की प्रेम-परीक्षा लेकर दोनों को मिला देता है^२। इसी तरह "माधवान्तकामकदला" में विक्रमादित्य प्रणवी एवं प्रेयसि का मिलन प्रेम-परीक्षा लेकर कराया है।

(१७) पर्दे की जोट से प्रेम:-

"ग्रंथलैलैमनू" तथा "कथा मधुकरमालती" में चटसार पड़ने जाने पर जब लैला-मनू तथा मधुकर-मालती में प्रेम का संसार हो जाता है तो गुरु दोनों के बीच पर्दा बनवा देता है, किन्तु फिर भी दोनों पर्दे के जोट से प्रेम

बढ़ाते जाते हैं। इसी तरह बभ्रुवर्धन की "मधुमावती" तथा "सदयवत्सलसखीविगा" में पर्दे के गोट से नायक-नायिका^{में} प्रेम हुआ है। मावर्षिगा तो गोपनीय रूप में दूरी की पाँच मुहरे देकर पर्दे में छिद्र करवा लेती है ताकि दोनों एक दूसरे को देख सकें।

(२८) अग्रम-प्रेम :-

यह अभिप्राय सामंत युग से ही विद्यमान है। उसमें राजा कभी बेरीसे तो कभी किसी नीच जाति की स्त्री से प्रेम करते देखे जाते हैं। "कवा कर्तदर" में राजा पातिसाह १० हजार मुहरे देकर बार बेरियों को खरीदता है-तथा उनके प्रेम करता है। "कवा बन्दसेन राजा सीतनिधान" में राजा बन्दसेन ठेढ़ लाह में सौदागर द्वारा तीन बेरियाँ खरीद कर उनके प्रेम करता है। "कवा कुलवती" में राजा कुतुबुद्दीन सौदागिरिन से प्रेम करने के लिए पाँच कुटीयों के साथ स्वयं प्रवास करता है, किन्तु असफल रहता है। "बाँदी नावा" में पिशा बघनी घतनी को त्याग कर बाँदी बेरी से प्रेम करते हैं।

(२९) नायिका के प्रेम न करने पर अनेक कष्ट:-

"कवा मधुकरमावती" में मावती के रूप-सीन्दर्य पर अनेक राजा तथा उनके वजीर मोहित होते हैं, किन्तु किसी से प्रेम न करने पर उसकी कभी संदूक में बन्द करवा के पानी में, तो कभी भाकसी में फेंकवाकर अनेक कष्ट देते हैं। "कवा कामरानी का पीतमदास" में कामरानी के प्रेम न करने पर राजा राम उसकी कष्ट देता है। "कवा ज़रदखेर पातिसाह" में ज़रदुवान की पुत्री के छल करने पर राजा ज़रदखेर गर्भवती बग़वान में उसकी बर से बाहर निकलवा देता है। "कवा कबलावती" में "इन्द्रसभा" से वापस जाने पर एक देव कबलावती पर मोहित होता है, किन्तु प्रेम न करने पर उसकी से जाकर बीहड़ जंगल में छोड़ देता है जहाँ वह अनेक द कष्ट सहती है।

(३०) वैवाहिक-सम्बन्ध के तिरस्कृत करने पर बुढ़:-

"प्रवृत्तिमजनु" में लैला के पिता के वैवाहिक-सम्बन्ध के तिरस्कृत करने पर लैला को पाने के लिए मजनु का पिता बुढ़ करता है। "कवा कामरानी का पीतमदास" में राजाराम कामरानी को पाने के लिए बुढ़ करता

है। "कथाछीता" में अताउद्दीन बुद्ध करता है और छतमूर्ख छीता को दिल्ली पहुँचा देता है। इसी तरह "कथा नरदत्तेरपातिसाह" में, "कथा विग्रहा देवतदे", "कथा कनकावती" तथा "कथा कौतूहली" में बुद्धों के प्रसंग है।

(३१) बहुत-सी रानियाँ रहना:-

इन प्रेमाख्यानों में कुछ नायक या नायक के पिता दो या अनेक रानियाँ रखे दीखते हैं। "कथा कनकावती" में कुंवर पुरन्दर जाठ-विवाह करने के बाद भी कनकावती के रूप-सौंदर्य पर मोहित होकर एक और विवाह करता है^१। "कथा रतनावती" में अमृतपुरी का राजा जगतसाह अनेक पत्नियों के रहने पर भी पुनः - विवोग से पुनः शादी करता है^२। "कथा विग्रहा देवतदे" में नायक तथा नायक के पिता दोनों दो-दो रानियाँ रखते हैं। "कथा सुभट-राव"^३ तथा "कथा चन्द्रसेन राजा सीतनिधान"^४, में राजाओं के बार-बार रानियाँ, "कथा कर्तदर" में कर्तदर के बार बैरियाँ, तथा "कथा कनकावती", "कथा रूपमंजरी" एवं "कथा नरदत्तेर पातिसाह" में राजाओं के अनेक रानियाँ हैं।

इसी तरह यथान्कृत "मधुमातली" को छोड़कर उ्पर भारत के लगभग समस्त सूफ़ी प्रेमाख्यान ग्रंथों में नायकों के जीवन में प्रायः दो नायिकाएँ प्रवेश करती हैं। असूफ़ी प्रेमाख्यान "मैनासत", "प्रेमप्रगास", "ढोलामादुरादूहा", "सदयवत्सलावर्तिगा" आदि में भी नायकों के दो-दो पत्नियाँ हैं। "छिताई-वार्ता" में अनेक रानियाँ हैं।

(३२) भाग्य-परिवर्तन:-

जीवन में अनेक कार्य ऐसे भी होते हैं जो संयोग से घटित होने पर इतने विस्मयकारी और कार्य-कारण की शृंखला से रहित होते हैं कि इनमें मानव की बुद्धि काम नहीं करती है। इसलिए इनके संबंध में निरिबत रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। प्लेटों जैसे दार्शनिक भी भाग्य को किसी न

१- दोहा - ७ ।

२- चौ० - ११ ।

३- चौ० - १ ।

४- चौ० - ७ ।

है। "कथाछीता" में जलाशयीन बुद्ध करता है और छलपूर्ण छीता को दिल्ली पहुंचा देता है। इसी तरह "कथा जयदेवपातिसाह" में, "कथा विजयदेव", "कथा कनकावती" तथा "कथा कौतूहली" में बुद्धों के प्रसंग है।

(३१) बहुत-सी रात्रियाँ रहना:-

इन प्रेमाख्यानों में कुछ नायक या नायक के पिता दो या अनेक रात्रियाँ रहने दीवते हैं। "कथा कनकावती" में कुंवर पुरन्दर आठ-विवाह करने के बाद भी कनकावती के रूप-सौंदर्य पर मोहित होकर एक और विवाह करता है^१। "कथा रतनावती" में जमुतपुरी का राजा जगतसाह अनेक पत्नियों के रहने पर भी पुनः - वियोग से पुनः शादी करता है^२। "कथा विजयदेव" में नायक तथा नायक के पिता दोनों दो-दो रात्रियाँ रहते हैं। "कथा सुभट-राइ"^३ तथा "कथा चन्द्रसेन राजा सीलनिधान"^४, में राजाओं के बार-बार रात्रियाँ, "कथा कलंदर" में कलंदर के बार बैरियाँ, तथा "कथा कनकावती", "कथा रूपमंजरी" एवं "कथा जयदेव पातिसाह" में राजाओं के अनेक रात्रियाँ हैं।

इसी तरह मर्यादकृत "मधुमातली" को छोड़कर उत्तर भारत के लगभग समस्त सूफ़ी प्रेमाख्यान ग्रंथों में नायकों के जीवन में प्रायः दो नायिकाएँ प्रवेश करती हैं। असूफ़ी प्रेमाख्यान "मैनासत", "प्रेमप्रगास", "ढोलामारूरादूहा", "सदयवत्सलावर्तिगा" आदि में भी नायकों के दो-दो पत्नियाँ हैं। "छितार्थ-वार्ता" में अनेक रात्रियाँ हैं।

(३२) भाग्य-परिवर्तन:-

जीवन में अनेक कार्य ऐसे भी होते हैं जो संयोग से घटित होने पर इतने विस्मयकारी और कार्य-कारण की गुंथला से रहित होते हैं कि इनमें मानव की बुद्धि काम नहीं करती है। इसलिए इनके संबंध में निरिबत रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। प्लेटों जैसे दार्शनिक भी भाग्य को किसी न

१- दोहा - ७ ।

२- चौ० - ११ ।

३- चौ० - १ ।

४- चौ० - ७ ।

किसी रूप में स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति तथा लोक एवं लिखित-साहित्य में भाग्य में विश्वास की अभिव्यक्ति बराबर रही है। "कथा नल-दमयंती" में भाग्य-परिवर्तन का अच्छा उदाहरण है। नल एक बार अपने भाई से जुवा खेलने पर सब कुछ हार जाता है और दमयंती के साथ जंगल में अनेक कष्ट सहने के बाद घर वापस आकर पुनः जुवा खेलने में सब कुछ पा जाता है। "कथा मधुकरमालती" में मधुकर जवानक मछली के पेट से पाँच रत्न-पदार्थ पा जाता है और उन्हें देकर वह मालती को प्राप्त करता है। ऐसे ही और अनेक अन्य प्रसंग प्रेमाख्यात-काव्यों में नायक-नायिकाओं के जीवन में मिलते हैं जो कि भाग्य-परिवर्तन पर कथा में मोड़ ताते^{रहे} हैं।

(३) वर्जन या निषेध-विषयक:-

(क) देखने का वर्जन:-

प्रेम-प्रकट हो जाने पर "कथा कौतुहली" में राजकुमारी कौतुहली माता-पिता द्वारा उपवन में जाने नहीं पाती है। इसी तरह "प्रियंसी-मजनु" में सीता तथा "कथा मधुकर मालती" में^{मालती} बटसार पढ़ने नहीं जाने पाती। "कथा निरमल" में विषया निरमल पातिशाह को देखने से वर्जित करती है, न मानने पर वह अपनी दोस्तों जहाँ तक निकास कर दे देती है। "कथा त्रिज्ज्वा देवतदे" में त्रिज्ज्वा की माता दोनों के देखने तथा मिलने पर प्रतिबंध लगा कर अलग-अलग करवा देती है।

(ख) बान-वर्जन:-

"कथा पुहुपवरिणा" में रानी रूपनिधि पुत्री सुकेती को कुंवर सुरपति के साथ न रहने के लिए वर्जित करती है। एक दिन दोनों का संयोग देखकर सुकेती को लोकावस्था से पत्नी बना देती है। "कथा कर्तदर" में चेरियों का एकनिष्ठ प्रेम कर्तदर से है। वर्जन के विपरीत एक पातिशाह के हाथ लगाने पर एक चैरी के हृदय का जवाहिर पिघल कर पानी हो जाता है। "कथा कामरानी का पीतमदास" में पीतमदास राजाराम के यहाँ सुरंग से गुप्त-रूप में कामरानी से मिलता है, मिलने पर कामरानी उसे संभोग तक के लिए वर्जित करती है जब^{तक} कि दोनों^{का} विवाह-सम्बन्ध न हो जाय। "प्रियंसीमजनु" में

सैता इकनसलाम को संभोग से वर्जित करती है । "कथा मधुकरमालती" में पातली बनेक बगह राजाजी द्वारा मोहित होकर लरीदी तथा बेची जाने पर सख की वीन-सम्बन्ध से वर्जित करती है ।

(३४) मुद्रार्पण देकर लरीदना या मिलाना:

यह दास-प्रया-सम्बन्धी सामाजिक अभिप्राय है । "कथा कर्नदर" में एक पातिगाह १० हजार मुहरे देकर चार बेरियों को तथा "कथा बन्दहेन राजा सीतलिनियान" में राजा बन्दहेन डेढ़ लाख रुपया देकर तीन रिजियों को लरीदता है । "कथा मधुकरमालती" में पातली बनेक ^{जगह} मुद्राओं द्वारा लरीदी तथा बेची जाती है और अंत में पांच रत्न-पदार्थ देकर ही मधुकर उसकी प्राप्त करता है । "कथा कामरानी का पीतमदास" में पीतमदास के सभी मित्र मुद्रार्पण देकर मालिनि को मिलाने हैं जोकि कामरानी से मिलाने में सहायक होती है ।

(३५) शकुन तथा अपशकुन:-

इन्में जादिकाल से ही विश्वास किया जाता रहा है । शकुन एक मनोवैज्ञानिक वस्तु है । इसमें आशा या आशंका का उल्लेख और प्रसार करके कार्य के सम्बन्ध में उत्साह, वृद्धि या निषेध किया जाता है । पर कथाओं में इस मनोवैज्ञानिक तत्त्व को हम अभिप्राय के रूप में प्रयोग करते हैं । इनका सामाजिक जीवन पर बहुत प्रभाव है । "कथा रतनमंजरी" में उपवन में रतनमंजरी को प्रिय से मिलने का शकुन होता है और दोनों बाद में मिलते हैं^१ । "कथा नल-दमयंती" में दुन्दरा स्वयंवर में आकाशवाणी से दमयंती को शकुन होता है तथा अपनी मौसी के घर से जब अपने घर वापस आती है तो नल से न मिलने का अपशकुन होता है । इस तरह के प्रसंग अन्य प्रेमालम्बानों में भी भरे पड़े हैं ।

(३) काव्य-सम्बन्धी या साहित्यिक अभिप्राय

जिस प्रकार कथा-सम्बन्धी अभिप्राय लोक-कथाओं में ज्यों के

त्यों चलते रहते हैं, उसी प्रकार काव्य-सम्बन्धी अभिप्राय भी गताब्दियों से एक बंधी व बंधाई परिपाटी के रूप में काव्य में पूर्वापरक्रम से प्रयुक्त होते रहते हैं। आदिकाल से अपभ्रंश तथा भक्ति और रीति कालीन कवियों में इसका बराबर उपयोग किया है। आधुनिक काव्यों में इन अभिप्रायों का उपयोग नहीं किया गया है। संस्कृत काव्यों में प्रारम्भिक युग में कुछ अभिप्राय ऐसे बल पड़े थे जिन्होंने काव्यों ने "कवि-समय" नाम दे रखा है। हिन्दी काव्यों में इसका कम निर्वाह हुआ है। यहाँ हम जात्कवि के प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त प्रमुख काव्य-सम्बन्धी अभिप्रायों का विवरण दे रहे हैं।

(१) संगतावरण:-

समस्त ग्रंथों के प्रारम्भ में कवि ने ग्रंथों के वाक्य एवं विषय के अनुसार नवी, मुहम्मद, जलण, निरंजन, हजरत-बार पार (जवाहर, उमर, उसमान तथा अलीसिंह) आदि नामों की वंदना किया है जोकि हमारे काव्यों का परम्परागत अभिप्राय रहा है।

(२) शाहेबख्त की प्रशंसा:-

रीति तथा कुछ भक्ति-काल के कवियों की भांति, जात्कवि ने शाहेबख्त की प्रशंसा करते समय जहाँगीर, शहजहाँ तथा ज़ीरंगेब के सादर, शौर्य एवं वीरता की प्रशंसा करना नहीं भूला है। "कथा सुहुपवरिणा", "कथा कुलवंती", "कथा रतनावती", "कथा छीता", "कथा सिद्धादिबलदे" तथा "कथा कुलवंती" में शहजहाँ और जहाँगीर की तथा "कथा नलदम्यती" एवं "कथा सुभटराह" में ज़ीरंगेब की प्रशंसा की है।

(३) राज्य-वैभव का वर्णन:-

इन समस्त प्रेमाख्यानों में किसी राजा के संतान की कथा वर्णित होने से वस्तुतः राजाओं के राज्य-वैभव, यथा- नगर, बाटिका, महल, सरोवर, हाथी, घोड़े, सेना आदि का एक-सा सविस्तार वर्णन किया गया है। "कथा कनकावती" में राजा भरथेन्द्र के भरथेन्द्रगरी के राज्य-वैभव का

सविस्तार वर्णन है^१। "कथा कवलावती" में दूधनारी के राजा सुपराह के राज्य-वैभव का वर्णन अनेक उपमाओं से हुआ है^२। "कथा पुहुपहरिका" में श्री नगर के राजा भूपाल के राज्य-वैभव एवं नाटिका आदि की व्यवस्था का अच्छा विवरण किया है^३। "कथा सुभटराह" में सुरजनगर के राजा सुरजमल के शूर-वीरता तथा दल-बल आदि का सविस्तार वर्णन हुआ है^४। इसी तरह अन्य प्रेमाख्याओं में भी कवियों ने राजाओं के राज्य-वैभव का वर्णन किया है जोकि परम्परा प्रथित तथा एक ही उपादानों की बार-बार आवृत्ति होने से अभिप्राय युक्त हो गया है।

(४) कथा की प्राचीनता:-

कवि की यह एक विशेषता रही है कि उन्होंने अपने कुछ ग्रंथों के प्रारम्भ वा अंत में कथा के पूर्व प्रवर्तित रूप की दुहाई तथा अपनी चोटियों को सुधारने की ओर संकेत किया है। एक ही रूप में बार-बार प्रयुक्त होने से यह अभिप्राय बन गया है। "कथा नन्दमर्बती", "कथा रतनावती", "कथा कवलावती", "कथा दूधनारी", "कथा रतनमर्बती", "प्रवर्तितमनू" आदि सभी में इसका उल्लेख हुआ है।

(५) प्रेम का जाकर्णण:-

(क) रूप-गुण-वर्णन जन्म जाकर्णण:-

"कथा कवलावती" में एक तोते द्वारा गुण-वर्णन कर इन्दवदन् तथा "कवलावती" में प्रेम का जाकर्णण हुआ है। "कथा कलावती" में एक पक्षि से गुण-वर्णन करने पर "कथा कौतूहली" में दो बन्धारों द्वारा गुण-वर्णन से, "कथा छीता", "कथा मोहन" तथा "कथा सतवती" में नायिकों के गुण-वर्णन से नायकों में प्रेम का जाकर्णण हुआ है। "कथा नन्दमर्बती" तथा "कथा कवलावती" में अन्य रूपों के साथ गुण-वर्णन भी नायकों के प्रेम के उदय का कारण रहा है।

१- बी०- ५, ६।

२- बी०- ३ से १९ तक।

३- बी० - १२ से १७ तक।

४- बी० - १।

इसी तरह सुफ़ी-काव्य "मद्मागत" में हीरामन तोते द्वारा गुण-वर्णन करने पर तथा असूफ़ी काव्य "माधवानल कामन्दला" में गुण-वर्णन से नायकों में प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ है। "कथा सरि सागर" की कई कहानियों में नायक - नायिका में प्रेम के आकर्षण का कारण रूप-गुण-वर्णन ही रहा है। इनके अतिरिक्त भारतीय निबंधी कहानियों तथा ऐतिहासिक काव्यों में इसका बड़ा व्यवहार हुआ है।

(ब) स्वप्न-दर्शन से आकर्षण:-

"कथा कामलता", "कथा रूपमंजरी", "कथा नन्दमर्षती" तथा "कथा कनकावती" में जिस प्रकार नायकों के अन्दर प्रेम का प्रादुर्भाव अन्य रूपों के साथ स्वप्न-दर्शन से हुआ है उसी प्रकार दक्खिनी कवि मुन्ता वजही कृत "कुतुबसुरतरी" में मुहम्मद कुली के हृदय में तथा "डोनामारादुहा" और "रस रतन" में स्वप्न-दर्शन से ही नायकों में प्रेम का आकर्षण हुआ है। "पृथ्वीराज-रासो" में "हंसावती-विवाह" नामक छठीसौं समय में पृथ्वीराज हंसावती से विवाह के पूर्व स्वप्न में उसे देखता है, किन्तु इसमें प्रेमात्मानक - काव्यों जैसा चमत्कार नहीं है केवल अभिप्राय पालन की दृष्टि से प्रयोग किया गया है।

(ग) चित्र-दर्शन से आकर्षण:-

"कथा रतनावती" में महिमोहन के हृदय में पिता द्वारा दी हुई मुद्रिका पर अंकित चित्र-दर्शन से तथा "कथा कामरानी वा पीतमदास" में पीतमदास के हृदय में काबू देह में एक शिला पर अंकित कामरानी के चित्र-दर्शन से प्रेम का आकर्षण हुआ है। "कथा नन्दमर्षती" तथा "कथा कनकावती" में अन्य रूपों के साथ चित्र-दर्शन भी प्रेम के आकर्षण को बढ़ाने में सहायक हुआ है।

इसी तरह उसमान कृत "चित्रावली" में सुजान का चित्रावली के प्रति, गुवाली कृत "सैफुलमुलूक व ग़दीरतुलमात" में सैफुलमुलूक का ग़दीरतुलमात के प्रति तथा "छीतार्दवार्ता" में अताउद्दीन का छिछार्द के प्रति आकर्षण चित्र-दर्शन से हुआ है।

(ब) साक्षात्-दर्शन से जाकर्षणः-

"प्रयत्नेतमवन्तु" में लैला तथा मवन्तु में पाञ्चाभा बटसार में प्रत्यक्षा-दर्शन से, "कथा मधुकरमावती" में बटसार पड़ने जाते समय रागते में मावती के प्रत्यक्षा-दर्शन से, प्रेम का जाकर्षण हुआ है। "कथा बन्दरसेन राजा सीतनिधान" में राजा बन्दरसेन, "कथा कुलवती" में राजा कुतुबुद्दीन, "कथा निरमल" में पारिताह, "कथा सीतवती" में जावदार में भी प्रेम का उदय नायिकाओं के प्रत्यक्षा-दर्शन से ही हुआ है।

इस तरह "मुगावती", संभव-कृत "मधुमावती", शेखन्वी कृत "शान्दीप", "जहमसेन पद्मावती" तथा दुबहरणादास की "मुहुपावती" में नायकों के प्रेम के जाकर्षण का कारण प्रत्यक्षा-दर्शन ही रहा है।

(१) संदेश-वाहन सम्बन्धी :-

(क) तोता या पक्षी :-

शुक-पक्षी, बकवा-बकई, हंस आदि पक्षी भारतीय काव्यों के बड़े महत्वपूर्ण मान्योक्त पात्र हैं। इनका समावेश काव्यों में कई रूपों में हुआ है। कवि ने दो रूपों में इनका उपयोग किया है (१) संदेश-वाहन तथा (२) भेदिता रूप में। "कथा नन्दमवती"^१ में एक पक्षी तथा "कथा कलामती"^२ में तोते नायक-नायिका के बीच संदेश एवं पत्र-वाहन का कार्य करते हैं। "कथा सीतवती"^३ में तोता भेदिता के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

इसी तरह "पद्मावत" में हीरामन मुगुगा विरहिणी नागमती का संदेश सिंहलद्वीप से जाकर रतन्सेन से कहता है। "डीलामारुदाहुता" में मातवणी एक शुक से पति के पास संदेश भेजती है। "रसरतन" में विद्यापति नामक तोता संदेश-वाहन का कार्य करता है और "प्रेम प्रगास" में मैना पक्षी यह कार्य करती है।

१- चौ०- १७ से ४६ तक।

२- चौ०- २९ से ७० तक।

३- चौ०- १७ से २०।

(ख) सखियाँ या बेरियाँ:-

"कथा रतनमंजरी" ^१ में सखियाँ रतनमंजरी में प्रेम के उदय का संदेश उसके माता-पिता से कहती हैं। "कथा विजयदा देवतदे" ^२ में नायक तथा नायिका की बार-बार बेरियाँ दोनों के बीच संदेश-वाहन का कार्य करती हैं। इसी तरह चतुर्भुज दास की "मधुमावती" में वैतमान सखी संदेश-वाहन का कार्य करती है।

(ग) दाइयाँ या सेविकाएँ:-

"कथा कौतूहली" ^३ में एक दाई नायक सरबंगी तथा कौतूहली के बीच गुप्त-संदेश देती है। "कथा नलदमयंती" ^४ में कैसनी सेविका दुवारा स्वयंवर में नल के गुप्त-वेश का संदेश दमयंती को देती है।

(घ) मालिनि:-

"कथा रूपमंजरी" ^५ तथा "कथा कामरानी वा पीतमदास" ^६ में मालिनि ब्रह्म-प्रलोभन से संदेश-वाहन का कार्य करती हैं। दुतहरणादास की "पुहुपावती" में भी मालिनि ही संदेश ले जाती है। और नायक-नायिका के बीच में प्रेम-घटक का कार्य करती है।

(ङ) ब्राह्मणा या डाढ़ी:-

"कथा नलदमयंती" ^७ में ब्राह्मणा तथा "कथा कनकावती" ^८ में ब्राह्मणा एवं डाढ़ी दोनों संदेश-वाहन का कार्य करते हैं। इसी तरह "वीरसतदेव रास" तथा "किसनर-विमणी रोवेति" में ब्राह्मणा ही संदेश ले जाते हैं।

(च) पवन:-

"कथा विजयदा देवतदे", "कथा नलदमयंती" तथा "गुंथलीमवन" में पवन नायक-नायिकाओं के बीच संदेश-वाहन का कार्य करता है। भारतीय काव्यों में पवन द्वारा संदेश भेजने की प्रथा बहुत प्राचीन समय से प्रचलित रही है।

१- वी० - १११ ।

२- वी० - १५ ।

३- वी० - ६१ से ६६ तक ।

४- वी० - १२७ ।

५- वी० २७ से २९ तक ।

६- वी० - ६ से ८ तक ।

७- वी० - ९१ से ९३ तक ।

८- वी० १२ से १५ तक ।

(७) उपवन या जलाशय के किनारे किसी सुन्दरी से भेंट, मिलन और प्रेम:-

इसे संयोग या भाग्य से सम्बन्धित अभिप्राय ही कहना चाहिए। "कथा कौतूहली" में नायक सरबंगी माती-वेश में एक बार उपवन में तथा दुबारा जलाशय के पास कौतूहली और सखियों के साथ संगीत प्रदर्शित करते हुए मिलता है। "कथा रतनावती" में पद्मिनी की सहायता से रावकुंवर महिमोहन तथा अम्बरा रतनावती और "कथारूपमंजरी" में मातिन के प्रवास से जानसिंघ तथा रूपमंजरी का मिलन उपवन में होता है। "कथा रतनमंजरी" में रतनमंजरी और मधुसूदन जलाशय के किनारे मिलते हैं।

इसी तरह "पुद्गुपावती" में नायक -नायिका सरोवर के किनारे मिलते हैं। "मृगावती", "पद्मावत" तथा "चित्रावती" में नायिकाएं सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने जाती हैं।

(८) मंदिर में पूजा के लिए जाई कन्या का हरण:-

"कथा छीता" में गढ़ के नंदर मंदिर में पूजा के लिए जाई हुई छीता का वलपूर्वक हरणकर अज्ञातहीन उसे दिल्ली लाता है^१।

इसी तरह मंदिर या शिवमंदिर में पूजा के लिए जाई कन्या-हरण का अभिप्राय भारतीय साहित्य में महाभारत से ही प्रयुक्त होता चला रहा है। कृष्ण ने रत्नकिमणी को इसी प्रकार हरा है। "पद्मावत" में पद्मावती को शिव मंदिर में पूजा के लिए जाने पर पृथ्वीराज उसे पीछे पर बैठा कर दिल्ली पहुंचाया है। इसी तरह शक्तिव्रता तथा संयोगिता को हरण भी पूजा के बहाने ही मंदिर में जाने पर हुआ है।

(९) सिंहलदीप:-

भारतीय काव्यों में सिंहलदीप में काव्य की नायिकाओं तथा पद्मिनी स्त्रियों का पाया जाना एक अभिप्राय रहा है। जिस तरह जायसी ने अपने "पद्मावत" में सिंहलदीप के वर्णन में पद्मिनी का उल्लेख किया है^२

१- चौ० - २६।

२- सिंहल दीप कथा जब गावों। जैसे पद्मिनी वर्णन सुनावी। (उन्द-२५)

उसी तरह जानकी ने "कवा रतनावती" में सिंहलदीप में पद्मिनी नारी के रहने का उल्लेख किया है। जंगल में भटकते हुए जबानक पद्मिनी से भेट हो जाने पर कुंवर पद्मिनी को एक रागा से छुड़ाकर तथा साथ लेकर उसके निवास-स्थान सिंहलदीप जाता है जहाँ वह रतनावती से मिलने का वत्न बताती है^१। पदपावती को जिस तरह रतनसेन लेने सात समुद्र पार जाता है उसी तरह "कवा रतनावती" का महिमोहन भी रतनावती के प्राप्त करने के लिए सात समुद्र पार जाता है।

इसी तरह अपभ्रंश काव्य की नायिकाएँ भी सिंहलदीप की पद्मिनी रानी के रूप में चित्रित हुई हैं। कन्नकामर कृत "करकंदुनरिड", हर्षा कृत "रतनावती नाटिका", ताडू कृत "जिनद वरित", नाणिककाराजकृत "मसेसेन अमरसेन वरित" जिन हर्षमणि कृत "रतनोन्नरनरपतिकथा" आदि में सिंहलदीप का प्रसंग है^२। कबीर भी अपने राम को लोजने सिंहलदीप गये थे^३।

(१०) पञ्चोत्तर पत्र के पीछे:-

पत्र द्वारा संदेश भेजने की परम्परा प्रेमात्मक काव्यों में एक प्रसिद्ध अभिप्राय है। जानकी के पत्र प्राप्त करता पात्र पञ्चोत्तर उसी पत्र के पीछे उत्तटकर लिखते चित्रित किए गये हैं। "कवा कन्कावती" में परमरूप का पत्र ब्रह्मण द्वारा कन्कावती के पास से जाने पर वह उसी पर उत्तटकर उत्तर देती है^४। "प्रणयलैमवन्तु" में सैता भी मयनू को पञ्चोत्तर पत्र के पीछे ही देती है^५।

१- कहत पद्मिनी तू मो भाबी । वत्न बताऊँ राम दुहाडी ॥

कहिहौ अपनी बाकी बात । बहुरि मिलन की सिखाऊँ बात ॥

सिंहलदीप जायुनै जाग । इक दिन गई पुहप अनुराग ॥८२॥

२- विस्तार के लिए देखिए-डा० रामसिंह तोमर-प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य-पृ० २०१ से २०४, १९६४ ई० ।

३- कबीर लोकी राम का, गया पु सिंहल दीप ।

राम तो बटि भीतर रमि रखा, जो जाने परतीत ॥

४- बी०- ३० । सम्पा०- (मनमोहन गुप्त) - कबीर ग्रंथमाला, खंड ५, पृ-८१-८२ (अंशिक) ।

५- बी०- ४० ।

(११) नव-शिव वर्णन:-

नायिकाओं के रूप को महत्व देने के लिए प्रेमाख्याक कवियों ने विभिन्न उपमाओं द्वारा उनके नव-शिव तथा व्रग-प्रत्यंगों का विस्तृत वर्णन किया है जोकि हमारे काव्यों का एक बहुत प्रचलित अभिप्राय रहा है। "कथा कलावती" में - तोता के मुख से राजकुमारी कलावती के नव-शिव का वर्णन सुनकर राजकुमार इन्दवदन मुग्ध हो जाता है। "कथा रतनमंजरी" में रतनमंजरी के नव-शिव तथा सौन्दर्योपकरणों का विस्तृत वर्णन सुनकर मधुसूदन वचन से ही आकर्षित हुआ है। "कथा रतनावती" में पद्मिनी रतनावती के नवशिव का वर्णन कर महिमोहन के प्रेम की उत्सुकता और बढ़ा देती है। "कथा नलदमयंती" में दमयंती के नव-शिव का वर्णन सुनकर नल का पूर्वानुराग पुनः जागृत हो नूतन जाता है। इसी तरह "कथा सुभट-राज", "कथा कौतूहली", "कथा रूपमंजरी", "पुहुपवरिजा", "कथा मोहनी", "छत्रिणागर", "ग्रंथलैलामय", "कलावती", "कनकावती", "छीता" आदि में नायिकाओं के नवशिव वर्णन द्वारा नायकों के हृदय में प्रेम की भावना प्रवृत्त हो गई है। सुफणी प्रेम "पद्मावत" मंभनकृत "मधुमावती", "विभावली" आदि में भी नायिकाओं का नव-शिव वर्णन करके उनकी रूप-गरिमा उभारी गई है।

(१२) विरह पूर्ण वारहमासा का वर्णन:-

नायिकाओं में विरह की तीव्रता प्रकट करने के लिए प्रायः कवियों ने अपने काव्यों में विरह पूर्ण वारह मासा का वर्णन अभिप्राय के रूप में किया है। बानकवि ने "कथा कलावती"^१, "कथा कलावती"^२, "कथा कनकावती"^३, "कथा कौतूहली"^४, "कथापुहुपवरिजा"^५, तथा "कथा रतनमंजरी"^६ में वारहमासे का तथा "कथा सुभटराज" में षाट्शतुर्गों का नायिकाओं के विरहावस्था की उद्दीप्त करने के लिए विरहपूर्ण वर्णन किया है। संयोग रूप में वारहमासा का वर्णन केवल "कथा रतनमंजरी" में मिलता है^७।

१- चौ०- १८ से १९ के बीच १२ वर्गम छंदों में। २- चौ०- १६८ से १७९ तक।

३- चौ०- २९ से ७० तक।

४- चौ०- ६२ से ६३ के बीच विविध छंदों

५- चौ०- १२६ से १३७ तक।

६- चौ०- १८६ से १९७ तक।

७- चौ०- २३५ से २४६ तक।

सूफ़ी काव्य "पद्मावत", "मृगावती", "विजावती" तथा "शान्दीप" और असूफ़ी काव्य "मैनासत", "वीरसतदेवराज" आदि में बारहमासे का वर्णन हुआ है। जानकवि के समस्त बारहमासे असाढ़ से शुरू होकर बैठ में समाप्त हुए हैं जबकि विजावती में बैठ से, पद्मावत तथा शान्दीप में असाढ़ से।

(१३) संभोग-वर्णन:-

जिस तरह नायक या नायिकाओं में प्रेम की तीव्रता उभारने के लिए कवि विरह वर्णन करता है, उसी प्रकार दोनों के मिलन में जरा-सा मौका पाने पर संभोग का वर्णन करने में नहीं चूकता है। कवि के समस्त ^{दासपत्य} और स्वच्छन्दतापरक प्रेमाख्यानों में इसकी भरमार है। "कथा रतनमंजरी" में मधुसूदन तथा रतनमंजरी के विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद दोनों के संभोग का बड़ा विस्तृत वर्णन हुआ है^१। वहाँ तक कि पात बढ़ाने की आँखों तक का वर्णन कर डाला है^२। "कथा कव्तावती" में विवाह के बाद ही नायक-नायिका दोनों रति-झीड़ा करते हैं^३। "कथा नन्दमंजरी" में विवाहोपरान्त दोनों कनक सदन में संभोग करते हैं^४। "कथा रतनावती" में राजा जगतराज के जगरानी से संभोग करने पर ही पुत्र महिमोहन उत्पन्न हुआ है^५। महिमोहन तथा रतनावती के विवाह की सम्पन्नता के बाद कई बार संभोग का चित्रण कवि ने किया है^६। इसी तरह "कथा कनकावती" में परमदूष तथा कनकावती कई बार संभोग का वर्णन हुआ है^७।

१- कबहुं कुब फकरत नति हेत । कबहुं अखर अभी रस सेत ॥

जब इनमें ये नतिमा भई । एक एक सजी टरत सब गई ॥

ज्यों ज्यों कुंवर गहत है नहिवा । त्यों त्यों तिवा करत है नहिवा ॥१५१॥

कुंवरहि बहूँ केति रस हेत । करना काम करन नहिं देत ॥

कर कर गही लई गर जाइ । बैक भये दूसर न लजाइ ॥१५२॥

फूटी नतिमा टूटे हार । मुझ फिरानी छूटे नार ॥

छिन छिन मैं जावहि बैठाई । लैह पल पल माहि भँसाई ॥

सिधिल गात नति तुतराई । जणिमा जरन नींद लीं छाई ॥

विहवत नति ही हुवे गई नारी । डिगल चलत मानहु सुतबारी ॥१५३॥

२- चौ०- १६५-१६३ तक । ३- चौ०- २३-२५ तक । ४- सवैया - ३९ ।

५- चौ०- १४ ।

६- चौ०- १२०, १५०, १५१ ।

७- चौ०- ४९, ४१, ७९ ।

इसी तरह असूफी प्रेमाख्यान "डोलामादुरादुहा", "छितार्दबार्ता", "सदयवत्सलावर्तिगा", "माधवान्त कामकदता", "रसरतन", "नन्दमन", "प्रेम-प्रगास", "पुहुपावती", आदि में संभोग का विस्तृत विवर्ण कवियों ने किया है। संस्कृत-साहित्य में कामशास्त्रीय आधार पर "कुमारसंभव", "मेघदूत", "गीतगोविन्द" आदि में संभोग का विवर्ण किया गया है। सूफी प्रेमाख्यानों में इसका अभाव है। जामसी के "पदमावत" तथा कुतुबन के "मुगावती" में संभोग का अल्प विवर्ण भारतीय प्रभाव के कारण है।

(१४) आत्म-हत्या की घमकी :-

यह कथा की जागे बड़ाने वाला साधारण अभिप्राय (माइनर मोटिव) है। "ग्रंथलेखमनु" में लैला का विवाह डबनस्तलाम से सम्पन्न हो जाने के बाद भी लैला डबनस्तलाम को अपने निकट जाने तथा उसके संभोग चाहने पर आत्महत्या की घमकी देती है^१। "कथा मधुकरमालती" तथा "कामरानी-वा पीतमदास" में भी नायिकाएं अन्य पुरुषों के बलात् संभोग चाहने पर घमकी देती हैं। इस अभिप्राय का प्रयोग पारवनाथ-वरित में कई स्थानों पर हुआ है।

(१५) आत्म-निवेदन :-

इसमें कवि कथा का माहात्म्य-वर्णन या जाय्यात्मिक संकेत देते हुए कभी दुर्वन-निंदा तो कभी सम्बन्ध-प्राप्ति किया है। यह अभिप्राय कथाओं में कहीं भी मिल सकता है। "कथा चन्द्रसेन राजा सीतनिधान" में राजा चन्द्रसेन के तीन बेरियां रखने तथा बाद में पुनः घर से निकाल कर परचाताप करने पर कवि नीच-कुल की निंदा तथा अपने समान कुल से शादी करने की बात प्रकट करता है^२। इसी तरह "बांदी नावा" में भियां द्वारा बेरी से प्रेम करने तथा बाद में परचाताप करने पर कवि उत्तम-कुल से सम्बन्ध स्थापित करने का संकेत करता

१- तू जी मेरे हाथ लगावहि ।

जीवतु मोहि बहुर नहीं पावहि ॥४५॥

२- बैसी बाकी होइ कुत, बैसी ताकी रीति ।

निरकुत सी कवि जनि कहि, कोइ करहु बिन पीति ॥

है । "कथा विजयां देवतदे" में विजयां की माता कृष्णा जब दोनों को बलग कर देती है तो कवि "विष्णुदे" के वादार्श की ओर संकेत करता है^१। "कथा नल-दमयंती" में नल के प्रथम बार युवा बेलने के पूर्व कवि नल के प्रारम्भिक वमण्ड-वपस्व्या की ओर संकेत करता है^२। विपत्ति जाने की होती है तो अपने आयु हुई नष्ट हो जाती है^३। "कथा निरमल" में पर-सत्री के रत्न की निंदा किया है^४। "कथा कुलवंती"^५ में राधा कुतुबुद्दीन के लिए तथा "कथा कामरानी वा पीतमदास"^६ में राजाराम के लिए "वैसी करनी पार उतरनी" के वादार्श की शिवा दी है ।

(१६) कवि-नाम रचना:-

रौतिकाजीन कवियों की परम्परा का अनुसरण कर जानकवि ने भी अपने ग्रंथों में इस अभिप्राय का व्यवहार किया है । मुक्तकों में यह नाम रत्न की मनोवृत्ति विशेष रही है । संस्कृत के कवियों ने इसका व्यवहार नहीं किया है । अपभ्रंश-साहित्य में केवल सरह के दोहों में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

(१७) कथा का अंत:-

सम्पन्न काव्यों के कथान्त प्रायः सुखान्त होने से एक अभिप्राय का रूप धारण कर लिए हैं । संस्कृत-साहित्य में यह परम्परा विशेष पाई जाती

१- पाहन फोरत सोर हवे, तकरी बीरत सोर ।

विष्णुन को न पुकारि है, विष्णुन महा कठोर ॥

२- चौ० - ६५ ।

३- चौ० - १३२ ।

४- चौ०-१२ ।

५- वैसी करनी होइ, तैसी ही फल पाईये ।

सत दिन छाडहु कोइ, ज्यों दहु जगुपतिसों रह्यो ॥

६- मुरीन कीजी जान कहि, भलो करहु सब कोइ ।

वैसी जोइये बीब जगु, तैसी ही फलु होइ ॥

है । "प्रियतैमिवर्तु" तथा "कथा नन्दमर्बती" को छोड़कर बालकवि के समस्त प्रेमाख्यान सुखान्त हैं । उक्त दोनों ग्रंथों में कवि नयक-नायिका को रस में मिलाने के बाद कथा को गाने बढ़ाया है और दोनों की मृत्यु में कथा का प्रव-सान किया है । इस तरह इन कथाओं को पूर्ण दुखान्त नहीं कहा जा सकता है, इन्हें सुखात्मक-दुखान्त कह सकते हैं । सुफणी तथा प्रसूफणी प्रेमाख्यान भी सुखान्त ही विधित हुए हैं । केवल "पद्मावत" तथा "मृगावती" की विधिति बालकवि के उक्त दोनों ग्रंथों की भाँति है ।

- - -

अध्याय - ४
=====

प्रेम - निरूपण

प्रेम का स्वरूप

प्रेम एक सहज मानवीय भाव है जिसका प्रेम वाक्य की प्राप्ति है । प्रेम अनुभव गम्य होता है । यह भाव मनुष्यों में ही नहीं, मनुष्योपर प्राणिमण्ड-पशु पक्षी तथा अन्य चेतन प्रकृति में भी ऐतिहासिक रूप में पाया जाता है । मानवीय अनुभूति से सम्बद्ध प्रेम का शाब्दिक निरूपण या विवर्ण सरल कार्य नहीं है । देवर्षि नारद से लेकर आज तक अनेक मर्मज्ञों और विद्वानों ने प्रेम की परिभाषाएं दी हैं और निरूपित किया है कि यह स्थूल इन्द्रियों तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत उसका उत्कर्ष मन की सूक्ष्म और उदात्त भावनाओं तक हो जाता है^१ । इसी कारण प्रेम को "मूकारवादनवत्" वा "अनिर्वचनीय" तक कहा गया है^२ । नारद के अनुसार "प्रेम किसी गुण के रहने या न रहने की अपेक्षा नहीं करता और न किसी प्रकार की कामना को लेकर उत्पन्न होता है । वह प्रतिक्षण सदा वृद्धिमान बना रहता है और उसकी अनुभूति इतनी सूक्ष्म हुआ करती है कि वह किसी विरले व्यक्ति में ही प्रकट हो पाती है ।"^३ दाम्पत्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव तथा दास्य भाव जैसे प्रेम के कई स्वरूप होते हैं, किन्तु दाम्पत्य के अतिरिक्त अन्य भावों के अन्तर्गत प्रेम के उन्मद् एवं उन्मुक्त रूप के दर्शन नहीं होते । जो गंभीरता और विगुदता इसमें मिलती है वह अन्यो में नहीं लक्षित होती । वास्तव में इसी को वास्तविक प्रेम की संज्ञा दी जाती है । यह प्रिय एवं प्रेमी की मिलनैच्छा से दोनों को एक स्तर पर लाकर बढ़ा करता है जिससे वे परस्पर सम्बद्ध होकर एकात्म

-
1. Love, affection, favour, kindness, kind or tender,
Regardspost, pastime, joy, delight, gladness.

Apte- 'Sanskrit- English Dictionary, P.
380, 1922.

२- नारद भक्ति सूत्र- श्लोक ५१ तथा ५२ ।

३- वही - श्लोक ५३ तथा ५४

होते हैं^१ । और इन दोनों व्यक्तित्वों के तादात्म्य से प्राप्त अनुभूत्यात्मक आनन्द में ही प्रेम की अनुभूति होती है^२ ।

प्रॉपंड जैसे मनोविज्ञानज्ञानियों ने वह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रंग से प्रेम का एकरूप आसना में भी अक्षित होता है जिसका मूलधार रति अथवा काम (sex) है । रति भावना आत्म-विस्तार का एक साधन मात्र है । आहार, परिग्रह और संतान मनुष्य की इन तीन इच्छाओं के मूल में यही आत्म-विस्तार की भावना प्रधान रहती है । प्रेम-भाव के अन्तर्गत राग की वह प्रवृत्ति रहा करती है जो किसी वस्तु या अभिमत वस्तु की ओर आकृष्ट रहती है और जो सदा अप्रतिहत और अबाधित रूप में प्रवाहित होते रहने की चेष्टा करती है ।^३ "काम" की प्रायः सभी देश और काल के लोगों को दृष्टि के उद्भव और विकास की मूल-प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया है । यह तो एक प्रकार की इच्छा है जो स्वार्थपरक हुवा करती है । इसमें स्वयं सुख-लाभ तथा आत्मतृप्ति की भावना का लक्ष्य होता है । वैदिक साहित्य में "काम" शब्द का प्रयोग कदाचित् "कामना" के अर्थ में होता था । काम-भावना को जैन-दर्शन में "मैवुन", बौद्ध-दर्शन में "कामतुष्ण्या" तथा बरक संहिता में "प्राणीकण्ठा" कहा गया है । अन्तराश्यों के कारण रति-व्यापार में जितना अधिक बिड़न पड़ता है कामवासना उतनी ही परिमार्जित हो प्रेम का प्रकट रूप धारण करती है इसी परिमार्जन से रति को प्रेम की पदवी दी गई है । प्रेम, प्रीति, अदा, करुणा

1. Love is the desire for union with the object loved, and therefore, even tends to bring subject and object to one level in order that they may unite and become one.

Dr. Bhagwan Das- Science of Emotions- P.30.

2. Love is experienced as a pleasure in proximity of a desire for fuller knowledge of one another a yearning for mutual personality fusion.

काम-विज्ञान -
कतिपयिकार -

Love against Hate- p.27.

१- परशुराम चतुर्वेदी- हिन्दी काव्य-वारा में प्रेम-प्रवाह-पृ० २, १९५२ ई० ।

दया, दामा, भक्ति, स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द आदि का आधार रति भावना ही है, किन्तु रति या काम और प्रेम के बीच बड़ा अन्तर है। "काम या रति" का सम्बन्ध शारीरिक तुष्टि या क्रियाओं से है जबकि प्रेम का मानसिक संतोष से भी अधिक। इसका आधार प्रधानतः हृदय परक हुमा करना है और सदा स्पर्शता की अपेक्षा करता है। "काम" मूल प्रवृत्ति है और प्रेम-भाव एक मानसिक स्थिति अथवा स्मृत संभोग मान नहीं। इसीलिए यह प्रेमी-प्रेमिका के बीच शारीरिक आकर्षण तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि दोनों के शरीर, मन और आत्मा से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करता है^१। इससे नायक-नायिका प्रेम के कोमल तंतुओं में सर्वथा के लिए बंध जाते हैं। इन तीनों शरीर, मन और आत्मा के संयोग के माध्यम से ही प्रेम की प्रगाढ़ एवं पूर्ण अनुभूति होती है। इस पूर्ण अनुभूति के लिए स्मृत भौतिक आधार अर्थात् नायक-नायिका का अस्तित्व आवश्यक होता है^२। प्रेम का सम्मान सर्वदा एवं सर्वत्र होता जाया है। इसकी उदारता और व्यापकता सर्वमान्य है जबकि "काम" का उल्लेख केवल वासना के रूप में होता रहा है। वासना की तुष्टि^{अव्यक्त} के प्रति अपेक्षा अथवा पूर्णा भाव उत्पन्न करती है। "काम" आत्म-तुष्टि तो प्रेम आत्म-समर्पण में निहित है। आत्म-तुष्टि के पश्चात् व्यक्त का महत्व क्षीण हो जाता है जबकि आत्म-समर्पण में प्रेम उत्तरोत्तर विकसित, प्रगाढ़ और गम्भीर होता जाता है। "काम" की दशा में किसी काव्य-पदार्थ को अपना बनाकर उसे अपने उपभोग में लाने की प्रवृत्ति देखी जाती है जहाँ प्रेम की स्थिति में प्रेमास्पद वस्तु सदा आत्मीय बनी रहती है और उसका वाणिक क्रियोग भी प्रेमी को विरहातुर बना देता है^३। प्रेम क में स्थिरता होती है

१- "सत्त्व-प्रेम न तो यौन-संभोग है और न केवल शरीर का आकर्षण ही। इसमें और प्रेमी के शरीर, मन और आत्मा में पूर्ण तादात्म्य स्थापित होता है।"

डा० बच्चन सिंह - "रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना"-पृ० ९९, सं० २० १५।

२- डा० रामेश्वरदास लण्डेवाल-जापुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० १२१, सं० २० १५।

३- परशुराम चतुर्वेदी - हिन्दी काव्य-धारा में प्रेम-प्रवाह, पृ० ४, सन् १९५२ई०।

इसका कारण प्रेमी की लगन, उसकी उदारता, उसकी भाव-प्रवणता तथा निरह-भावुकता होती है। इसमें वासना नहीं होती। "यह एक ऐसी वासना है जो समस्त वासनाओं को इय्य से दूर कर देती है"। इस वासना या इन्द्रियासक्ति का परिष्कार करके ही प्रेम कामनोहर पुरुष विकसित और अधिष्ठित किया जा सकता है^१।

सत्त्वा-प्रेम यहैतुक अर्थात् उपचार -निरपेक्ष होता है। इसका सम्बन्ध किसी गुण विशेष के साथ नहीं रहता। यह तो एक अविच्छिन्न धारा की भाँति प्रवाहित होता रहता है। इसमें प्रेमी गहरी मादकता में आत्म-निराशाणा द्वारा प्रेम-भाव के सूक्ष्मतर तन्तुओं की परीक्षा करने में अतर्क रहता है। यह समान्य को विशिष्ट बना देता है। इसमें केन्द्रगत आकर्षण होता है। कोई दुराग्र, द्विविधा एवं संकोच को स्थान नहीं होता है। व्यवितत्व सीमित क्षेत्र को छोड़कर व्यापकत्व को प्राप्त करता है। "पर" भी "यव" हो जाता है। पूर्ण सहज एवं स्वाभाविक होने के कारण सदा नवीन एवं एकरस बना रहता है। यह सुख-दुख दोनों में अद्वैत रहता है। प्रेमी के सुखी रहने पर प्रिय भी सुखी रहता है और प्रेमी के दुखी रहने पर प्रिय भी दुःखी रहता है। इस तरह इसमें एक सुख दूसरे का सुख और एक का दुःख दूसरे का दुःख होता है। प्रिय हृदय को यहाँ प्रत्येक अवस्था में विषम मिलता है।

हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में प्रेम का स्वरूप सदा एक ही प्रकार का नहीं रहा है। प्रादि काल में प्रेम का स्वरूप सामान्य रति-भाव अर्थात् पूर्ण लौकिक है और इसका आधार अधिकतर यौन-सम्बन्ध या पारिवारिक लगावों तक ही है। नायक के वीरत्व और दर्प के समक्ष इसका स्थान गौण है। स्वयंभू कवि के अप्रगट के "चरमवरिष्ठ" में भी प्रेम-साधना का लौकिक

१- ~~इसका कारण प्रेमी की लगन, उसकी उदारता, उसकी भाव-प्रवणता तथा निरह-भावुकता होती है। इसमें वासना नहीं होती। "यह एक ऐसी वासना है जो समस्त वासनाओं को इय्य से दूर कर देती है"। इस वासना या इन्द्रियासक्ति का परिष्कार करके ही प्रेम कामनोहर पुरुष विकसित और अधिष्ठित किया जा सकता है~~।

१- राम पूजन तिवारी - "सूक्ष्म साधना और साहित्य" - पृ. १४०, सं. २०११।

२- It is not until Lust is expanded and eradicated that it develops into the exquisite and enthuralling flower of love.'

रूप ही लिंगित होता है^१ । डा० रामसिंह तोमर ने अपभ्रंश में उपलब्ध होने वाली जैनधर्मी कवियों की रचित रचनाओं "भविष्यकहा", "जलहरचरित", "करकंडचरित" तथा सुफी प्रेम-गाथाओं "पद्मावती", "मधुमावती", "मृगावती", "विजावली" आदि की तुलनाकर कई समान बातें बूढ़ निकाली हैं^२ । इसी समय श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित रागानुगाभक्ति से प्रेम में अतीकिकता^३ का समावेश हुआ । आगे चलकर समस्त मध्यकाल में "प्रेम-साधना" की तरह-सी प्रत्यक्षित हो गई । एक ओर दक्षिण भारत के गानवार भक्त, बंगाल के बाहुल एवं चैतन्य सम्प्रदाय वाले साधक प्रेम के ईश्वरीय, रहस्यात्मक तथा मानस रूप स्वरूप की खोजना कर रहे थे तो दूसरी ओर जबदेव के "गीतगोविन्द", विद्यापति की पदावली एवं वैष्णव भक्तों के रसविकृत पद, प्रेम के वाक्यात्मक स्वरूप को प्रकट कर रहे थे । राजस्थान की मुष्क-भूमि सीरां के वाक्यात्मक विरह गीतों से रस-प्रभावित हो रही थी । समस्त उत्तरी भारत में वैष्णवों की सगुण प्रेम-साधना व्याप्त थी । ऐसे ही समय में कबीर आदि निर्गुण संतों तथा सुफियों ने प्रेम के गुहन-रहस्यात्मक रूप का परिचय दिया । इस तरह इस मध्यकाल की प्रेम-साधना के मुख्य रूप से दो रूप देखने को प्राप्त होते हैं — एक का सम्बन्ध राधा-कृष्ण की लीला से और दूसरे का सुफी-साधना से ।

संक्षेप — सम्प्रदाय में पहले वैष्णव भक्तों के प्रेम का स्वरूप शुद्ध लौकिक रूप में मिलता है । बाद में आगे चलकर इसमें अतीकिकता का समावेश इसलिए हुआ कि इसके नायक-नायिका अतीकिक हैं । राधा-कृष्ण की प्रेम-खोजना में

१- परशुराम चतुर्वेदी- मध्यकालीन प्रेम-साधना-पृ०-३२, १९६२ ई०

२- "विरहभारती" पत्रिका- खण्ड ५, अंक २, १९४६ ई० ।

३- "ईश्वरीय प्रेम में किसी प्रकार का भय नहीं रहता क्योंकि उसका आधारपूर्ण आत्म-समर्पण रहता है । इसके द्वारा हृदय निरान्त शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है और उसमें किसी प्रकार के कपट, छल वा द्वेषा मत्सरादि की वृत्त तक नहीं आ पाती । विरहात्मक रूप ईश्वर की ओर केन्द्रित रहने के कारण वह विरह-प्रेम का भी रूप ग्रहण कर लेता है और प्रेमी स्वभावतः निर्वैदी और निष्काम भी बन जाता है ।"

-परशुराम चतुर्वेदी- मध्यकालीन प्रेम-साधना- पृ० ३२, १९६२ ई० ।

जलौकिकता दिखाने के लिए "राति" व्यापार को जलौकिक बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी, बल्कि जलौकिक पात्रों को ही लौकिक प्रेम-व्यापार में लीन दिखाया गया। इस तरह इसमें जलौकिकत्व का सम्बन्ध पात्रों की जलौकिकता के कारण हुआ। यदि राधा - कृष्ण से सम्बन्धित प्रेम-व्यंजना में राधा-कृष्ण का नाम हटा दिया जाय तो वह केवल लौकिक प्रेम ही रह जायेगा। इनके भक्तों के अनुसार जब भगवान् ने अपने भक्तों पर अनुग्रह कर मानव शरीर धारण कर लिया तो उनके द्वारा प्रेम-केतियों का अनुकरण करके हम(जीव) भी तद्भव में मग्न हो सकते हैं और क रूपगत साधना द्वारा ईश्वरीय प्रेम-भाव को उपलब्ध कर सकते हैं। इस तरह मानवीय एवं ईश्वरीय प्रेम में कोई बैसा अनुतर नहीं रह जाता। यह प्रेम स्वकीया भाव का है।

जागे जल कर कबीर जादि निर्गुण संतों ने प्रेम की व्यंजना रहस्यात्मक-गुह्य रूप में की। राधा-कृष्ण अर्थात् साधन-साध्य की प्रतीक रूप में रखा। इसमें प्रेम सामान्य भाव-भूमि एवं विषय-वासना से हटकर बिल्कुल शुद्ध शुष्क रहस्यात्मक हो जाता है। इसकी व्यंजना परीक्षा के प्रति होती है। इसमें लौकिकता को बिल्कुल जानबूझ नहीं मिलता। इनके प्रिय और प्रेमी का मिलन धरती पर न होकर, सहस्र दल कमल पर होता है।

सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेममन्त्रों कवियों ने ईश्वरीय-प्रेम को बहुत अधिक महत्व दिया। सूफ़ी-रहस्य-साधना का मूल केन्द्र-विन्दु प्रेम है। प्रेम ही इनका कर्म है, प्रेम ही धर्म है और प्रेम ही सब रसों का मूल है। एक सूफ़ी का उद्गार है कि "अगर डरक न होता, इंतज़ाम ज़ालमे सुरत न पकड़ता। डरक के नौरे जिन्दगी बवाल है। "डरक" को दिल दे देना कमाल है। डरक बनाता है, डरक बलाता है। दुनिया में जो कुछ है डरक का बलवा है। जाग डरक की गर्मी है, हवा डरक की बेबनी है, पानी डरक की रफ़्तार है, चाक डरक की कियाम है। मौत डरक की बेहोशी है, जिन्दगी डरक की होशियारी है, रात डरक की नींद है, दिन डरक का जागना है। मुसलिम डरक का जमात है, काफ़िर डरक का जलात है, भेरी डरक की कुरबत है, गुनाह डरक से दूरी है, बिहिरत डरक का शौक है, दोष डरक का जौक है।" ये वैष्णव-भक्तों की

1- चन्द्रबती पाण्डेय- सस्युक्त जयवा सूफ़ी मत- पृ० ११६, १९४८ ई०।

इस तरह जलौकिक पात्रों से नहीं, बल्कि सामान्य नायक-नायिका के माध्यम से प्रेम की व्यंजना करते हैं। साधारण प्रेम के प्रसंगों ही उन्हीं के माध्यम से अपनी साधना की सारी बातें उदाहृत करते हैं। बीच-बीच में या अंत में रहस्य के कुछ ऐसे संकेत देते चलते हैं कि लौकिक-प्रेम में अपने साथ जलौकिक-प्रेम की व्यंजना होती चलती है। अर्थात् "शुकमन्त्राजी" के आधार पर "शुक-हकीकी" प्रेम का निरूपण ही इनका प्रतिपाद्य विषय है। इनके लिए ये दोनों ही दृष्ट हैं^१। यह शारीरिक-प्रेम तो आध्यात्मिक प्रेम तक पहुँचने का साधन मात्र है^२।

सूफ़ियों पर इस्लामी और फ़ारसी धर्म का मूल प्रभाव होने पर भी इनके प्रवचनों का कतेवर भारतीय है^३। ये परमात्मा को वा प्रेमी को पुरुषा रूप में चित्रित किया है^४। "सूफ़ियों" के लिए जन्माह ही सब कुछ है उसी एक के अस्तित्व में सब का अस्तित्व है। वह सर्वोच्च, सर्वोपरि सुन्दर है। भौतिक सौन्दर्य उसकी छाया-मात्र है^५। "सूफ़ी साधक परमात्मा को अपनी रूह का मूल स्वरूप स्वीकार करते हैं। उसे परमात्मा या जन्माह के एक भक्त मान का अनुभव होते ही वह जाकृष्ट होकर बेचैन हो उठता है। उसे पाने के

१- "सूफ़ियों ने "शुकमन्त्राजी" को "शुकहकीकी" की सीढ़ी मानकर वह रूपष्ट कर दिया है कि "शुकमन्त्राजी" भी कोई चीज है। जिना उसकी सहायता लिए "शुकहकीकी" का गीत गाना पावण्ड है।"

अनुवर्ती पाण्डेय-तत्त्वबुध अववा सूफ़ीमत - पृ० २१, १९४८ई० ।

२- "सूफ़ी साधकों की यह सर्वादिता शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है जो उनकी दृष्टि में उनके लक्ष्य में बाधक नहीं होता है।"-सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त-मधुमालती-पृ० २६, १९६१ ई० ।

३- सम्पा० शिवप्रसाद सिंह-"रसरतन"(पुहकर)-पृ० १४, सं० १०२० ।

४- "सूफ़ीमत में ईश्वर स्त्री और भक्त पुरुषा है। पुरुषा ही ईश्वर से मिलने की चेष्टा करता है।"

डा० रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-पृ० १९९३
तु० संस्क० ।

५- नमिश्वर चतुर्वेदी-सूफ़ी प्रेम-दर्शन-लेख, "परिष्ठाद-पत्रिका"-वर्ष ३, अंक ४,

जनवरी १९४६ ई० ।

लिए अग्रसर होता है और अकस्मात्कालिक मुग्न होता जाता है। उसकी पूर्णतः विश्वास रहता है कि वह मृतः उसी का है, जहाँ या सांसारिक, मामा-मोह या आसक्ति के कारणविरक्त हो चुका है। उसकी विरहातुरता उसे किसी भी कष्ट को सहन करने के लिए समर्थ कर देता है। वह सांसारिक प्रलोभन तथा अनेक विधन-बाधाओं पर भी विरत नहीं होता। वह प्रत्येक अन्य वस्तुओं को अपने उद्देश्य की सिद्धि में बाधक मानने लगता है। कभी-कभी उसके सामने सारा संसार ही कष्ट दायक प्रतीत होने लगता है। अंत में वह प्रेम-मार्ग द्वारा उस परम सौन्दर्यमय सत्ता को प्राप्त कर तादात्म्य का अनुभव करने लगता है।

"सूफी परमेश्वर के प्रेमी दास हैं। उनके प्रेम में आवेग, मद, उन्माद, मुर्छा, और मरणा आदि भावों को व्याप्त प्रसार है इनमें मदन का तीव्रता बालोड़म है, तड़प, हाहाकार आदि सूफियों की भक्ति में भरे पड़े हैं। उनमें उद्वेग है, आवेश है, अमर्ष है, ईर्ष्या है। उनमें भावों की उग्रता अधिक है मृदुता कम।" इनके अनुसार प्रेम वरदान स्वरूप है अर्जित की हुई वस्तु नहीं। उसको पा लेना उसके वश की बात नहीं जिस पर परमात्मा की कृपा होती है वही उसका प्राप्त कर सकता है। वह प्रेम परमात्मा का पर्याय है और यही जीव की पूर्णता तक पहुँचाता है। असफराबी के अनुसार "बुदा स्वयं प्रेम-स्वरूप है। प्रेम के ही कारण सृष्टि रचना हुई है। सृष्टि की समस्त इकाइयाँ प्रेम, जो सर्वोपरि सौन्दर्य तथा सर्वनिष्ठ भी है, के ही सहारे प्रेम के उद्गम से बंधी हुई हैं।"

सौन्दर्य ही प्रेम का उद्गम स्थल है। सच्चे प्रेम के लिए रखायी सौंदर्य की आवश्यकता हुआ करती है जो एक मात्र परमात्मा में ही सम्भव है। इसलिये सूफियों के अनुसार ईश्वर परम सौन्दर्यमय है। "जिस सौन्दर्य के दर्शन हमें इंद्रियों द्वारा होते हैं वह उसी अनन्त सौन्दर्य की विभूति है। परमात्मा के बिना सौंदर्य की कल्पना नहीं हो सकती। कहीं भी सौन्दर्य देखें पर उसमें परमात्मा का वास रहता है।" इस सौन्दर्यमयी अलौकिक सत्ता को प्राप्त करने का एक मात्र

१- बन्दुवती पाण्डेय- तत्त्वसुफ नववा सूफीमत, पृ० १२५, १९४८ ई०।

२- A. Shushtery- Outlines of Islamic Culture-P.311, 1954.

३- रामकृष्ण तिवारी- सूफीमत साधना और साहित्य- पृ० ११२,

उचित माध्यम प्रेम है। सौन्दर्य पर ही मुग्न होकर साधक जाकर्षित होता है इसीलिए शेख हसन सुहरवर्दी ने लिखा है कि "सौन्दर्य के गहरे ध्यान के प्रति हृदय का सम्भोग ही प्रेम है।"

सूफ़ी- प्रेम में सौन्दर्य के साथ मिलन की अपेक्षा विरह को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इनका प्रेम ही विरह गर्भ है जिसका ^{कि} मूल स्रोत सृष्टि के प्रारम्भ में निहित है^१। विरह के ही कारण प्रेम का अस्तित्व है, विरह ही सच्चे प्रेम का सार है और विरह से ही सच्चे-प्रेम का उद्भव और विकास तथा विरह में ही मिलन होता है, इस विरह में तपकर जब तक साधक की सम्पन्न हृदयगत कलुषताएं नष्ट नहीं हो जातीं, तब तक वह सिद्धि को नहीं प्राप्त कर पाता। इस विरह में तपकर कभी साधक कुम्हलाता नहीं, बल्कि निरंतर उठता है इसीलिए सूफ़ियों ने अपने काव्य में विप्रलम्भ को अधिक प्रशंसा दी है। उनकी एक और बड़ी विशेषता है कि उनके विरह-प्रेम में एक-निष्ठता और अनन्यता है। साधक दुड़ता पूर्वक एकान्तिक भाव से सिद्धि प्राप्ति के लिए कठोर-व्रत करता है और प्रेम-मार्ग के अनेक कष्टों को सहते हुए भी अपना दुड़ संकल्प नहीं छोड़ता। सदा एक रस बना रहता है एक वाणा भी भेद नहीं पड़ता। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है।

भक्ति कालीन प्रेम-व्यवस्था का यह स्वरूप रीतिकाल में पहुंचकर काम भुक्ति के उन्मूलन और शारीरिक सुख का प्रकाश करती दी जाती है। आध्यात्मिकता विवृष्ट हो गई। प्रेम की एकनिष्ठता न रहकर विलास की रसिकता बढ़ गई है।

जानकवि की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप:-

प्रेम-निरूपण की दृष्टि से प्रवृत्तियों के आधार पर जानकवि के समस्त प्रेमाख्यानों को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं -

१- नन्दिरवर चतुर्वेदी- "सूफ़ी प्रेम-दर्शन"-लेख,
परिणाम-पत्रिका, वर्ष ३, अंक ४, जनवरी १९६४ई०।

२-R.A.Nicholson- Studies in Islamic Mysticism- P.60,
1921.

- (१) दाम्पत्य परक प्रेमाख्यान- इसमें प्रेम के दाम्पत्य रूप की प्रणालि मिलती है ।
- (२) स्वच्छन्दतापरक प्रेमाख्यान - इसमें स्वच्छन्द रीति से "काम" की प्रवृत्ति प्रधान है ।
- (३) सत्परक प्रेमाख्यान - इसमें नायिकाओं के सत्त्व की प्रवृत्तियाँ मुखरित रहती हैं ।
- (४) ज्ञानात्मपरक प्रेमाख्यान- इसमें ईश्वरीय प्रेम की प्रवृत्ति मिलती है ।

इन प्रेमाख्यानों में अधिकांश ऐसे हैं जिनमें एक से ज्यादा कोटियों की विशेषताएँ मिलती हैं । दाम्पत्य-प्रेम का रूप तो प्रायः समस्त प्रेमाख्यानों में लक्षित होता है। "कथा कलदमयंती", "कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा पुहुपवरिणा", "कथा बन्दसेन रावा सीतनिधान", "कथा कनकावती", "कथा विजया देवतदे", "चांदी नावा" आदि में दाम्पत्य, काम एवं सत्य तीनों प्रवृत्तियों का सामंजस्य मिलता है । "प्रवर्तैतमत्रुं" में प्रेम की स्वच्छन्दता के साथ सत्य का रूप भी मिलता है । "कथा छीता" तथा "कथा मधुकरमालती" में सत्त्व के साथ दाम्पत्य का सुन्दर सम्बन्ध है । "कथा तमीम अंसारी" में दाम्पत्य के साथ ज्ञानात्मक का रूप भी समन्वित हुआ है ।

दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यानों में प्रेम के स्वरूप का विकास मुख्यतः दो रूपों में हुआ है । पहला वह जिसमें प्रेम विवाह के पूर्व विकसित हुआ है और नायक-नायिका एक दूसरे की ओर रूप-गुण-वर्ण, चित्र या स्वप्न-दर्शन से आकर्षित हुए हैं या साक्षात् + दर्शन द्वारा किसी पाठशाळा, उपवन, जलाशय, बाटिका, आदि में एक दूसरे की देखकर मोहित हुए हैं । फिर नायक-नायिका के प्राप्त हेतु योगी या सहज वेश में उनके कष्टों की सहते हुए नायिका के देत जाते हैं और इसी प्रसन्नभावस्था में संयोग-वियोग आदि विभिन्न परिस्थितियों का सन्निवेश कर कवि दोनों के पाणिग्रहण^{पर}का का अंत किया है । इसमें नायिका के माता-पिता द्वारा सहज ही बिना किसी विरोध के प्रणय-सम्बन्ध स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु "कथा कनकावती" अपवाद स्वरूप है इसमें कनकावती के माता-पिता सहज ही सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते हैं और दोनों की जाबीबन कष्ट भेसना पड़ता है । "कथा मधुकरमालती" ,

"कथा कौतुहली", "कथा रूपमंजरी", "कथा रतनावती", "कथा रतनमंजरी", "कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा पुहुपवरिष्ठा" आदि में विवाह के पूर्व ही नायक-नायिकाओं में प्रेम का उदय तथा उनके विभिन्न प्रयत्नों का समावेश किया गया है।

दूसरे प्रकार का प्रेम वह है जो नायक-नायिका के विवाह के उपरान्त उनके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में विकसित होता हुआ वरम उत्कर्ष प्राप्त करता है। यह प्रेम प्रयास के होने से अधिक मार्मादायक, आदर्शात्मक, कर्तव्यनिष्ठ, स्वाभाविक, निर्मल तथा शीत और शक्ति-सम्पन्न होता है। "कथा तमीम अंसारी", "कथा नलदमयंती", "कथा कवलावती", "कथा रतनमंजरी", "कथा किन्नरा देवतदे" आदि में नायक विवाहोपरान्त नायिका से विमुक्त हो अनेक विकट समस्याओं को केवल पुनर्मिलन में अपने सच्चे-प्रेम का परिचय देते हैं।

इस दाम्पत्य परक प्रेमात्मानों में दाम्पत्य-प्रेम की व्यवस्था के अतिरिक्त स्वच्छंद - प्रेम (Romantic - love) की व्यवस्था भी हुई है। नायक प्रेम की अग्नि प्रवर्धित होने पर किसी प्रकार का बंधन नहीं स्वीकार करता। वह प्रेम के अतिरिक्त संसार की किसी अन्य बात की ओर ध्यान नहीं देता।

स्वच्छंदता परक प्रेमात्मान "कथा किन्नरा देवतदे" तथा "कथा नरद-सेर पतिसाह" में विवाह के बाद प्रेम का स्वरूप विकसित हुआ है। विवाह के पूर्व प्रेम के स्वरूप के विकास का कोई रूप नहीं मिलता। "प्रमथिलेमनू" में दोनों का विवाह अंत तक नहीं हो पाता। इसलिए दोनों का प्रेम विषुद भावपरक है सार्वीरिक नहीं। इसमें नायिका सेवा विवाहित होने पर भी पति से प्रेम न करके जाजीवन मयनू के लिए ही प्रयत्नशील रहती है। इसी तरह मयनू भी सेवा के विवाहित होने पर भी प्रयास करता रहता है और मृत्यु में दोनों के प्रेम का अवसान होता है।

सतपरक प्रेमात्मान "कथा छीता" तथा "कथा मधुकरमातली" में विवाह के पूर्व प्रेम की विभिन्न एवं विकट परिस्थितियों का रूप प्रदर्शित हुआ है। सेवा अन्य में विवाहित नायिकाओं के सतुष की परीक्षा के लिए कुटुम्बों आदि का प्रयोग मिलता है।

इन प्रेमाख्यानों में "कथा कलावती", "कथा रत्नावती", "कथा रत्नमञ्जरी", "कथा तमीम अंसारी", "कथा सुभट्टराज" आदि में नायकों का प्रेम नायिकाओं की अपेक्षा अधिक प्रबल है। "कथा नन्दमयवती", "ग्रंथलैलामञ्जरी", "कथा मोहनी", "कथा छवितागर" तथा "कथा विजयानंद देवप्रदे" में नायक एवं नायिका दोनों का प्रेम समान रूप से विवक्षित किया गया है। इनके अतिरिक्त दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यात "कथा कलावती", "कथा कलावती" व "कथा पुष्प-हरिणा" तथा समस्त सतपरक प्रेमाख्यातों में नायिकाओं में ही एकमात्र सह सारा प्रेम तथा प्रेम की तीव्रता दिखाई गई है। सतपरक प्रेमाख्यातों की नायिकाएँ पति के अनुपस्थिति में सतनायकों से अपने सत्व की रक्षा के लिए अनेक उपाय करती हुई प्रयत्नशील दीखती हैं। भारतवर्ष में इनका व्यक्तित्व ही इन काव्यों का मूल है। कुछ प्रेमाख्यातों में रीतिव्यतिरेक के प्रभाव से प्रेम का उद्गम रूप भी मिलता है। "कथा नन्दमय पतिसाह" तथा "कथा विजयानंद देवप्रदे" में नायिकाओं को नायक मुँह द्वारा अपहरण करके लाये हैं। "कथा कलावती" तथा "ग्रंथलैलामञ्जरी" में नायिका के पिता द्वारा प्रणय न स्वीकार करने पर मुँह हुआ है।

वस्तुतः समस्त प्रेमाख्यातों में नायिकाओं का रूप-सौन्दर्य ही प्रेम का उद्गम स्रोत रहा है। इन्हीं के सौन्दर्य से प्रभावित होकर नायक, प्रतिनायक या सतनायक आकर्षित हुए हैं। कवि ने भी प्रेम की गरिमा को उभारने के लिए यथास्थल नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य या उनके नल-गित का वर्णन किया है।

इन प्रेमाख्यातों में प्रेम के स्वरूप की जो रूपरेखा मिलती है उसमें भारतीय प्रभाव से विरह के साथ संयोग का महत्त्व है जिससे प्रेम में मानसिक पक्ष के साथ शारीरिक पक्ष भी मिलता है। विरह की तीव्रता कभी नायक में तो कभी नायिका में विवक्षित की गई है तो कभी नायक-नायिका दोनों में विरह की भावा एक समान दीखती है। फिर भी "कथा विजयानंद देवप्रदे", "कथा नन्दमयवती", "कथा मधुकर मातली" आदि जैसे कुछ प्रेमाख्यातों में नायिकाओं में संवेदनशीलता नायकों की अपेक्षा अधिक है। संयोग का रूप दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यातों में सर्वाधिक एवं आदर्शात्मक है। विवाह के पूर्व नायक-नायिका मिलने पर प्रायः शारीरिक अभिचार नहीं करते। विवाहोपरान्त ही प्रायः

सुरत-रस का परिपाक हुआ है। स्वच्छंदता परक प्रेमाख्यानों में मर्षादा का उतना स्थान नहीं रहा। प्रेमाख्यानों में लोकमर्षादा का तत्किमपि दोष नहीं, गुण समझा जाता है^१। कामवृत्ति की अभिव्यक्ति एवं विनाश की रसिकता का वर्णन कर कवि कही-कही रति-संग्राम का रूपक बड़ा कर दिया है। संभोग का बड़ा हुल्लूक वर्णन किया है। "प्रवर्तते मयः" में प्रेम का स्वरूप विलक्षण भावात्मक है। फारसी - पद्यति पर होने से उसमें संभोग का प्रसंग नहीं है।

इसके प्रेम में एकनिष्ठता, दृढ़ता, अनन्यता, कोमलता, हृदय की पवित्रता, गर्व का विलय, सर्वात्म्य समर्पण, सहजता, ऐंद्रियता, सर्वात्म्यभाव, उत्तरदायित्व की भावना आदि का बखोवित विवरण हुआ है। प्रेमी और प्रेमिका दोनों प्रेम का उदय होते ही एक दूसरे के पाने के लिए एकांतिक भाव से दृढ़ हो जाते हैं। माता-पिता के बहुत बाहने पर भी वे अन्य किसी से सम्बन्ध नहीं करते। प्रेम के एकांगीपन होने से वह सामान्योन्मुख न रहकर विशेषोन्मुख हो जाता है। "कथा कल्कावती" में तो नायिका कल्कावती नायक परमरूप के प्रेम में के सामने पिता को भी ठुकरा देती है। "प्रवर्तते मयः" में भी मयः तथा लैला प्रेम की एकनिष्ठता के कारण ही दोनों का जीवन कष्ट सहते हैं। इसी तरह "कथा विजया देवसे" में नायक-नायिका दोनों बहुत दिनों तक घर से निर्वासित कर दिए जाते हैं, किन्तु एक दूसरे के प्रति प्रेम की एकांतनिष्ठा नहीं छोड़ते। सतपरक प्रेमाख्यानों में तो समस्त नायिकाओं में अपने पातिव्रत-धर्म की रक्षा की दृढ़ता है। प्रेम का सर्वात्म्यभाव होने से इनमें जाति-भेद नहीं है। सामान्य बेरी तथा अप्सरा से भी प्रेम प्रकट किया गया है। "कथा छीता" में राम के प्रेम में दायित्व की भावना है। "कथा मोहनी" तथा "कथा छत्रिणागर" में संहिताओं की भांति पहेलियां सुझाने का रूप मिलता है। "कथा पुष्पवर्णिता" में पुरुषोत्तम के प्रेम में परीपकारी भावना का रूप भी है। "कथा मण्डरमातली" तथा "कथा छीता" में प्रेम के सब्बे रूप को प्रकट करने के लिए नायक-नायिका की प्रेम-परीक्षा ली गई है। संगीत के

माध्यम से भी किसी-किसी में प्रेम - सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

इनमें कुछ प्रेमात्म्यानों के नायक एक से अधिक विवाह करते हुए विभक्त हुए हैं । "कथा शिवदा देवसे" में दो, "कथा सुभट्टराज" में तीन, "कथा कनार्वती" में नौ तथा "कथा कर्तदर" में तीन विवाह नायक करते हुए दीखते हैं, किन्तु इन नायिकाओं के प्रेम का स्वरूप आदर्शात्मक (Idealistic) है । नायिकाएँ आपस में ईर्ष्या, कतह, घेना, आदि नहीं दिखातीं । सम्भवतः बहु-विवाह इसलिए है कि जिस प्रकार करोड़ों मनुष्यों का उपास्य एक ईश्वर है उसी प्रकार कई स्त्रियों का उपास्य एक पुरुष हो सकता है । हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में कई स्त्रियों से विवाह करने की रीति बराबर से मिलती आई है ।

दाम्पत्यपरक प्रेमात्म्यानों में दाम्पत्य-प्रेम के साथ मित्र प्रेम का भी महत्व रहा है । "कथा रतनावती" में उत्तम, "कथा पुहुपवरिणा" में महा-नन्द, "कथा रूपनखरी" में न्यानसिंह, "कथा कामरानी वा पीतमदास" में नायक के चार मित्र - सौदागर, सुरंगिणा, बड़ई पुत्र तथा काछी पुत्र नायक की सहायता करते हुए दीखते हैं ।

इस तरह जाणकवि प्रेम का स्वरूप बहुत कुछ भारतीय-पद्धति के निकट लोक-सम्बद्ध एवं व्यवहारात्मक है । एकांतिक प्रेम के बीच-बीच में या अंत में कवि जीवन के और बहु पहलुओं के साथ प्रेम का आदर्श रूप भी दिखाता गया है । वास्तव में प्रेम रूपी अमृत के पान करने के बाद मनुष्य सदा के लिए ब्रह्म हो जाता है^१ । फिर भी इसका मूल स्वरूप प्रायः सर्वत्र ही गार्हस्थ्यिक है । यद्यपि रीतिकाल के प्रभाव से कहीं प्रेम के स्वरूप में ऊहात्मकता और स्वभाव के अनुसार इस्लामी - संस्कृति का प्रभाव जकात होता है और भी इनकी प्रेम - व्यवस्था में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य की स्थापना हुई है ।

१- मैत्रु सुधा की जान कहि, जोई करिई पांनि ।

सो कबहुँ नाहि न मरै, ताहि ब्रह्म निरत जांनि ॥

प्रेम और सौन्दर्य:-

प्रेम और रूप का जित एवं अन्योन्याश्रित संबंध है। वे दोनों सम्बन्ध प्रायः सहगामी हैं। जहाँ प्रेम है वहाँ सौन्दर्य है और जहाँ सौन्दर्य है वहाँ प्रेम। इन दोनों का व्याप्य-व्यापक संबंध है। प्रेम सौन्दर्य का जनक है इसी से इसमें सर्वत्र सौन्दर्य का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है^१। और प्रेमी का सारा जीवन ही सौन्दर्यमय हो जाता है^२। इससे हम जहाँ जाहे वही प्रेम से सौन्दर्य का पूर्ण विकास देख सकते हैं^३। इसी तरह प्रेम भी सौन्दर्य से ही जीवन-रस ग्रहण करता तथा उसी में पर्यवसित होता है। संसार में जहाँ कहीं भी सौन्दर्य है वही प्रेम का आकर्षण है। सौन्दर्य ही प्रेम का उद्गम स्थल है और वही मूल प्रेरणा है। सच्चे प्रेम के लिए स्वाधीन सौन्दर्य की आवश्यकता हुआ करती है जोकि एकमात्र ईश्वर स्वयं में ही सम्भव है। ईश्वर स्वयं सौन्दर्यमय है अतः प्रेम का पात्र है। दादू के अनुसार प्रेम ही ईश्वर है वह उसी का मंग एवं स्वरूप है^४। सुफियोंने इसीलिए परमात्मा को प्रियतम का रूप दिया है। उनका वह प्रियतम परम सौन्दर्यमय है। वह विविध रूपात्मक गोबर जगत उसी परम-सौन्दर्यमयी सत्ता की प्रतिच्छाया है^५। वह अनन्त सौन्दर्य स्वभावतः साधक को

१- "प्रेम की प्राप्ति से दुष्टि आनन्दमयी और निर्मल हो जाती है। जो वारें पहले नहीं सुझती थी वे सुझने लगती हैं, वारों और सौन्दर्य का पूर्ण-विकास दिखाई पड़ने लगता है।"

-रामचन्द्र गुप्त-जायसी-ग्रंथानवली-भूमिका, पृ० ८७, १९३५ ई०।

२- "प्रेम एक संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन-धन को रमणीय और सुन्दर कर देता है।"

-रामचन्द्र गुप्त-चिन्तामणि (भाग-१) पृ० ९१, १९५९ ई०।

३- इसक है दुस्न का शक्ति, तुम्हें मालूम नहीं।

मैं जहाँ जाऊँ वहाँ दुस्न जुमायाँ हो जाये ॥

- विनय मोहन शर्मा-साहित्यावतोकन-पृ० १२३, १९५३ ई०।

४- इसक जतह की जाति है, इसक जतह का मंग।

इसक जतह जीवूद है, इसक जतह का रंग ॥

५. Phenomenal diversity ~~is the reflection of the~~ ^{नैतिकता की संज्ञा (पहला भाग) पृ०-८३३/१३३२ ई०)}

is the reflection of the supreme beauty.

अपनी ओर आकृष्ट करता है और साधक द्वारा इसकी प्राप्ति की सतत चेष्टा प्रेम का ही एक रूप है। इन कथानों में जब साधक प्रेमिका के रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर उसके प्रति एकांतिक भाव से दुःख होता है तो उसे इस रूप या लौकिक सौन्दर्य में अलौकिकत्व का रूप अपने आप दृष्टिगोचर होने लगता है। इस तरह इन प्रेमाख्यानों में लौकिक प्रेम की प्रतिष्ठा अलौकिक प्रेम के लोपान के रूप में हुई है, किन्तु सूफियों के अनुसार इस अलौकिक प्रेम या "इश्कहकीकी" तक पहुंचने के लिए लौकिक प्रेम या "इश्कम-त्राबी" का परित्याग नहीं किया जा सकता। वह तो अध्यात्मिक-प्रेम तक पहुंचने का एक साधन मात्र है इसीलिए संतावन जैसे सौन्दर्यशास्त्री दार्शनिकों ने भी सौन्दर्य बोध में यौन-संबंधन या सांसारिक प्रेम के महत्व की गीकार किया है¹।

जानकवि की समस्त नायिकाएं प्रायः रूप-सौन्दर्य परक हैं। इनके समस्त नायकों एवं कलनायकों में प्रेम का नायिर्भाव प्रायः इन्हीं के रूप-दर्शन या गुण-बोध से हुआ है। वह रूप दर्शन कभी स्वप्न या चित्र के द्वारा तो कभी साक्षात् रूप में हुआ है, किन्तु कवि ने यहां गुण-बोध के माध्यम पर प्रेम-भाव के जीव को अंकुरित कराया है वहां भी विशेषतः रूप-लावण्य की ही प्रतिष्ठा करके उसका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है। इसका विस्तृत विवेचन कामे किया गया है। प्रेम के उदय हो जाने के बाद नायक, नायिका की प्राप्ति करने के लिए प्रेम-मार्ग पर एकनिष्ठ भाव से दुःख होकर बने प्रयास करते हैं और जिस रूप से आकर्षित होकर वह प्रेम उत्पन्न हुआ रहता है वही प्रेम स्वयं उस रूप को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और स्वयं सौन्दर्यमय हो जाता है।

-
1. "The whole sentimental side of our aesthetic sentimentality without which it would be percepture and mathematical rather than aesthetic is due to our sexual organisation remotely stirred." G. Santayan- 'The sense of beauty'- p. 79

जिस तरह प्रेम की अंकुरित करने में नायिकाओं का रूप-सौन्दर्य सहायक हुआ है उसी तरह प्रेम को पुष्ट एवं विकसित करने में भी सहायक हुआ है। "कथा रतनावली" में "मुद्रिका" पर अंकित चित्र के रूप सौन्दर्य से नायक महिमोहन में प्रेम का प्रादुर्भाव तो होता है, किन्तु उसकी पुष्टि या उसके प्रति नायक की दृढ़ता पद्मिनी द्वारा रतनावली के रूप या नव-शिशु वर्णन से हुई है^१। इसी तरह "कथाकवलावली" में चित्र-दर्शन द्वारा नायक इन्दुबदन् में प्रेम का उदय होने पर उसकी पुष्टि लोता द्वारा कवलावली के नव-शिशु वर्णन से हुई है^२। ऐसे ही "कथामुभटराज" में अवाली के राजा की पुत्री का नव-शिशु वर्णन कवि ने बाद में नायक के आकर्षण को उत्प्रेरित करने के लिए किया है^३। "कथानलदमयंती"^४, "कथामुहुपवरिष्ठा"^५, "कथा मोहनी"^६, "कथा रतनमंजरी"^७ आदि में भी नायिकाओं का नव-शिशु वर्णन हुआ है। इस लौकिक रूप के भूलक या अवस्था मात्र से कभी-कभी नायक मुग्ध होकर बेसुध या मूर्छित हो जाया करते हैं। इनको इस रूप-सौन्दर्य में दिव्य वा अलौकिकत्व का किंवदन्ति आभास मिलता है। इसीलिए चैतन्य होने पर भी इनकी दृष्टि सभी सांसारिक पदार्थों से मुड़ जाती है और उनका हृदय उसी रूप सागर में मग्न हो जाता है। वे सांसारिकता को छोड़कर उसी के लिए प्रयत्नशील होते हैं, किन्तु ऐसे प्रेमाख्यानों की संख्या कम है। "कथा कवलावली"^८, "कथा रतनावली"^९, "कथा कौतूहली"^{१०}, "कथा रतनमंजरी" आदि में नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य के अवलोकन से नायक मूर्छित होते हुए देखे जाते हैं। इन नायिकाओं के साथ नायक भी सौन्दर्यवान्

१- चौ०- ८३ से ८६ तक । २- चौ० - ४१ से ४४ तक ।

३- चौ०- २५ से २८ तक । ४- चौ०- १३ से सवैया १६ तक ।

५- चौ०- ४० से ४३ तक । ६- दोहा- १२ से २७ तक ।

७- चौ० - ५० से ५८ तक ।

८- चौ०-५५- सुनत सिंगार कुंवर सुधि भूली । नैननि माभ सार्ध सी फूली ।

९- चौ०-८०- सुनत तिया की रूप निकार । अर्धभई कुंवर की पीति सवार ।

बिनु देखी मुर्छागति आई । पद्मनि फेरि उठायी भाई ।

१०- चौ०-१२ ।

विविध रूप हैं । इसी से उनके प्रत्यक्ष-दर्शन पर कभी-कभी रतनावती^१, कीतुहली^२, कामरानी^३ जादि नायिकाएँ भी पुष्प ही मूर्छित होती देखी जाती है ।

वस्तुतः नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन में प्रायः कवि ने रीति-काजीन पद्धति पर उनके नख-शिख (जिसे शिख नख कहा जा सकता है क्योंकि कवि ने शिख से वर्णन आरम्भ किया है) का वर्णन किया है जो कि परम्परा प्रयुक्त एवं दृढ़िगत होने पर भी कवि के कौमल स्वभाव एवं अपरिमित भावना से भरा लगता है । रीतिकाल में तो नख-शिख वर्णन की स्वतंत्र विधाय मानकर अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं । इस नख-शिख वर्णन के साथ कवि ने नायिकाओं के अलंकारयुक्त वावरणों का वर्णन भी किया है । नख-शिख वर्णन में कवि ने सौन्दर्य की बरम सीमा को प्रदर्शित करने के लिए अनेक सुन्दर उपमानों का उपयोग किया है । "कथा पदुपकरिष्ठा" में कवि ने सुकैली का नख-शिख वर्णन करते हुए तरीर की कैली रूप रेखा प्रस्तुत की है-

"मदन सदन है रूप की, तामें मदन निवास ।

बधि बकौर बंदत रहै, मानहु बंद प्रकास ॥

रतनावती नायिका के नख-शिख वर्णन में कवि ने प्रकृति के अनेक उपमानों या सौन्दर्यमय विभिन्न रूपों को किस तरह समेटा है ।

रतनावति है मानहु बंद । सज्जी, सुङ्ग गुर मंगलमंद ॥

अन रंभाञ्छी सागतनारी । कियौ बंद ते बीर निकारी ॥८३॥

सेत माँग जरु करै नार । जमना मडि सुरसुरी पार ॥

कब बंधिबार मंग डबियारी । स्वाम निजा में दूधौ तारी ॥८४॥

इस तरह इन प्रेमास्थानों में सौन्दर्य के द्वारा प्रेम की जो रूप-रेखा निखरी है उसमें दाम्पत्यपरक प्रेमास्थानों की छोड़कर शेष अधिकांश स्वच्छंदता एवं सतपरक प्रेमास्थानों में नायकों या प्रतिनायकों का रूप के

१- वी०-१२५ । २- वी०- १८ ।

३- दोहा- १३ या (वी० ८ के बाद का दोहा)

प्रति आकर्षण कोरा भौतिक वा शारीरिक है। एक बात यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह कहा जाता है कि मैला उतनी रूपवती नहीं थी फिर भी मयतुं बाजी बन उसको पाने के लिए मरता रहा। हमारे मतभेद है कि मैला के प्रति मयतुं के प्रेम का आधार, शारीरिक (रूप) आकर्षण का न होकर, अतिशुद्ध भावात्मक वा मानसिक अनुभूति का है। मयतुं मैला के प्रति एकनिष्ठ होकर भौतिक सौन्दर्य का पान करता है और अंत में उसी के साथ अपने को मिलीन कर देता है^१। वास्तव में इन दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यानों में सौन्दर्य से ही प्रेम उदित हुआ है, सौन्दर्य से ही प्रेरणा पाकर विकसित हुआ है और अंत में सौन्दर्य के साकार रूप में ही पर्यवर्तित हुआ है। उन्ही तरह हिन्दी के अन्य सूणी तथा असूणी प्रेमाख्यानों में भी प्रेम के साथ सौन्दर्य का सम्बन्ध मिलता है।

प्रेम की विभिन्न अवस्थाएँ

इसके अन्तर्गत प्रेम का उदय, प्रेम मार्ग की विधुन आधार, सैदाबादक वा गुरन का महत्व, विरह और प्रेम की गहनता, संयोग और प्रेम की चरम परिणति आदि का अध्ययन किया गया है।

प्रेम का उदय-

प्रेम के उदय का मुख्य आधार सौन्दर्य है जो कि मुख्यतः चार स्वरूपों- गुण-वर्णन, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन वा प्रत्यक्ष दर्शन से जागृत होकर कार्यान्वित होता है। "क्या कहलावती" में तीरी द्वारा एक दूसरे का गुण वर्णनकर नायक इन्दवदन् तथा नायिका कहलावती में प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ है और बाद में दोनों में चित्र-दर्शन से इसकी पुष्टि हुई है^२। "क्याकौतुहली" में कुंवर सरसंगी के प्रेम का उदय बन्वारी द्वारा कौतुहली के गुण-वर्णन से हुआ है^३। "क्या कलावती" में नायक पुरन्दर में प्रेम का आविर्भाव एक पथिक

१- जानकाजी ने अपने "प्रथम सौन्दर्यमयतुं" में मैला के रूप का उतना वर्णन नहीं किया है केवल कुछ पंक्तियों में नाम लेकर ही छोड़ दिया है। इसकी रचना पुरारसी कथानकों के ढंग पर है जिससे इसके प्रेम का स्वरूप अन्यो से भिन्न है।
२- जी० - २९ से ७० तक। ३- जी० - ९ से १२ तक।

द्वारा गुण-श्रवण से हुआ है^१। उसी तरह "कथा छीता"^२, तथा "कथा मोहनी"^३ में गुण-श्रवण से नायकों में प्रेम संकुचित हुआ है। "कथा सतवंती"^४ में पूर्व भी गुण श्रवण से ही सतवंती की ओर आकर्षित हुआ है^५।

चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम का उदय "कथा रतनावती"^६ में नायक महिमोहन के हृदय में पिता द्वारा दी हुई मुद्रिका पर अंकित रतनावती के चित्र तथा "कथा कामरानी या पीतमदास"^७ में पीतम दास के हृदय में काजूरू देश में एक शिवा पर अंकित कामरानी के चित्र से हुआ है। "कथा रूपमंजरी"^८ "कथा रतनमंजरी"^९, "कथा कामलता"^{१०} आदि में नायकों में प्रेम का जागरण स्वप्न-दर्शन से हुआ है, किन्तु बाद में नायक स्वप्न में देखे हुए रूप का चित्र बनवाते हैं जिससे उनके प्रेम की और पुष्टि हुई है।

"कथा नन्दमंजरी"^{११} और "कथा कनकावती"^{१२} में स्वप्न एवं चित्र दर्शन तथा गुण-श्रवण- इन तीनों रूपों से नायक-नायिका दोनों में प्रेम का आविर्भाव हुआ है। कथानन्दमंजरी में तो पूर्वानुदाग भी सहायक हुआ है। "प्रिय वैशम्पयन"^{१३} तथा "कथा मङ्गलमानती"^{१४} में पाठाशाला में साक्षात् दर्शन से प्रेम का उदयक हुआ है। कथा कुलवंती, कथा सीतवंती तथा कथा निरमल में क्रमशः राजाकुतुबुद्दीन, बाबदार एवं पातिगाह जैसे कलनायकों में भी नायिकाओं के प्रति प्रेम का आकर्षण प्रत्यक्ष दर्शन से हुआ है। इसी तरह सूरजी तथा बसुन्नी के प्रेमास्थानों में भी नायकों में प्रेम का उदय हुआ है। इसका विस्तृत विवेचन "साहित्यिक-अभिप्रायों" के साथ अध्याय-३ में किया जा चुका है।

१- बी० - १२ से १३ तक।

२-बी० - ४१

५-बी०- १९ तथा २०

७- बी०- १३ से १६ तक

९- बी०- ५ से १२ तक

११-बी०- १० से १४ तक

१३-बी०- १

२- बी० - ५

४-बी०- ६

६-बी० - १ (अंत में)

८-बी० बी०- १३

१०-बी० १८ से २८ तक

१२-बी०- २

इस तरह हम कह सकते हैं कि रूप से ही प्रेम उदभूत होता है और वही रूप तब प्रेम को नाकामित कर देता है। प्रेम का उदय ही जाने पर वे नायक किञ्चित् समय के लिए वैधेन तथा विकस हो जाया करते हैं फिर वेतनावस्था में होने पर वे अपने जीवन की सारी अन्य बातों के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करते हुए केवल अभीष्ट को पाने की चेष्टा के अतिरिक्त और किसी बात को पसन्द नहीं करते^१। वे कभी सहज रूप में तो कभी योगी बनकर बीणा-वादन करते हुए घर से निकलते हैं। "कथा कल्पावली", "कथा कलावली", "कथा रूपमंजरी", "कथारतनमंजरी", "कथा छीता" आदि में नायक योगी-वेश में घर से निकलते हैं। इस तरह कवि ने प्रेम में संगीत को भी महत्व दिया है। इनका "संकीर्णमुन्दोप" तो संगीत का काव्य ही है। "कथा कौतूहली" में भी संगीत को महत्व दिया है इसमें प्रेम का उदय, विकास या अंतिम संगीत के माध्यम से ही हुआ है।

प्रेम मार्ग की विधुन-वाधाएँ-

प्रेम मार्ग अत्यन्त दुर्लभ है। इस पर नहीं चढ़ सकता है जिस पर ईश्वर की कृपा ही^२। या जो अपने को खो दे^३। विरह प्रेम उत्पन्न होते ही प्रियतम से मिलने की आशा से घर-बार छोड़कर वन-वन भटकना पड़ता है^४। इसमें वैभवशाही व्यक्ति भी निर्धन हो जाता है^५। पर्वत भी

-
- १- प्रेम बस्यो विह प्रान में, ताकी जानन भित ।
जहाँ जहाँ भन पसार है, तहाँ तहाँ देखी भित । (कथा महोपनिषद्)
 - २- पैसु पंथ प्रति कठिन है, चल न सकत है कोइ ।
तापर आप छिपात है, सुगम भवै तिहँ होइ । (प्रेम लेखे मन्त्र)
 - ३- कठिन पंथ है पैसु की, सुमट भवै ठहराव ।
जापुन मिलहि दयात है, जबहि आप उठि जाइ ॥ (कथा रतनावली)
 - ४- विरह पैसु विह तन जहै, भित मिलन की आस ।
नगर नगर नाहिन रहै, वन वन भवै उदास ॥ (कथा कलावली)
 - ५- भीतर राजी चीकनी, बाहर रूखी जल ।
भीष्म मगावै राज है, वैसै पैम तरंग (कथा कल्पावली)

स्थिर रूप भी उसके ज्वाला की तीव्रता से रूक नहीं पाते । इस पर चलने के लिए बहुत शैर्ष की आवश्यकता होती है । इसी तरह जायसी तथा उसमान आदि कवियों ने भी प्रेम-यश को बहुत दुर्गम बताया है ।

बान्साबि ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेम के उदय के बाद इन विधुन-बाघाओं का चित्रण कभी नायक-नायिका के विवाह के पूर्व तो कभी विवाह के पश्चात् किया है । इनमें कुछ प्रेमाख्यानों में नायकों को तथा कुछ में नायिकाओं को अपेक्षाकृत अधिक कठिनाइयाँ सहनी पड़ी हैं । कुछ में तो दोनों को समान रूप में कष्ट भोगना पड़ा है । समस्त सतपरक प्रेमाख्यान तथा "कथा कल्लावती", "कथा कल्लावती", "कथा पुहुपवरिणा" एवं कुछ स्वच्छन्दता परक प्रेमाख्यानों में असूफी प्रेमाख्यानों की भाँति नायिकाओं को नायकों की अपेक्षा अधिक विधुन-बाघाएँ भोगनी पड़ी हैं । सतपरक प्रेमाख्यानों में तो एक मात्र नायिकाओं का ही व्यक्तित्व प्रधान है । आस्तन सलनायकों द्वारा तथा उनके द्वारा भेजी गई कुट्टियाँ से उन्हें कष्ट सहना पड़ा है । "कथा पुहुपवरिणा" में माता द्वारा पकी बना देने से, "कथा कल्लावती" में देवताओं द्वारा जंगल में उठा ले जाने से तथा "कथा कल्लावती" में पिता द्वारा प्रणय न स्वीकार करने पर उन्हें आजीवन कष्ट भोगना पड़ा है । इसी तरह "प्रय लैलामनू" में भी लैला के माता-पिता द्वारा प्रणय न स्वीकार करने पर जीवन के अंत तक दोनों को कष्ट उठाना पड़ा है । "कथा मधुकर मालती" में भी संबंध न स्वीकार करने पर मालती को अनेक जगह, अनेक व्यक्तियों के मोहित होने से उसे बहुत कष्ट उठाने पड़े हैं और अंत में परीक्षा तक देनी पड़ी है । इसके अतिरिक्त कथा नल दमर्षती, कथा सिद्धादिवलदे आदि में दोनों को समान रूप से तथा लैला अन्य दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यान एवं अध्यात्मपरक प्रेमाख्यान कथा मलुकिया फिरही, में नायकों को ही अधिक संकट भोगने पड़े हैं ।

प्रेम के उदय होते ही परिवार कुटुम्बादि के मोह-माया की छोड़कर प्रेमी केवल विधुन-बाघाओं को सहता हुआ भूलते-भटकते फिरते हैं । अंधी रात में जीहड़वन, नदी, पर्वत आदि, हाथी, सर्प जैसे

१- पैनु ज्वाला की भरकटें, हारे हार पहार ।

सब की यह पीरव कहाँ, सहे मेह की भार ॥ (कथा कल्लावती)

अनेक जंगली जानवर, विस्तृत समुद्र में नाव दुर्घटना, मित्र-विघ्न, मर-मृत्यों की लम्बी यात्रा, फिररते, दानव-राक्षस, भूत-प्रेम, ठग आदि से लेकर अन्य अनेक दैवी घटनाओं का प्रकीर्ण तक उसे उसके पम से विवर्णित करना चाहते हैं । कभी वह देव या परियों के क्षेत्र में पहुँचकर प्राणों को संकट में डालता, कभी पानी में बहा दिया जाता, कभी हवा या पत्ती द्वारा उड़ा दिया जाता, कभी खलनायकों, राक्षसों अथवा हिंसक-पशुओं से मुह करता, कभी बंदी जीवन व्यतीत करता, कभी दानता स्वीकार करता, कभी लम्बी अवधि तक मंत्र-साधना, संगीत या नाच-विद्या का उपहार करता, कभी परीक्षा देता^१, तो कभी यह काम, झोष, मोह, लुब्धा, माया आदि प्रलोभन में पड़ता^२, किन्तु वह उनकी जरा भी परवाह नहीं करता । अपने प्रिय से मिलने की यात्रा से वह असीर नहीं होता और अंत में किसी देवी-देवता, महापुरुष या गुरु की सहायता से सफल होता है । इस तरह अतक साधक इन कठिनाइयों में तपकर निरंतर नहीं जाता तब तक वह अभीष्ट को प्राप्त नहीं कर पाता । इन्हीं बाधाओं तथा संकटों में पड़ने से ही उनके वास्तविक प्रेम की परीक्षा होती है और अंत में यह दुर्गम प्रेम मार्ग भी उसे सरल लगने लगता है^३ । इसी तरह सूणी तथा असूणी के अन्य प्रेमात्मानों में भी नायक-नायिकाओं की कष्ट भीतने पड़ते हैं, पर सूणी प्रेमात्मानों में कष्ट की मात्रा एक मनुष्य मात्र नायकों की ही अधिक सहनी पड़ी है । इसका विस्तृत विवेचन अध्याय-३ के "कथानक-संगठन" में किया जा चुका है ।

सदैव-बाहक या गुरु का महत्व-

वैदिक काल में पुरोहित, बौद्ध युग में उपदेशक गुरु से लेकर सिद्धों, नाथों तथा मध्यकालीन धर्म एवं प्रेम-साधकों ने गुरु माहात्म्य की प्रचुर

१- "कथाकनकावली", "कथामयुक्त पालती" में हार्दिकसीद तथा "कथा छीता" में बलाढही न नायक-नायिका दोनों की परीक्षा लेते हैं ।

२- काम मोह तिसना लुब्ध, माया झोष रिसान ।

बलत न दे वति पंथ की, है विघ्न कहि जान ॥ (कथा पदुपवरिका)

३- तौकी मारग पैसु दुहेली । पै मोकी वति लगे सुहेली ॥

(कथा रतनमंजरी) वी० २०८ ।

जर्वा की है। नामदेव जैसे कवि ने भी जंत में गुरु की अनिवार्यता मानी है^१। कबीर ने तो गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर कहा है^२। हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाल्खानों में गुरु की अनिवार्यता सिद्ध है। गुरु के बिना साधकों की सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती इसलिए उन्हें अपने अध्यात्मिक यात्रा में प्रायः एक गुरु का जवन करना पड़ता है।

जानकवि ने भी गुरु के महत्व को स्वीकार किया है। उन्होंने अपने पीर के निवास-स्थान हांसी की प्रशंसा बिन गान्धों में की है इससे उपपन्न है कि वे पीर या बली को कितना महत्व देते थे^३। "प्रेम-मार्ग अत्यन्त दुरूह होता है बिना गुरु की कृपा के साधक (बेता) उस पर चल नहीं सकता है। वे साधक को प्रेम-मार्ग निर्दिष्ट कर उसे प्रियतम का दर्शन कराते हैं^४। वास्तव में गुरु की सेवा जो मन एवं चित्त से एकाग्र होकर करता है उसकी सारी बिन्ताएं अपने साथ दूर हो जाती हैं^५। बिना गुरु के मनबांछित की उपलब्धि नहीं होती^६। गुरु ही इस सांसारिकता या भवसागर से पार लगा सकता है और यही सभी

१- जंत में बेवारे नामदेव ने नागनाथ नामक तिव के स्थान पर जाकर गिरीजा देवर या देवरनाथ नामक एक नाथपंथी कंकटे से दीक्षा ली।"

—रामचन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० ६८, पृ० १०९।

२- गुरु गोविन्द दीक्षा लड़े, काके लागूं पाय।

इतिहासी गुरु आपने, बिन गोविन्द दियो बताय।। संतबानी-संग्रह (प० भाग) पृ० २।

३- पीर सैण महमद है बिस्ती, बदन मुरि भाजतु है फिस्ती।

रहन गांव जानहु हांसी, देणत कटे चित्त की फांसी। (कथा कवलावती जी०-८)

४- गुरुनबिन मारग कौन बतावै। को प्रीतम दरसन परसावै।

कठिन पंथ मुनि अधिक दुहेला। गुरु किरपा बिन चलत न वेला।।

(कथा रतनमंजरी, जी० ७५)।

५- जो गुरु की सेवा करै, इक मन इक बिस होइ।

इहंवा पूरै प्राँन की, बिंता रहै न कोइ।। (कथा रूपमंजरी)।

६- जान कहै मनभावतौ, गुरु बिन लहै न कोइ।

माँगीहुं की गुरु लहै, ली मुण मीठी होइ।। (कथा कवलावती)।

विपत्तियों को दूर कर सकता है। इसी के ज्ञान से सभी जन्ममृत, ज्ञात तथा अदृश्य, दृश्य लगन लगते हैं^१। गुरु ही मोह, क्रोध, नृष्णता आदि सांसारिक प्रलोभन तथा दुर्वर्तों से बचाता है^२। इनका मङ्गल होते हुए भी इन प्रेमाख्यानों में गुरु^{साधन} मात्र है साध्य नहीं। साध्य तो प्रेम होता है जिसे साक्षात्कार कराने में गुरु यदि सफल हुवा तो पान्य है अन्यथा नहीं^३। कवि ने अन्य सुफ़िषों की भांति स्वाभाविकता को भी, "क्या बहुकिया - फिरही" तथा "क्या रतनावती" में, स्थान दिया है। ये भी गुरु के रूप में नायक की सहायता प्रदान करते हैं^४।

जिस तरह जायसी ने "पद्मावती" में कहीं रतन्सेन तो कहीं पद्मावती को गुरु का स्थान प्रदान किया है^५। उसी तरह बानकवि ने भी "क्या रतनावती"^६ तथा "क्या मफ़्फ़रमावती"^७ में इसका किंवदन्ति संकेत नायि-

१- गुरु बिना नाहि मिलत भीतारन । निकट जाहिं पै निकट बिहारन ॥
प्राप्त जवून जवून न बूझै । नैन जवून जवून न सूझै ॥ "क्या कामलता"
बी० २६।

२- मोह क्रोध तिसना, जुबिधि, दुज्वन पुहै जाइ ।
जौ गुरु पतटे रूप तुम, तौ जिय होइ बंवाई ॥ (क्या रूपमवती) ।

३- गुरु पढ़ाई सब कहु समझावै । पैस गुरु सब जगत भुलवौ ॥
गुरु भुके तज्य चोट भगावै । पैसुं सकल ही जंग गवावै ॥
(गंवैलीमजनु-बी० ४) ।

४- "जिह्वा छुई नामक फ़कीर या पीर की चर्चा लगभग प्रत्येक सुफ़ी जीवक-
नियों में आई है। कहा जाता है कि स्वाभाविक साधक को मार्ग प्रदर्शन
करते तथा कष्ट या दुःसाध्य कार्य में सहायक होते हैं। जानोन्मुख प्रा-
णियों पर इनकी विशेष कृपा होती है। ये असम्भव से असम्भव कार्य भी
लाघा भर में पूर्ण करने की शक्ति रखते हैं।"

डा० सरला गुप्त-जायसी के परवर्ती हिन्दी सुफ़ी कवि और काव्य-"पु०

५-(१) जो पद्ममावति गुरु हो बैठा । जोग क तंत बेहि कारन केला ॥

-रामचन्द्र गुप्त-जायसी -पद्मावती-पृ० १०५ (दि० संस्क०)

(११) डा० माता प्रसाद गुप्त ने "सम्मेलन-पत्रिका" भाग ३४, संख्या १०-१२, सं०
१००४ कड़े अपने एक लेख में लिखा है कि "प्रेम पात्र प्रेम का आधार गुरु
है। पद्मावती की रतन्सेन इसी भावना से देखता है-----गुरु और
परमेश्वर पर्याय मात्र हैं-----गुरु कुछ अन्य प्रसंगों में प्रेम-बंध के पय-
प्रदर्शक का पर्याय भी है।"

६- बी०- १३१ तथा १३२ ।

७- बी०- ५ ।

काव्यों को जोर कराया है। कवि ने तोता का अन्य अनेक पक्षी, देवता, गरुड़, संन्यासी, तपस्वी, सिद्ध, ज्योतिष्णी, ब्राह्मण, बुद्ध-पुरुषा, पथिक, माती आदि पुरुषा-पात्र तथा नायिकाओं की सखी, बेरी, दाई, सेविका, मासिनी या बुद्धा आदि स्त्री-पात्र को नायक-नायिकाओं के बीच संदेश-वाहक या उनकी सहायता करते हुए विवक्षित किया है। जोकि इन प्रेमास्थानों में गुरु के ही एक रूप हैं। जिस तरह "पद्मावत" में हीरामन सुग्गा^१ तथा "विद्यावती" में परेवा पक्षी गुरु का कार्य करते हैं वैसे ही "कथा कवलावती" में एक तोता तथा "कथा नन्दमर्बती", "कथा रतनावती", "कथा रतनज्वरी"^२, "कथा बलुकिआ विरही", "कथा तमीय बंसाती" में अन्य पक्षी गुरु के रूप में सहायता करते विवक्षित हुए हैं। इन सबका विस्तृत विवेचन अध्याय-६ में ~~कवि ने निम्नलिखित~~ "सिद्ध-पुरुषा" सहायक पुरुषा-पात्र, "सहायक स्त्री-पात्र", "मानवैतर-पात्र" तथा अध्याय -३ में साहित्यिक-अभिप्रायों के साथ किया गया है। यहाँ इन सबका पुनः पुनः-पुनः विवेचन पुच्छ-प्रेषणा मात्र होगा।

कवि ने अपने सभी प्रेमास्थानों में गुरु की सृष्टि नहीं की है। इसी तरह अन्य प्रेमास्थानों - "सुगावती", "मधुमालती" (मर्कन), "शान्दीप" आदि में भी गुरु को स्थान नहीं दिया गया है।

प्रेम और विरह की गहनता:-

विरह, प्रेम साम्राज्य का अमूल्य निधि है। इसका मूल स्रोत सृष्टि के प्रारम्भ में ही निहित है। साधक या प्रेमी को जब अपनी स्थिति का वास्तविक ज्ञान होने पर कि मैं मूलतः उसी (ईश्वर) का हूँ और उससे विलग हो गया हूँ तो अपने को असमंजस की स्थिति में पाने लगता है^३ और

१- गुरु सुना वेद पंथ देखावा । विनु गुरु बगल को निरगुन पावा ॥

-रामचंद्र गुप्त - जायसी-प्रियावती-पृ० १४१, टि० संस्क०।

२- पछी गुर हूँ कीनी दीरि । हाँ तो पुहम्मी जसी ठौर ॥१९९॥

३- हुता जो एकहि संग, ही तुम काहे बिहुरा ।

जब बिड उठे तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ कसु ॥

पं० रामचंद्र गुप्त - जायसी- प्रियावती (अकरावट)-पृ० १३६ (टि० संस्क०)।

पुनर्मिलन के लिए जागृत होकर मुगुण हो जाता है । यही उसकी विरहावस्था की स्थिति का आविर्भाव है । विरह जागृत होते ही प्रेमी को स्ताना वाराम कर देता है । वह विरह में चिन्तित होकर पुनर्मिलन के लिए त्रिक्ल हो उठता है^१ । सम्भवतः इन प्रेमाख्यान कवियों ने ऐसा इसलिए किया है कि जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि उनकी प्रेम-यात्री उसके लिए अपरिचित नहीं है । वह तो उनकी विर-संगिनी थी जो इन्हीं दूर हो गई है । प्रेमी उसका संयोग तब तक नहीं प्राप्त कर पाता जब तक की विरह की अग्नि में तपकर कंचन के समान निष्कल नहीं जाता तथा प्रेम के गहरे समुद्र में गोता नहीं लगा लेता^२ । विरह की ज्ञां में तपने से साधक संसार की सभी बाधनाओं से मुक्ति पा जाता है तथा उसके हृदय की सभी क्लृप्तातार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, जादि नष्ट हो जाती हैं तभी वह सिद्धि को प्राप्त हो पाता है । "वास्तव में विरह ही वह मूल पदार्थ है जिसमें अमरत्व का गुण वर्तमान है और जिसके लिए प्रेम का आविर्भाव हुआ करता है । दूसरे शब्दों में प्रेम का अस्तित्व यदि है तो वह विरह के ही कारण है क्योंकि यही प्रेम का सार है^३ ।" इसीलिए समस्त प्रेमाख्यानक साहित्य में विरह का विमला विस्तृत रूप में हुआ है । सूफियों ने तो विरह को बहुत अधिक महत्व दिया है । इनका "दुःखवाद" प्रसिद्ध है जो कि बौद्धों के दुःखवाद का समतुल्य है । वे इसी के बलपर अपने विरह-तत्त्व का निर्माण किए हैं । प्रिय-तम के वियोग में अलना, कल्पना, भ्रमना, विभ्रमना, निःसंज होना जादि व्यापारों से वे प्रेम की पीर जगाते रहते हैं । फारसी प्रेमाख्यानो में तो

१- जहाँ नेहु तहुवा विरहु, जहाँ विरहु तहाँ चित ।

जहाँ चित तहाँ केकली, कवपी मिलिहै मित ॥ (कया कलावती) ।

२- विरहु अग्नि में जो तन जारै । कंचन ते कुंदन करि डारै ॥

पेमु उदधि में डूबक जाई । मित रतन ताकै कर जैई ॥ (कया कर्तदर, चौ० १) ।

३- परशुराम चतुर्वेदी- मध्यकाशीन प्रेम-साधना- पृ० १५५, १९५७ ई० ।

आजीवन साधक विरह में ही तड़पते नजर आते हैं। इनके लिए विरह-व्यथा में तड़पना अनिवार्य-सा है।

इस तरह प्रेम में विरह का अनिवार्य महत्व है। जिस तरह गुँगी का संकेत कोई गुँगा ही समझ पाता है वैसे ही विरही को वरना में कोई विरही ही जान सकता है^१। प्रेम उत्पन्न होते ही विरह, साधक को स्थिर नहीं रहने देता^२। वह मन नगर मितने की आशा से भटकता रहता है^३। वह इस संसार से प्रेम नहीं करता^४। न ठोके रात में नींद आती है, न दिन में चैन पड़ता है। वह सदा विरह में ही जलता रहता है^५। विरह में जलने से उसका शरीर रक्त रहित हो जाता है^६। वह सदा प्रियतम की ही बात करता, उसी की सर्व्व देवता और उसी की बात सुनता है^७। विरह रूपी नाग के हमले हो पूरी शरीर में दुःख का साम्राज्य छा जाता है^८। जिस तरह ज्वाला

१- विरही के गति विरही जानै। गुँग सैल गुँगी पहिजानै ॥

(ग्रंथलैलैमज्जू, चौ०-५)।

२- घरकी कछु सोधी नहीं, बिह बट उपरै हेत।

विरहु फिरै दौरावतौ, कहुवाँ रहन न देत ॥ (ग्रंथलैलैमज्जू)।

३- विरह पैसु जिह तन बसै, मित मितन की आस।

नगर नगर नाहिन रहै, मन मन भवै उदास ॥ (कथा कलावन्ती)।

४- विरह जाग जारी जिहि देह। सोन करै या जग सौं नेह ॥

(कथा बलुकिमा विरही, चौ०-६३)।

५- नीदन आवै रैन काँ, दिन बीतत बिन चैन।

विरहु प्रबल पल पल दहत, सबल रहत है नैन ॥ (कथा कुलवन्ती)।

६- विरहानल ते हम जरे, कछु न रहवो ता माँहि।

ठौर ठौर बी चीरिये, तौ रत निकसत माँहि ॥ (ग्रंथलैलैमज्जू)।

७- विरह बसै जाके मुखा नैन, देखी प्रिय भाजी प्रिय चैन।

विरह रोग उष्यै जिह काँन, पीत नाव बिनु सुनै आँन ॥ (कथा पुहुपवरिजा)

८- विरह नाग नागरि उसी, बीब करै आवै।

रोम रोम विष्णुदुख रम्भा, बरीबरी लहराह ॥ (कथा रतनकर्मजरी)।

का बीछरा ज्वाला में जीवित रहता है जैसे विरही में ^{जीवित} व्याकुल नहीं होता, वह तो विरह में ही सुख का अनुभव करता है^१। विरह-रोग असाध्य होता है। यह सांसारिक औषधियों से शान्त नहीं होता है यह तो तभी शान्त होता है जबकि प्रियतम से मिलन हो जाय^२। प्रियतम से मिलने के लिए विरह और प्रेम दोनों का संयोग अपेक्षित है^३। इन दोनों के कारण ही मनुष्य का अस्तित्व है^४। और इन्हीं के रंग में रंगकर मनुष्य अमरत्व को प्राप्त करता है^५। जायसी के अनुसार तो प्रेम के अन्तर्गत विरह और रस जैसे ही विद्याम करते हैं जैसे मधुकोष में जड़ और मधु^६। इन्होंने विरह की भंगार की तस्वीर की धार से भी तीव्र बताया है^७। इसी तरह सूफ़ी तथा असूफ़ी के अन्य कवियों ने भी प्रेम के साथ विरह का अनिवार्य संबंध स्थापित करते हुए उसकी महत्ता का विवर्ण किया है। ज्ञानकवि में विरह के विवर्ण का उतना विस्तार नहीं है। जितना की हिन्दी के सूफ़ी तथा फ़ारसी प्रेमाख्यानों में कवियों ने किया है। सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेम का उदय, विकास तथा अंत तीनों का विवर्ण विरह में किया है जबकि ज्ञानकवि में प्रेम का उदय एवं विकास तो विरह में, किन्तु उनका अंत का विवर्ण संयोग में किया है। केवल "प्रियतैलैमवतु" अपवाद स्वरूप है। फ़ारसी-पद्यति पर होने

१- विरही को सुख विरह में, दुखते व्याकुल नाहि ।

जी ज्वाला को बीछरा, जीवित ज्वाला मांदि ॥ (कथा सिद्धार्थ देवतदे)।

२- विरह रोग असाध्य है, तब न औषध मूर ।

उपवै तबहि ललत समाधि घट, जब हवै भिंत हवूर ॥ (प्रियतैलैमवतु)

३- जा घट में उपवै मे दोह । भिंत मिताप विरम ना होइ ॥

(कथा कसंदर, चौ०-१) ।

४- विरहु पैसु नाही यह गात । ताकी मानस कह्यो न जात ॥

(कथा रतनमंजरी-चौ०-२०८) ।

५- विरहु पैसु के रंग में, रंगै बु अपनी गात ।

अमर होइ सो जगत में, ताहि न कोऊ जानत ॥ (कथा रतनावती) ।

६- प्रेमहि मांदि विरह बी रसा । मैन के घर मधु अंग्रित बसा ॥-जायसी-पद्मा-

वत-छंद-१६६ ।

७- बग मई कठिन करग के धारा । तेहि से अधिक विरह के भारा ॥

वही, छंद - १५३ ।

हे विरह में ही कथा का नादि, मध्य एवं अंत हुआ है । उस तरह जानकवि का विरह-प्रेम विषय से सम की ओर प्रवृत्त होता है । नायक-नायिका के मिलन या विवाह के बाद जो विरह का चित्रण कवि ने किया है वह तो विषोग रूप है, पर दोनों के मिलन के पूर्व या विवाह के पूर्व कवि ने जो विरह या विकलता का वर्णन किया है उसे तो निरा "कामवेदना" ही कह सकते हैं ।

कवि ने नायक एवं नायिका दोनों में विरह का विवेचन किया है । इन्होंने भारतीय पद्धति पर "कथा रतनावती", "कथा रूपमंजरी", "कथा छीता", "ग्रंथलैलमजनु" नादि कुछ प्रेमाख्यानों को छोड़कर शेष सभी प्रेमाख्यानों में वसुंधरा प्रेमाख्यानों की भांति नायकों की अपेक्षा नायिकाओं में ही विरह की तीव्रता अधिक दिखाया है जबकि सुषिखों में नायिकाओं की अपेक्षा नायकों में विरह का वेग अधिक तीव्र है^१। कव्तावती, सुकेली, रतनमंजरी, दम्पती, देवतदे, नादि तथा समस्त सतपरक प्रेमाख्यानों की नायिकाओं में कोमलता एवं आत्म-समर्पण की भावना अधिक होने से बैठे-बैठे नायकों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील एवं विरहिणी दीवती हैं जिससे उनके विरह में मानसिक भावनाओं का पक्ष प्रधान तथा शारीरिक गौण है^२। सतपरक प्रेमाख्यानों की नायिकाओं में विरह के साथ क्रियाशीलता भी अधिक है । "कथा किङ्कड़ा देवतदे" में देवतदे का विरह इतना तीव्र है कि उसकी चेरिया भी उसमें जल जल जाती है^३। वह दुःख से इतना कृतकाय हो गई है कि पवन में पते के समान बहराती है^४। इसी तरह अन्य नायिकाओं कन्कावती^५,

१- रामचन्द्र शुक्ल- वायसी-प्रभावती- पृ० २७, भूमिका, सं० २००६।

२- दुष्का में सुष्का कवि जान कहि, विरहनि बाही मांदि ।

जो तन से पियु बिछुरिहै, मन में बिछुरत नांदि ।। (ग्रंथलैलमजनु) ।

३- विरह तपति देवत बरी, पुनि बेरी ऊहि लागि ।

जाय जरै जरै सखनि, कहत जान ज्यों जागि ।। (कथा किङ्कड़ा देवतदे) ।

४- देवतदे बति ही दुष्कात, छीन भरी तिय गात ।

पवन बीच फैली लगी, बहरत जैसे पात ।। (वही) ।

५- वी० - १८ ।

दमर्पती^१, रतनमंजरी^२ आदि के विरह का विषय भी कवि ने किया है। नायिकाओं के इस विरह का वर्णन कवि ने रीतिवादी पद्धति पर किया है जोकि ऊहात्यक एवं अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है, उसमें गांभीर्य बना हुआ है।

"कथा कलावंती", "कथा कवलावती", "कथा कनकावती", "कथा कौतूहली", "कथा पुहुपवरिणा", "कथा रतनमंजरी" आदि में नायिकाओं के विरह को प्रदर्शित करने के लिए कवि विरहपूर्ण वारहमासे का वर्णन तथा "कथा सुभटराज" में आठवसु वर्णन किया है। इसमें कवि वेदना का अत्यन्त निर्मल, स्फूर्त, सरल, मुदुल एवं कोमल स्वरूप तथा दाम्पत्य-जीवन का अत्यन्त नर्मस्पर्शी माधुर्य विषय अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यापारों के साथ प्रदर्शित किया है। इस विरहावस्था में दुःखद वस्तुएँ तो कष्टदायक होती ही हैं, पर सुखद वस्तुएँ भी इनका दुःख बढ़ाती हैं। कवि का वारहमासा का वह वर्णन परम्परा सिद्ध है। सभी वाक्याङ्ग से प्रारम्भ होकर बैठ में पूर्ण हुए हैं। इनका विस्तृत विवेचन आगे अध्याय ७ "प्रकृति विषय" में किया गया है।

संयोग और प्रेम की चरमपरिणति:-

जानकवि ने अपने कुछ प्रेमाख्यानों तथा -"कथा नलदमर्पती", "कथा कवलावती", "कथा रतनमंजरी" आदि में नायक-नायिका का मिलन कथा के प्रारम्भ में कभी विवाह के पूर्व स्वप्न- या प्रत्यक्षा दर्शन में किसी पाठान्ता या उपवन में, तो कभी विवाह के अनन्तर दोनों का संयोग कराया है, किन्तु प्रेम की चरम परिणति तो तब हुई है जब कथा के अंत में दोनों का मिलन हुआ है जिसमें कवि भारतीय पद्धति का अनुसरण करते हुए यदि कथा के पूर्व में विवाह नहीं हुआ है तो दोनों का विवाह सम्पन्न किया है। वास्तव में,

१- चौ०- ४३ से ४६ तक।

२- उरध उसास लेत है भारी। चली चली डोलत छि- है नारी ॥१६९॥

संयोग की इसी अंतिम अवस्था में साधक अपने अभीष्ट को प्राप्त कर आनंद विभोर होता है^१। उसकी विस्तारं निर्मूल हो जाती है^२। वह अपनी सम्पत्ति यात्रा एवं अनेक कष्टों के भेदों के उपरान्त अपनी प्रियतमा को प्राप्त कर कुछ दिनों के लिए वही रम जाता है। उसी समय दोनों सुख-क्रीड़ा करते हैं। बीड़े दिन बाद घर की याद जाने पर वे सपत्नीक स्वदेश आकर आनंद गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते कालयापन करते हैं। इस तरह कवि के समस्त प्रेमाख्यानों में असूफी कवियों की भांति प्रेम की वरम परिणति संयोगा-वस्था में होने से प्रायः सभी काव्य सुशान्त है। सतपरक प्रेमाख्यानों में नायिकाएं अनेक कष्टों के भेदों के बाद अपनेसत्य की रक्षा करके ही संयोग को प्राप्त होती हैं इनमें सतीत्व की वरम परिणति है, किन्तु स्वच्छंदतापरक प्रेमाख्यान-“गुणलैलैमजनुं” इनमें अपवाद स्वरूप है इसमें दोनों का अंतिम मिलन पारसी - पद्धति पर संयोग में न होकर मृत्यु के अनन्तर वियोग रूप में स्वर्ग में हुआ है^३।

संयोग का चित्रण:-

रीतिकालीन मुक्तक रचनाओं में रति, विपरीत रति, केतिबुद्ध आदि के वर्णनों में कामवृत्ति की जो अभिव्यक्ति स्वच्छंद रूप से पाई जाती है ऐसा लगता है व कि इसी से प्रभावित होकर आत्मकवि ने भी विवोहो-परान्त नायक-नायिका के प्रथम समागम से संयोग का वर्णन किया है। मुगलकालीन भोग-विलास के वातावरण से रीतिकालीन गुंजारिक प्रवृत्तियाँ इन्हें वाती के रूप में मिली हैं। कामसास्त्र के सम्बन्धित “मदनविनोद” जैसे स्वतंत्र काव्य भी लिखे हैं। “कथा रतनमंजरी” में नायक-नायिका के पहले

१- पिय मिलिजे की रंगु, रसुमन काहु न लज्जाइ ।

जी कहिये ती जान कहि, कहूँ कह्यौ न जाइ ॥ (कथा पुहुपचरिजा) ।

२- जातिग पावे सांति ती, सांति होत बिगु मांदि ।

मिले भित मन मेल की, भित रहत तन नांदि ॥ (वही) ।

३- चौ०- ६८ ।

सदन में मिलते ही कवि ने पहली बार संभोग का वर्णन किया है^१ फिर विवाहोपरान्त दोनों का संभोग वर्णन तथा रति बढ़ाने की श्रेष्ठ क्रियाओं एवं प्रीतिप्रियों का बहुत विस्तृत वर्णन किया है^२। "कथा रतनावती" में एक बार फुलवारी में मिलने पर रतनावती एवं महिमोहन संभोग करते हैं^३ तथा फिर बाद में विवाह के अनन्तर दोनों संभोग करते विवशित हुए हैं^४। "कथा नन्दमर्षती" में विवाहोपरान्त प्रथम समागम में एक बारकेवल संभोग करतायी है^५ फिर दुबारा मिलन में दोनों संभोग करते हैं^६। "कथा शिखरा देवसे" में शिखरा का दोनों नायिकाओं के साथ बारी-बारी से संभोग वर्णन कवि ने किया है^७। "कथा कलामती"^८, "कथा पुष्पवरिणा"^९, "कथा कन्कावती"^{१०}, "कथा कौतुहली"^{११}, "कथा कलावती"^{१२}, "कथा छीता"^{१३} आदि में भी विवाह के अनन्तर संभोग का वर्णन कवि ने किया है। "कथा चन्द्रसेन राधा सीतानिधान", "कथा कलंदर", "कादी नागा" में कवि संभोग वर्णन में बरती सजा की ओर बहक गया है। "ग्रंथसौम्यनू" एवं कुछ सतपरक प्रेमाख्यान-"कथा सतवती", "कथा सीतवती" तथा "कथा कुलवती" में कवि ने संभोग वर्णन बिल्कुल नहीं

१- चौ०- ६३ तथा ६४ ।

२- चौ०- १५० से १५४ तक ।

३- चौ० - १२९ ।

४- चौ०- १५० तथा १५१ ।

५- कनक सदन में रति मदन, दमर्षती नतराज ।

छीता सीता करत हैं, मान्त है रस बाह ।।

६- चौ० - १३४

७- चौ०- ५३ से ५५ तक तथा ७९ से ८२ तक ।

८- चौ०- ८३ से ८५ तक ।

९- चौ०- १५६ से १५८ तक ।

१०- चौ०- ७६ ।

११- सवैया- १५ से १८ तक ।

१२- चौ०- ३१ ।

१३- चौ०- ३६ ।

किया है। कवि का यह संभोग वर्णन संपन्न एवं निष्पन्न है। विवाह के पूर्व जब नायक-नायिका मिलते हैं तो प्रायः शारीरिक अभिवार नहीं करते। यदि कहें करते भी हैं तो कवि वहाँ लोक-मर्यादा का ध्यान रखता है। यथा-
 "कथा कनकावती" में विवाह के पूर्व एक सन्यासी द्वारा विवाह की सब रीति-
 भाँति करने के बाद ही दोनों सुरत-रस पान करते हैं^१। "कथा पुहुपवरिणा" में विवाह के पूर्व उपवन में संभोग करते हुए देखकर मुकेशी की माँ रूपनिधि उसे लोक-सन्ध्या से पकड़ी बना देती है^२। "कथा कामरानी ज्ञापितमदास" में सुरंग द्वारा सदन के मिलने पर पीतमदास को कामातुर देखकर कामरानी उसे समझाती है और संभोग का अवसर नहीं देती^३। इसके अतिरिक्त किसी-किसी गेय के प्रारम्भ में नायक के माता-पिता का संभोग वर्णन भी कवि ने किया है। प्रकृति द्वारा नायक-नायिका के संगोगावस्था को उद्दीप्त करने के लिए कवि ने अर्न्ततः रूप के अतिरिक्त "कथा रतनमंजरी"^४ तथा "कथा रतनावती"^५ में क्रमाशः बारहमासा एवं षाट्शतु का भी वर्णन किया है। प्रकृति के मातावरण से एक प्रकार की मादकता आ जाती है। इसमें नायक-नायिका का हृदय अपने आप उत्तापमान हो जाता है।

हिन्दी के सुफ़ी प्रेमाख्यान डोलामारदूरादुहा, छितारिबातर्, नलदमन, रसरतन, माधवानल कामन्दता, प्रेमप्रगास, सद्यवत्सलावर्तिगा, पुहुपावती आदि में भी कवियों ने संभोग का विस्तृत वर्णन किया है। संस्कृत कवियों ने तो कामशास्त्रीय आधार पर संभोग का बहुत विस्तृत विवर्णन किया है। ईरान के सुफ़ी कवि निज़ामी, ज़ामी आदि में संभोग का विवर्णन नहीं मिलता। हिन्दी के सुफ़ी कवि बाबरी, मीनक, उसमान जैसे कवियों की रचनाओं में संभोग का विवर्णन भारतीय प्रभाव के कारण है, किन्तु ये कवि

१- बी०- ४२ तथा ४३।

२- बी०- १०८ तथा १०९।

३- बी०- ९।

४- बी०- २३५ से २४६ तक।

५- बी० - १५४ से १५९ तक।

मनुष्यी कवियों की भांति जमकर विमर्श नहीं करते, बल्कि केवल नाम लेकर ही छोड़ देते हैं। इनके संयोग-यथा में एकमात्र लौकिक प्रेम का विधान ही पाया जाता है।

प्रेम की अन्य विशेषताएँ:-

एकनिष्ठता या अनन्यता:-

सच्चा प्रेम एकनिष्ठ एवं ऐकांतिक होता है। नायक के नायक-नायिका दोनों में प्रेम की एकनिष्ठता मिलती है। दोनों एक-दूसरे के अतिरिक्त अन्य किसी का स्मरण नहीं करते। प्रेम का उदय होते ही प्रेमी माता-पिता या परिवार के तर्जन-वर्जन की चिन्ता न करके प्रेमिका के प्रति एकान्तभाव से दृढ़ होकर घर से निकल पड़ते हैं। वास्तव में सब कुछ छोड़कर एकनिष्ठता में ही अभीष्ट की सिद्धि हो पाती है^१। इसमें "प्रेम की मनोवृत्ति इतनी प्रबल रहती है कि वह सदा एक भाव बनी रहने के लिए प्रेमी को बाध्य किए रहती है जिससे उसका सारा जीवन ही एकीभूत एवं एकनिष्ठ हो जाता है और वह दूसरे किसी काम का नहीं रह जाता। वह अपने को प्रेम-यान के हाथ सदा के लिए बेच-सा देता है, जिस कारण उसके छोटे-बड़े सभी काम इस योक के ही निमित्त से किए गये जान पड़ते हैं^२।" इसीलिए "कवा कलावती" में नायक पुरन्दर, "कवा रतन-मंजरी" में मधुसूदन, "कवा छीता" में राजाराम तथा "कवा रूपमंजरी" में नायक हानसिंह योगी बनकर घर से नायिका को पाने के लिए निकलते हैं और बनेक कष्ट एवं प्रतीभनों के जाने पर भी एकनिष्ठ रहते हैं।

"कवा रतनावती" में नायक महिमोहन रतनावती को प्राप्त करने के लिए पिता से दठपूर्वक जाश लेता है^३। रास्ते में एक जप्तरा के मोहित होने पर वह रतनावती के प्रेम प्रति अपनी एकनिष्ठता प्रकट करता है^४। तथा अंत में

१- सब कुछ छोड़ि मैक की धाई । मैक तहै सौ सब कुछ पाई ॥

मैक छोड़ि जो सब की धाई । मैक तहै बिन कुछ न्भ पाई ॥

(कवा रतनमंजरी - बी०-२६३)।

२- परमुरामबतुर्वेदी-मध्यकाशीन प्रेम-साधना, पृ० १५६, १९५७ ई० ।

३-बी०- २८ ।

४- कुंवर कदमाँ सुनि बिन रतनावत । कोऊ भेई विमुहि न भावत ॥

मेमु करवाई जपनै मन पाहि । वा बिन बनिता पैटी नाहि ॥५७॥

विदेश वापस लौटते समय रतनामती के माता-पिता से भी प्रेम की अनन्यता दिखाता है^१। 'कथा रतनमंजरी' में राजा जयचन्द के जन्म उपवास करने पर भी कुंवर मधुसूदन तब न अन्य किसी की चाह न कर रतनमंजरी के प्रति एकनिष्ठ भाव से दृढ़ रहता है^२ तथा रतनमंजरी के उपवन में क्रोध एवं मारने का भय दिखाने पर भी वह उसके प्रति प्रेम की अनन्यता प्रकट करता है^३। 'कथा शिखरा देवतदे' में माता-पिता द्वारा दोनों का अलग करने पर तथा एक अन्य विवाह करने पर भी शिखरा देवतदे के प्रेम में एकान्त रहता है। उसके हृदय में देवतदे के अतिरिक्त किसी अन्य को स्थान नहीं है, जो पत्रोत्तर द्वारा उसके प्रति अपने प्रेम की अनन्यता का संदेश भेजता है^४। 'कथा मधुकरमातली' में मधुकर का प्रेम मातली के प्रति इतना एकांतिक है कि वह विदेश से वापस आते ही माता से हठपूर्वक खोजने की आज्ञा देता है^५। जन्म कष्टों के बाद अंत में हार्दिक रसीद के

१- कुंवर कहनौ बहु मेरी मांहि । जो लौं जीऊ जगती मांहि ॥

और तिया सौ करीं न प्यार । हम तुम बीच मेक करतार ॥१६३॥

२- कुंवर संतोष न कारनै, निर दिन कोतिग होड ।

रतनमंजरी बिष बसी, और न बावै कोड ॥

३- कुंवर कहनौ हौं जानत तोहि । पै परिये कौ डरु ना मोहि ॥

जा दिन की तुज बिष निहार्यौ । मैं जापुन पौ तवकौ मार्यौ ॥१६८॥

४- कहा भयो जौ किमौ बिबाह । तो बिन नाहि और की बाहि ॥

तो बिन करी और सौ प्यार । तो मुहि कोट जान करतार ॥

बैसी करीन जु मन मैं पागै । तो बिन अहित बिष सौ लागै ॥

पूरि रही तुम छवि मन मांहि । तब व्याहनी मन व्याहनी नाहि ॥१६९॥

५- जो तुम मोकीं बिदा न देहु । मोहि मारिकें हत्या लेहु ॥

बलि मालति बिनु जीवत नाहि । यह निहवै जानहु बिनु मांहि ॥१७॥

परीक्षा लेते समय जब मासती के इस संसार में न रहने की बात सुनता है तो उसके प्रति प्रेम की अनन्यता से बेहोत होकर पृथक् समान जमीन पर गिर पड़ता है^१। "प्रियलैलैमजनुं" में मजनुं अपने पिता से सर्व सेवा के प्रति अपने प्रेम की एकांत-निष्ठा प्रकट विमा है^२ तथा जाजीवन सेवा के प्रेम में रहना चाहता है और परने के बाद भी कामना करता है^३। मजनुं इतना दृढ़ एवं एकांतनिष्ठ होने पर भी जंत में सफल नहीं हो पाता। कदाचित् इसका कारण यह हो सकता है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रेम-साधना में लगे हुए साधक के लिए अपने दृढ़ से दृढ़ बने रहने पर भी उसे प्राप्त कर पाना कभी पूर्णतः सम्भव नहीं कहा जा सकता^४। उसी तरह "कथा कलावंती" में नायक पुरन्दर, "कथा कलावती" में इन्दवदनु, "कथा कलावती" में परमरूप, "कथा कलावती" में सरबंगी, "कथा कामरानी का पीतमदास" में पीतमदास, "कथा कलावंती" में कलावंती आदि नायिकाओं के प्रति प्रेम की एकांतनिष्ठता दिवाते हैं। उसी तरह अन्य प्रेमाख्यान "पद्मावत", मंथन की "मधुमासती", "मृगावती", "कुसुमपुरतरी" आदि के नायक भी नायिकाओं के प्रति प्रेम में एकांतनिष्ठ हैं।

भारतीय पद्धति पर इन नायकों की भांति जानकवि की नायिकाएँ भी नायकों के प्रति प्रेम की अनन्यता एवं कर्तव्यनिष्ठा दिवाती हैं। "कथा कलावंती" में दम्यती नल के प्रेम में इतना एकांतनिष्ठ है कि वह उसका चित्र ही सदा देखना चाहती है^५। पिता भीम के चाहने पर भी वह अन्य किसी से विवाह

१- सुनि बहु बात मधुम गिरि गयी । नेहनि मानहु मितक भयी ॥२०॥

२- मन मेरी औरा हूँ गयी । हौं डोलत तापाऊँ भयी ॥

मेरी मन नाही मो हाथ । हौं भर्मत डोलौं ता साथ ॥२०॥

३- यहै चिन्ती मेरी चाहि । बाढ़त बहुत मित की चाहि ॥

जी ली राजाहु मणि सैतार । नाहि बटाय लैत प्यार ॥२०॥

जैसै मेरी पैसु बढ़ाव । जी मरि जात पैसु ना जाव ॥ २०॥

४- परमुराम चतुर्वेदी - हिन्दी के सुफली प्रेमाख्यान- पृ० ६८,
१९६२ई।

५- याकी नाहिन देखी करिहौं । निस्दिह तौ पल में मरिहौं ॥२०॥

नहीं करना चाहती^१। स्वयंवर में नल के न पहचानने पर जब वह मरना चाहती है उसी समय आकाशवाणी होती है^२। नल के मन में अकेले छोड़ने की इच्छा प्रकट करते ही वह उसका साथ नहीं छोड़ना चाहती और कर्णनिष्ठता का परिचय देती है^३। "कथा मधुकरमासती" में मातली वजीर द्वारा ले जाते समय गुरु से मधुकर के प्रति एकनिष्ठता का संदेश कह जाती है^४। अनेक जगह खरीदी-बेची जाने तथा अनेक कष्ट एवं प्रलोभन पाने पर भी वह मधुकर के प्रति अनन्य भाव से दृढ़ रहती है और अंत में मधुकर की तरह वह भी हार्दिक रशीद के परीक्षा लेते समय मधुकर के मरने की बात कहते ही मृगी की तरह मूर्छित हो जाती है^५। "कथा कामरानी का पीतमदास" में कामरानी पीतमदास के प्रेम में इतना एकांत है कि राजाराम के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह उससे प्रेम नहीं करती^६। "कथा कौतूहली" में कौतूहली पिता से सरबंगी के प्रति अनन्यता प्रकट करती है। उसके जलावा अन्य किसी से सम्बन्ध नहीं चाहती^७। "कथा छीता" में जलाढीन द्वारा अनेक प्रलोभनों के देने पर भी छीता राम के प्रति अपने प्रेम में दृढ़ रहती है^८। "ग्रंथसैमजनु" में सैता इबनसलाम से अपने विवाह की बात सुनते ही माता-पिता से मजनु के प्रति अपने प्रेम की एकनिष्ठता प्रकट करती है^९। विवाह के बाद भी

१- बरसों व्याह करै जी कोइ । तौ मुहि मरत बार कना होइ ॥

बीभ छांड़ि ततछिन हीं मरिहौ । पै हीं केहु व्याह न करिहौ ॥३०॥

२- कहति अबहि मरिहुं विष्णुकाइ । जी नल पहिचान्यौ नहीं जाइ ॥

बीभ छांड़ि मरिमे कीं भई । तब अकास बानी सुनि लई ॥६१॥

३- तुम तौ मोकी छांड़िहीं, हीं तुम छांड़ति नाहि ॥

साथि तिहारैं डोलिहीं, ज्यों बट के संग छाहि ॥

४- जी मातति तन तुमसैं न्यारी । मन में तूं हीं वस्त पिणारी ॥

जो कोइ भी डारे मारि । तौऊ जीर न करीं भतार ॥

संकट बहु तुझ काबै सहही । सीत सत में निहवैं रहिहौ ॥५॥

५- सुनति बात मातति मुरझाई । परीभाँम प्रिगी-सी जाई ॥३०॥

६- जी०- ५ ।

७- जी०-५९ ।

८- जी०- २८ ।

९- जी० - ४४ ।

वह इकनमालास में प्रेम नहीं करती और मयनू के ही प्रेम में एकनिष्ठ होकर पथ द्वारा संदेश भेजती है^१। "कथा चन्द्रसेन राजा शीतनिधान" में राजा चन्द्रसेन के प्यार न करने पर भी शीतनिधान चन्द्रसेन के अतिरिक्त स्वप्न में भी किसी और की नहीं चाहती^२। इसी तरह कवलावती, कन्कावती, देवमदे, रतनमंजरी, मोहनी आदि नायिकाएँ भी नायक के प्रेम में एकनिष्ठता दिखाती हैं। सतपरक प्रेमा-स्थान "कथा सतवती", "कथा सीतवती", "कथा कुसवती" तथा "कथा निरमल" में नायिकाएँ पातिव्रत सत्य की रक्षा के लिए सत्यनिष्ठा दिखाती हैं। हिंदी के असूफी प्रेमास्थान की नायिकाओं में भी ऐसे ही प्रेम की एकनिष्ठता पाई जाती है किन्तु सूफी प्रेमास्थानों की नायिकाओं में इतनी अनन्यता नहीं है उनमें तो नायक ही अधिक एकांतनिष्ठ दिखाई देते हैं।

निष्कामता:-

आदर्श-प्रेम कामना रहित होता है। इस पथ पर चलने वालों को सर्वप्रथम संपत्त कामनाओं का त्याग करना पड़ता है और अपने हृदय को पवित्र करना पड़ता है। यदि प्रेम-प्राप्त उपेक्षा भी करता है तो भी प्रेमी निष्काम भाव से उसके प्रति अपने प्रेम का निर्वाह करता है^३। दाम्पत्यपरक प्रेमास्थानों के सभी नायक प्रायः निष्काम भावना से ही प्रेरित लगते हैं। प्रेम का उदय होते हीवे सभी सांसारिकता का त्याग कर अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए एक पुन में लग जाते हैं औरकमन जनेक विधन-बाधाओं या प्रतोभन के जाने पर भी अपने पथ से विचलित नहीं होते। "कथा पुहुपवरिणा" में पुराणीशम की परोपकारी भावना अित्कुल निष्काम है। वह पत्नी रूप में सुकेसी को उसकी माता रूप-निधि के पास जनेक कष्टों को केहते हुए लेकर जाता है और रूपनिधि के बहुत बाहने पर भी वह उसे विवाह नहीं करता, बल्कि उसे अपनी बहन के तुल्य कहकर अपने निष्काम भावना का परिचय देता है^४। "प्रियतममयनू" में मयनू का प्रेम सेवा के प्रति कितना निष्काम है^५ यह जाबीबन सेवा के लिए मरता रहता

१- चौ०-४७ तथा चौ० ५५ के बाद के १ से २३ तक दोहे।

२- भैं न्यों इनही की ठौर। अपने मांहि न देणी और ॥१५॥

३- चौ मनमोहन नाहिन चाहै। तौन विरही पैसु निवाहै ॥२॥

(कथा कामरानी का पीतमदास)।

हे जीर अंत में इवन्तताम के मरने के बाद जैसा हे अकांत में मित्रों पर भी तारी-
रिक अभिचार नहीं करता^१। समुच्च, उसका प्रेम वित्कुल निःस्वार्थ, निष्काम
एवं निर्मल हे वो ऐसी निर्मल प्रीति करता हे वह सब ही इस सांसारिकता
से मुक्ति पा सकता है^२। "कथा कनकावली", "कथा मधुरमावली" में हार्द-
रसीद द्वारा परीक्षा लेकर नायकनायिका का विवाह सम्पन्न करवा देना भी
वित्कुल निष्काम है ।

इसके अतिरिक्त बुद्धपुरुष, सिद्ध, सन्नासी, देवी-देवता या कुछ
मानवोत्तर पात्र भी निष्काम भाव से नायकों या नायिकाओं की सहायता करते
रूप देहे जाते हैं । इसका सर्वाधिकार अध्ययन अध्याय-६, "अरिज जीर स्वभाव-
विशेष" में किया गया है । यह निष्काम-भावना सूर्णी तथा असूर्णी के अन्य
प्रेमात्म्यानों में भी नायकों में मिलती है । "पद्मावत" में निष्काम-भावना का
अनुभव करके राजा रतनसेन भी समुद्र के बीच मग्न हो रहा है^३।

सर्वात्म समर्पण एवं अहं का विलय:-

प्रेमी को अपनी सांसारिक वस्तुओं एवं कामनाओं का ही केवल
परित्याग करना नहीं पड़ता, बल्कि उसे पूर्ण रूप से अपने को भी उस प्रियतम
के प्रति समर्पित कर देना पड़ता है । इससे उसके हृदय के सारे क्रोध, ईर्ष्या,
देषा आदि समाप्त हो जाते हैं और उसका अहं सदा के लिए नष्ट हो जाता
है । अहं के समाप्त होने के बाद ही वह वास्तविक प्रेम का अधिकारी हो पाता
है^४। जानकवि के नायक-नायिका दोनों में यह आत्म-समर्पण की भावना देखी
जाती है । आत्म-समर्पण के बाद फिर वे अन्य किसी से प्रेम नहीं करते ।
नायक इन्दुवदन, महिमोहन, मधुसूदन, सरचंगी, नत्त, जानसिंह, मन्नू, कर्नदर,
मधुर आदि में प्रेम का उदय होते ही परिवार, माता-पिता, भाई-बन्धु

१- वी०-६२ ।

२- वी०-६७ ।

३- नाहीं सरग क बाहों रावू । ना मोहि नरक सेवति किछु कावू ॥

बाहों मोहिकर दरसन पावा । वेद मोहि जानि प्रेम पय लावा ॥

सम्पा० [मच्छु शुक्ल] - नायसी-प्रभावली- पद्मावत- पृ०-६६-।

४- कठिन पय हे पैसु को, सुभट भरी ठहराव ॥

खर-१५, सं० २००८

जायुन मिलहि क दयास हूँ, बबदि जायु ठठि जाइ ॥ (कथा रतनावली) ॥

जादि की परवाह न करके नायिका के प्रति तुरन्त ही अपने को समर्पित कर दिए हैं । और उनके लिए विरह में निरक्त हो उठे हैं । इसी तरह ककुतावती, लैला, मालती जादि नायिकाएँ नायक की तरह कथा के प्रारम्भ में प्रेम का जाविर्भाव होते ही तथा ककुतावती, रूपमंजरी, रतनावती, रतनमंजरी, काम-रानी, छीता जादि नायिकाएँ नायक के उनके देश जाने पर उनके प्रति सहज ही आत्म-समर्पण कर देती हैं । "कवा रतनावती" में रतनावती उपवन में कुंवर महिमोहन को देखते ही पद्मिनी से अपने आत्म-समर्पण की बात कहती है^१। "कवा रतनमंजरी" में कुंवर मणुमुदन आत्म-समर्पण करने के बाद घरे की चिन्ता नहीं करता^२। "रतन मंजरी" के अनेक भव दिखाने पर भी वह उसका साथ नहीं नहीं छोड़ना चाहता^३। अंत में रतनमंजरी स्वयं आत्म-समर्पण कर सखियों को माता-पिता से चर्चा करने का सलाह देती है^४। "कवा ककुतावती" में तोता द्वारा एक दूसरे का गुण-बखण कर दोनों एक दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर देते हैं । "ग्रंथलैलामुं" में चटवार में साक्षात्-दर्शन करते ही दोनों एक दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर देते हैं फिर वे अपने परिवार, माता-पिता-जादि की कोई परवाह नहीं करते । लैला का इकनसलाम से विवाह होने के बाद भी वह उससे प्रेम नहीं करती है और अंत में मजनु लैला के मृत्यु पर सदा के लिए आत्म-त्याग देता है^५। "कवा कतंदर" में मसीह जाति का कतंदर तीन बेरियों के सौंदर्य पर मोहित होकर आत्म-समर्पण करता है और उनका प्रेम-सम्बन्ध होने से राजा परवाताप करते हुए पुनः उन्हें कतंदर को समर्पित कर देता है^६ ।

१- चौ०-१२५ ।

२- सब समुनों जब प्रगट करि, दर्श दिखायी मोहि ॥

परिचै हूँ की कर नही, की मुझ देखी तोहि ॥

३- इतैं हाँ ती होत ना, कसु समुक्ति देनि चित माँहि ।

वे ती कोठ भावि है, संग न छाडे छाँहि ॥

४- चौ०- १४२ ।

५- चौ०-२६ ।

६- चौ०-२७

जहाँ जहाँ न मूक है, जहाँ जहाँ न मूक ॥१४२॥

(कवा रतनमंजरी)

अध्यात्मपरक प्रेमात्मान "कथा बसुकिबा बिरही" में नायक बसुकिबा ईश्वर के प्रति अपने को समर्पित करता है। वह अपना सब कुछ छोड़ अंत में अनेक कष्टों के उपरान्त उसे प्राप्त करता है।

इस प्रकार (प्रियतम) के प्रति सर्वात्मसमर्पण के साथ साधक को अपने जहंकार पर भी विजय प्राप्त करनी पड़ती है। बिना "जहं" या "भाषा" का त्याग किए वह प्रेम-मार्ग में सफल नहीं हो पाता। "कथा रतनावती"^१ तथा "कथा पुहुपवरिष्ठा"^२ में क्रमशः नायक महिमोहन एवं पुराणोत्तम को अपने वैभव और श्री पर अभिमान हो गया था जिससे बीच समुद्र में नाव पहुंचने पर दुर्घटना ग्रस्त हो जाती है वे अपने अनिष्ट मित्र क्रमांत उग्रम एवं महा-नंद तथा अन्य अनेक सहयोगी साधियों के विलग हो जाते हैं और उन्हें जहंकार से छूतता है। "कथा कवलावती"^३ तथा "कथा मधुकरमालती"^४ में कल्पित पाणि-ग्रहण के बाद स्वदेश वापस लौटते समय नायकों के जहं को नष्ट करने के लिए नौका दुर्घटनाएं हुई हैं जिससे नायक-नायिका दोनों अलग होकर बहुत दिनों तक कष्ट सहते और पुनः मिलते हैं। "कथा नन्दमर्षती" में प्रेम के उदय के बाद सहज ही विवाह सम्पन्न हो जाने के नश को गर्व हो जाता है^५। जिससे भाई पुहकर से दुआ में सब कुछ हार जाता है और बहुत दिनों तक भटकता एवं कष्ट सहता है तथा बाद में गर्व के नष्ट होने पर पुनः मिलता है।

इसी तरह अन्य प्रेमात्मानों में भी नायकों के जहं को नष्ट करने के लिए उन्हें अनेक विकट परिस्थितियों में डाला गया है ताकि उनमें तपकर वे निखर जायें और उनका जहं तोप हो जाय। जहं का तोप होते ही उनके सारे गर्व, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि समाप्त हो जाते हैं। साधक को सांसारिक सभी संकीर्णताओं, आकर्षणों, क्लृप्ताताओं, वासनाओं आदि से मुक्ति मिल जाती

१- चौ० - १५।

२- चौ० - ५४ से ६६ तक।

३- चौ० - १५२।

४- चौ० - १५।

५- गर्व करे तो प्रति दुआ पावे। गर्व नहीं करतारहि भावे ॥

जगु निरत नाहि वैक व्योहार। कबहुं बसंत कबहुं पतभार ॥५५॥

है । वह समदर्शी बन जाता है और दुःख-सुख दोनों में एक जैसा अनुभव करने लगता है^१ तभी वह अभीष्ट को प्राप्त कर पाता है । वास्तव में बिना सर्वान्ध-समर्पण एवं गई का पूर्ण वित्तव किए साधक वस्तुतः प्रेम का अधिकारी नहीं बन पाता ।

आध्यात्मिक संकेतः-

सूफियों में प्रेम साधना का विशेष महत्त्व है । उनकी प्रेम-साधना एक प्रकार की आध्यात्मिक यात्रा है । साधना का ही फल प्रिय-मिलन है । जब जीवात्मा परमात्मा से अपने को अभिन्न समझने लगता है तो उसे एक प्रकार की विकलता होती है । वह पुनः अपने वादि-घ्रोत से मिलने के लिए तड़पने लगता है । सूफियों के इसी का नाम प्रेम-पीर है । वे इसी पीर को बगाते हैं । धीरे-धीरे अनेक साधनों द्वारा विभिन्न स्थितियों को पार करते हुए अपने प्रियतम का साक्षात्कार करते हैं ।

साधन वा साधक को इस मार्ग पर चलते समय मुख्य रूप से बार बरकबाजों—शरीरबन्ध(कर्मकाण्ड), तरीक़त(उपासना-काण्ड), मारिफ़त(ज्ञान-काण्ड), तथा हकीक़त (ज्ञान-निष्ठा) से होकर गुजरना पड़ता है जिसमें कतिपय सात भूमियों—बद्दीया(एकनिष्ठा), इरक़ (प्रेम), ज़हद (स्वैच्छा त्याग), म्वारिफ़ (वस्तुषट्प सम्पन्न), बज़्द (आत्म-विस्मृति), हकीक़ (परमज्ञान) तथा बख़्त या फ़ना को पार करना पड़ता है । बायसी ने अपने जलरावट में इन सब का स्पष्ट उल्लेख किया है^२ । सूफ़ी-धर्माचार्यों ने इसी को "मुक़ामात" कहा है । शरीरबन्ध तो साधक की प्रथमावस्था है इसमें केवल साधक को प्रियतम के पाने की उत्सुकता हासिल होती है । इसके अन्तर्गत सलात, ज़कात, सौम और हज़्ज का समावेश है जिसका वर्णन तेज़रहीम ने अपने "प्रेमरस" में किया है । इस मार्ग पर

१- दुःख मैं सुख कवि जान कहिं, बिरही बाही माहिं ।

बो तन तैं पिय बिछुरिहै, मन तैं बिछुरत नाहिं ।। "ग्रंथतैमजनुं" ।

२- रामचन्द्र सुक्तः- बायसी-ग्रंथावली- जलरावट-पृ० ३२१, ३२२ (चि० संस्क०) ।

बारि बेहेरेंहीं चढ़ै, सत सौं उतरै पार ।

बताने के लिए मुरशिद या गुरु की आवश्यकता होती है। उसके मार्ग बता देने पर मुरीद परमप्रियतम से संयोग के लिए विरही बनकर प्रेम-परा पर निराल पड़ता है और शरीरगत को पार कर वह "तरीकत" के क्षेत्र में विचरता है। इस क्षेत्र में उसको अपनी निजवृत्तियों का निरोध या जिहाद करना पड़ता है। उसमें फ़क, मुहद (संयम), सन्न, रिज़ा, तपस्कुल, क़नाआत (संतोष) आदि विभिन्न मुक़ामों से चलना पड़ता है। जब वह इसे क्षेत्र में सफल हो जाता है तब उसमें ज़वारिफ़ का आविर्भाव होता है। यह सुफ़ियों का प्रधान साधन है। यह विभु की विभूति या अल्लाह की अनुभूति का प्रसाद है। ज़वारिफ़ के उदय से प्रियतम के स्वरूप की चिन्ता हो जाती है जिससे वह "इक़ीक़त" के क्षेत्र में पहुँच जाता है। "इक़ीक़त" साधन नहीं साधक की परम अनुभूति है जो उपलब्धि शरीरगत, तरीक़त के सम्यक् पालन से प्राप्त मारिफ़त द्वारा होती है। इस दशा में साधक को परमात्मा का संयोग प्राप्त होता है और उसे तनिक विचलन भित्तता है जहाँ से वह अंत में "वुस्त" या "फ़ना" की दशा में पहुँच जाता है। उस समय उसे स्मरण नहीं रहा कि वह प्रियतम से अभिन्न है। उसके जड़ का लोप हो जाता है। वह अन्ध से मुक्त होकर "इक़" बन जाता है और स्वयं की "इक़" या "ब्रह्म" घोषित करने लगता है। ये सभी "मुक़ामात" वस्तुतः साधक की मानसिक स्थितियाँ ही हैं इनका कोई बाह्य स्वरूप नहीं है।

हल्ताज^१ एवं इमामगज़ाली^२ ने इस यात्रा के अन्तर्गत चार लोकों का क्रमः -- नाहूत (नरलोक), मलकुत (देवलोक), ज़वरूत (पारवर्त्यलोक), तथा लाहूत (मातुर्त्यलोक) की कल्पना किया है जिसका की सुफ़ियों ने स्वागत किया है। साधक इन्हीं लोकों में विराम करता हुआ परमसत्ता में लीन होता है। शरीरगत का पालन करके मोमिन (साधक) नाहूत में, मुरीद तरीक़त का पालन के मत-कृत में, सात्विक मारिफ़त में मग्न होकर ज़वरूत में तथा ज़वारिफ़ इक़ीक़त का चिन्तन करके लाहूत में लीन हो जाता है। कुछ लोगों ने इनके अतिरिक्त "ग़ाहूत" (सत्यलोक) की भी कल्पना की, किन्तु सुफ़ियों का ध्यान इस ओर उतना नहीं

१. R.A.Nicholson- Studies in Islamic Mysticism- P-80, 1921.

२. D.B.Macdonald:- Muslim Theology- P.234, 1903.

था । उसमान ने अपने "विजावली" में इस बाग के चार तीरों में चार नगरों^१- भोगपुर^२, गोरकपुर^३, मेहनगर^४ तथा रूपनगर^५ का वर्णन किया है और उनकी भिन्न-भिन्न दशाओं का परिचय भी दिया है । वे आध्यात्मिक बाग की चार चर्मजिह्वें हैं जिन्हें साधक को पार करना पड़ता है ।

यद्यपि सूफियों पर प्रकारान्तर से इस्लाम धर्म का प्रभाव रहा है फिर भी उनके साधनों एवं विश्वासों में इस्लाम की कट्टरता तथा संकीर्णता के स्थान पर हृदय कीविशालता तथा सहृदयता मिलती है और इसीलिए इनकी साधना - पद्धति इस्लामी-सम्प्रदाय से बहुत कुछ भिन्न है । सूफ़ी अपनी साधना में जड़ित तथा प्रतीकवाद प्रदर्शन करते हैं जबकि इस्लामी एकरवाद का । एकरवाद में ईश्वर सर्वोपरि सना होती है इसमें सब कुछ ईश्वर से उत्पन्न होने पर भी जीव, जगत तथा ईश्वर की पुष्क-पुष्क सना है । जड़ितवाद में ऐसा नहीं है इसमें ब्रह्म तथा जगत में कोई अन्तर नहीं है । ब्रह्म से ही मायावश्व बराबर जगत उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में विलीन हो जाता है । उस तरह ब्रह्म से उसका अभेद है । इस जड़ित भावना में निहित सूफ़ियों का प्रधान भाव "रति" है । इसी को मर्यादित रतने के लिए रूपक के सहारे अपने कवियों में स्तुत भाँतिक आधार वा पुराण-स्त्री की कल्पना किये हैं । इनकी यह कल्पना उनके आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है जो उनकी दृष्टि से उनके तत्त्व में बाधक नहीं होते । कथा के प्रारम्भ में कूरसूत, उमर, उसमान, गती आदि की बंदना करते हैं । बसूफ़ी कवियों ने अपने कथा के प्रारम्भ में निर्गुण एवं सगुण दोनों ब्रह्म की बंदना की है ।

जानकवि ने अपने प्रेमाख्यानों में बसूफ़ी कवि जायसी, उसमान आदि की भाँति साधक की विभिन्न अवस्थाओं, भूमियों, लोकों आदि से पार होने का कहीं भी कोई सैद्धान्तिक उल्लेख नहीं किया । उन्होंने बसूफ़ी तथा बसूफ़ी कवियों की भाँति प्रेमी-प्रेमिका की सीसी - सी लौकिक प्रेम-कथा कही

१- विजावली - छंद २०४ । २- वही - छंद २०५ तथा २०७ ।

३- वही, छंद- २०८ तथा २०९ । ४- वही, छंद २११ तथा २१२ ।

५- वही, छंद - २१३ ।

और उस लौकिक - प्रेम के बहाने की पारलौकिक प्रेम की खोजना की । शारीरिक आवश्यकताओं को मर्यादित रखने के लिए स्त्री-पुरुषों की प्रेम-कल्पना सार्थक है । इसलिए प्रेमाख्यात्मक कवियों की मर्यादित शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है जो उनके सत्व या ईश्वर के सामन्निध्य तक पहुँचने में बाधक नहीं होता, बल्कि सौड़ी मात्र है । यही मान-वीर्य-प्रेम ही इन्का आध्यात्मिक-प्रेम है । प्रेम उत्पन्न होते ही साधक को अन्य किसी बात की परवाह नहीं रह जाती । उसे सर्वत्र ईश्वर का ही रूप दिखाई पड़ने लगता है^१ ।

साधक के विभिन्न अवस्थाओं के सिद्धान्तों की परिकल्पना इन्हीं कथाओं के अन्तर्गत की जा सकती है । नायकों में नायिका के प्रति रूप-सौन्दर्य दर्शन या गुणध्वषण से प्रेम का उदय तथा प्राप्ति की विकलता उनकी प्रथमवस्था है जिसको "शरीरकृत" कह सकते हैं फिर पर से योगी या सहज वेत में प्राप्ति के लिए निकलना और मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएँ तथा विलम्बियों का निरोध या जिहाद करते हुए प्रेमिका के देश तक पहुँचना "तरीक़त" की अवस्था कही जा सकती है । "मारिफ़त" में उसे नायिका को प्राप्त करने की चिंता नारम्भ होती है वह अनेक प्रयत्न करने लगता है उसे जब किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता । अंत में नायिका के माता-पिता द्वारा विवाह सम्पन्न कर देने पर वह "हकीक़त" की अवस्था में पहुँच जाता है । सूफ़ियों के आत्मा का परमात्मा से मिलन या "फ़ना" की स्थिति ज्ञानकवि मैसदेव जसूफ़ीकवियों की भाँति विवाहोपरान्त या कथा के अंत में नायक और नय-बधू के संयोग में हुआ है ।

कवि के "कथा कसावती", "कथा कबलावती", "कथा कन्कावती", "कथा रतनमवरी", "कथा रतनावती", "कथा नलदमवती", "कथा कामरानी का पीतमदास", "कथा डिग़ड़ा देवलदे", "कथा मधुकर मातली" आदि में इसकी संगति देखी जा सकती है । "कथा रतनमवरी" में विवाहोपरान्त दोनों के संयोग

१- प्रेम बस्यी जिह प्राँन मैं, ताकीं जानैम चिंत।

वहाँ वहाँ नैन पसार है, तहाँ तहाँ देखौ निंत ॥

(कथा पुहुपवरिजा) ।

में कवि ने "फूना" की स्थिति का वर्णन किया है^१। "ग्रंथलैल्यमनू" में लैला तथा मयनू का अन्तिम मिलन "वैकुण्ठ" में होने से सुफियों के "फूना" की स्थिति का स्पष्ट चित्रण मिलता है। नायकात्मपरक प्रेमात्मान "कया बलुकिया बिरही" में नायक बलुकिया की ईश्वर प्राप्ति की अवस्था को भी "फूना" की स्थिति कह सकते हैं। सतपरक प्रेमात्मान "कया निरमल", "कया सतबंती", "कया सीतबंती", "कया कुसबंती" आदि में कवि ने नायकात्मिक संकेत न करके नैतिकता का महत्व दिहाया है। "बादी नावा" तथा "कया बरदसेर पतिसाह" तो कोरी लौकिक कथाएँ हैं।

हिन्दी के सुफुली तथा असुफुली कवियों ने उपवासनाार्थ निराकार ब्रह्म को ही अपनाया है, पर इनकी उपासना प्रेम-प्रधान होने से इसकी अभिव्यक्ति के लिए इन्हें साकार का आश्रय लेना पड़ा है। इसीलिए कया के प्रारंभ में इन्होंने कवि निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की बंदना किए हैं। आन्कवि ने भी अपने काव्यों के प्रारम्भ तथा कहीं-कहीं अंत में नायकात्मिक संकेत करते हुए ईश्वर के निराकार^२ एवं साकार दोनों रूपों की आराधना किया है^३। कया के

१- दिन दिन जावत है रंग दुनी । यौ मित्रि गमे हरद ज्यों वूनी ।

कहनावत वह पियु वह प्यारी । गुवान दिष्टि देखी नहि न्यारी ॥

कीला सीला करत बिहात । निर वासुर जानंद मैं जात ॥२३४॥

२- अलख अगोचर अपरमपार । निराकार नाहिन साकार ॥

(क)

निर ठी अबहै रहिहै निर बीच रह्यौ इतलसकित बित ॥ (कया रतनावती, बी० १)

(ख) नाव निरजन निरदिन सीवै । रसन पिपुलै अंगित पीवै ॥

अबहै अंगित नावै बु कोइ । दहुं बग माहि अमर सो होइ ॥

(कया बरदसेर पतिसाह-बी० १)

(ग) बादि अगोचर अलख प्रभु, निराकार करतार ।

दैनहार ज्यो सकल जन, रवनहार संसार ॥ (कया मोहनी) ।

(घ) दीन दयालु कृपाळु निरजन । अघरे भदन करन है असरन ॥ इत्यादि

(कया सीता) ।

३- निरगुन कगुन कानगुन, मन के गनेन बाहि ।

अलख भेदना लणि सई, लख लख लिखाहि लजाहि ॥

(कया कृतावती) ।

प्रारम्भ में नबी, मुहम्मद, एरुल, हजरत आदि नामों से परमात्मा के रूप, जलज, जमीवर, जभेष्ठा, जविनाशी, जविगत, दयानिधि, दीनदयाल, कृपाल, गिरजनहास, बारबार, (जवाबकर, ठाकर, उसमान एवं जमी सिंघ) आदि की संज्ञा किया है। सुफियों के ब्रह्मवाद-का संकेत भी कवि ने कहीं-कहीं किया है। "कथा रतनावती" में कुंवर महिमोहन एवं रतनावती के संयोग^१ पर तथा "कथा कलतावती"^२, "कथा कलावती"^३, "कथा रतनमरती"^४, "प्रवर्तितमवतु"^५, "कथा कुलवती"^६ आदि में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ब्रह्मवाद के साथ प्रतीकवाद की स्थापना भी कवि ने "प्रवर्तितमवतु" में किया है^७। ब्रह्मानी सिद्धों और गोरखपंथी

१- हौं तूं भयौ जवाहि हौं नाहि । कौनहि इनहि मिल्यो तुम माहि ॥

मानस करि मो कह्यौ न बात । हौं ह्वै गयौ तिहारी बात ॥

मेघ बूंद पारिहै मधि सागर । न्यारी करै बढौं तिहै नागर ॥

+ + +

मो मैं रह्यो जवाहि हौं नाहि । कै तूं हो कै तेरी छाहि ॥१२८॥

२- हो जिनगी विषु पैसु की, गिर पर परै ऊठाइ ।

बलक जगिन मैं जान कहि, टूक टूक ह्वै जाइ ॥

३- सब जग डार पात जो फल । नबी मुहम्मद है फल मूल ॥

हैं फल मूल मूल फल माहि । इन दुहुन मैं अंतर नाहि ॥१३॥

४- प्रीतम सौ या जगत मैं, नाहि अमर जग होइ ।

जो पीये सो जान कहि, सदा अमर जग होइ ॥

५- मित महम्मद के बसुर, बेकसै कीने मैदु ।

मिते नबी मैं ज्यो मितल, सागर बूंद मैदु ॥

६- महम्मद, नबी रसूल, बधे निर्जन नाइ सौ ।

बैसे मधुकर फूल, भूति कबहु बिधुरे नहीं ॥

७-(१) निर्मल दर्शन पैसु की, जामै सुभक्त पीसु ।

नाह नेह तैं पाइये, कहत जान सुनि जीसु ॥

(११) नेह जोइ सौ माजिये, दित दर्पण कहि जान ।

निर्मल ह्वै तब देखिये, मुरति माहि न प्रांन ॥

साधुओं के हठयोगिकप्रियाओं का वर्णन "कथा कतावती"^१, "कथा रतनमंजरी"^२, "कथाछीता"^३ आदि में नायक के योगी रूप धारण करने में तथा तंत्र-मंत्र, वादु-टोना, भूत-प्रेत आदि में विश्वास, "कथा तमीम अंसारी", "कथा मूकिया तिरहो", "कथा रूयमंजरी", "कथा रतनावती", "कथा कलामती" आदि में मिलता है^४। संसार की अमिषता एवं मायावाद का संकेत प्रणितायिकाओं तथा नायक - स्त्री पात्रों के रूप में^५ तथा कथा मोहनी और कथा छविमागर में सुभाषित गई पहेलियों में संहिताओं का तत्त्व ज्ञान परिलक्षित होता है।

इस तरह जानकवि के कथा के संयोजन एवं लौकिक प्रेम के बीच आध्यात्मिक संकेतों में जहाँ एक ओर सुखी तथा असुखी कवियों की दार्शनिक एवं साधना-पद्धति मिलती है वहाँ दूसरी ओर सिद्धों, नायों आदि के धार्मिक विश्वासों का परिचय तथा निर्गुण-सगुण के समन्वय की प्रवृत्ति लक्षित होती है। वेदांतियों के नवैतवाद, संकर के मायावाद, पुराणों के अन्त्यान्तरवाद एवं संहिताओं तथा जागमों के तंत्र-मंत्र आदि में आस्था दिखाई पड़ती है।

सहजता, ऐन्द्रियता तथा सर्वात्मभावः-

प्रेम स्वतः प्रसूत होता है। यह साधक या भोक्ता में किसी के द्वारा उत्पन्न/कराया जाता, न कि सहज ही अपने आप प्रादुर्भाव होता है। प्रेम का मूल रूप सृष्टि के प्रारम्भ में होने से प्रेमी (जीव) को अपने वास्तविक स्थिति का ज्ञान होते ही^६ प्रेमिका (परमात्मा) के सौन्दर्य का एक भक्तक मिलने

१- चौ०- १९।

२- चौ०- १८३ तथा १८४।

३- चौ०- ११- तथा १२।

४- विस्तार के लिए देखिए- अध्याय - ३ में अभिप्राय।

५- विस्तार के लिए देखिए जागे अध्याय - ६ में "चरित्र और स्वभाव-चित्रण"।

६- हुता को एकहि संग, ही तुम काहे विधुरा।

जब बिठ डठे तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ किछु ॥

-रामचन्द्र सुन्दर-आवसी-प्रभावती-(अक्षरावट)-पृ० ११६, वि० संस्करण।

या स्वप्न अवस्था विम-दर्शन वा गुण-वर्णन मात्र से सहज ही जाकर्णित हो पाने के लिए निकल हो उठता है। वह सांसारिक मोह-माया या अपने परिवार जादि का परित्याग कर कर से निकल पड़ता है। "कथा कलावती", "कथा कनकावती", "कथा कौतुहली", "कथा रतनावती", "कथा नन्दमन्ती", "ग्रंथमैत्र-मन्त्र", "कथा छीता", "कथा मधुकरमासती" जादि सभी के नायकों में प्रेम का जाविर्भाव सहज ही हुआ है। लगता है जैसे प्रेम के लिए ही इन नायकों का जन्म हुआ। वे जीवन के और किसी शोध में न पदार्पण कर सहज ही प्रेम-पथ के पथिक बन जाते हैं। जिस तरह प्रेमी-प्रेमिका से मिलने के लिए सहज ही जाकर्णित हो जाते हैं वैसे ही प्रेमिका भी प्रेमी से मिलने के लिए सहज ही जाकर्णित होती है। "कथा कलावती", "कथा कनकावती", "कथा मोहनी", "कथा छनिसागर", "कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा विज्जवा देवसे", "ग्रंथमैत्रमन्त्र", "कथा मधुकरमासती" जादि सभी में नायिकाएं सहज ही नायकों के प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती हैं। कभी-कभी माता-पिता के विरोध करने पर भी उनका परवाह नहीं करती। इस तरह नायक-नायिका दोनों ओर से प्रेम की सहजता मिलती है।

प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत स्त्री-पुरुषों की प्रेम कथाओं तथा यौन-सम्बन्धों का समावेश होने से ऐन्द्रिय प्रेम ही प्रधान रहता है। वात्सल्य, मित्र जादि प्रेमी की प्रायः उपेक्षा मिलती है। यद्यपि "कथा रतनावती", "कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा रूपमन्वरी", "कथा पुहुपवरिणा", जादि कुछ प्रेमाख्यानों में मित्र-प्रेम का महत्व अवश्य प्रदर्शित किया गया है, किंतु वह गौण-मात्र है। प्रेमी-प्रेमिका दोनों एक दूसरे के प्रति प्रदर्शित प्रेमासक्ति का मूल कारण उनका कला-कौशल, सौन्दर्य-वाणिज्य जादि बहुत कम होकर सदा रूपगत सौन्दर्य ही रहा है। प्रत्यक्ष, स्वप्न एवं विम-दर्शन तो रूप-सौन्दर्य का हाथ रहता ही है, गुण-वर्णन के आधार पर प्रेम जागृत कराने में भी विशेषतः रूप-लावण्य की ही प्रतिष्ठित करके उसके अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन द्वारा प्रेम के बीज को अंकुरित करता गया है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ पर भी यौन-सौन्दर्य ही काम करता है। इसीलिए इस प्रकार के प्रेम की प्रायः दाम्पत्य प्रेम की संज्ञा दी जाती है। यहाँ वह अपवाद स्वरूप है कि लीला सौन्दर्यवती

नहीं की फिर भी मनुष्य वाजीवन उसके लिए करता रहा । इसलिए यह प्रेम ऐन्द्रिय न होकर भावात्मक है । वाष्वात्मक रूप में इन्द्रियों द्वारा जिस सौन्दर्य के दर्शन होते हैं उसमें परमात्मा के अनन्त सौन्दर्य की विभूति होती है । इसलिए यह प्रेमऐन्द्रिय होते हुए भी सर्वदा वासनारहित वा "कामगन्धहीन" हुआ करता है ।

यह प्रेम जीवात्मा-परमात्मा का होने से सर्वात्मभाव का होता है । जीव चाहे किसी भी सम्प्रदाय, वर्ग वा जाति का हो वह तो सर्वदा जीव ही होता है इसलिए इन प्रेमास्थानों के प्रेम संबंध में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया गया है । प्रेम का निरूपण एक स्वच्छंद परिवेश में हुआ है । "कधारतनावती" में राजकुंवर महिमोहन का अप्सरा रतनावती से, "कथा चन्द्र-सेन राजा सीतनिधान" में राजा चन्द्रसेन का तीन बेरियों से, "कथा कलंदर" में मसीत कलंदर का तीन बेरियों से, "बांदी नावा" में मियां का बांदी-बेरी से, "कथा मधुकरमालती" तथा "ग्रंथसैतमनु" में क्रमशः मधुकर तथा मनु का मालती एवं सैता नायिकाओं के प्रति तथा "कथा बलुकिमा विरही" में निम्न जाति के बलुकिमा के ईश्वरोन्मुख-प्रेम में किसी प्रकार का सम्बन्ध-भेद नहीं किया गया है । इसी तरह असूफी प्रेमास्थान "माधवान्त कामकंदता" में माधव का प्रेम बेरवा के प्रति हुआ है । "रमणासाह छबीली भठियारी की कथा" में मुसलमान राजकुमार की शादी हिन्दू सामंत की कन्या से हिन्दू सामंतीय रीति से कराया गया है । संस्कृत, अपभ्रंश, बौद्ध एवं जैन धार्मिक कथाओं में भी यह भेद-भाव नहीं मिलता^१। सर्वात्मभाव के होने वा भेद-भाव के न होने से इन प्रेमास्थानों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक-सामंय (cultural synthesis) की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है ।

जादृशावादिता:-

जानकवि में नायक-नायिका, नायिका-प्रतिनायिका तथा नायक-प्रति नायिका के बीच का प्रेम जादृशात्मक है । इनमें जापस में कहीं कोई ईर्ष्या

१- विस्तार के लिए देखिए:-सरगुराम चतुर्वेदी का "भारतीय प्रेमास्थान की

देखा, कलह आदि नहीं दिखाई पड़ता, बल्कि एक दूसरे के प्रति सहृदयता एवं उदारता ही मिलती है। समस्त प्रेमास्थानों में प्रायः नायक वनेक कछटों के उपरांत नायिकाओं को प्राप्त कर उन्हें स्वदेस लाकर सानंद कालपापन करते हैं और गार्हस्थ्य जीवन का आदर्शव्यापित करते हैं। "कथा सुभटराव", "कथा छिन्नहां देवलदे" आदि में एक से अधिक पतिव्यां होने पर भी नायक सभी को समान समझते हैं और सब के साथ समान रूप से प्रेम का व्यवहार करते हैं। "कथा छिन्नहां देवलदे" में छिन्नहां दोनों पतिव्यां से संयोग करता है और दोनों के सुखी रहने में ही सुख का अनुभव करता है^१। इसी तरह ये नायक प्रतिनायिकाओं के प्रति भी सहृदय विनित रूप हैं।

नायिकाएं भी नायकों के प्रति अपने प्रेम में भारतीय नारी का आदर्श उपस्थित करती हैं। कवि की समस्त नायिकाएं प्रायः पतिव्रता हैं। सत-परक प्रेमास्थानों की नायिकाएं तो एक मात्र अपने पतिव्रत-सत्यनिष्ठा का आदर्श उपस्थित करती हैं। इनके नैतिकता वन एवं सतीत्व का आदर्श ही इन ग्रंथों का मूल है। जिन प्रेमास्थानों में नायकों के जीवन में एक से अधिक नायिकाएं या प्रतिनायिकाएं हैं उनमें आपस में सौतिमा डाह नहीं है। छिन्नहां का एक अन्य विवाह होने पर भी देवलदे ईर्ष्या नहीं करती, बल्कि उसके प्रति अपनी सहृदयता ही दिखाती है^२। "कथा सुभटराव" में तीनों नायिकाएं एक साथ सानंद सुभटराव के साथ रहती हैं कोई ईर्ष्या, देखा नहीं रखती। "कथा चन्द्रसेन राजा शीतनिधान" में नायिका शीतनिधान प्रतिनायिकाओं से लड़ती-भागड़ती नहीं, बल्कि पतिव्रत-धर्म का दुड़ता पूर्वक पातन कर अंत में विजय पाती है। इन नायिकाओं का एक आदर्श यह भी रहा है कि ये विवाह के पूर्व किसी उपवन, बाटिका या एकांत में मिलने पर नायक को संभोग का अवसर नहीं देती। संभोग तो तभी सम्भव होता है जब उनका विवाह सम्पन्न हो जाता है। इसी प्रेम के आदर्श रूप को उपस्थित करने के लिए कवि ने अपने कुछ प्रेमास्थानों के अंत में आदर्शवाक्यों की अभिव्यंजना किया है।

निष्कर्ष:-

यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि कन्नड शान्कवि की प्रेमाभिव्यक्ति का आदर्श सुफ़ियों के अधिक निकट है या असूफ़ी प्रेमाख्याकारों के ? प्रेम-निरूपण की दृष्टि से सुफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें कुछ समानताएँ तथा कुछ विभिन्नताएँ दीवती हैं । स्वच्छंद प्रवृत्ति के कवि होने के कारण शान्कवि प्रेम की किसी विशेष पद्धति का अनुसरण करते नहीं जान पड़ते । वे अपने पूर्व एवं समकालीन प्रचलित बहुत-सी सुफ़ी काल्पनिक और असूफ़ी पौराणिक प्रेम कथाओं तथा उनकी रचना पद्धतियों का अनुसरण करते हुए प्रायः अपने समस्त प्रेमाख्यानों की रचना करते हैं । यहाँ सुफ़ी तथा असूफ़ी काव्यों से शान्कवि की रचना का तुलनात्मक विश्लेषण करके संक्षेप में उनकी प्रेमाभिव्यक्ति के आदर्श को देखने का प्रयास किया जायेगा।

शान्कवि ने अपने समस्त प्रेमाख्यानों में सुफ़ी तथा असूफ़ी कवियों की भाँति संगतावरण से कथा का प्रारम्भ करके इन्हीं कवियों की तरह ईश्वर की बंदना तथा साहेबुक्त की प्रशंसा की है, किन्तु जहाँ सुफ़ी कवि अपने परमात्मा विषयक उद्देश्य का स्पष्ट निर्देश कर देते हैं वहाँ असूफ़ी कवियों की भाँति शान्कवि में यह प्रसंग गौण रूप में आया है । कभी-कभी असूफ़ी तथा सुफ़ी प्रेमाख्यानों की भाँति शान्कवि ने भी नायक के माता-पिता को निस्संतान बतलाकर अनेक प्रवृत्तियों द्वारा संतान उत्पत्ति कराई है ।

सुफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों की तरह शान्कवि के नायक-नायिका में भी गुण-वर्णन, विम-दर्शन, स्वप्न-दर्शन या साक्षात् दर्शन से प्रेम का उदय हुआ है । प्रेम का उदय होते ही प्रायः सभी नायकों में विकसता की स्थिति दिखाई गई है । यह विकसता की मात्रा असूफ़ियों की अपेक्षा सुफ़ियों में अधिक है । शान्कवि में भी विकसता की स्थिति असूफ़ियों जैसी ही है । असूफ़ी कवियों की भाँति शान्कवि में भी बीणावादन एवं संगीत का प्रसंग है जबकि सुफ़ियों में नहीं मिलता ।

पर छोड़ते ही इन नायकों को अनेक विधन-बाधाओं या कठिनायकों का सामना करना पड़ता है । सुफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों को असूफ़ी

प्रेमास्थानों के नायकों की अपेक्षा अधिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती है। जानकवि के कुछ प्रेमास्थानों में नायकों को अधिक कठिनाइयाँ सहनी पड़ी हैं। जेष्ठा अन्य सभी प्रेमास्थानों में असूफ़ी प्रेमास्थानों की भाँति नायकों को उतनी विघ्नवाधार्थ नहीं भेजती पड़ी है। इसलिए इनके प्रेमास्थानों में कठिनाइयों का उतना विस्तृत विवर्णन नहीं प्राप्त होता।

असूफ़ी प्रेमास्थानों में स्त्रियों के प्रेम में तथा सूफ़ी प्रेमास्थानों में पुरुषों के प्रेम में अधिक तीव्रता दिखाई गई है। जानकवि के दाम्पत्य एवं स्वच्छंदतापरक कुछ प्रेमास्थानों तथा -"कथा कन्कावती", "कथा कवतावती", "कथा मोहनी", "कथा पुहुपहरिणा", "कथा किङ्करी देवतदे" आदि में नायिकाओं के प्रेम में तथा "कथा करतनावती", "कथा कौतुहली", "ग्रंथलेखमनू" आदि में नायकों के प्रेम में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता है। जेष्ठा प्रेमास्थान ऐसे हैं जिनमें नायक-नायिका दोनों के प्रेम में समान तीव्रता मिलती है। सतपरक प्रेमास्थानों में तो सभी में नायिकाओं के ही प्रेम की तीव्रता है।

सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमास्थानों में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि सूफ़ी कवि जहाँ नायक या नायिका के केवल निवोग पक्ष का वर्णन करते और संयोग के प्रति अपेक्षा प्रदर्शित करते हैं जहाँ असूफ़ी कवि दोनों पक्षों के वर्णन की ओर लगभग समान भाव से प्रवृत्त होते देखे जाते हैं^१। इन असूफ़ी कवियों की भाँति जानकवि भी संयोग और निवोग दोनों पक्षों को महत्व दिया है। "ग्रंथलेखमनू" की छोड़कर जेष्ठा सभी प्रेमास्थानों में अंतिम मिलन या संयोगावस्था में नायक-नायिका के वैवाहिक जीवन का आदर्श तथा उनके दाम्पत्य एवं गार्हस्थ्य जीवन का विवर्णन किया है। इनके सभी प्रेमास्थानों में दाम्पत्य जीवन की गरिमा उभारी गई है। पति-पत्नी का स्वीकृति प्रेम, उनका सुख-दुख, आशार्थ-निराशार्थ आदि सभी उनमें भाँकती हुई दिखाई पड़ती है। सूक्तियों में दाम्पत्य जीवन का यह गार्हस्थ्य आदर्श नहीं मिलता।

१- विस्तार के लिए देखिए:- परशुराम चतुर्वेदी-"हिन्दी के सूफ़ी प्रेमास्थान"-

पृ० ९९ से १०२ तक, जून १९६२ ई०।

प्रेम में विरह के विवर्ण का विस्तार सूरियों में असूरियों की अपेक्षा अधिक दिखलाया गया है। यह विरह की तीव्रता अपेक्षा कृत असूफी नायिकाओं में तथा सूफी नायकों में मिलती है। जन्कवि में भी विरह का विवर्ण असूफी कवियों की भाँति उतना नहीं हुआ है। "ग्रंथसौमित्र" में नायक मयन के प्रेम में सूरियों की भाँति विरह की तीव्रता अवश्य है, पर शेष समस्त प्रेमास्थानों में कुछ में नायक-नायिका दोनों के विरह-प्रेम में समानता, तथा शेष सभी में नायिकाओं के विरह की तीव्रता ही मिलती है जिसका विवेचन पहले प्रेम और विरह के साथ किया जा चुका है।

सूफी तथा असूफी प्रेमास्थानों की भाँति जन्कवि के कुछ नायकों के जीवन में एक से अधिक नायिकाएँ जाती हैं। दुखहरन्दास की "पुहुपावती" की भाँति "कथा सुभटराड" में नायक की तीन नायिकाएँ हैं। इन सबका दाम्पत्य-प्रेम आदर्शात्मक है।

असूफी प्रेमास्थान-"वीरसतदेवरास", "माधवानल कामकदंता", "छितार्थवार्ता", "मैनासत", दामोकृत "सहमसेन पदमावती", "ईश्वरदास कृत-"सत्य-वती", आदि की भाँति जन्कवि ने अपने सतपरक प्रेमास्थान "कथा सुभटरी", "कथा सीतवती", "कथा सतवती", "कथा छीता", "कथा मधुकरमातली", "कथा निरमल" आदि में नायिकाओं के सतीत्व को महत्व दिया है। इन सतपरक प्रेमास्थानों के साथ अस्विकार्य दाम्पत्यपरक प्रेमास्थानों की नायिकाएँ भी अपने पातिव्रत-धर्म की रक्षा करते हुए देती जाती हैं। कवि ने सतनायकों द्वारा भेजी हुई कुटुम्बियों द्वारा उनके सत की परीक्षा कराई है और उनका गुणमान किया है। सूफी प्रेमास्थानों में केवल "पदमावत" एक ऐसा काव्य है जिसमें पदमावती देवपाल की कुटनी द्वारा बहकाए जाने पर अपने सत की रक्षा करती है। शेष काव्यों में असूरियों की भाँति सत्य की स्थापना का प्रसंग नहीं मिलता।

जन्कवि ने भी सूफी तथा असूफी कवियों की भाँति प्रेम में गुरु को महत्व दिया है। जिस तरह सूफी प्रेमास्थान "पदमावत" में हीरामन सुग्गा, "विजयवती" में परेवा तथा असूफी प्रेमास्थान "प्रेमप्रगास", में मैना पदवी गुरु का कार्य करते हैं वैसे ही जन्कवि में "कथा कृतावती" में एक तोता तथा "कथा रतनमयी", "कथा रतनावती", "कथा बहूकिया विरही" में अन्य पदवी गुरु का

कार्य करते हैं। सुफ़ी तथा असुफ़ी प्रेमात्मानों की तरह सखियाँ, दाइयाँ, या बेरियाँ चादि प्रेमचटक का कार्य करती हैं।

जानकवि के प्रेमात्मानों में वाष्पात्मिकता का संकेत उतना नहीं मिलता, जितना सुफ़ी प्रेमात्मानों में। इनमें तो असुफ़ी प्रेमात्मानों की तरह कहीं-कहीं जड़ित या प्रतीकवाद की भक्तक मिल जाया करती है।

इस तरह समग्रता को ध्यान में रखकर हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जानकवि के प्रेम का आदर्श पूर्णतः एक जैसा नहीं कहा जा सकता। इनमें कोई भी प्रेम की बात निश्चित रूप से एक जैसी नहीं पाई जाती। फिर भी इनके प्रेमात्मानों का, कबोकर कुछ सुफ़ी या बीच-बीच में सुफ़ी-साहित्य द्वारा पोषित भावों के कुछ छिटे लक्षित होने पर भी, मूल ढाँचा भारतीय है जो कि असुफ़ियों के प्रेमादर्श के अधिक निकट है। इनके सुफ़ियों का आदर्श सिद्ध नहीं हो पाता^१। वे प्रेमाभिव्यक्ति में प्रयत्नमयत्रु जैसे एक आध ग्रंथों को छोड़कर शेष सभी में भारतीय आदर्शों के अनुकूल ही जान पड़ते हैं।

- - -

१- "जानकवि जैसे कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने अपने रूपक निर्वाह में उतनी सजगता ही नहीं प्रदर्शित की है और उनकी रचनाएँ कौरी प्रेम कहानी सी बन गयी हैं, जिस कारण इनके सुफ़ियों का अंतिम उद्देश्य उचित प्रकार से सिद्ध नहीं हो पाता।" -परशुराम बसुर्वेदी -सुफ़ी-काव्य-संग्रह" पृ० १२, पृ० ६०।

अध्याय - ५

भावविशेषित और रस-निरूपण

भावाभिव्यक्ति और रस-निरूपण

जानकवि के प्रेम-व्यंग्य का सामान्य परिवर्तन "प्रेम-निरूपण" के विवेचन में किया जा चुका है। इनकी भावाभिव्यक्ति की सीमा सामान्यतः उनकी रचना-पद्धति के अनुकूल है। सूफियों ने संयोग की अपेक्षा प्रेम के विरह पक्ष को अधिक महत्व दिया है और इसी के अनुकूल प्रेमी-प्रेमिकाओं के वियोग में केने गये अनेक कष्टों एवं विभिन्न प्रयत्नों का वर्णन भी किया है। इनके विपरीत असूफिय कवियों ने संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का बराबर महत्व दिया है। जानकवि ने भी इन्हीं की भांति दोनों पक्षों को लगभग बतना ही महत्व दिया है। नायक-नायिका के संयोग तथा वियोग की अवस्था में उनके विभिन्न परिस्थितियों, मनोवृत्तियों और मानसिक स्थितियों का जो चित्रण कवि ने किया है उसमें उनके भावाभिव्यक्ति का पूरा-पूरा परिवर्तन मिलता है फिर भी संयोग की अपेक्षा कहीं-कहीं विरह की तीव्रता प्रधान हो गई है। नायिकाओं के विरहावस्था का चित्रण करने के लिए कवि ने बारहमासा की विशेष महत्व दिया है। स्वतंत्र रूप से वियोगावस्था का चित्रण बहुत कम किया है। विरह दशा के वर्णन के साथ कवि यदि कहीं नवीनता का समावेश करना चाहता है तो ऊहा के आधार पर नवीन उत्प्रेक्षा और उत्पुष्टियों का आश्रय लिया है। प्रेम में विरह और संयोग के प्रतिरिक्त सामान्यतः ईर्ष्या, जेहा, उत्साह, कपट, सहानुभूति, विवशता आदि सौम्य परक भावों की व्यंजना भी उपलब्ध होती है, किन्तु ऐसे रस सभी प्रेमास्थानों में नहीं मिलते। भावों का तो सफल निरूपण तभी सम्भव जाता है जब बटना प्रयास की अपेक्षा चरित्र की विशेष महत्व दिया जाता है। जानकवि में बटनाओं के साथ चरित्रों का विशेष महत्व है।

वस्तुतः प्रेम-कथा की प्रचलित परम्परा के अनुसार अन्य प्रेमास्थानक कवियों की भांति कवि की भावाभिव्यक्ति भी रूढ़िगत ही है। इनमें किसी मौलिकता का समावेश नहीं मिलता। सारा भाव वंशवत् है। इनके पास एक विशेष परिस्थिति में अन्य तेते हैं, एक विशेष तरह से प्रेम में जातुर होते हैं, एक विशेष प्रकार की विरह यातना भोगते हैं और अनेक कष्टों को भेगतते हुए अंत में एक विशेष रूप से मिल जाते हैं। इस तरह इनमें सभी बातें परम्परा-

सी आती होने से नवीन भावों तथा विचारों को स्थान ही नहीं मिल पाता फिर भी भाव का उत्कर्ष जितने से सघ सका है उतने का प्रसंग इन्होंने प्रसार रखा है, ऊबरदारती विभाव, अनुभाव वा संवारीभाव ठूसकर रस को रसम वदा करने की कोशिश नहीं की है ।

सामान्यतः भावानुभूति और रसानुभूति में केवल मात्रा का अन्तर है क्योंकि गहरी अनुभूति तो रस दशा में ही परिणति होती है । भावानुभूति को प्रत्यक्षानुभूति भी कह सकते हैं । रसानुभूति वा काव्यानुभूति प्रत्यक्षानुभूति की अपेक्षा अधिक परिष्कृत तथा संवम पूर्ण होती है । प्रेम एक भावानुभूति है जो जीवन तथा काव्य दोनों में पाई जाती है । काव्य में वर्णित प्रेम विभाव अनुभाव से संयुक्त होने पर रस रूप में सहृदयों का आवागम होता है । इस तरह भावानुभूति कवि के प्रेम की रसानुभूति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

भारतीय साहित्य शास्त्र में रस-सिद्धान्त का विशेष महत्व है । इसकी काव्य की आत्मा माना गया है^१। इसके मूल में आनन्द लाभ की भावना अन्तर्हित है । काव्यानन्द का प्रधान रूप भावानुभूति वा रसानुभूति है । रसात्मकता ही काव्य की कसौटी है । इसके स्वरूप का ज्ञान और उसका आस्वादन ही काव्य के अध्ययन और अनुशीलन का सर्वोपरि फल है । विभावानुभाव तथा संवारी भावों के संयोग से इसकी निष्पत्ति होती है^२। संसार प्रकृति मनुष्य की केति रंग-स्वती है । नारी-पुरुष का प्रेम उसी ईश्वरीय प्रेम का प्रतिबिम्ब मात्र है । गुंगार रस के इसी प्रेम का प्रतिपादन इन समस्त प्रेमाख्यान्क-साहित्य में प्राप्त होता है । वे सभी प्रेमाख्यान अरित्र प्रधान होते हुए भी गुंगार रस प्रधान प्रेम-काव्य हैं । इन कवियों का ध्यान प्रेम-सत्य को गुंगारिक वातावरण में व्यक्त करने की ओर अधिक रहा है जिससे अपेक्षाकृत अन्य रसों के विवर्णन की ओर ध्यान नहीं दिया है, किन्तु जानकवि के समुच्चय में इस सत्य को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं किया जा सकता । इन्होंने अपने प्रेमाख्यानों में गुंगार रस की

१- "रसात्मक वाक्य काव्यम्"-विरचनाय प्रसाद-साहित्य दर्पण १।४ ।

२- "विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः"-भरत-नाट्य शास्त्र,

प्रधानता के साथ कतिपय अन्य - वीर, भवान्क, वदभूत, रांद्र, वात्सल्य, आदि रसों का संयोजन भी किया है। आगामी पृष्ठों में कवि के प्रेम की भावा-
नुभूति को स्पष्ट करने के लिए उनके प्रेमात्मानों में प्रयुक्त गुंगार या अन्य विभिन्न
रसों के अन्तर्गत विविध भावात्मक रसों की उपरिष्ठाति का विवेचन किया गया
है।

गुंगार रस:-

गुंगाररस को, रसों की गणना में, सर्वप्रथम एवं सर्वोच्च स्थान दिया गया
है। इसी लिए इसको "आदिरस" तथा "रसरत्न" भी कहा गया है। यह सम्पूर्ण
सुखों का मूल, रसों का राजा, प्रेम प्रमोद का अधिष्ठाता तथा प्रीति का प्राण
है। इस रस की तीव्रता वीर रंग-प्रत्यांगों सहित विस्तारयुक्त समस्त प्रेमा-
त्मान-साहित्य में व्याप्त है। इसी के अन्तर्गत प्रेम का पूर्ण परिचायक हुआ है।
वात्सल्य परक प्रेमात्मानों में तो इसका विशेष महत्व रहा है। निरन्तर नूतन
होने वाले सौन्दर्य के सुख एवं मंद-मंद परिवर्तनों में विलीन हो तगाये रहना,
वियोग में उसकी स्मृति एवं तन्मय शोक के नये-नये रूपों में मन को लीन रहना,
विलीन में प्रिय वस्तु सम्मिलन से उसकी प्राप्ति का सुख धीरे-धीरे आस्वादन करना,
वियोग में प्रिय वस्तु की गुणावली के स्मरण द्वारा शोक करते हुए भी प्रियवस्तु
की प्राप्ति की उत्कण्ठा के सहारे भावी आनंद का रसास्वादन करना ही गुंगार
रस है।

जातवन विभाव:-

गुंगार रस के जातवन विभाव-नायक-नायिका हैं। जहां तक नायकों के चरित्र
का सम्बन्ध है, अन्य प्रेमात्मानों की भांति आनन्द के समस्त नायक भी प्रायः
राजा या राजकुमार ही विभूत किए गये हैं। इनमें शास्त्रानुक्त प्राप्त नायक
के सभी गुणों का समावेश मिलता है^१। इनके कई प्रकार होते हैं। यथानुसार तीन

१- त्यागी, कुली, कुलीनः, सुखी को दुःख पीडनोत्साही ।

दशानुक्तः लोकस्तेषु वैदग्ध्य शीलकाम्येता ॥

भेद हैं:- (१) पति (२) उपपति तथा (३) कैौण्डिक । पति के चार उपभेद होते हैं - (१) अनुकूल^१ (२) दक्षिण^२ (३) घुष्ट^३ (४) गठ^४ । स्वभाव के अनुसार चार भेद हैं - (१) धीरोदात्त (२) धीरोदत्त (३) धीर जलित ४ तथा (४) धीर-प्रणाति । जानकवि के ये नायक स्वभावानुसार धीरोदात्त तथा धर्मानुसार पति के अन्तर्गत माने जा सकते हैं । प्रिय प्राप्ति के पश्चात् इनकी संभोग प्रियता को देख कर इनके धीरजलित होने का भ्रम हो सकता है, किन्तु इतने कठिन साधना के पश्चात् इसे स्वाभाविक संतोष ही समझना चाहिए ।

नायिकाएँ अधिकारी राजकुमारियाँ हैं जो स्वभावतः यौवन, रूप, गुण, शील, कुलभूषण, कृत्य, पाण्डित्य, उत्साह, तेज, चतुर्ग, आदि गुणों से युक्त हैं । इनके अनेक भेद माने गये हैं । पद्मिनी से (१) स्वकीया (२) परकीया एवं (३) सामान्य तीन भेद हैं । फिर स्वकीया का सामान्य आधु विचार है (१) सुगुणा (२) मध्या तथा (३) प्रौढ़ा तीन भेद हैं फिर मध्या और प्रौढ़ा दोनों के दो-दो भेद हैं - (१) जेष्ठा और (२) कनिष्ठा हैं और इनके फिर तीन-तीन भेद - (१) धीरा (२) अधीरा तथा (३) धीराधीरा हैं । अदम्बानुसार इन समस्त नायिकाओं के अनेकभेद माने गये हैं और अंत में इन सभी नायिकाओं के प्रकृति के अनुसार तीन-तीन भेद (१) उत्तमा (२) मध्यमा तथा (३) अधमा होते हैं । जानकवि की समस्त नायिकाएँ स्वकीया विशेषण कर सुगुणा वंशित की

१- कथा कदावती, कथा कौतूहली, कथा रतनावती, कथा रतनमंजरी, कथा नल दमयंती, कथा छोटा, कथामण्डलमालती आदि के नायक अपनेपत्नी में सदा अनुकूल मिलते हैं । ये अनुकूल नायक हैं ।

२- कथा कलावती, कथा सुभट्टराज, तथा कथा विजयदा देवसे के नायक अपनी नायिकाओं से स्वभावतः समान अनुराग रखते हैं ।

३- कथा चन्द्रसेन राजा सीतानिधान और "बाँदी नावा" में नायक अपराध करने पर तथा अत्यन्त तिरस्कृत होने पर नायिका से विनय करते हैं ।

४- "गठ" नायक अपराधी होने पर भी नायिका के ठगने में चतुर होते हैं । इसका प्रयोग जानकवि ने नहीं किया है ।

गई हैं। "कथा विग्रहां देवतादे" में नायिका देवतादे प्रपञ्चावेष्टा तथा दूसरी नायिका मध्या कनिष्ठा है। इसमें दूसरी नायिका की प्रवेशा देवतादे पर प्रति का प्रेम वर्णित है। "इन्द्रावती", "अमरागजांजुरी", "शानदीप" आदि की भांति उनके प्रेमाख्यानों में उनका शास्त्रीय विवेचन नहीं है। यद्यपि कवि के काव्य शास्त्र-सम्बन्धी अनूदित ग्रंथ "रसकोष", "सिंहारतिमक", "रसतरंगिनी" तथा "रस-मंजरी" में रस भे के भाव, विभाव, अनुभाव, संवारी तथा स्थायी भावों का एवं नायक-नायिका के भेद-प्रभेदों का सविस्तार विवेचन मिलता है।

उद्दीपन विभाव:-

उसके अन्तर्गत सखी, सखा, दूती, दूत, वन, उपवन, सरोवर, चन्द्र, चांदनी, पुष्प, नदीतट, पक्षियों के कलरव, पवन, जादूबु या बारहमासा, विष, नायक-नायिका का वेश-भूषा, वेष्टापं, नवसिद्ध वर्णन, सुगन्ध या चित्ताकर्षक सुन्दर वस्तुएं, मधुरसंगीत, मादकवाद्य, देश-कात, एकान्तस्थल आदि हैं।

सखी या दूती परम्परा मैसली, सहेली, बेरी या सेविका, पाद, पाद, मातलिन आदि का विवर्णन हुआ है^१। ज्ञानकवि के प्रेमाख्यानों में संयोगावस्था में हास-परिहास का प्रसंग इनके द्वारा बहुत कम मिलता है। इनका कार्य प्रायः वियोगावस्था में ही रहा है। "कथा रतनमंजरी" में रतनमंजरी की सखियां, सहे-लियां एवं बेरियां उपवन में उसे मधुसूदन से मिलवाती हैं तथा उनके प्रति प्रेम की उद्दीपित करती हैं^२। "कथा कौतूहली" में कौतूहली की अनेक सखियां उपवन में सरोवर स्नान करते समय उसके साथ नाचती गाती हैं और नायक सरबंगी से

१- केशवदास ने "रसिकप्रिया" में सखियों के प्रसंग में इन सब का उल्लेख किया है-
थाव बनी, नायन नदी, प्रकट परोक्षिन नारि ।

मातलिन, बरहन, शिल्पिन, बुरहारिनि सुनारि ।

रागवनी, सन्धासिनी, पटु, पटवा की बाज ।

केशव नायक-नायिका, सखी करहिं एव कात ॥पृ० १२०, १८४-६०॥

२- बी०- १३१ ।

मिलाती हैं^१। दोनों के विरहावस्था में दूती का काम करके उनके विरह-प्रेम को और भी उद्दीप्त करती हैं^२। "कथा नन्ददम्पती" में दुन्दुभारा रूपमंजर में केसरी सेविका दम्पती को नल के गुप्त रूप का संदेश देकर उसके प्रेम-भावना को उद्दीप्त करती हैं^३। "कथा विजयां देवसदे" में नायक एवं नायिका की कम्पा: वार बैरिवां (करना, कृपा, सम्पा, तथा गुलाब) और वार सहेतिवां (नरगिर, करतूरी, बूही तथा कपूरी) दोनों की विषोणावस्था में संदेशवाहन का कार्य करती हैं जिससे दोनों का विरह-प्रेम उद्दीप्त होता है^४।

मालिन का निवास-कमान उद्यान में होने तथा जालानी से राज-महलों में प्रवेश करने से नायक-नायिकाओं को मिलाने में इनका विशेष हाथ रहा है। "कथा रूपमंजरी" में योगीश्वर^{प्यारी} कुंवर क्षातसिंघ को रूपमंजरी से मालिन ही मिलाती हैं^५। "कामरानी वा पीतमदास" में उपवन की मालिन ही पीतमदास का चित्र राजमहल में छिपाकर कामरानी को देती है जिससे उसका प्रेम पीतमदास के प्रति उद्दीप्त होता है^६। इसी तरह अन्य प्रेमाख्यान "इन्द्रावती" में "शैला मालिन" तथा "प्रेम प्रगास" में मालिन ही नायक-नायिका को मिलाने में तथा उनके प्रेम को उद्दीप्त करने में सहायक हुई हैं।

सही रूप में पाइयां भी आई हैं। "कथानन्ददम्पती" में प्रारम्भ तथा अंत में एक पाइ ही दम्पती के प्रेम को उद्दीप्त करती हैं^७। इसी तरह "वसुधा-मुलेखा" तथा "प्रेम प्रगास" में भी पाइयों का वर्णन सही रूप में हुआ है।

इनके अतिरिक्त दूती सही के अन्तर्गत तोता या अन्य पक्षी तथा पशु जैसे मानवेतर प्राकृतिक-पात्र और अप्सराएं, परिषां जैसे मानवेतर काल्पनिक-पात्र भी उद्दीप्त रूप में प्रयुक्त हुए हैं। "कथा कम्लावती" में एक तोता नायक-नायिका दोनों के बीच एक दूसरे की रूप-प्रशंसा, संदेश-पत्र या चित्र-वाहन द्वारा उनके प्रेम को उद्दीप्त करता है^८ और अंत में दोनों के विलग हो जाने पर पुनः

१- बी०- २६ से २९ तक ।

२- बी०- ६३ से ६६ तक ।

३- बी०- १२७ ।

४- बी० - २५ से ४६ तक ।

५- बी०- २७ से २९ तक ।

६- बी० - ६ से ८ तक ।

७- बी०- ४८ से ५३ तथा ११२ और ११३ ।

८- बी०- २९ से ७० तक ।

संदेशवाहन से विरह-प्रेम बढ़ाता है^१। "कथानन्दमन्ती"^२, "कथा रतनावती"^३, "कथा रतनमञ्जरी"^४, "कथा तमीम अंसारी"^५, "कथा बसुकिना विरही"^६ आदि सभी में अन्य पक्षी नायक-नायिका के बीच पत्र या संदेश-वाहन द्वारा प्रेषण एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ा ले जाकर नायक-नायिका को मिलाने में उद्दीपन का काम करते हैं। "कथा रतनावती" में सभी रूप में पद्मिनी तथा रूप-रंभा दोनों प्रसन्न नायक महिमोहन के प्रेम को उद्दीप्त करने के लिए रतनावती का नल-शिखर वर्णन करती है और उपवन में दोनों को मिलती है^७।

सत्ता की नर्म सचिव भी कहते हैं। पीठमर्द, बिट, बेटक, विदूषक आदि कई प्रकार के होते हैं। जानकवि ने सत्ता के रूप में नायक के मित्र, मंत्री-पुत्र या अन्य सहृदय पात्र—बृह पुरण्डा, पथिक, ब्राह्मण, माली आदि को विवक्षित किया है। "कथा रतनावती" में मंत्री-पुत्र उत्तम, "कथा सुभट्टराज" में मंत्री नेगी के चार पुत्र, "कथा पुहुपवरिणा" में मित्र महानन्द, "कथा कामरानी वा पीतमदास"^८ में नायक पीतमदास के चार मित्र—सौदागर, बड़ईपुत्र, काछीपुत्र तथा सुरंगिया, "कथा रूपमञ्जरी" में मित्रन्यास सिंघ, "ग्रंथतैलमन्त्रु"^९ में मन्त्रु के मित्र सलीम, जैद तथा सूरजबंदताराइन आदि कही नायक के प्रेम को उद्दीप्त करते हैं तो कही उनकी विकट परिस्थितियों में सहायता करते विवक्षित हुए हैं।

"कथा कामरानी वा पीतमदास"^८ में एक बृह पुरण्डा शिला पर अंकित चित्र की नायिका कामरानी का परिचय देकर नायक पीतमदास की प्रेम-भावना और उद्दीप्त कर देता है। इसी तरह "ग्रंथतैलमन्त्रु"^९ तथा "कथा तमीम अंसारी"^{१०} में बृह पुरण्डा नायक के प्रेम को उद्दीप्त करने में सहायक हुए हैं।

१- बी०- १८० से १९६ तक।

२- बी०- १७ से ४६ तक।

३- बी० ७० से ७२ तक।

४- बी०-११४ से १६६ तक।

५- बी० - ८०।

६- बी० - १२३।

७- बी०-७२से९३ तथा १२४से १३३ तक। ८- बी०- ३।

९- बी०- १०७ से ११३ तक।

१०- बी०-१९।

"कथा कवलावती"^१, "कथा कामलता"^२, "कथा कौतूहली"^३ आदि में पणिक नायिकाओं का परिचय एवं उनका, रूप-सौन्दर्य वर्णन करके नायकों के प्रेम को उद्दीप्त करते दीखते हैं। "प्रवर्तनैमज्जु"^४ में "पणिक" दुन का काम करता है। "कथा कनकावती"^५, "कथा छीता"^६, "कथा कवलावती"^७, "कथा नन्दमर्षती"^८ में ब्राह्मण कभी नायक की नायिका के विषय का परिचय बताकर, कभी साक्षात् दर्शन कराकर तो कभी दोनों का मिलन या विवाह सम्पन्न कराके सहायता तथा प्रेमोद्दीपन करते देख जाते हैं। "कथा कौतूहली" में एक माली-नायक सरबंगी को कौतूहली से उपवन में मिलाता है^९।

सखी, सखा या दुती की जो योजना हुई है वह एक ओर तो उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत जाती है और दूसरी ओर कथा के द्रष्टिक विकास के सहायक रूप में।

"कथा कवलावती"^{१०}, "कथा नन्दमर्षती"^{११}, "कथा रतनावती"^{१२}, "कथा पुहुपवरिणा"^{१३} आदि में नायिकाओं का नख-गिब या रूप-सौन्दर्य वर्णन भी नायकों के प्रेम को उद्दीप्त करने के लिए हुआ है। संगीत या वाद्य-विद्या भी नायक-नायिकाओं के प्रेम को उद्दीप्त करने में सहायक हुआ है। यह नायक-नायिका के परस्पर प्रेम को द्विगुणित कर देता है। "कथा कौतूहली" में नायक सरबंगी के संगीत एवं वाद्य प्रदर्शन से ही नायिका कौतूहली में प्रेम उद्दीप्त हुआ है। वह स्वयं मोहित होकर नाचने-गाने लगती है^{१४}। "कथा रतनम्वरी" में

१- बी०- १२ से १८ तक।

२- बी०- ६ से १३ तक।

५- बी०- १२ से १५ तक।

७- बी०- ७२।

९- बी०- २० से ३२ तक।

११- बी०- १३ से १७ तक।

१३- बी०- ४० से ४४ तक।

३- बी०- १६।

४- बी०- ५३ से सर्वथा ४६ तक।

६- बी०- ८ से १० तक।

८- बी०- ११४ से १२० तक।

१०- बी०- ४१ से ५५ तक।

१२- बी०- ८३ से ८७ तक।

१४- बी०- ५३ से ५४ तक।

उपजी बीप गई सब साव।

गाऊन लागी ते कर साव ॥

संगीत बन तथा गाय से ही नायक मधुसूदन का विरह-प्रेम और उद्दीप्त हुआ है^१। "क्या कलावंती"^२, "क्या छीता"^३, आदि में बीणा-वादन से नायिकाओं का प्रेम उद्दीप्त हुआ है। "क्या रतनावती"^४, "क्या रतनमंजरी"^५ तथा "क्या शिखरा देवदे"^६ में सुगंधित वस्तुएं एवं नायिकाओं के आभूषणादि भी नायकों के प्रेम को उद्दीप्त किया है। "क्या नन्दमंजरी" नन्दमंजरी का परवातप उसके विरह-प्रेम को और उद्दीप्त करता है^७।

इन्के अतिरिक्त प्रकृति भी उद्दीपन का काम करती है। "प्रमत्त-मन्त्र" तथा "क्या नन्दमंजरी" में पवन दूतरूप में नायक-नायिका के विरहा-वस्था में पन एवं सदैव-बाहन द्वारा विरह-प्रेम को उद्दीप्त करता है। जटायु एवं वारहमासे का उद्दीपन रूप में वर्णन आगे संवाग एवं त्रियोग सुंगार के साथ पुनः-पुनः किया गया है।

अनुभाव:-

सुंगार रस के अन्तर्गत स्त्रियों के चेष्टाओं- वक्रांग पूर्ण भ्रुकुटि-भंग, मुहुमुहकान, कटावा आदि और उनके मनोविकारों के वर्णन करने की प्रवृत्ति ही प्रधान होती है जिससे विविध अनुभावों -(क) कायिक (ख) मानसिक (ग) आहार्य और (घ) सात्त्विक (स्तम्भ, कम्प, स्वरभंग, वैवर्ण्य, जघ्, स्वेद, रोमांच

१- चौ०- ८२ से ९० तक । २- चौ०- २४ से २६ तक ।

३- ऐसी बीन बजावत राम । जो सुनि हैतिह भूले घाम ॥

नीकी बावै तान विर्योग । रीधै फिरै संग बहु लोग ॥

जोगी बीन बजवै गावै । तान पैपुरस सुनो सुनावै ॥

महत भरौकानि देवाति नाम । छीता तकत तख्यो बहुराम ॥३२॥

४- चौ०- १५१ ।

५- चौ०- १४६ से १५० तथा १५६ से १५८ तक ।

६- चौ०- ५५ ।

७- चौ०- ७८ ।

तथा प्रत्यक्ष) का संयोजन ऐसे काव्यों का मुख्य अंग है । "कथा रतनावती" ^१, "कथा रतनमंजरी" ^२, "कथा कल्पावती" ^३, "कथा कामरानी वा पीतपदास" ^४, "कथा कवलावती" ^५, "कथा नन्दमंजरी" ^६ आदि में नायक-नायिका के संयोगावस्था में उनके मनोभावों के अनुसार नायिकाओं के हाथ, भौंह, बांह, आदि अंगों द्वारा की गई कटाक्ष आदि चेष्टाओं में काव्यिक अनुभाव का विवर्णन हुआ है । "कथा नन्दमंजरी" ^७, "कथा रतनावती" ^८, "कथा कवलावती" ^९, "गुंमतीसमयन" ^{१०}, "कथा शिखरा देवलदे" ^{११}, "कथा कल्पावती" ^{१२} आदि में वियोगावस्था के समय प्रत्यक्षकरण की भावनाओं के अनुसार मन मानस में जामोद-प्रमोद, हर्ष, विषादादि की उठती हुई तरंगी मानसिक अनुभाव के अन्तर्गत जाती हैं । नायिकाओं के विभिन्न वेश-धारण में आहार्य अनुभाव का विवर्णन मिलता है । संगर्ष के बाद शरीर के स्वाभाविक अंग विकारों में शारीरिक भावों का उदय अत्यन्त स्वाभाविक है । पाणिग्रहण विधि के समय "कथा रतनावती" ^{१३}, "कथा नन्दमंजरी" ^{१४}, "कथा कवलावती" ^{१५}, "कथा रतनमंजरी" ^{१६}, "कथा मोहननी" ^{१७} आदि सभी में नायक-नायिका दोनों को रोमांच, स्वेद, स्तम्भ, कम्प आदि का अनुभव होता है । उस तरह गुंजार रस में प्रायः सभी प्रकार के रसों का समावेश पाया जाता है ।

- १- जी०-१२९ तथा १४९ से १५० तक । २- जी०-६३, ६४ तथा १५० से १६४ तक ।
 ३- जी०- ४२ से ४३ । ४- जी०- ९ ।
 ५- जी०- ८३ तथा ८४ । ६- जी०- ६२, ६३ तथा १३४ ।
 ७- जी०-४३ से ४८ तथा ८० से ९० तक । ८- जी०- १३९ तथा १४० ।
 ९- जी०-११० से १२३ तक । १०- जी०-२३ तथा ५३ से ५५ तक और इसके बाद के जोड़े १८ दोहे ।
 ११- जी०-२३ से ४० तथा ५६ से ७१ तक । १२- जी०-इन्तया ३० ।
 १३- जी०- १४० से १४९ तक । १४- जी०-६२ ।
 १५- जी०- ७८ से ८२ तक । १६-जी०- १४५ से १५० तक ।
 १७- दोहा - १०३ से ११५ तक ।

नायिकाओं के वाचनात्मकता में विभिन्न रंगों के उत्पन्न होने वाले अनुभाव रूप विविध विकारों को सात्त्विक भाव या सात्त्विक वर्तकार कहते हैं । इनके तीन भेद होते हैं - (१) रंगर (२) अवलम्ब तथा (३) स्वभाव ।

रंगर वर्तकारों के अन्तर्गत हाव, भाव और हेमा की गणना की गई है । नायिकाओं के निर्विकार चित्त में प्रथम विकार उत्पन्न होने अर्थात् गुण-वर्णन, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शनादि से प्रेम का उदय होने में "भाव" की कल्पना की जा सकती है । "कथा नन्दमर्षती" में सर्व्वर में वेश-धारी पांच नलों के सम्मुख पहुँचते पर दम्पतीके उद्दिगुन, संदेह, विकल्प, आदि भावों का अवलम्ब मनस मनोहर चित्रण हुआ है । विवाहोपरांत नायिकाओं के भ्रुकुटि या नेत्रादि चेष्टाओं से संभोग, अभिलाषा सुख मनोविकारों के प्रकट होने में "हाव" तथा इन मनोविकारों के स्पष्ट स्फुट होकर आसिगन, बुझनादि क्रियाओं में "हेमा" की कल्पना की जा सकती है, पर इनका वर्णन इन प्रेमास्थानों में लगभग नहीं-सा है ।

अवलम्ब वर्तकार शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, श्रीदार्य तथा धैर्य प्रायः सभी नायिकाओं में मिलते हैं । कान्ति, दीप्ति, शोभा, तथा माधुर्य का वर्णन नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य या नखशिख वर्णन में तथा प्रगल्भता, श्रीदार्य एवं धैर्य का वर्णन तो नायिकाओं के चरित्र के प्रधान रंग ही है जो कथात्मक की घटनाओं में प्रस्तुतित हुए हैं ।

स्वभाव^१ या स्वभावसिद्ध वर्तकारों में विच्योक^२, कुट्टमित^३,

१- इसके १८ भेद हैं - (१) सीता (२) विलास (३) विविचि (४) विच्योक (५) कितकिं चित् (६) मोट्टावित (७) कुट्टमित (८) विभ्रम (९) सतित (१०) मद (११) विहृत (१२) तपन (१३) मौगुष (१४) विवीष (१५) कुतूहल (१६) हसित (१७) चकितता (१८) केति ।

२- तिम अवस्था रति भेद न जानत । नहिं नहिं करत नीर द्विग जानत ॥
कुंवरहि बह्यौ केति रस हेत । करना काम करन नहिं देत ॥
बर कर गही तई गर लाइ । बेक भये दूसर न लजाइ ॥ १५२ ॥

(कथा रतनमंजरी) ।

३- नायिकाओं के कामचेष्टाओं में इसका किंचित् आभास मिलता है ।

मोदटापित^१, केति^२, मद^३, तपन^४ आदि ही विशेष रूप से मिलते हैं । इनकी अधिक बर्णन इन प्रेमाख्यानों में नहीं हुई है ।

संवारी या अभिवारी भाव:-

गुंगार रस के परिपाक में सहायता पहुँचाने वाले भावों को संवारी भाव कहते हैं । ये ध्वनि रूप से स्थायी भावों के पोषक एवं सहायक होते हुए भी रस-सिद्धि काल तक स्थिर नहीं रहते हैं । उसी कारण इन्हें अभिवारी भाव भी कहते हैं । इनकी संख्या १३ है^५। उन्नता, मरणा, जातस्म एवं मुगुप्ता को छोड़कर

१- "कथा कवलावती" में तोता द्वारा प्रियतम इन्दुवदन् की प्रशंसा सुन्दर कवला-वती को अपने साथ अनुराग उत्पन्न हो जाता है। (बौ०-५९ से ६२ तक)।

सुन्दर रूप कवलावती मिली ।

दृष्ट गर्व आनन्दहि मिली ॥ (बौ०-५९) ।

२- समस्त प्रेमाख्यानों में संभोग के विषय में नायक के साथ नायिका का विहार ही "केति" है । उदाहरणार्थ-

(१) रंग रस करे उमंग सौ, पूजी इच्छा प्राप्ति ।

सीसा केत कलोल में, बीतत रैन बिहान ॥ (कथा मोहनी) ॥

(२) जो चाहत है सो भवौ हर्षवत रति मैं ।

कीला केत कलोल में बीतत रैन सब रैन ॥ (कथा कामरानी वा पीतमदास)

३- "कथा रतनमंजरी" (बौ०-१३२ से १३६ तक) तथा "कथा रतनावती" (बौ०-१२७) में नायिकाएँ नायकों से अपने जीवनार्थ का गर्व दिखाती हैं । इन्हीं से उत्पन्न मनोविकार "मद" है ।

४- "कथा विह्वला देवसेन", "कथा कनकावती", "कथा कवलावती", "कथा कस कामरानी वा पीतमदास", "कथा छीता", "कथा मलदम्यती" आदि में नायक के विषय में नायिकाओं के कामोद्देग की दृष्टाओं में "तपन" की स्थिति है ।

५-(१) निर्विद (२) गुलानि (३) सँका (४) वसुधा (५) प्रम (६) मद (७) जातस्म (८) धृति (९)

विष्णाद (१०) मति (११) विन्ता (१२) मोह (१३) स्वप्न (१४) विनोय (१५) स्मृति (१६)

अमर्ष (१७) गर्व (१८) उत्पुङ्गता (१९) अवहित्वा (२०) दीनता (२१) हर्ष (२२) ग्रीडा

(२३) उन्नता (२४) निष्ठा (२५) व्याधि (२६) अमस्मार (२७) आवेग (२८) आस (२९)

उन्माद (३०) वक्रता (३१) वितर्क (३२) चपलता तथा (३३) मरणा ।

शेष सभी शृंगार रस के अन्तर्गत आते हैं । इनमें गुणानि, मद, गर्व, ईर्ष्य, शंका, डीङ्गा, धम, विन्ता, स्मृति, व्याधि, उन्माद, हर्ष, विष्णाद आदि का ही चित्रण साधारणतः अधिक हुआ है । कवि के विभिन्न प्रेमात्मानों में इसके उदाहरण मिलते हैं, किन्तु यहाँ कितार भय से कुछ प्रसृत के ही एक साथ उदाहरण देकर संतोष किया जाता है ।

गुणानि:- कबहुँ चित्रहि गैतगावै । दहूँ बीर के बैन रनावै ॥

कबहुँ अंसुबनि चित्र भिगावै । हिरदै छरि करि बहुनि सुकावै ॥

कबहुँ चित्र की पूछत नाम । कही हता नू अपनौ नाम ॥

अपनौ नाम न भाजात काहि । किहि नगरी के रावा जाहि ॥३५॥

(कया नलदमर्षती)

विन्ता:- रतन चित यह विन्ता भई । हीं बीरी कत उपवन गई ।

काहे कीं पंछी डिठ जायौ । कत भेरी बिबुरा ललियायौ ॥

कत मैं कहनौ कुंवर को जैसैं । याहि गही तुम जैसैं कैसैं ॥

कुंवर कहनौ हू पढ़करत ठरिही । ते ठाड़ि जाइ कहा तब करिही ॥

हौ करता दुषा की उपवाई । मैं पठ्यौ करिके बरिवाई ॥३६॥

(कया रतनमर्षरी)

धम:- दमर्षती नामे पाइनि निकसि बने, दहुनि के गड़ि गड़ि जात भारी सुत है।

नगर नगर साहिबी सुरति आवत है, अधिक उठत त्यों त्यों हिरदै में
हूत है ।

रेखमी बिछोनलि मैं नित ही करत केत तेताँ निस्तभये परे देखिबत धूलि है।

फुल्लि फुल्लि रहे हैं धरन बत्ती जात माहि, फलका न होहि मानौ

जापदा के फूल है ॥३७॥

(कया नलदमर्षती)

प्रम:- दमर्षती चित ऊपरी चित । पहिवाय्यी नहीं जैह मित ॥

तके पाँच नल भरमीबात । काकै गर बाहे फुलमात ॥३८॥

(कया नलदमर्षती)

मद:- छबु कर मातति पुरा पिड़ाइ । बेहुँधि कीनी बहुत छिकाई ॥

ते मफुकर हैं स्वाद संग । मिले दहूँ भीतन के जंग ॥

मैं दहवन की कछु सुणिनाहि । सुते रहे नीद ही पांहि ॥

जैसी प्रज्ज भयो तन हेत । कबहुं चेतत कभुं नवेत ॥२१॥

(कथा मधुकरमातली) ।

देव्यः:- मो सौ बहुत बड़ी बिनु कीनी कह्यो न जात हता दुष्ठा दीनी ॥

मो पर और तिया तुम व्याही । मोही नोही पीति निवाही ॥

तुम पतिसाह कौन ते ठरिहो । जो मन भावै सोई करिहो ॥२२॥

(कथा किङ्कवां देवसे) ।

स्मृतिः:-मातत मधुकर जापु सन मै ^{की}करता की जान ।

दोऊ या सँसार मै मित करे ना जान ॥

(कथा किङ्कवां देवसे) ।

हर्षा:- सब जागम नोके ली, हरषा बहमी अति होय ।

बिष सपिनी सीतिस करी, बी चुषा पावै जीय ॥

(कथा रतनमंजरी) ।

गर्वः:- वही कहत है मोहनी, व्याह करन की जान ।

व्याह ताहि पु होत है, छवि गुन मोहि समान ॥

(कथा मोहनी) ।

ग्रीडा:-कौन सकुच को ताज है, कौन सोच को कान ।

सरबस बलि बलि दीजिये, ज्यों जावै पिय पान ॥

(कथा पुहुपवरिष्ठा) ।

व्याधिः:- नारी देवि नैद यों कहे । कौन रोग हम नाहिन लहे ॥

तन मै रोग न पायो जाइ । मन बिकार उपज्यो कछु जाइ ॥२३॥

(कथा नतदमवती) ।

उन्वाहः:- (१) बिहवल अति ही हवे गर्ब नारी । अमित चलत मानहु मतिवारी ॥

भीर भयो तब बेरी जाई । रतनमंजरी या बिषि पाई ॥

मुखा नीरव है नीर पुवायी । जवन डरयो ससि कतके बहायी ॥२४॥

(कथा रतनमंजरी) ।

(२) पिप्य मितिले की रंगु रसु, मन काह न नकाह ।

जी कहिये तो जान कहि, कहू कहूनी न जाह ॥

(कथा पुहुपवरिजा) ।

स्वायी भाव:-

शृंगार रस का स्वायी भाव रति है । भरत ने इसे उन्मत्तवेष्टा-
त्मक, शुचि तथा दर्शनीय बताया है^१। उत्तम प्रकृति के युवक-युवती की रति ही
शृंगार रस का वर्ण्य विषय है । इनका पारम्परिक अनुराग-प्रेम एवं प्रीति ही
रति है । यह प्रारम्भ के ही नायक-नायिका में विद्यमान रहता हुआ विभावानु-
भाव तथा संवारी भावों से परिपुष्ट होकर शृंगार रस के पूर्ण परिपाक का
कारण होता है । कुछ लोग गुरु, देवता, और पुत्रादि से प्रेम होने को भी
रति ही मानते हैं, पर वह रति शृंगार रस का स्वायी नहीं, वह तो केवल
भाव संज्ञा मात्र है ।

भेद:-

शृंगार रस के दो पक्ष होते हैं - (१) संयोग या संभोग शृंगार ।
(२) विषोग या विप्रलम्भ शृंगार । जानकवि के प्रेमाख्यानों में असूफ़ी प्रेमा-
ख्यानों की भांति संयोग एवं विषोग दोनों पक्षों का समान रूप से उद्घाटन
हुआ है जबकि सूफ़ी प्रेमाख्यानों में विषोग शृंगार की ही प्रधानता है । प्रायः
संयोग शृंगार को उतनी चर्चा नहीं की गई है । दाम्पत्य-प्रेम ही शृंगार रस का
मूल है इसलिए दाम्पत्य परक प्रेमाख्यानों में ही इसका वास्तविक रूप निखरा है।

संयोग या संभोग शृंगार:-

नायक-नायिका के पारम्परिक अवलोकन, आर्त्तिगन, सर्वांग
सुखन आदि से इसके अंतर्गत् भेद है । जब वह नायिका की ओर से प्रारम्भ होता
है तो उसे नायिकारम्य संयोग और जब नायक की ओर से होता है तो नायक-
रम्य संयोग कहते हैं । जानकवि के सभी प्रेमाख्यानों में नायकरम्य संयोग ही

(२) पिप्य भित्तिले को रंगु रसु, मन काह न नकाह ।

जी कहिये तो जान कहि, कहू कहूनी न बाह ॥

(कथा पुहुपपरिजात) ।

स्थायी भाव:-

शृंगार रस का स्थायी भाव रति है । भरत ने इसे उज्ज्वलवेष्टा-
त्मक, शुचि तथा दर्शनीय बताया है^१। उत्तम प्रकृति के युवक-युवती की रति ही
शृंगार रस का वर्ण्य विषय है । इनका पारस्परिक अनुताप-प्रेम एवं प्रीति ही
रति है । यह प्रारम्भ से ही नायक-नायिका में विकसित रहता हुआ विभावानु-
भाव तथा संवारी भावों से परिपुष्ट होकर शृंगार रस के पूर्ण परिपाक का
कारण होता है । कुछ लीला गुरु, देवता, और पुत्रादि से प्रेम होने को भी
रति ही मानते हैं, पर वह रति शृंगार रस का स्थायी नहीं, वह तो केवल
भाव संज्ञा मात्र है ।

भेद:-

शृंगार रस के दो पक्ष होते हैं - (१) संयोग या संभोग शृंगार ।
(२) विवियोग या विप्रलम्भ शृंगार । जान्कवि के प्रेमास्थानों में असूफली प्रेमा-
स्थानों की भाँति संयोग एवं विवियोग दोनों पक्षों का समान रूप से उद्घाटन
हुआ है जबकि सूफली प्रेमास्थानों में विवियोग शृंगार की ही प्रधानता है । प्रायः
संयोग शृंगार की उतनी चर्चा नहीं की गई है । दाम्पत्य-प्रेम ही शृंगार रस का
मूल है इसलिए दाम्पत्य परक प्रेमास्थानों में ही इसका वास्तविक रूप निखरा है।

संयोग या संभोग शृंगार:-

नायक-नायिका के पारस्परिक अवलोकन, आर्त्तिगन, सर्वांग
सुखन आदि से इसके असंख्य भेद हैं । वह वह नायिका की ओर से प्रारम्भ होता
है तो उसे नायिकारम्य संयोग और जब नायक की ओर से होता है तो नायक-
रम्य संयोग कहते हैं । जान्कवि के सभी प्रेमास्थानों में नायकरम्य संयोग ही

मिलता है ।

कवि के प्रेमाख्यानों में संयोग शृंगार का वर्णन दो रूपों में मिलता है । एक तो विवाह के पूर्व किसी उपवन वा पाठशाला आदि में नायक-नायिका के साक्षात् दर्शन वा भेंट होने पर और दूसरा विधोहापरास्त नायक-नायिका के मिलन में । विवाह के पूर्व नायक-नायिका का मिलन "कथा मधुकरपावती"^१ तथा "ग्रंथलैलामयनु"^२ में पाठशाला बटसार में तथा "कथा रतनमंजरी"^३, "कथा रतनावती"^४, "कथा कन्कावती"^५, "कथा पुष्पवरिका"^६, "कथा रूपमंजरी"^७ आदि में उपवन में हुआ है । इसमें मानसिक पक्ष ही प्रधान है, शारीरिक अभि-
चार का प्रायः अभाव मिलता है । विधोहापरास्त नायक-नायिका के प्रथम समा-
-गम में संयोग शृंगार के काविक पक्ष का बड़ा विस्तृत वर्णन कवि ने किया है ।
इसका विस्तृत विवेचन अध्याय - ३ में "साहित्यिक-अभिप्राय" के साथ तथा
अध्याय ४ में "संयोग और प्रेम्ही चरम परिणति" में किया जा चुका है । संयोग
शृंगार में काविक पक्ष की प्रधानता से उतनी कलात्मकता एवंमाधुरी नहीं मिलती
है । इसके मूल में सांस्कृतिक स्तर की नीचता तथा हावों की योजना का अभाव
मिलता है "हाव" एक जाध जगह जन्माने में आ गये हैं, पर उनकी संरिखट
पंक्तियाँ नहीं मिलती ।

यह देखा जाता है कि नायक-नायिका के कभी-कभी विप्रलम्भावस्था
के पूर्वराग के स्वप्नस्तमागम में भी संयोग शृंगार का वर्णन होता है । "कथा रतन-
मंजरी" में प्रारम्भ में नायक-नायिका के स्वप्नावस्था में संयोग शृंगार का चित्रण
हुआ है^८ । कभी-कभी नायक-नायिका के परस्पर रति होने पर भी संयोग शृंगार

१- कत चौ०-१- से ३ तक ।

२- चौ०- २ से ४ तक ।

३- चौ०- १२५ से १४१ तक ।

४- चौ०- १२८ से १३१ तक ।

५- चौ०- ४२ तथा ४३ ।

६- चौ०- १०९ ।

७- चौ०- १२ से १३ तक ।

८- हरसि कुंवर दीनी गरबहीहवा । हंसि हंसि तिया करत है नहिवा ॥

बरकै गहि गर लई लगाइ । इक भये दूसर कह्यो न जाइ ॥

+

+

+

कबहुं कुच उभरे गहि जीवत । कबहुं जखर बसी रस पीवत ॥६३॥

का वर्णन नहीं हो पाता । उदाहरण के लिए "कथा कामरानी वा पीतमदास"^१ में विवाह के पूर्व मइल में, "ग्रंथलेखमंजरी"^२ में उच्चरालाप की मृत्तु पर दोनों एकत्रित में मिलने पर संयोग की सभी क्रियाएँ करते हैं, पर वे ऐन्द्रिय संयोग नहीं करते ।

"कथा छत्रिशागर" तथा "कथा मोहनी" में नायिकाओं के पहेलियाँ का बुझाने में गूढ़ व्यंग्य की व्यंजना निहित होने से इसे भी संयोग गुंगार ही कह सकते हैं ।

"कथा रतनावती"^३, जैसे कुछ काव्यों में नायक या नायिका के माता-पिता का संयोग वर्णन भी मिलता है ।

संयोगावस्था के पूर्व, 'पद्मावत' आदि सृष्टि प्रेमाख्यानों की भांति, सत्तियों के हास-परिहास का अभाव है ।

संयोगावस्था में प्रकृति का चित्रण सदा उद्दीपन रूप में आया है। "कथा रतनमंजरी" में आरहमासा^४ तथा "कथा रतनावती" में आदित्य^५ का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है । "कथा रूपमंजरी"^६ तथा "कथा रतनमंजरी"^७ में प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण भी उद्दीपन रूप में हुआ है । रतनमंजरी को तो संयोग के पूर्व तकुन होने लगते हैं^८। वो बीजे पहले संयोगावस्था में उसे दुखदायी थीं वही अबसुखदायी लगने लगती हैं ।

इन प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त कन्दफलोत्त, मानविनीद, मदन-विनीद तथा "आरहमासा" नामक अपने अन्य काव्यों में भी जानकवि ने स्वतंत्र रूप से संयोग गुंगार के विभिन्न रूपों एवं उद्दीपनों का विस्तृत वर्णन किया है।

१- चौ०- ९ ।

२- चौ०- ६२ का अंतिम अंश ।

३- चौ०- १४ ।

४- चौ०- २३५ से २४६ तक ।

५- चौ०- १५४ से १५९ तक ।

६- चौ०- ३० से ३२ तक ।

७- चौ०- १२२ से १२४ तक ।

८- चौ०- १२४ ।

विषोग या विप्रलम्भ गुंगार:-

गुंगाररस का दूसरा यथा विप्रलम्भ गुंगार है । इसमें स्त्री-पुरुष का विषोग के समय प्रेम होता है । साहित्य-शास्त्रियों ने इसके चार भेद माने हैं:-
(१) पूर्वराग (२) मान (३) प्रवास तथा (४) करुणा ।

पूर्वराग या पूर्वानुराग की उत्पत्ति समस्त प्रेमाख्यानों में स्वप्न-दर्शन विष-दर्शन, गुण-श्रवण एवं साक्षात् -दर्शन से प्रदर्शित की गई है । इस अवस्था में नायक-नायिका की जो विरह पूर्ण अन्तर्बेदनाएँ हैं वही पूर्वानुराग है । "कथा कलसता"^१ तथा "कथा रूपमरी"^२ में स्वप्न-दर्शन से, "कथा रतनावती"^३ तथा "कथा कामरानी वा पीतमदास"^४ में विष दर्शन से, "कथा कौतूहली"^५, "कथा कलसावती"^६, "कथा कलावती"^७, "कथा छीता"^८, "कथा मोहनी"^९, जादि में गुण-श्रवण से तथा "प्रियतैलमयू"^{१०} तथा "मधुकरमावती"^{११} में प्रत्यक्ष दर्शन से नायक-नायिकाओं में पूर्वानुराग का उदय हुआ है । "कथा नमदमवती"^{१२} तथा "कथा कनकावती"^{१३} में तो स्वप्न, विष एवं गुण तीनों द्वारा पूर्वराग उत्पन्न हुआ है । इसी तरह अन्य असूफी तथा सूफी प्रेमाख्यानों में भी पूर्वराग की स्थिति मिलती है । इस पूर्वराग या अभिलाषाहेतुक विरह में कहीं-कहीं कवि स्तुति व्यक्त कर गया है फिर भी सूफी कवियों की भाँति उतनी उहाड़कता नहीं मिलती ।

१- बी०- ६ से १२ तक ।

२- बी०- १३ । ३- बी०- १९ ।

४- बी०- १ तथा २ ।

५- बी०- १० से १२ तक ।

६- बी०- ४० से ४५ तक ।

७- बी०- १२ तथा १३ ।

८- बी०- ६ ।

९- दी०- ४९

१०- बी०- २ से ४ तक ।

१२- बी०- १८ से २९ तक ।

११- बी०- १ तथा २ ।

१३- बी०- १० से १५ तक ।

मान प्रधानतः दो प्रकार का होता है - (१) प्रणवजन्य मान तथा (२) ईर्ष्याजन्य मान । प्रणवजन्यमान का उल्लेख मात्र तो संयोग के पूर्व कथा-रतनावती^१ तथा रतनमंजरी^२ जैसे कुछ काव्यों में नायिकाओं में मिल भी जाता है, किन्तु ईर्ष्याजन्य या सहेतुक मान का उल्लेख जा-कवि में बिल्कुल नहीं मिलता ।

प्रवास का वियोग, मान के वियोग से तीव्रतर होता है । प्रवास के तीन कारण माने गये हैं - (१) कार्यवश (२) शापवश तथा (३) भयवश । कार्यवश प्रवास दो रूपों में मिलता है । प्रथम जब नायक-नायिका के सम्बन्ध में व्यापार आदि के लिए विदेश प्रस्थान करते हैं । जैसे "कथा तमीम अंसारी" "कथा सतवर्ती" "कथा कुतवर्ती", "कथा सीतवर्ती" आदि । दूसरा जब नायक अन्य नायिका के प्राप्त हेतु पत्नी को छोड़कर प्रस्थान करते हैं । यथा - कथा कला-वर्ती तथा कथा सुभट्टराज । शापवश प्रवास उस अवस्था में होता है जब नायक का शरीरगत निम्न विरह बलने पर उसका प्रियतमा से विछोह हो जाता है । ऐसा विरह कथा कवतावती^३ तथा कथा मधुकरमासती^४ आदि में नाय के दूख जाने आदि से हुआ है । "कथा नन्दमंजरी"^५ में युवा प्रसंग के बाद नायक-नायिका का जंगल में प्रस्थान भी ऐसा ही प्रवास कहा जा सकता है । "कथा मधुकरमासती"^६ तथा "ग्रंथसैतमवतु"^७ में परिवार के भय से पिता के साथ नायकों के विदेश जाने में भयवश प्रवास है ।

जहाँ पर करुणा के साथ मिलन की सम्भाव जाता रहते हुये भी रति का भाव वर्तमान रहता है जहाँ पर करुणा विप्रलम्भ सुंगार होता है, किन्तु जब नायक-नायिका की किसी कारण वश परस्पर मिलन की जाता सर्वदा के लिए नष्ट हो जाती है तो उसे करुणा रस की संगी दी जाती है । करुणात्मक विप्रलम्भ सुंगार और शुद्ध करुणा रस के बीच एक निरिक्त रेखा खींचना अत्यन्त

दुर्लभ-

१- चौ०- १२० से १३० तथा १४९ ।

२- चौ०- १५१ ।

३- चौ०- १५२ ।

४- चौ०- १५ ।

५- चौ०- १७ ।

६- चौ०- ५ ।

७- चौ०- ३० ।

कठिन है। इनमें केवल स्तर मात्र का भेद है। साधारणतया करुणा विप्रलम्भ गुंगार जीवन के साथ ही सम्बद्ध रहता है। मूर्छा ही उसकी अंतिम सीमा होती है, कि मृत्यु हो जाने पर तो वह करुणा रस में परिणत हो जाता है। जानकवि के प्रेमाख्यानों में नायक-नायिका में प्रेम रस के बाद या किसी कारण वा पाणिग्रहण के पश्चात् दोनों के विलय होने पर जो विरह की भावा या कृति मूर्छितावस्था^१ का विशद वर्णन कवि ने किया है उसे करुणात्मक विप्रलम्भ गुंगार ही मानना चाहिए। इसमें ऊहात्मक स्वयं उत्पन्न नहीं है यद्यपि फारसी प्रभाव से कहीं कहीं अतिशयोक्ति किया है फिर भी विरह की गम्भीरता एवं मार्मिकता के सम्बन्ध दोष प्रायः नगण्य हो जाता है।

इन भेदों के अतिरिक्त विरह गुंगार की दस दशाएँ मानी गई हैं -

(१) अभिलाषा (२) चिन्ता (३) स्मरण (४) गुण (५) उद्वेग (६) प्रलय (७) उन्माद (८) व्याधि (९) बड़ता तथा (१०) मरण। इन सब का उत्प्रेक्ष्य पूर्वराग के अन्तर्गत किया जा सकता है। वैसे इन सभी दशाओं का स्पष्ट उत्प्रेक्ष्य सभी प्रेमाख्यानों में निश्चित रूप से नहीं मिलता।

अभिलाषा विरहदशा की प्रथम भेणी है। इसमें नायक वा नायिका की मिलनेच्छा प्रबल होती है जब विरह की भावा और दर्शन की लासता बढ़ जाती है तो चिन्ता होती है। प्रेमी प्रिय का गुण कथन ही जीवनाधार मानने लगता है। "स्मृति" में वह सब कुछ धूलकर एक मात्र उसी के स्मरण और प्यान में मग्न रहने लगता है। उद्वेग की अवस्था में उसे सुखद वस्तुएँ भी दुःख लगने लगती हैं और मन की गति तीव्र हो जाती है। प्रलाप में उसकी बुद्धि का ह्रास होने लगता है और उसका मानसिक उद्वेग शब्दों द्वारा व्यञ्जित होने लगता है। इस अवस्था का उत्प्रेक्ष्य प्रायः कवि के प्रेमाख्यानों में कम मिलता है। उन्माद में उद्वेग

१- "कथाकल्लावती", "कथामलदम्बती", "कथा रतनावती", "कथा रूपमंजरी", "कथा-कनकावती", "कथा रतनमंजरी", "कथा कामलता", "कथा कीतुहती" आदि में मूर्छितावस्था का विवरण मिलता है। इसका विस्तृत विवेचन अध्याय-३ में अभि-प्रायों के साथ किया जा चुका है।

का क्रियात्मक रूप दोष पड़ता है और जब मानसिक उद्वेग शरीर पर अधिकार जमा लेता है, जंग का वर्ण विवर्ण हो जाता है तब उसे व्याधि कहते हैं। जड़ता की अवस्था में उसकी सुष-सुष विरमृत हो जाती है वह स्थिर हो जाता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि कवि रस-विच्छेद के भय से मरणावस्था का वर्णन न करके केवल पूर्णवस्था^१ का ही वर्णन करता है। जिससे इन काव्यों को रस-विच्छेद से बचा लेता है।

स्वतंत्र रूप से विवोग गुंगार के वर्णन के अतिरिक्त प्रकृति के सहारे वर्णन दो प्रकार से हुआ है - एक तो जहाँ प्रकृति उद्दीपन के रूप में आइ है दूसरे जहाँ मानवीय भावनाओं से संयुक्त विरही या विरहिणी के दुःख में दुखी दिखलाई पड़ती है। मानवीय भावनाओं से संयुक्त विरहिणी रूप में प्रकृति का चित्रण बहुत कम हुआ है अधिकतर उद्दीपन रूप में ही हुआ है। उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण अधिकतर ऋतुसु और वारहमासे के रूप में हुआ है। "कवा कलावन्ती"^२, "कवा कलावन्ती"^३, "कवा कलावन्ती"^४, "कवा कौतुहली"^५, "कवा रतनमंजरी"^६, "कवा पुष्पविरिणा"^७ में विरह पूर्ण वारहमासे का तथा "कवा सुभट्टराइ"^८ में ऋतुसुओं का वर्णन किया है। कवि ने सभी वारहमासे का वर्णन असाढ़ से आश्विन करके बैठ में समाप्त किया है। नायिकाओं के वेदना का अत्यन्त निरीह, मार्मिक, गंभीर, निर्मल और पावन रूप इन वारहमासों में देखने को मिलता है। इस वर्णन में कवि एक ओर तो प्रकृति के शोभा, प्रकरणाँ का निर्देश करता है और दूसरी ओर नायिका से भाव-साम्य या विरोध प्रदर्शित करता है। इस तरह प्रकृति का चित्रण कभी नायिका के लै दशा के प्रति

१- नल राजा यह बात सुनि मुण्डते बोल्यो हाइ ।

वेसुधि हवै के गिरिगङ्गा, सुधि सुधि गई बिलाइ ॥ (कवा नलदमवन्ती) ।

२- वी०- १८ से १९ के बीच १९ पर्वगम छंदों में । ३- वी०- १६८ से १७९ तक ।

४- वी०- ५९ से ७० तक ।

५- वी०- ६२ तथा ६३ के विविध छंदों में ।

६- वी०- १८६ से १९७ तक ।

७- वी०- १२६ से १३७ तक ।

८- वी०- ३२ से ३७ तक ।

कृत तो कभी अनुकूल चित्रित करता है। प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर नायिका को अपने अभाव का स्मरण हो जाता है और सभी सुखद वस्तुओं उसके पूर्व स्मृतिपूर्ण को जाग्रत करके विरह को उद्दीप्त कर देती हैं जिससे उसे सभी सुखद कार्य-व्यापार दुःखद लगने लगते हैं^१। इसका विस्तृत विवेचन प्रकृति-विमर्श के नाम किया गया है।

छादयतु तथा वारहमासे के अतिरिक्त विमोगावका में प्रकृति के उद्दीपन रूप का विमर्श 'कवाङ्गिद्वजा देवदत्ते'^२ तथा 'कवा नन्दमर्षनी'^३ को छोड़कर अन्य किसी काव्य में नहीं हुआ है। पुराण-वाच या नायक का विरह वर्णन प्रकृति के पृष्ठभूमि में प्रायः नहीं किया गया है। उद्दीपन रूप के अतिरिक्त सर्व-तंत्र रूपमें प्रकृति का विमर्श बहुत कम हुआ है। इसी तरह अन्य सुष्णी तथा अशुष्णी प्रेमास्थानों में भी सर्वत्र प्रकृति का विमर्श विरह के उद्दीपन रूप में ही आया है।

इस तरह विमोग गुंगार में ही रस का पूर्ण परिपाक एवं प्रेम का पूर्ण प्रकर्षण हुआ है। इसी के पूर्ण मानसिक मिलन होता है। मिसने की इच्छा ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है त्यों-त्यों प्रेम की गहराई तथा मार्मिकता बढ़ती जाती है इसलिए परम्परायुक्त होने पर भी सभी दोष नगण्य दीखते हैं।

प्रेमास्थानों के अतिरिक्त कवि ने 'ग्रंथ प्रेमनामा', 'प्रेम सागर', 'विरही की मनोरथ', 'विरहसत', 'विमोगसागर', 'छादयतु वरनवाचं' जैसे ग्रंथों में सामान्य नायक-नायिकाओं के प्रसंग को लेकर विमोग गुंगार का विस्तृत वर्णन किया है। 'छादयतु वरनवाचं' में तो प्रकृति के छः ऋतुओं का वर्णन विरह के उद्दीपन रूप में किया है।

गुंगार रस के अतिरिक्त वीर, करुणा, शान्त, वात्सल्य, वीभत्स,

१- दम्पती विरहै वीरार्थ । सुखद वस्तु तागै दुःखदार्थ ॥

वीरत सुनि है कवाचकई । वेसुधि होइ विरह मद छकई ॥४५॥

२- वी०- ३४ तथा ४० से ४२ तक ।

३- वी०- ४५ वीर १११ तथा सबैया ५१ वीर ५२ ।

भयानक, अद्भुत आदि सभी रसों का उत्प्रेषण भी इन प्रेमाञ्जनों में गीष्म रूप में मिलता है ।

वीर रस:-

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । इसके मुख्य रूप से बार भेद माने गये हैं - (१) युद्ध वीर (२) दान वीर (३) दयावीर और (४) धर्म वीर । जात्कवि के नायक उनके पिता या सहृदयों द्वारा नायिका को प्राप्त करने के लिये उनके पिता से, नायक की अपनी रक्षा के हेतु दानव-राजास, देव वा हाथी, सर्प आदि जंगली जानवरों से तथा स्वदेश लौटते समय शत्रुओं से युद्ध करना पड़ता है । "कया किङ्कणां देवलदे" ^१ में नायक किङ्कणां के पिता जलादहीन को देवलदे के प्राप्त हेतु देवगिरि के राजा कर्ण से, "प्रयत्नैस्त्वयं" ^२ में यवनों के पिता तथा नौफल को तैला के प्राप्त हेतु उसके पिता से, "कया अरदक्षेर पति-ताह" ^३ में अरदक्षेर को अरदुवान से, "कया कन्कावती" ^४ में नायिका कन्कावती को प्राप्त करने के लिये नायक परमरूप को उसके पिता सिंघ से, स्वदेश लौटते समय, "कया कञ्जलावती" ^५ में नायक इन्दवदनु को तलनायक बलसागर से तथा "कया कौतूहली" ^६ में नायक सरबंगी को पश्चिम दिशा के राजा से युद्ध करना पड़ा

१- वी०- ६ से १२ तक ।

२- वी०- २६ तथा ३८ ।

नौफल सरनं चत्वारो दल साव । वि सै कौं सै वे कैंकाव ॥

दहू वीर बावे नी सान । भादौं धन कैसी पहरान ॥

दहू वीर छूटहि बंदूक । तांगहि मारहि मनुष्य जवूक ॥

३- वी०- ५ ।

४- वी०- १९ से २५ तक ।

५- वी०- १४७ से १४९ तक ।

६- वी०- ७ के बाद गौराद छंद से १३ सबैया तक ।

बसव छंद:- भवौ बुभार सर्व जंग कहत मार मारही ।

सहै न भीर भीर को बुभार ही बुभारही ॥

जनेक रज्जिमात दहू ताल ताल इसकी ।

किल किताहि जुगनी जगीस दै वसीस कीं ॥

है । "कथा रतनमंजरी" ^१ में नायक मधुसूदन अपनी रक्षा के लिए, "कथा रतना-
वती" ^२ में नायक महिमोहन पद्मिनी को साव लेने के लिए तथा "कथा पुहुपवरिणा" ^३
में परीष्कारी पुरुषोत्तम निम्न दे को छुड़ाने के लिए रास्ते में राक्षस,
अप्सरा, देव, जंगली जानवर आदि से मुक्त करते हैं । "कथा कामरानी वा पीतम-
दास" में प्रतिनायक राजाराम कामरानी को पाने के लिए उसके पिता राजा
हरिदास से मुक्त किया है ^४ ।

"कथा छीता" में गढ़ में रूप बदलकर टहनते हुए जलाशयों में छीता ने
तथा अपहरण कर ले जाने पर राजाराम पर जलाशयों ने दयावीरता दिखाई
है ^५ । इसी तरह "कथा पुहुपवरिणा" में परीष्कारी पुरुषोत्तम का पिछड़ा लेकर
उसकी माता के पास जाना तथा "कथा सुभटराड" में नायक सुभटराड द्वारा
उदीची, जवाची एवं प्रतीची राजाओं की लड़कियों की रक्षा करना भी दया
वीरता ही है । सतपरक प्रेमात्मान "कथा सतवती", "कथा कुतवती" ^६, "कथा
सीतवती", "कथा निरमल" तथा "कथा मधुकरमातली" ^७ में नायिकाओं के सतीत्व-
रक्षा में धर्म वीरता है । "कथा पुहुपवरिणा" ^८ जैसे कुछ काव्यों में पुत्रोत्पत्ति पर

१- चौ०- २१४ से २२१ तक ।

२- चौ०- ९१ तथा ९२ ।

३- चौ०- ८१ से ८७ तक ।

४- चौ०- ४ तथा ५ ।

५- चौ०- २१ तथा १५ ।

मैं तुं छाड़्यो जाहि पराड । भली नाहि जी सुनि है राड ॥

+ + +
दोहा- मैं तुहि दीनी दान, ज्यों हों बहु मागत जाहि ।

जब तुं बेरी छाड़ि कै, बेगी बीती जाहि ॥

६- बिह तन लगत हार की मार । मुख टूटन लगे अपार ॥

मारत मारत तौ लग मार्यो । बी लग तन तैं जीव निकार्यो ॥४३॥

७- मालति भाष्यो राजा राड । भैं हार सके नहीं ताड ॥

रही सत मैं जब तैं जरमी । तूं कत मोकी छुनै जरमी ॥११॥

८- चौ०- १९ से २२ तक ।

कुछ में विवाहोपरान्त तथा कुछ में स्वदेश वापस जाने पर राजाजी ने दान वीरता दिखाई है ।

इस तरह कवि के प्रेमाख्यानों में गुंगार रस के बाद अन्य रसों में वीर का ही स्थान है । इसका मूल कारण रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव तथा कथाओं का ऐतिहासिक भुकाव रहा है । यहाँ प्रश्न यह है कि काव्यशास्त्र की दृष्टि से गुंगार और वीर दोनों विरोधी रसों का एक साथ चित्रण कहाँ तक संगत है ? वास्तव में रस के विरोध का प्रश्न तब उठता है जब दोनों रसों के जालंबन एक ही हों, किन्तु यदि जालंबन दूसरे हों तो दोनों रसों का साथ वर्णन हो सकता है । इन काव्यों में गुंगार रस की जालंबन नायिकाएँ हैं और वीररस के विरोधी लोग या नायक के शत्रु । इसलिए इनमें विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता ।

करुणा रस:-

इसका स्थायी भाव शोक है । यह बड़ा कामल रस है इसमें सहानुभूति एवं सहृदयता की मात्रा अधिक होती है । इसका चित्रण इन प्रेमाख्यानों में प्रायः गुंगार और नात्सल्य के झोड़ में हुआ है । इसका प्रसंग अशिक्षा नायक के नायिका के प्राप्त हुये हेतु पर से निकलते समय उसके माता-पिता या भाई बन्धु के रोने में, नायिका के बिदा होते समय, नौका दुर्घटना पर मित्र-वियोग तथा द्रव्यादिनाश पर तथा नायक -नायिका के विरवियोग पर आया है ।

"कथा रतनम्वरी"^१, "कथा रतनावती"^२ आदि में नायकों की नायिकाओं की प्राप्ति हेतु जाते समय माता-पिता के रुदन में, "कथा कामरानी वा पीतमदास"^३ में राजा राज हरिदास द्वारा कामरानी के ले जाते समय कामरानी

१- रानी देखा राज को रोई । राज हाव बसुवन सी पीई ॥

भोजन पान्यो नाहिन भावै । बसुर पहर निद्र नीद न आवै ॥११५॥

२- वी०- २९ ।

३- वी० - ५ ।

के रणदन में, "कथा जरदसेर पतिसाह"^१ में राजा जरदसेर का गिकार के समय मृग-
शावकों को देखकर संतान ही जाता से रणदन में, "कथा रतनावती"^२ में नौका दुर्घटना
में भिन्न उलम तथा पवास हवार सेना और द्रव्यनाश पर मदिमोहन के रणदन में,
"कथा रतनमंजरी"^३ में रतनमंजरी के विदा होते समय रतनमंजरी तथा मणिकों के रणदन
में तथा "प्रियलैमजनु"^४ तथा "कथानन्दमंजरी"^५ में नायक-नायिका के मृत्यु पर करुणा
रस की निष्पत्ति हुई है। मजनु के न मानने पर उनके पिता के रणदन तथा पिता की
मृत्यु पर मजनु के रणदन में भी करुणा रस का विषय हुआ है^६। "कथा रतनावती"
में राजा सुरजमत एवं देवताओं के मुँह में कवि करुणा रस का स्पष्ट उल्लेख किया है-

कोऊ दंततिनीधरि पाये । राजा के पादन तर जाये ॥

तिनकी राजा देखि दयायी । करुणारस तिहकिन उपवायी ॥४४॥

वात्सल्य रस:-

अपनी संतान या उसी श्रेणी के अन्य प्रिय-सम्बन्धी से जो स्नेह होता है
उसे वात्सल्य कहते हैं। इसमें भी रतिभाव ही दूर से भाँकता समझ पड़ता है।

१- देखि दयापतिसाह दयाये । कोऊ नैन नीर भरि जाये ॥

पातिसाह की कष्ट सुधि नाहि । प्रिय भाजि पैठे बन माहि ॥

ताही मैं मंत्री दिगु जायी । पातिसाह तब रोवत पायी ॥१०॥

२- पौ०- १५ से २० तक ।

३- पौ०- २५० ।

४- पौ०- ६४ से ६० तक ।

सबै कुटुंब सुनि रोवत जायी । हितुबनि मिति मिलि सोर मयायी^७ ॥

माता कैतै गरै लगाये । कोऊ गाढन नाहिन पाये ॥

+ + +

पसु ठाढे रोवहिं बहुगौर । मानस निकट न जावहि गौर ॥६५॥

५- पौ०- १४५ से १४६ तक ।

६- पौ०- ४८ तथा ५१ ।

इसको रतिभाव का रूपरूप कह सकते हैं । "कथा रतनावती", "कथा रतन-मंजरी", "कथा ककुतावती", "कथा नन्दमर्षती", "प्रियतीक्ष्णमर्षती", "कथा पुष्प-तरिका" आदि में नायक-नायिकाओं के पैदा होने पर माता-पिता के जामोद-प्रमोद में, इनमें प्रेम के नायिका के सम माता-पिता की गहनभक्ति में तथा नायक के नायिका की प्राप्ति हेतु जाते समय माता-पिता या स्वयं की भाव विह्वलता में वात्सल्य रस मिलता है । उसके अतिरिक्त "कथा नन्दम-र्षती"^१ में ब्राह्मणी मौसी का दमर्षती की पुत्रीवत् रहने तथा विदा करने, "कथा ककुतावती"^२ में माती तथा मातुल द्वारा नायक सरबंगी की पुत्रवत् समझने, "कथा रतनावती"^३ में वंश में नायक-नायिका के स्वदेश लौटने पर माता-पिता के भाव विह्वलता, "कथा मधुकरमालती"^४ में वंश में हार्दक रसीद द्वारा नायक-नायिका पुन एवं पुत्रीवत् विवाहसम्पन्न करने तथा "कथा वरदक्षर पतिसाह"^५ में राजा वरदक्षर के मृग शावकों की देखकर संतान के प्रति सहृदयता में वात्सल्य रस का चित्रण हुआ है ।

बीभत्सरस:-

इसका स्वाधी भाव दुःखसा है । कवि "कथा रतनावती" में राजा सूरजमल तथा देवी के युद्ध में बीभत्स रस की चर्चा की है-

कहुवां जाव भक भक बीली । कहं सीस पुईपी पर डोतैं ॥

पत्नी जरन करन हवै गई । रणहर परयो जीवन पर कई ॥

रतनारे रतनारे बई । बीभत्स रस पाही सीं कई ॥१४३॥

१- चौ०- ९१, ९२ तथा १०० से ११० तक ।

२- चौ०- २२ ।

३- चौ०- १०० तथा १०१ ।

४- चौ०- २१ ।

५- चौ०-१८: पतिसाह प्रियन की बात । एक एक मंत्री समझात ॥

तकूनी मोह उनकी पैभारी । जगु में संतति नैसी प्यारी ॥

इसके अतिरिक्त "ग्रंथलैलमयनू"^१ में लैला के पिता तथा नौफत के मुद,
"कया कौतूहली"^२ में नामक सरबंगी तथा परिचय दिता के राजा के मुद और
"कया इज्जत देवन्दे"^३ तथा "कया कतदम्वती"^४ में इमजः देवन्दे और कत-दम-
वती के विरह में बीभत्स रस का वर्णन मिलता है ।

रौद्र रस:-

इस रस का स्थायी भाव क्रोध है । क्रोध से विवेकहीनता आ जाती
है । "ग्रंथलैलमयनू" में मयनू के पिता द्वारा लैला के मांगने पर लैला के पिता के
क्रोध तथा नौफत से मुद के समय नौफत के सतकार^५, "कया कत्कावती" में
राजा भरथ द्वारा अपने पुत्र परमरूप के साथ कत्कावती के पाणिग्रहण की
वर्षा करने पर मुद के पूर्व राजासिंह के क्रोध^६, "कया मकुकरमावती" में मावती के
प्रेम न करने पर एक पतिसाह के क्रोध^७, "कया जरदलेर पतिसाह" में पटरानी

१- चौ०-१८: दहू बोर करवार कटारी । करै मेक तैं दोह दुपारी ॥

+ + +

सुभट सीस धरनी पर डोसै । मार मार धर बिनु मुण बोसै ॥

जरमन धरा रत बहु छवि पाई । मानहु नदी सरग्वती जाई ॥

+ + +

भारी भरी जुध बमसान । परयो दहूधा कीचक घान ॥

सनमुण जावध केते जाये । भूयो सुभट सुनाहिं जवाये ॥

२- सबैयाबीणा- ११ ।

३- चौ०- १९ से ४२ तक ।

४- चौ०-११ ।

५- चौ०- २६:- अपने पशु की से कै जाहु । जाये करन कौन की व्याहु ॥

बी बहुरीं बहु बात बसाई । तौ हम तुम मै होइ सराई ॥

६- चौ०-१७ ।

७-जाह कही यौ भरथ सी, फिरि अपने पर जाहि ॥

कै सरिसे की ठाट ठाटि, यौ व्याहन की जाहि ॥

८- मेक बोस पतिसाहि रिसावौ । मावति की मारन कीं पावौ ॥

हाथ माहि नागी करवार । चाहत काटौ नारी नार ॥८॥

के प्रतिशोध की भावना से विजाक देने के राज्य के उद्घाटन पर राजा भरदसेर के क्रोध^१, सतपरक प्रेमाख्यान "कवासतबंती", "कवासी तबंती" तथा "कवाकुतबंती" में कुटुम्बों के व्यवहार पर नायिकाओं के क्रोध, तथा दानव, राक्षस, देव आदि से युद्ध के पूर्व नायक के क्रोध में रौद्र रस का वर्णन हुआ है।

रौद्र और तीर रस में बालंबन, उदीपन और संवारी भावों की पर्याप्त समानता होने पर भी दोनों में अन्तर है। दोनों अलग-अलग स्वतंत्र रस हैं। एक का स्थायीभाव उत्साह तो दूसरे का क्रोध है। एक का सम्बन्ध भविष्य से है तो दूसरे का वर्तमान से। एक में उदारता की मात्रा रहती है तो दूसरे में नहीं।

भयानक रस:-

इसका स्थायीभाव भय है। "कवा नतदमर्बती"^२ में स्वर्णर में देव-ताओं द्वारा नल के रूप धारण करने पर दमर्बती को माला पहनाते समय वास्तविक नल के पहचानने, "कवा रतनमर्बरी"^३ में मधुसूदन के जाने पर नायिका रतनमर्बरी के क्रोध, "गंवलेलेमवन्नु"^४ में तैता के विलाप में भय की व्यंजना हुई है। "कवानतदमर्बती", "कवा तमीम जंसारी", "कवा बतुकिवा गिरही" आदि में गर्म, अजगर, हाथी, आदि जंगली जानवरों तथा भयानक रयानों द्वारा भय की व्यंजना में भयानक रस का वर्णन हुआ है। "गंवलेलेमवन्नु"^५ तथा "कवानतदमर्बती"^६ में जंगली जानवर भय के कारण न चक्कर सहामता भी करते हैं।

१- चौ०- ११ ।

२- चौ०- ६० तथा ६१ ।

३- चौ०- ११६ ।

४- बड़ी रैन लागत है भारी । मन मन तारे नितवत नारी ॥

कौन काब से उवाँन भान । करता काहि न करत बिहान ॥

अवहुँ भान न निकसन भवौ । जानत राह तीस उहि गयौ ॥

कुछटात आसे मंवारी । सख सुनावत नाही नारी ॥

कारे नाम बिरिवा भवौ । बोलन कौ जय माहि न रचौ ॥६१॥

५- चौ०- ५२ ।

६- चौ०- ८५ तथा ९५ से ९८ तक ।

अद्भुत रस:-

इसका स्वाधी भाव आश्चर्य है । विविध वस्तु का घटना के देखने या सुनने से आश्चर्य का परिपोष होता है । "कथा नन्दमयतीर्णमें" सर्व्वर में देवताओं के नल वेश धारण करके जाते समय उनके विमिश्र पूर्ण वातावरण में तथा उनके पुनः नल से देवता रूप धारण करने में अद्भुत रस की ज्वलना हुई है^१ । "कथारतनावती" में नायक महिमोहन तथा मित्र उन्म के अलग हो जाने पर दोनों का अलग-अलग अनेक कुतूहल पूर्ण दृश्यों के देखने^२ तथा "कथा बसुकिमा बिरही" और "कथा तबीय नन्सारी" में भी नायकों को जाते समय अनेक आश्चर्य पूर्ण दृश्यों में अद्भुत रस की ज्वलना मिलती है । "कथाकल्पावती"^३ में राजा सिंह तथा परमरूप के बुढ़ के पूर्व सेना के दौड़-दूध के समय आश्चर्य के वातावरण में अद्भुत रस है । "कथा रतनावती" में ती देवों एवं सुरजमत के बुढ़ के पूर्व प्रारम्भ में कवि ने अद्भुत रस स्वयं स्वीकार किया है ।

जैसी होइ रह्यो अखियार दिन हुये ज्यौ दिन उनिहार ॥
कुछ नैननि सौं तनवी न जाई । नभ घर जीवि धुरि ही छाई ॥
दिन थोस मैं अंतर नाहीं । अद्भुत रस समझी जिय मांहीं ॥१४३॥

शान्त रस:-

इस रस का स्वाधी भाव निर्वेद या शम है । कवि के लगभग समस्त प्रेमास्थानों में कथा के प्रारम्भ में पूर्व स्तुति तथा कथा के अंत नायक-नायिका के सानंद कात्मपापन करने में शान्त रस की ज्वलना हुई है । "कथा नन्दमयती"^४ में

१- चौ० - ५६ से ५९ तक ।

२- चौ० ५१ से ७१ तक तथा ९९ से १२६ तक ।

कौतिल्य देणो कुंवर जेतै सब कहे न जात ।

फिर्यो जवभी देण ती महिमोहन दिनरात ॥

३- चौ० - १९ ।

४- दमयंती पति हेतु हैं जरत न मोर्यो अंग ।

शारस की जोरी जियै, जरे पैर ही संग ॥

नल की मृत्यु पर दम्पती के सती होने तथा "ग्रीवलेलेमनू"^१ में दोनों के "वैकुण्ठ" में मिलने में शान्त रस मिलता है। "कथा चन्द्रसेन राधा लीलानिधान"^२ में राधाचन्द्रसेन, "कथाकन्दर"^३ में पातिसाह तथा "बाँदी नागा" में मिर्चा के पश्चात्ताप में शान्त रस की व्यवस्था हुई है। "कथा रतनावती" में राधा सूरजमल मुद्र में देवों से जीतकर शान्त रस का अनुभव करता है -

कुन्त्यो राधा तन न समाप्त ।

पाती की जानहु रसु सांत ॥१४४॥

हास्य रस :

इस रस का स्वामी भाव हास है। कवि के प्रेमाख्यानों में इसका स्थल नगण्य है। केवल "कथारतनावती" में नायक महिमोहन द्वारा रतनावती के प्रति अपने प्रेम प्रसंग बताने पर पद्मिनी के मुस्कान^४ तथा देवों के मुद्र से राधा सूरजमल के हँसने^५ में हास्य रस की व्यवस्था हुई है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भावाभिव्यक्ति रस रूप में ही सहृदयों का आस्वाद्य होती है। भावानुभाव तथा संवारी भावों से इसकी निष्पत्ति होती है। ये प्रेमाख्यान चरित्र प्रधान होते हुए भी सुंगार रस प्रधान प्रेम-काव्य हैं। रस परिष्कार की दृष्टि से सुंगार रस के अतिरिक्त अन्य रस भी गौण रूप में इसी के अन्तर्गत समाविष्ट हुए हैं। ये रस काव्यशास्त्र की दृष्टि से पूर्ण तरे नहीं उतरते इसीलिए कहीं-कहीं पर रसाभाव भी हो जाना स्वाभाविक है।

१- वी०- ६८ ।

२- वी०- १६ ।

३- वी०- ९ ।

४- रतनावती की मुनि के नाम । मुस्कानी पदमनि अभिराम ॥८२॥

५- जबहि बसे दुर्जन पगछाडि । भावे नाहि साव की जाडि ॥

राधा सूरज हँसे हुवास । तबहि भग्वी निहने रसुहास ॥१४३॥

प्रध्याय-६

चरित्र और स्वभाव-विमर्श

प्रेमाख्यानों के कथा पात्रों का स्वरूप:-

प्रेमाख्यानों में प्रेम ही सर्वस्व है। प्रेमियों तथा अन्य सभी पात्रों के चरित्र का विकास उसी पृष्ठभूमि में किया गया है। सभी पात्र उसी केन्द्र-बिन्दु पर अपनी परिधि बनाते हैं। वे सभी पात्र एकत्र और सपाट होते हैं जिससे वे एक समान तथा एक ही स्तर पर व्यवहार करते जान पड़ते हैं। उनमें प्राकृतिक व्यापारों तक का हाथ दिखाई पड़ता है¹। संस्कृत के प्रबन्ध-काव्यों की भांति वे अपने निर्धारित ग्राहकों का पालन करते एक सदि में होते जैसे विभिन्न रूप हैं। उनकी रगति और अरगति, प्रेम और वृणा, प्रवृत्ति और निवृत्ति के विषय निश्चित होते हैं जिससे उनके सामने उनका पथ स्पष्ट रहता है। वे हाँ, नहीं की दुविधा के बीच कहीं नहीं फँदते जिससे उनके बीच मनोवैज्ञानिक संघर्ष कभी नहीं पैदा होता।

चरित्रों की एकरूपता के निर्वाह के लिए कवि को प्रत्येक पात्र के चरित्र और उनके विभिन्न कार्यों से उत्पन्न समताओं और विषमताओं के मध्य उत्थान-पतन प्रदर्शित करने में, जहाँ एक ओर कथा में पात्रों की संगति बैठाने का प्रयास करना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर उन्हें अपनी निश्चित ग्राहकों की सिद्धि भी करनी पड़ती है। इस तरह पात्र की परिस्थिति और उसके चरित्र में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। कभी उसका चरित्र विभिन्न घटनाओं को उभाड़ता है तो कभी उसके जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ ही उसके चरित्र को निखारती हैं। कवि अपने प्रेमाख्यानों में घटनाओं का समावेश केवल कथानक को गति देने मात्र के लिए नहीं, बल्कि पात्रों के चरित्र के विकास तथा उनकी विविध अवस्थाओं के उद्घाटन के लिए भी करता है। वह पात्रों को घटना-वर्कों में डाल कर विभिन्न परिस्थितियों द्वारा उनके चरित्र का विकास करता है।

वस्तुतः प्रेमाख्यानों के सारे कथानक में चरित्रों का जान बिछा रहता है कथानक की समस्त घटनाएँ नवीन चरित्रों को लेकर जाती हैं इसलिए वे सारे के सारे कथानक घटना-प्रवाह न होकर चरित्र-प्रधान हैं। इन्हीं चरित्रों के स्वरूप

के अनुसार ही इन कथानकों का विकास होता है चाहे वे बरिज सहायक हों या नायक--दोनों कथानक को गति देते हैं । नायक एवं नायिका के प्रेम-मिलन तथा प्रेम-मिलन की अवस्था में इन कथानकों का प्रारम्भ तथा अंत होता है ।

इस तरह घटनाओं एवं कथानकों की एक सूचना के निम्न आदर्श पालन करने से बरिजों का उतना स्वाभाविक एवं स्वतंत्र विकास नहीं हो पाया है, विभिन्न पात्र उनके समीप नहीं दिखाई पड़ते । उनके ऊपर आदर्श का पर्दा लगा रहने से तामी-परम्परा का पालन करते हुए दीखते हैं । उनके विकास का पूरा अवसर नहीं मिल पाता । वे प्रेमी या साधक रूप में ही एक आदर्श से घिरे सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत अपना कार्य-कलाप प्रदर्शित करके रह जाते हैं । निर्ममणों के कारण उनका बर्णन दबा हुआ-सा रहता है । "कालदास में, प्रेमकथाओं के अन्तर्गत उनके नायकों एवं नायिकाओं के जीवन का केवल उतना ही वर्ण प्रदर्शित किया गया है जितना उनके प्रेम-व्यापारों से सम्बन्ध रहता है । वे रचनाएँ मानव जीवन के पूर्ण दायों के विमर्श का ऐसा प्रयास नहीं किया करतीं, ऐसा महाकाव्य के संबंध में कहा जा सकता है । उनके अन्य पात्रों में हमें कभी-कभी स्वभाव वैविध्य की भी झलक दीख पड़ती है, किन्तु उसके विकास को पूरा अवसर नहीं दिया जाता, जिस कारण उनका भी क्षेत्र प्रायः सीमित हो जाता है । प्रेम के क्षेत्र से अन्यत्र कहीं मानव जीवन की सार्थकता ही नहीं रह जाती ।"

वहाँ प्रेमात्मानों के विविध बरिजों में परम्परागत एक-रूपता की प्रवृत्ति मिलती है, वहाँ इन प्रेमात्मानों की विभिन्न कोटियों--दाम्पत्यपरक, स्वच्छंदतापरक, सतपरक तथा अध्यात्मपरक में स्वभाव-विविधता भी मिलती है । नायक-नायिका दोनों कथानक में प्रारम्भ से अंत तक रहते हैं । नायक राजकुमार, राजा या सामान्य जाति का व्यक्ति हुआ करता है तो नायिका राजकुमारी या सामान्य जाति की नारी । नायक राजकुमार होने के नाते साहसी हुआ करता है । उसके अन्दर सर्वस्व-त्याग की भावना बनी रहती है । वह अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अनेक विकट परिस्थितियों को भेसता है, पर अन्य

नामक इतना नहीं कर पाते । इसी तरह नायिकाएँ भी विविध स्वभाव की हुजा करती हैं । उनके अतिरिक्त अन्य उनके प्रधान एवं गौण पात्रों की अवतारणा होती है । गौण पात्रों में अधिकतर काल्पनिक और कुछ ऐतिहासिक पात्र होते हैं । अलाउद्दीन, राघवसेतन, हार्दिकजीद, इबाज़ाज़िज़ आदि ऐसे ही ऐतिहासिक पात्र हैं । भारतीय चिंतनप्रणाली तथा कर्मवाद के कारण कहानियों में ऐतिहासिक की अपेक्षा काल्पनिक पात्र अधिक उपयुक्त और मनोरंजन समर्थ पाते हैं, पर इनमें आधुनिक युग की वैज्ञानिक बुद्धि का विकास नहीं मिलता । काल्पनिक पात्रों में तौकिक तथा अतौकिक दोनों प्रकार के पात्रों के व्यापारों का विविध सम्मिश्रण रहता है । मानवीय प्रेम-व्यापार के विभिन्न घटनाओं में ये अतौकिक - पात्र --देवी-देवता या सिद्ध-पुराण आदि और मानवैतर तौकिक पात्र --दानव, राक्षस, भूत-प्रेत, अप्सराएँ-परिचर्या, यक्ष-यक्षी या अन्य जंगली जानवर आदि कभी संवेदना व्यक्त करते और सहयोग प्रदान करते, तो कभी बाधा पहुँचाते हैं । मानवैतर प्राणियों का मनुष्यवत् चित्रण तक मिलता है । यथा- कथा कबलावुली, पद्मावत आदि में तोता पक्ष या सँदेश-वाहन का कार्य करते हैं । नायक को पक्षी उड़ा ले जाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देते हैं । इन चेतन के अतिरिक्त समुद्र या पवन जैसे अवचेतन का भी सहयोग उपलब्ध होता है । गौण पात्रों में अन्य पात्र जो प्रेमियों के निकट रहकर ब्यावहार उनकी सहायता प्रदान करके उन्हें सफल बनाने की चिन्ता किया करते हैं, उन्हें सभी कवियों ने स्वभावतः सहृदय चित्रित किया है । यथा-बृद्ध-पुराण, ब्राह्मण, नायक के मित्र, मंत्री-पुत्र, पणिक, माली, मालिन, सखियाँ, दासियाँ, चेरियाँ आदि । जो शत्रु या बाधक चरित्र हैं वे बहुधा छल-कपट, आह्वानादि का आश्रय लिया करते हैं, किन्तु अन्त तक अपने प्रयास में विफल रहते हैं । इन प्रेमाख्यानों में सभी चर-अचर एवं दिव्य-अदिव्य तत्वों का समावेश परम्परा से ही जुड़े-भिरे मिलते रहे हैं ।

कवि नायक और नायिका के चित्रांकन के लिए जिस समय, जिस पात्र की, जिसनी आवश्यकता सम्पन्नता है उस समय, उस पात्र की, उसनी देर के लिए आवश्यकतानुसार ब्यावस्थान अवतारणा करता जाता है । कवि को पात्रों के बूझने में या उनके चरित्र में कोई कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता । वह तो "मानी-दादी" की कहानी की भाँति नवीन घटनाओं के साथ पात्रों

को कह जीड़ना जाता है । प्रेमगाथाओं के ऐसे विविध पात्रों की संख्या हमें कभी-कभी उद्दिग्ध कर देती है और हमारा जी उनमें तक लग जाता है ।—
 इनके एक ही समान अन्य अनेक प्रेम कथानकों में भी पाये जाने के कारण,
 हममें इन्हें बराबर स्वाभाविक मान लेने की प्रवृत्ति भी हो जाया करती है—
 जो रचना-कौशल की गुण-दोष परीक्षा की दृष्टि से कभी अनुचित भी नहीं
 कहा जा सकता^१ ।" ये सभी पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रेम का ही
 विभिन्न रूप प्रदर्शित करते हैं और इसी प्रेम या अनुलग्न से ही इनके चरित्रों में
 संघर्ष का विकास होता है जिससे कथानक की बड़ाया मिलता है ।

प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त समस्त चरित्र प्रायः भारतीय हैं । हार्दिक-
 रशीद, स्वाभाविक आदि जैसे कुछ अभावीय चरित्र भी मिलते हैं । इनका संबंध
 ठेठ इस्लामी परम्परा से जुड़ा लगने पर भी इनकी मनोवृत्ति अधिक भिन्न नहीं
 लगती । इस विभिन्न प्रयुक्त पात्रों के स्वरूप तथा उनकी चारित्रिक विशेषता-
 त्वाओं का सविस्तार विवेचन आगे किया गया है ।

प्रेमाख्यानों में चरित्रों का महत्व:-

प्रबन्ध-काव्यों में चरित्रों का बड़ा महत्व है । इनमें कथानक की
 विभिन्न घटनाओं के बीच चरित्रों का जाल-सा बिछा रहता है । कवि के लिए
 भी कथानक की विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों के मध्य विभिन्न चरित्रों
 की संगति बैठना और साथ ही एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति तक पहुँचना कुछ
 सरल काम नहीं होता है और इसी समय पाठकों को भी कवि की भावनाओं,
 उसकी कुशलता, व्यक्तित्व तथा कथानक की स्वाभाविकता आदि पर विचार
 करने का अवसर प्राप्त होता है । प्रेमाख्यानों में पात्रों की विविधता में मानवीय
 पात्रों के साथ अलौकिक तथा अनुप्रेत जैसे पात्रों का भी पर्याप्तमान महत्व
 होता है । नायक-नायिका के लक्ष्य की पूर्ति के लिए ये सभी उनके विभिन्न
 परिस्थितियों में चाहे सहायक रूप में हों या बाधक ही, कथानक के विकास
 की दृष्टि से उन सबका उतना ही महत्व होता है । इनके प्रत्यक्ष या परोक्ष

रूप से कथानक को सदा विकास मिलता है, बल मिलता है, यथारसवान मीठ जाता है, निवार जाता है, परिवर्तन जाता है तथा नवीन घटनाओं की उद्भावना होती है। इस चरित्रों से ही तो नायक-नायिकाओं के वास्तविक जीवन और प्रेम की अग्नि परीक्षा होती है जिससे उनके चरित्रों में निवार जाता है।

प्रेमास्थानों के इस विभिन्न कोटियों का जेब बहुत कुछ इन पात्रों के विभिन्न क्रिया-कलाप ही हैं। जैसे चरित्र होते हैं जैसे ही कथानकों में घटनाओं का निर्माण तथा कथानकों का स्वरूप बनता है। सारे के सारे कथानकों में घटनाओं की उतनी प्रधानता नहीं होती जितनी इन चरित्रों की। इन कथानकों में नवीन पात्रों के बीच-बीच में जाते रहने तथा नवीन जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के घटित होते रहने से समस्त कथानक में रसात्मकता जाती रहती है। इस तरह इन प्रेमास्थानों में चरित्रों, घटनाओं तथा कथानक का बड़ा अन्वोन्याश्रित संबंध है। कथानक तो वास्तव में चरित्रों द्वारा पिरोई हुई विभिन्न घटनाओं की माला जैसा होता है और इन चरित्रों द्वारा विभिन्न घटनाओं के विकराय से वह एक चारस मैदान जैसा लगता है। ये चरित्र वहाँ घटनाओं द्वारा कथानक को विकास प्रदान करते हैं वही कथानक तथा घटनाओं द्वारा स्वयं विकास पाते हैं। भारतीय तथा अभारतीय और ऐतिहासिक तथा कल्पित आदि विभिन्न वर्गों के पात्रों के प्रयोग से चरित्र-सम्बन्धी अनेक संस्कृतियों का समन्वय होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से भी इन चरित्रों का महत्व है।

पात्रों का वर्गीकरण:-

चरित्र-चित्रण की सरलता के लिए पात्रों का वर्गीकरण उनके

१- "इन कथा ग्रंथों में अनेक प्रकार के पात्रों का, उनके आचार-व्यवहार का, उनकी विचार परम्परा का और उनके बहुमुखी जीवन का चित्र होने से तत्कालीन समाज एवं तत्कालीन संस्कृति का आभास मिल जाता है और तत्कालीन समाज के इतिहास की रूपरेखा पर चटकिविट्ट प्रकाश भी पड़ जाता है। इस दृष्टि से इस कथा-साहित्य का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व भी है।"

प्रो० हरिवंश कोष्ठ - अग्रज - साहित्य, पृ० ३४१, सं० २०११।

आकार-प्रकार, वेश-भूषण, देश, काल, स्वरूप, कथोपक्रम, घटना, कथानक, चरित्र या स्वभाव आदि कई दृष्टियों से किया जाता है। प्रेमात्मक कान्धों में पात्रों की विविधता होती है। वे विभिन्न पात्र अपने स्वभाव के अनुसार विभिन्न जायवर्ण करते विविध होते हैं इसलिए उनके चरित्रों के पूर्णविवरण के लिए यहाँ हम वर्गीकरण के उचित अन्य किसी आधार को न अपनाकर उनके स्वभावों के अनुसार उनका वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं। स्वभाव के अनुसार वे पात्र दो वर्गों में बँटते हैं:-

(१) अलौकिक पात्र (२) लौकिक पात्र।

अलौकिक पात्रों के अन्तर्गत देवी-देवता तथा सिद्ध - पुराण या देवी-गुण-सम्पन्न पात्रों के चरित्रिक विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। यद्यपि इनके जागमग से हम यह अनुभव नहीं करते हैं कि इनके द्वारा कथानक में कोई सुविधा या प्रकाश का वातावरण आ जाता है फिर भी वे कथानक के विकास में पर्याप्त योग देते हैं।

लौकिक पात्र दो वर्गों में बँटते हैं:-

(१) मानवीय तथा (२) मानवैतर। मानवीय-पात्रों के पुनः दो रूप होते हैं - (क) पुराण-पात्र तथा (ख) स्त्री-पात्र। फिर इनके अन्तर्गत प्रधान तथा गौण - दोनों प्रकार के पात्रों का पुनः-पुनः विवेचन किया गया है।

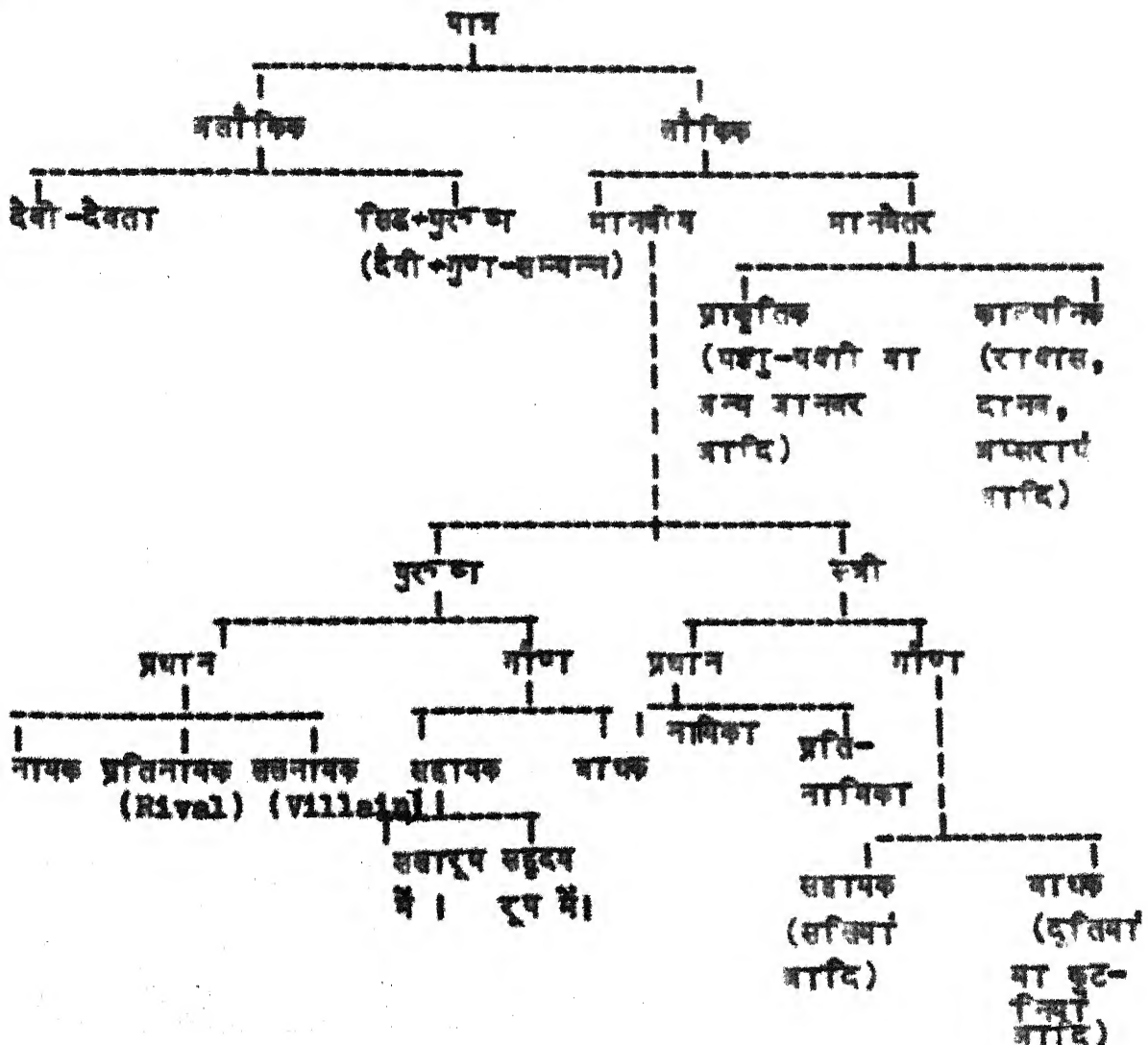
प्रधान पात्रों के चरित्रों के विकास में कथानक मुख्य रूप से बँधा रहता है। वे पात्र पात्र कथानक को गति देते हैं और कथानक द्वारा स्वयं गति पाते हैं। कथानक में प्रारम्भ से अंत तक विद्यमान रहते हैं। इनके अन्तर्गत नायक-नायिका, प्रतिनायक-प्रतिनायिका तथा सहायक का अध्ययन किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आनन्द ने राजस्थानी प्रभाव से अपने समस्त प्रेमात्मकों में प्रतिनायिकाओं का उपयोग बहुत कम तथा सहायिकाओं का उपयोग कहीं भी नहीं किया है।

गौण पात्रों के अन्तर्गत नायक के सहायक सहायक सहृदय तथा बाधक पात्र और नायिका की सहायक सखियाँ, नेरियाँ, दासियाँ, मातुलिन तथा बाधक दूतियाँ या कुटुम्बियाँ आदि का विवेचन किया गया है। कथा का मुख्य

सम्बन्ध इन गीण पात्रों से नहीं होता है। कथानों में इनका प्रवेश केवल साधन रूप में होता है। वे कथानक को गति देने, इसमें मोड़ लाने, प्रधान पात्रों के चरित्रों को प्रकाश में लाने, वातावरण को सृष्टि करने तथा परिवर्तन आदि कार्यों के लिए कल्पित किए जाते हैं। प्रेमाख्यानों में कथा के प्रारम्भ तथा अंत में इनका पता नहीं चलता। वे किसी बटना विलोका के लिए ही जाते हैं। इनका जीवन अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरे के लिए होता है, पर इनकी उपादेयता प्रेमाख्यानक-साहित्य में कम नहीं है।

मानवैतर पात्रों में पशु-पक्षी वा अन्य जंगली जानवर और राजास-मानव, भूत-प्रेत तथा अप्सराओं आदि का अध्ययन किया गया है। प्रायः ये पात्र समस्त प्रेमाख्यानक-साहित्य में विद्यमान मिलते हैं।

उपर्युक्त समस्त पात्रों के वर्गीकरण की यह रूप-रेखा दी जा सकती है:-



यहाँ समस्त पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं तथा उनका अन्य सूपी एवं असूपी पात्रों के चरित्रों से तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है ।

देवी-देवता:-

इसमें सुरपति, गरुड़, व्यावाकिष्ठ, शिव-पार्वती तथा अन्य देव जाते हैं । ये वरदान देकर निम्नसंतान राजाओं को संतान देने, अन्य पात्रों या नायकों की परीक्षा लेने, प्रेम-पथ के पथिकों की सहायता करने तथा कभी-कभी नायक को कष्ट देते हुए विनित किए गये हैं ।

"कथाकलावती" में वितासपुर के राजा सिंहरव की सुरपति के वरदान से रानी कलावती के पुत्र पुरन्दर पैदा हुआ^१। जोकि कथा का नायक हुआ । इसी तरह अन्य सूपी तथा असूपी प्रेमात्मानों में "पुहुपावती" में शिव के वरदान से नायक राजकुंवर, "हंसवाहिर" में व्यावाकिष्ठ के वरदान से नायक हंस, "इन्द्रावती" में शिव की वाराधना से नायिका इन्द्रावती तथा "विजावती" में वरदान से ही नायक सुवान उत्पन्न हुए हैं । वरदान से उत्पन्न संतानें प्रायः इन कथाओं में नायक या नायिका रूप में विनित हुए हैं ।

"कथा नलदम्वती" में इन्द्र, अग्नि, वन, वरुणा, आदि नारों देवता नारद के कहने पर नल का रूपधारण कर स्वर्ग में छलपूर्वक दम्वती की परीक्षा लेते हैं और बाद में देवी द्वारा जाकाशवाणी होती है^२। इसी तरह "पद्मावत" में पार्वती ने सिंहलद्वीप में रत्नसेन की प्रेम परीक्षा ली है^३। "पुहुपावती" के नायक राजकुंवर की नारायण में तथा "विजावती" के चरणीदास

१- बी०- ५ ।

२- बी०- ५५ से ५९ तक ।

३- सुनहुं कुंवर भी लो बिक बाता । जस मोहि रंग न जीरहि राता ॥

जीर विधि रूप दीन्ह है तोका । उठा लो सबद जाह सिव लोका ॥

तब ही ली यह इन्द्र पठाई । गई पदमिनी तैं अपछरि पाई ॥

सम्पा० - (मन्यु श्रुत - जायसी श्रृंखावली - ब्रं०-२२, उ०-८१, लं०-२००८)

की शिव ने परीक्षा ली है ।

इन बलीकिक पाशों का तीसरा कार्य प्रेम - पंग के पथिकों की सहायता करना है । "कथा कवतावती" में राजकुंवर इन्दुवदन गङ्गा की कुमा से रूपनगर पहुँचकर कवतावती को प्राप्त करता है^१। "कथा रतनावती" में वंगल में भटकता हुआ राजकुंवर महिमोहन स्वाजासिंह के उचित निर्देशन से भूपाल-विषी के बाग में पहुँचता है^२, वहाँ बाग से एक देव उड़ाकर रूपपुरी में रूपरभा के पास पहुँचा देता है जहाँ से वह रतनावती को प्राप्त करने में समर्थ होता है^३। "कथा बलुकिषा विरही" में नायक बलुकिषा वंत में स्वाजासिंह की सहायता से नवी की प्राप्त करता है और बाद में उन्हीं के कहने से एक पक्षी उड़ाकर उसे उसके घर पहुँचा देता है^४। इसी तरह "कथा मावत" में जब रतनसेन सिंहलगढ़ के पास किंकराक्ष-विमूढ़ होकर वल भरने के लिए तैयार होता है तो शिव जाकर सिद्धि गुटिका देते हैं और सिंहल में घुसने का मार्ग बताते हैं । गंधर्वसेन द्वारा शूली देने की अवस्था में भी शिव ही रक्षा करते हैं ।

जहाँ ये देव इन नायकों की सहायता करते हैं, वही कहीं-कहीं स्वार्थवृत्ति से कष्ट भी देते हैं । "कथा रतनमंजरी" में एक देव मनुष्य का रूप धारण कर रतनमंजरी को छलपूर्वक उड़ा ले जाकर वंगल में छोड़ देता है जहाँ वह अनेक कष्ट पाती है । फिर वही कुंवर मधुसूदन के पास जाकर रतनमंजरी के अवस्थता की बात करता तथा उसे उड़ा ले जाकर पर्वत के लोह में गिरा देता है जहाँ वह अनेक कष्ट पाती है । इस तरह यह नायक-नायिका दोनों को कष्ट देता है^५। इसी तरह "कथा कवतावती" में "इन्दुसभा" से छोटे हुए दम्पति को पुनः वापस लाने पर एक देव कवतावती के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे उड़ा ले जाकर उवाड़ वंगल में छोड़ देता है जहाँ वह जंगली जानवरों, भूत, प्रेत आदि से अनेक कष्ट पाती है^६।

१- बी० - १९८ तथा १९९ ।

२- बी० - १९ ।

३- बी० - १३२ ।

४- बी० - १२३ ।

५- बी० - २०४ तथा २१० ।

६- बी० - १५ से १०० तक ।

सिद्ध पुराण :-

ये सिद्ध पुराण- योगी, तपस्वी, सन्ध्यासी, सिद्ध आदि होते तो हैं लौकिक-पात्र, पर इनका कार्य-क्षेत्र देवी-गुणों से सम्पन्न अर्थात् अलौकिकता-मय होता है । ऐसे पात्र कभी नायक वा नायिका के माता-पिता को पुत्र-विवोग में युक्ति बताकर संतानोत्पत्ति में सहायता प्रदान करते हैं तो कभी नायक-नायिका को विपत्ति में पड़ने पर उनकी सहायता करते हैं । "कथा सुभट्टराज" में राजा सूरजमल को पुत्र-विवोग पर एक सिद्ध द्वारा दिए हुए फल के जाने से एक पटरानी को पुत्र सुभट्टराज उत्पन्न हुआ है^१। "कथा कल्कावती" में एक सन्ध्यासी द्वारा राजकुमार परमरूप को "कञ्जमनिधि" विद्या सिखा देने से वह अद्वय रूप में कल्कावती के पास पहुँच जाता है^२। "कथा रतनमंजरी" में देव द्वारा मनु-सूदन को पर्वत की गुफा में फेंकने पर वहाँ एक सिद्ध उसे दो जग्गिन बाण देकर उदयपुरी जाने का रास्ता बताता है^३। "कथा रूपमंजरी" में एक तपस्वी राजकुंवर शानसिंह तथा रूपमंजरी की गाँठ जोड़कर माता-पिता के जन्माने^४ दोनों को लादी कर देता है । और राजा हस्तिमल्ल द्वारा क्रोध करने पर मंत्र द्वारा योगी बनाकर इनकी जान बचाता है^५। इसी तरह सभाचंद लोधी कृत "कथा-कामरूप" में एक दर्वेश द्वारा एक ली-फल देने से रानी सुन्दर को पुत्र कामरूप पैदा हुआ है ।

नायकः क

"नायक" अथवा "नेता" शब्द संस्कृत के "नी" धातु से बना है जिसका अर्थ है "ले जाना" । पुराण पात्रों में सर्वप्रथम पात्र जो प्रारम्भ से अंत तक पाठक तथा अपने लक्ष्य को लिए जाने बढ़ता है और जिसका लक्ष्य ही काव्य का लक्ष्य होता है, जिसको केन्द्र मानकर काव्य के सभी पात्र तथा घटनाएँ घूमती हैं तथा जो अंत में फल का उपभोक्ता होता है वही इन काव्यों का नायक होता है । विरचनाय मे अपने "साहित्य-दर्पण" में नायक के अनेक गुणों की विवेचना

१- चौ०- २ तथा ३ ।

२- चौ०- ३९ से ४१ तक ।

३- चौ०- २११ से २१३ तक ।

४- चौ०- ३० से ४१ तक ।

के साथ बनेक भेदोपभेद किया है^१। पर प्रेमाख्यान-साहित्य के नायकों के लिए इन बड़े निम्नों का पालन नहीं हो पाया है। इसमें नायक का पूरा सम्बन्ध "प्रेम" से है चाहे उसमें काव्य के नायकों की भाँति सभी गुण हो या न हो। इसका लक्ष्य ही प्रारम्भ से अंत तक नायिका से प्रेम करना होता है इसीलिए वह प्रेम कया की सबसे ज्यादा जागे बढ़ाता है। "प्रवर्ततेमवन्तु" में मवन्तु मुरा से अंत तक सैता का पेसी होने के नाते कया का नायक है। वह सैता के प्रेम में भटकता हुआ जीवन भर विरह सहता है - तथा अंत में उसके मरने पर आत्म-समर्पण तक कर देता है। इसमें इबनसलाम नायिका सैता का पति होने पर भी नायक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह परिवार द्वारा बंधन से बन्द समय के लिए उसके साथ जाता है, पर प्रेमी नहीं बन पाता। इस प्रेमाख्यान में नायक का प्रेमी-रूप ही सबसे ज्यादा उभड़ा हुआ है।

जानकवि के नायकों में सूफ़ी व कथाओं के नायकों की भाँति एक-रूपता न होकर असूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों की भाँति विविधता पाई जाती है^२। कथाएँ विभिन्न उद्देश्यों से लिखी जाने के कारण उनके चरित्रों में विविधता जाना स्वाभाविक है। वे मानवीय चरित्र हैं और मानव हृदय की समस्त अनुभूतियों से सम्बन्धित हैं। उनमें शक्ति है, निर्बलताएँ हैं तथा वर्ग-भेद हैं। समस्त प्रेमाख्यानों के नायक हमें तीन रूपों में प्रयुक्त मिलते हैं - राजकुमार, -

१- त्यागी कुत्ती कुत्तीनः सुखी को रूप यौवनोत्साही ।

दशाऽनुरक्त लोकस्तेनो वेदध्वं शीतवाग्मेता ॥

(साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, ६६वाँ श्लोक)।

२- इन गुणों के साथ नायक के चार भेद (१) धीरोदात्त (२) धीरोदत (३) धीर सत्तित तथा (४) धीर प्रशान्त बताया है। इसमें भी प्रत्येक के पुनः चार भेद (१) दक्षिण (२) दृष्ट (३) शठ तथा (४) अनुकूल, किया है।

३- "सूफ़ी कवि का प्रेमी नायक प्रायः एक ही वर्ग का पुरुषा हुआ करता है। और वह लगभग एक ही प्रकार का प्रेम-व्यापार भी प्रदर्शित करता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचता जान पड़ता है तथा उसे अधिकतर एक ही जैसी सिद्धि की उपलब्धियाँ भी हुआ करती हैं। परन्तु असूफ़ी कवि के नायक के लिए ठीक ऐसा ही करना सदा आवश्यक नहीं हुआ करता।"

-परशुराम चतुर्वेदी- हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान, पृ० १०३, १९६२ ई०।

राजा तथा सामान्य व्यक्ति । कथा कतावती, कथा कवतावती, कथा कलदम-
यंती, कथा रतनमंजरी, कथा रूपमंजरी, कथा रतनावती, कथा कन्कावती,
कथा मोहनो, कथा छवितागर, कथा पुहुपवरिणा, कथा त्रिभुवां देवदे,
कथा कामरानी वा पीतमदास, कथा सुभटराई तथा कथा कौतूहली के नायक
राजकुमार, कथा छीता, कथा निरमल, कथा कामलता, कथा बन्धुसेन राजा
सीतनिधान तथा कथा ज़रदसेर पतिसाह के नायक राजा और इनके अतिरिक्त
तेजा कथा मधुकरमालती, प्रियलैलामनू, कथा कर्दर, कथा तमीम मंसारी, कथा
सतवती, कथा सीतवती, कथा कुलवती, कथा बलुकिमा विरही तथा बांदी नावा
के नायक सौदागर, मसीत जाति के सेवक वा भिषां जाति सामान्य व्यक्ति
हैं । इस तरह अधिकतर नायक राजकुमार वा राजकुल के संप्रान्त युवक ही हैं ।
इनमें नायक के चारित्रिक गुण अन्वों की अपेक्षा विशेषा मिलते हैं । यहाँ सभी
वर्ग के नायकों की सामान्य चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा
है ।

नायकों की चारित्रिक विशेषताएँ:-

(१) इन प्रेमाख्यानों के नायक लौकिक प्रेम के अनुसार वाचरणा
करते दिखाई देते हैं । इनका उद्देश्य ही किसी प्रेम-पात्री की उपलब्धि है, पर
इन रचनाओं में की गई इसी जीवन-पद्धति को देखा जाय तो प्रवरम्भ में इनमें
कुछ न कुछ विलक्षणता प्रतीत होती है । वे प्रायः अपने माता-पिता की
इकलौती संतोंमें हुवा करते हैं । पूजा, जारापना, दान-पुण्य वा किसी के
वरदान के जनन्तर पैदा होते हैं । "कथा कतावती" में राजकुंवर पुरन्दर सुरपति
के वरदान से, "कथा रतनावती" में महिमोहन तथा "कथा पुहुपवरिणा" में
पुराणोत्तम ज्योतिषी द्वारा कतामे पर राजाओं की पुनः विवाह तथा दान-
पुण्य करने से और "कथा सुभटराई" में सुभटराई एक सिद्ध द्वारा कल देने
पर उत्पन्न हुए हैं । "कथा कन्कावती", "प्रियलैलामनू" तथा "कथा ज़रदसेर पति-
साह" में भी नायकों का जन्म अनेक प्रयत्नों के बाद हुआ है । इसी तरह सृष्टी
तथा जलूनी के जन्म अनेक प्रेमाख्यानों तथा - कवारसरतन, पुहुपवती, मुगावती,
मधुनकृत मधुमालती, विभावती, शान्दीप, हंसवाहर जादि में भी नायकों

का जन्म अनेक धार्मिक अनुष्ठानों या बरदानों से हुआ है । पैदा होने के कुछ ही दिन बाद इनकी राज्योचित-शिक्षा मिलने से वे हर गुणों एवं कलाओं में प्रवीण^{संगति} हैं ।

(२) वे नायक ऐसे वातावरण में पाले-पोसे गये रहते हैं कि उन्हें ग्रीष्म कोमल भावुकता का शाना स्वाभाविक है । वे किसी सुन्दरी के प्रति केवल प्रत्यक्षा, स्वप्न या चित्र-दर्शन से ही नहीं, बल्कि किसी के द्वारा रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर या गुण-वर्णन मात्र से भी सहसा वाकूट होकर प्रेम-विह्वल हो जाते हैं । "कथा कवतावती"^१ में नायक इन्दुवदनु तोता द्वारा कवतावती का गुण वर्णनकर, "कथा नन्दमर्त्यती"^२ में नम स्वप्न में दम्यती का दर्शन कर, "कथा रतनावती"^३ में नायक महिमोहन पिता द्वारा दी हुई मुद्रिका पर अंकित रतनावती का चित्र-दर्शन कर, "कथा कन्कावती" में परमरूप, "कथा रतनमर्त्यती" में मधुसूदन, "कथा रूपमर्त्यती"^४ में जानसिंह तथा "कथा कामलता" में राजा रसाल स्वप्न-दर्शन कर और "कथा कौतुहली" में नायक सरसंगी तथा "कथा मधुकरमासती" में नायक मधुकर नायिका के साक्षात् दर्शन से उनके प्राप्त-हेतु विकल हैं । नायकों में आत्म-विकृति या विकलता की यह स्थिति सुपुत्री तथा असुपुत्री के अन्य प्रेमाख्यानों में भी है । कुछ कुतुबन कृत "मृगावती" में नायक हरिणी को देखते ही सुध-बुध खो देता है । "पद्मावत" में तोते से पद्मावती का नम-शिव वर्णन सुनकर राजा रतन्सेन को मूर्छा आ जाती है उसे सूर्य की लहर आ गई हो^५ । "विजावती" का नायक सुजान भी विजावली का दर्शनकर सुध-बुध खो देता है और प्रेममद से पागत होकर उसके रूप की अपार छवि हो

१- सुनत सिंगार कुंवर सुधि भूती । नैननि मांभ सांभ ली फूती ॥५६॥

२- चौ०- १९ ।

३- चौ० - २० ।

४- चौ०- २६ ।

५- सुनतहि राजा गा मुरछाई । जानहुं लहरि सुरज कै जाई ॥

(पद्मावत, छंद ११९) ।

देखा रह जाता है^१। "बोला मादुरा दुहा" तथा "रसरतन" के नायकों में भी यह विकलता मिलती है।

नायकों में इस तरह के विकलता की स्थिति सुफली काव्यों में नहीं पायी जाती। उसमें तो नायकों में प्रेम साधारण कोटि से प्रारम्भ होकर क्रमिक रूप से बिकासित होता है। यह साधारण से असाधारण की ओर नहीं बढ़ता, बल्कि वह असाधारण रूप से प्रारम्भ होता है और असाधारण ही बना रहता है। निजामी के तैयामजनुं तथा जामी के "यूसुफ-जुलैखा" में यह स्थिति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जामकवि के "गुलैशमजनुं" में भी इस स्थिति का किंचित् आभास मिलता है, नायक के व्यक्तित्व के विकास का यह स्वाभाविक क्रम नहीं कहा जा सकता, किन्तु "साधना" की दृष्टि में रक्कर इस विशेष स्थिति को प्रकृत प्रसंग स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

(३) प्रेम की विकलता होते ही माता-पिता की हठ पूर्ण अनुमति लेकर ये नायक कभी योगी-वेश में बीणा-वादन करते हुए अपने किसी मित्र या मंत्री-पुत्र के साथ, तो कभी सहज ही नायिका को प्राप्त करने के लिए प्रेम-पंथ के पथिक बनकर चल देते हैं। वे अपने अभीष्ट की सिद्धि के सामने किसी और बात की परवाह नहीं करते हैं। प्रेम पर ही विश्वास करते हैं और प्रेम के ही अहिंसात्मक - अश्व से तड़ते हैं। "कथा कौतुहली" में नायक सरबंगी माली-वेश में तथा "कथा कलावती" में पुरन्दर, "कथा रूपमंजरी" में शमसिंह, "कथाछीता" में राजाराम और "कथा रतनमंजरी" में मधुसूदन योगी-वेश में घर से नायिका को प्राप्त करने के लिए निकलते हैं। इसी तरह हिन्दी अन्य - सुफली-प्रेमस्थान 'मधुमावत' में रतनसेन, 'बिजावली' में सुजान, 'मुगावती' में राज-कुंवर तथा 'मधुमावती' में मनोहर और अशुफली-प्रेमस्थान 'सदयवत्सलावर्तिगा' और 'रसरतन' के नायक भी योगी-वेश में घर से निकलते हैं। जिस तरह नायक

१- सुधि बिसरी सुधि रही न हीये । गा बीराड प्रेममद पीये ॥

कवई परै जवेत मुंह, कवई होइ सवेत ।

रूप अपार हिये समुधि, मुख बीये करि हेत ॥

(बिजावली, छंद ८५) ।

पुरन्दर, राजाराम तथा सरबंगी बीणा-गादन एवं अन्य-कला-प्रदर्शन करते हैं उसी तरह प्रसूनी प्रेमाख्यान "पुहुपावती", "रसरत्न", "माधवानन्द काम-कंदला", "छिताईवार्ता" के नायक भी बीणा-गादन करते हैं। दिन्दी के सुनी प्रेमाख्यानों के नायक बीणा-गादन नहीं करते। "कथा रतनावती" में नायक महिमोहन तथा मंत्री-पुत्र उत्तम, "कथारूपमंजरी" में नायक शानसिंह तथा मंत्री-पुत्र न्यायसिंह, "कथा सुभटराज" में नायक सुभटराज तथा मंत्री के वार पुत्र और "कथा कामरानी वा पीतमदास" में नायक पीतमदास अपने वार मित्रों को नायिका की खोज में साथ ले जाते हुए विवशित हुए हैं। ये मित्र या मंत्री-पुत्र नायकों को उनकी विपत्त परिस्थितियों में सहायता प्रदान करते हैं। इनका कोई अपना लक्ष्य नहीं होता। इसलिए इनको पताका-नायक भी कह सकते हैं।

(४) नायिका की खोज में जाते हुए मार्ग में इन नायकों को अनेक कष्ट एवं विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ये निरुद-प्रेम में पड़ते हैं फिर भी इनमें वसित उत्साह है, वे धीर हैं, गभीर हैं, एकनिष्ठ हैं, दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, हठी हैं, वीर हैं, स्पष्टवादी हैं, कलाकार हैं, सुन्दर हैं, सहिष्णु हैं, विनम्र हैं, त्यागी हैं, तपस्वी हैं तथा साधक हैं। वे अपने प्रेम-पथ से, कभी विचलित नहीं होते देखे जाते। सच्चे-प्रेमी होते हैं। इनमें सर्वत्र त्याग की भावना बनी रहती है। कठिन से कठिन परिस्थितियाँ तथा मृत्यु का गम भी इन्हें डिगा नहीं पाता है। "कथा कृतान्वती" में नायक इन्दुवन्दु अपने समान से शादी करने के लिए पिता सुभटराज से दृढ़ता दिखाता है^१। "कथा रतनावती" में नायक महिमोहन पिता सुभटराज द्वारा रतनावती के प्राप्त की अवश्यता तथा अन्य से शादी करने की बात पर, वह दृढ़ता पूर्वक खोजने की स्वयं व्रथा माँगता है^२। रास्ते में एक अन्य अप्सरा के मोहित होने पर रतनावती के प्रेम की एकनिष्ठता प्रकट करता है^३ और रतनावती के क्रोध पर वह

१- वाप समान न पाऊँगी जी। भूति व्याह नहीं करिहीं ती लीं ॥३३॥

२- वी०- २८ ।

३- कुंवर कह्यो सुनि विना रतनावत । कोऊ भैरि विचहि न भावत ॥४०॥

मरने की परवाह नहीं करता^१। जीर वंत में उसे प्राप्त करके ही लीटाता है। "कथा रतनमंजरी" में राजा शबबन्द के जेठे उपाय करने पर भी कुंवर मधुसूदन एकनिष्ठ भाव से रतनमंजरी को पाने के लिए दृढ़ रहता है^२। रतनमंजरी के उप-वन में मिलने पर जब वह क्रोध दिखाती है तो वह उसके प्रति निश्चित किए गये अपनी प्रेम की एकनिष्ठता का परिचय देता है^३। उसको विरह-प्रेम का कर्मकांडीन मार्ग भी सरल लगता है^४। "प्रियलैलामयनं" में मयनं अपने पिता से लैला के प्रति प्रेम की एकनिष्ठता प्रकट करता है^५। उसको उस दुष्टता को देखकर लैला के परिवार वाले उसे जानु से मारने का निश्चय करते हैं। वह लैला के लिए जंगल में^६ जेठे कष्टों को सहता, भटकता तथा शिला से खलता है। वह प्रेम में इतना दृढ़ रहता है कि मरने के बाद भी उसके प्रेम की कामना करता है^७। जीर वंत में जाकर लैला के कब्र पर ही प्राण-त्यागता है जिससे उसकी प्रीति सदा के लिए जमर हो जाती है^८। "कथा विजयं देवन्दे" में विजयं देवन्दे के प्रेम में इतना दृढ़ है कि माता पिता द्वारा अन्य विवाह करने पर भी उसे नहीं भूलता^९। "कथाकलंदर" में एक पतिताह द्वारा तीन बेरियों के खरीद लेने पर भी नावक कलंदर उनके प्रेम में दृढ़ रहता है जीर वंत में प्राप्त करता है। इसी तरह "पद्मावती" में पद्मावती का पिता गंधर्वसेन द्वारा रतनसेन को शूली पर चढ़ाने

१- कुंवर कहनौ हौं जानत तोहि । पै मरिये को खलवा मोहि ॥१२८॥

२- कुंवर संतोष न कारनै, निरुदिन कोतिग होइ ।

रतनमंजरी जिय बसी, जीर न भावै कोइ ॥

३- चौ०- ११८ ।

४- तो की मारग पैसु दुहेली । पै मोकी जति लो दुहेली ॥१२०८॥

५- चौ०- १७ ।

६- चौ०- २० तथा २८ ।

७- चौ०- १७ ।

८- कहा भयी को किमी विवाह । तो दिन नाहि जीर की चाहि ॥

तो दिन करौ जीर ही प्यार । तो मुहि कोट जान करताइ ॥१५१॥

की आशा देने पर भी वह प्रेम से विवशित नहीं होता और प्रसन्न रहता है^१। "मुगावती" का नायक राजकुमार भी मुगावती को विनायाप्त किए बिना विमुख नहीं करना चाहता^२।

ये नायक राजा या राजकुमार होने के नाते संस्कारों और पुराण होते हैं और घर से नायिका की लोच में निकलने पर अवसर के अनुकूल दानव तथा राक्षसों को मारते, सिंह व हाथियों को पछाड़ते तथा भयंकर युद्ध में सक्रिय भाग लेते हैं। "कथा सुभट्टराइ" में नायक सुभट्टराइ अवाही, उदीची तथा प्रतीची राजाओं के राजकुमारियों को रक्षा क्रमशः बाघ, हाथी तथा राक्षस को मारकर करता है और तीनों से विवाह करता है। "कथा रतनमंजरी" में नायक मधुसूदन तिकार खेलने जाने पर सिंह तथा राक्षसों का वध करता है^३। "कथा रतनावती" का नायक महिमोहन तथा "कथा कलनावती" का इन्दुवन्दु रारते में अनेक हाथी, सिंह आदि जंगली जानवरों तथा राक्षस, जंगी आदि का वध करते हैं। महिमोहन तो दैत्यों का विनाश कर पद्मिनी को अपने साथ सिंहलद्वीप ले जाता है। इन्दुवन्दु में साहस के साथ जात्मवश है^४। वह राजा बलसागर को युद्ध में परास्त करता है। इसी तरह सुफुली तथा असुफुली प्रेमात्म्याओं के नायक भी बड़े साहसी हैं। वे हर तरह की विकट तथा विषम परिस्थितियों का सामना करते हैं। इतने पर भी नायकों के इस पराक्रम एवं साहस को गीण स्वान ही दे सकते हैं क्योंकि इनके इस साहस का कोई पुष्प महत्व नहीं है।

"कथा कौतुहली", "कथाछीता" तथा "कथाकलनावती" के नायक अच्छे वीणावादनक और कलाकार हैं। "कथा कौतुहली" में तो नायक सरबंगी

१- जब मारव कई नावा तू । सूरि देखि हंसा मंदूर ॥ (पद्मावत-छंद २६०)।

२- जब तक चाह न बहके पाऊँ । मरू इन्हें पै पित न डोलाऊँ ॥ (मुगावती)।

३- चौ०- १९ । सम्रा०-शिवगीपाक मिश्र-पृ०-७७, शक १८८५ ।

४- बैसी कौन नु मोकी मारे । जिन सीयों सो नीकें फारे ॥ ११४ ।

का संगीत, वाद्य, वाण आदि विधानों का प्रदर्शन ही कथा का मूल है। यह इन्हीं के माध्यम से नायिका को प्राप्त करता है।

ये नायक सहिष्णु हैं। "कथा भरदोहरपतिसाह" में नायक भरदोहर शिकार खेलते समय पुग के दो सावकों को देखकर वाण चला या बंद कर देता है और उनसे दबीभूत होकर अपनी निकाली हुई पत्नी तथा पुत्र को मंत्री से आग्रह-पूर्वक माँगकर अपने सहिष्णुता का परिचय देता है^१। इसी तरह पल्लव जंगल में एक हिरण को बहेलिया से छुड़ाता है^२। "कथानन्ददम्पती" में नल जंगल में दम्पती के कष्ट को जसह्वन समझकर उसे जेबे छोड़कर चल तो देता है, किंतु पुनः बार-बार लौटकर देखता है और परचाताप करता है^३। "कथा कामरानी वा पीतमदास" में पीतमदास राजगद्दी पाने पर अपने वारों-विषों को मंत्री बनाता है और उनकी भी शादी करवाता है^४।

(५) इन नायकों के चरित्रों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इनमें सौन्दर्य के प्रति तीव्र आकर्षण है। इनका प्रेम वैसे ही ज्वलित नहीं होता है, बल्कि ईश्वर प्राप्त होता है। प्रेम सौन्दर्य की ओर सहज ही डलता है जिससे सौन्दर्य की ओर इन नायकों में तीव्र आकर्षण होता रहा-भाविक है। ये नायक स्वयं भी सुन्दर युवा होते हैं। नायिकाओं का रूप-सौन्दर्य या नल-लिल वर्णन सुनकर विकल होकर आकृष्ट हो उठते हैं और प्राप्ति के अनेक उपाय करने लगते हैं। नायिकाओं के प्रति नायकों का आकर्षण तीव्र करने के लिए कवि ने बीच-बीच में कई बार नायिका का रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया है।

(६) कुछ नायक दो या अनेक पतिन्माँ रखे दी करते हैं। "कथा सुभट्टराड" में नायक सुभट्टराड की तीन पतिन्माँ, "कथा विजयराज देवतादे" में नायक विजयराज की दो पतिन्माँ तथा "कथा कनार्वती" में नायक पुरन्दर की नौ पतिन्माँ हैं। इनमें नायक, प्रायः सभी पतिन्माँ से समान प्रेम करते विभिन

१- चौ०- १६ से २१ तक।

२- चौ०- ४१।

३- चौ०- ७२ से ७६ तक।

४- चौ०- ११।

दिए गये हैं। यदि पहली विवाहिता से कुछ कम प्रेम भी करते हैं तो वरुणवि नहीं दिखाते। इसी तरह मधुमावती "मधुमावती" को छोड़कर उदरी भारत के प्रायः समस्त सुफ़ी प्रेमाख्यानों में नायकों के जीवन में दो नायिकाएँ प्रवेश करती हैं। सुफ़ी प्रेमाख्यान "सदयबत्ससावर्णिगा", "प्रेमप्रगास", "वीसतदेव-रास" तथा "मैनासत" के नायकों के दो-दो तथा "छिमाईवार्ता" में अनेक पत्निर्मा हैं।

(७) इस प्रणय-सम्बन्ध में इन नायकों ने जाति या वर्ग भेद नहीं किया है। "कया बन्दसेन राजा होतनिधान" में राजा बन्दसेन तीन चेरियों को रखता है। बाँदीनावा में मिर्मा एक चेरि को रखते हैं। पर अधिकारी राजकुमार प्रायः राजकुमारियों से ही विवाह करते विजित हुए हैं।

(८) ये नायक यदि अपनी प्रेयसि में ईश्वरीय सत्ता का अवलोकन करते हैं तो उनके साथ रमण, साधना की दृष्टि से दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि ईश्वरी दृष्टि विकसित हो जाने के बाद संभोग या रमण वास्तविक पूर्ण नहीं कहे जा सकते, इसलिए वासनाओं और विकृतियों का प्रारंभ ही नहीं उठता? साथ ही प्रेयसी के लिए जीवनोत्सर्ग की उत्कंठा तो वासना को सदा के लिए भस्मीभूत कर देती है। प्रायः विवाह के अनन्तर ही ये नायक संभोग करते हैं। मधुसूदन, पुरन्दर, महिमोहन, नत, इन्दरदत्त आदि सभी विवाहोपरान्त ही नायिका से संभोग करते हैं। इसी तरह सुफ़ी प्रेमाख्यानों के नायक भी विवाह के बाद ही संभोग करते हैं। सुफ़ी-प्रेमाख्यानों के नायकों में प्रायः संभोग^{का} अभाव है। हिन्दी के सुफ़ी प्रेमाख्यान-पद्मावत, मुगावती, मधुमावती आदि के नायकों में संभोग की प्रवृत्ति भारतीय प्रभाव से रही है।

(९) ये सभी नायक जादुईवादी हैं। इन्का जगत इनके जादुई का जगत है। इनके प्रत्येक व्यापार के साथ सर्वस्व-त्याग की भावना बनी रहती है। इनमें यशस्वीता की गुंजाइश कहीं भी नहीं मिलती। इसलिए इनके चरित्रों में विविधता होती हुए भी एकरूपता है। ये एक ही ढंग के आवरण करते दिखाई देते हैं। इन्का एकमात्र तत्त्व अपने सिद्धि की प्राप्ति होने से जीवन-सम्बन्धी अन्य कोई उद्देश्य नहीं होता जिससे इनके चरित्र का विकास एक ही दिशा में

हुआ है। उनमें विभिन्न जीवन-सम्बन्धी पातुनों की स्वाभाविकता एवं नवीनता नहीं मिलती। वे राजसत्ता वा जीवन के वास्तविक कर्तव्यों से विमुख लगते हैं। इस तरह इनका चरित्र स्वतंत्र होते हुए भी एक परम्परागत निर्बंधन के पर्दे में रहता दीखता है।

(१०) बालकवि के ये सभी नायक प्रेमसी के पाने के बाद जंत में स्वदेश लौटकर सानंद गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते चित्रित किए गये हैं।

संक्षेप में बालकवि के नायकों की यही विशेषताएं हैं। ये गुण मुख्यतः दाम्पत्य परक एवं स्वच्छन्दतापरक प्रेमात्मानों के नायकों में ही प्राप्त हैं। सतपरक प्रेमात्मानों में नायकों के चरित्र की कोई ऐसी विशेषताएं नहीं मिलती हैं जिनमें तो नायिकाओं का ही चरित्र प्रधान रहा है।

प्रतिनायक:-

नायक के लक्ष्य प्राप्ति में सबसे अधिक बाधा उपस्थित करने वाले पुरुषा-पात्र को प्रतिनायक कहते हैं। "साहित्य-दर्पण" में विराजनाथ प्रसाद ने प्रतिनायक में धीरोद्धत नायक के सभी गुणों--कपट, प्रवण्ड, चंचल, गर्हकार, जात्म-गौरव, जात्मरक्षावा, पापाश्रय, व्यसनी आदि को माना है^१, पर वह धीरोद्धत नायक की जयवा स्वार्थ-सिद्धि के पीछे सत्य-असत्य एवं पाप-पुण्य के भेद को मिटा देता है। यह नायक के टनकर का पात्र है। शक्ति एवं साधनों में नायक से कम नहीं होता। विरोध-मूलक दुड़ता एवं जाह्यमादि में नायक को मात देने में समर्थ होता है। पहले तो वह अपने छल वा प्रयत्नों में प्रायः सफल हो जाता है, किन्तु अचानक उसकी पोल खुल जाने से वही पाठक के घृणा का पात्र हो जाता है। प्रायः कवि इनका चित्रण बड़ी सावधानी से करते हैं कि पाठक पहले ही उनसे घृणा कर उठें। "कवाचीता" में जिस रूप-गुण से प्रभावित होकर नायक राजाराम छीता से प्रेम किया है उससे ही प्रेरित होकर असाहसीन छीता की ओर आकर्षित हुआ है, किन्तु जहां राजाराम ने

प्रेम-पथ में योगी-वेश में चरण बढ़ाया, वहीं जताउही न मन्मथन के पथार्थवादी राजाओं की भाँति सेना को साथ लेकर । उन्हें सब तो लेसक तथा पाञ्च के महाभूति का पात्र बना तो दूसरा घुणा का। ऐसे ही जामो के "मद्मथन" में जताउही न के वरिच का विषित हुआ है ।

महाकाव्यों या अन्य काव्यों की अपेक्षा प्रेमाख्यानों में प्रतिनायकों की विविधता थोड़ी भिन्न है । उसमें न तो प्रतिनायकों के वारिचिक दुष्टताओं और नीचताओं का उतना विस्तृत वर्णन मिलता है और न तो सभी प्रेमाख्यानों में उनकी योग्यता ही हुई है । सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि प्रेमाख्यानों में देवी-दुर्घटना-पं वरिच प्रदर्शित की गई हैं मानवीय बहने कम । जिससे ये कवि ऐसे पात्रों की उतनी आवश्यकता न समझकर उनकी परिकल्पना कम किये हैं । जहाँ कहीं भी प्रतिनायकों की योग्यता हुई है वहाँ या तो वे नायिका प्राप्ति में बाधक हैं या स्वयं नायिका बन का अपहरण करना चाहते हैं।

जानकवि ने अपने समस्त प्रेमाख्यानों में प्रतिनायकों की कल्पना केवल "कथाछीता", "कथाकामरानी वा पीतमदास", "कथाछिन्नदां देवमदे", तथा "कथा कलंदर" में किया है । "कथाछीता" में जताउही न प्रतिनायक है । वह विचकार द्वारा छीता के विच को देखकर तथा उसके रूप-सौंदर्य पर मोहित होकर उसे पाने के लिए देवगिरि के गढ़ के चारों तरफ घेरा डालता है और छतपूर्वक गढ़ के भीतर जाकर पूजा के लिए आई हुई छीता का अपहरण कर दिन्ती लाता है । अनेक प्रवृत्तियों के अनन्तर भी छीता उसके प्रणय-सम्बन्ध नहीं करता^१। बाद में राम के साथ छीता के प्रेम की एकनिष्ठता का परिचय पाकर वह छीता को राम के साथ पुनीवत् विवाह कर देता है^२। यहाँ कवि जताउही न के वरिच-को बहुत ऊँचा उठाया है । वह प्रतिनायक होते के कारण एक बार तो रूप-सौंदर्य पर बाकृष्ट होकर छीता का अपहरण करता है, किन्तु वास्तविकता जानने पर पुनः दयान्वित हो पुनीवत् वापस कर देता है । वह उसके वरिच की उत्कृष्टता ही कही जावेगी । जयपुरी प्रेमाख्यान "छिताईवार्ता" में भी जताउही न बिल्कुल

इसी रूप में चित्रित हुआ है। "पद्मावत" में भी इसका चित्रण प्रतिनायक के रूप में ही है। वह पद्मावती के अपहरण के लिए चितौड़ पर आक्रमण करता है पर सफल न होने पर अंत में कहता है - "वह पृथ्वी भूठी है"।

"कथा कामरानी का पीतमदास" में राजाराम प्रतिनायक है। कामरानी का पीतमदास के साथ प्रणय-सम्बन्ध बिगड़ होने पर भी राजाराम राजा हरिदास पर आक्रमण करके जलपूर्वक कामरानी को अपने यहाँ ले आकर पटरानी बनाता है, किन्तु कामरानी उससे प्रेम नहीं करती^२। अंत में पीतमदास को शांत होने पर अपने चार मित्रों की सहायता से उसे युक्तिपूर्वक आकर लाता है। और राजा हरिदास के दोनों का विवाह -सम्पन्न करा देता है।

"कथा छिड़वां देवलदे" में राजा सिंह देव प्रतिनायक है। वह देवलदे के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर भाई भीलमदेव को गुजरात से ले जाने के लिए भेजता है, किन्तु रास्ते में ही छिड़वां उससे छीन लेता है^३। "कथा कसंदर" में एक पातिशाह प्रतिनायक रूप में है। कसंदर के मोहित तीन बेरियों पर वह आकर्षित होकर लीद ब लेता है और बाद में संयोगवशा के पूर्व ही एक बेरी के हृदय का जवाहिर पिघलकर पानी हो जाने पर वह बहुत लज्जित तथा विवर्तित होकर उन्हें कसंदर को वापस कर देता है^४ और जलाउद्दीन जैसी सहायता का परिचय देता है।

हिन्दी के सूफ़ी तथा असूफ़ी अन्य प्रेमालीनों में भी प्रतिनायकों की योजना हुई है। सूरदास(सबनल) कृत "मलमन" में कलपुग, "सीरी फ़रहाद" में सीरी, कासिमशाह के "हंसजवाहर" में दिनौर, "भाषा प्रेमरस" में सज़ाद, अबिन्द तथा "राजा बिब मुकुट रानी बन्धकियन की कथा" में लजी बणिक्

१- छार उठाई सीन्दि बेक भूठी । दीन्दि उड़ाह पिरियमी भूठी ॥

(पद्ममावत -छंद-६५१-)

२- रानी रोवत रैन बिहावै । राजा को बुझ मुझ न लगावै ॥

रावै कीमेवतन करोर । मैं रानी देज नां जोर ॥५॥

३- बी०- १६ तथा १७ ।

४- बी० - ८ ।

प्रतिनायक हैं । "सम्राट् जयिन्द-चन्द्रकला" को प्राप्त करने के लिए वाङ्मयण कर प्रेमसेन का जीवनोपहरण करता है, किन्तु उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर बाद में विरक्त हो जाता है । "बड़ी गणिका" टाण्ड से चन्द्रकिरण को अपहृत करता है और वह भी न जाने पर उसे देखा के हाथ में देता है ।

नायक के चरित्र-विकास में प्रतिनायक का बड़ा हाथ होता है । नायक के मार्ग में वह जितना ही सबसे अवरोध बढ़ा करता है उसे पार करने के लिए नायक को उतना ही अधिक संघर्ष करना पड़ता है नायक को जितना ही अधिक संघर्ष करना पड़ता है उतना ही अधिक उसका चरित्र निररता है और कथानक का विकास होता है तथा नायक की पूर्ण परीक्षा होती है ।

सलनायक :-

प्रेमास्थानों में प्रतिनायकों की अपेक्षा सलनायकों की और कवियों का ध्यान अधिक रहा है । सल नायकों में केवल उसका गुण दिखाया जाता है । वे स्वभाव से उग्र तथा इनका हृदय उदात्त भावों से शुद्ध होता है । वे गर्वकार, जिविरेक, कृतघ्नता, लोभ, ईर्ष्या, प्रतिगोध, मत्सर, निर्लज्जता आदि के जीवन्त विग्रह हैं । प्रतिनायक तो नायिका की प्राप्ति में एक ^{आध} सफल भी हो जाता है, किन्तु सलनायक कभी भी सफल नहीं हो पाता । वे तो प्रेमास्थानों में चन्द्र-सम के लिए जाते हैं । नायकों के मार्ग में बाधा पहुंचाकर या उसकी तांति भंग कर कुछ समय के लिए उनको कुशल-बोम से संतुष्ट कर दिया करते हैं । इनके साथ पाठक की सहानुभूति कभी नहीं हो पाती, पर प्रतिनायक के प्रति तो कभी हो भी जाती है । यथा- "क्या छीता" में जता-उहीन के पुत्रीवत् छीता के वापस करने पर हमारी सहानुभूति अपने आप उसके प्रति हो जाती है, किन्तु रावबख्तेन के प्रति नहीं ।

जानकवि ने भी सल नायकों का प्रयोग प्रतिनायकों की अपेक्षा अधिक किया है । "क्या छीता" में रावबख्तेन जिस तरह सलनायक के रूप में है उसी तरह "पद्मावत" तथा "छिताईवार्ता" में भी जाया है । "क्या छीता" में रावबख्तेन जताउहीन का मंत्री है । जताउहीन के साथ वह उत्पुर्वक "वशिष्ठ" (योगी) का रूप धारण कर गढ़ के चन्द्र जाता है और छीता के अपहरण

कराने में पूर्ण मदद करता है^१। इसी तरह "पद्मावती" में यह रतन्सेन के दर-
बार का एक पातण्डी ब्राह्मण है। रतन सेन द्वारा चित्तौड़ से निर्वासित
होने पर वह दिल्ली जाकर बलादहीन से मिलता है और पद्मावती का सौन्दर्य
वर्णन कर उसे पद्मावती में आसक्त करता है जिससे बलादहीन आक्रमण करके
उसे अपहरण करता है। "कषाकलावती" में राजा बलमागर कलावती के रूप-
सौन्दर्य पर मग्न होकर आक्रमण करता है, किन्तु हार कर वापस लौट जाता
है^२। इसी तरह "कषा कौतुहली" में परियम दिया का राजा कौतुहली के रूप-
सौन्दर्य पर मोहित होकर आक्रमण करता है किन्तु सफल नहीं हो पाता^३।
"कषा मण्डुकरमालती" में अनेक खतनामकों का प्रयोग हुआ है। "विजयावती" में
का बादशाह तथा उसका वजीर, तुर्किस्तान का छत्रपति तथा उसका दामाद
और एक अन्य पातिगाह क्रमशः बारी-बारी से सभी उसके रूप-सौन्दर्य पर
मोहित हो पातली की सरीसृप हैं और प्रणय-सम्बन्ध में बाहने पर उसे अनेक
कष्ट देते हैं। स्वतंत्रक प्रेमास्थानों में "कषा सीतवती" में एक बाबदार कषा
सतवती " में एक पूर्व तथा "कषा कुतवती" में राजा कुतुबुद्दीन खतनामक हैं जो
नायिकाओं को पाने के लिए और उनके हस्त को डिगाने के लिए अनेक अन्य
उप्यों के साथ कुटियां भेजकर उन्हें परेशान करते हैं, पर सफल नहीं हो पाते।
इसी तरह अन्य प्रेमास्थान "विजयावती" में कुटीबर खतनामक रूप में है वह सुबान
एवं विजयावती के प्रणय-सम्बन्ध के बीच जाह्नव करता है। "पद्मावती" में
राघवसेन के अतिरिक्त कुंभतनेर का राजा देवपाल भी खतनामक रूप में जाता है
वह नीच और कामुक व्यक्ति है। रतन्सेन के बंदी होने पर कुमुदिनी नाम की
बुढ़ियां दूती को छत द्वारा पद्मावती को ले जाने के निमित्त भेजता है, किंतु
सफल न होने पर रतन्सेन से मुक्त करता है और मारा जाता है।

१- हूँ वही ठी रागो उत गयी । जाकरकरि छत्रपति संग लयी ॥

कैदमी जाइ वहाँ ही राह । जातैं करत बनाइ बनाइ ॥२९॥

२- चौ०- १४७ से १४९ तक ।

३- चौ०- ५९ से ६१ तक ।

यद्यपि वे जननायक अपने स्वभाव के अनुसार नायिका की प्राप्ति के लिए नायकों के प्रेम-साधना में विघ्न उपनिवेश करते हैं, किन्तु इनके नायकों के जीवन में निवार जाता है, उनकी जगिन परीक्षा हो जाती है और कथानक को विकास मिलता है। "इन्को अवतारणा का अपना एक पुष्क महत्व रहा है जो प्रेम-गायकों के अन्तर्गत समस्याओं की सृष्टि कर उनके निराकरण द्वारा हमारे हृदयों में एक विविध प्रकार के विस्फोटनास को प्रोत्साहन देने में भी देखा जा सकता है।"

सहायक पुरुष-पात्र:-

(1) सहा रूप में:-

नायक के प्रेम-साधना में कभी-कभी मंत्री-पुत्र या अन्य उसके मित्र साथ ही लिया करते हैं जो नायक को उसके विभिन्न संकटकारीन परिस्थितियों में सहायता तथा परामर्श देते हैं और स्वयं साथ रहकर इन परिस्थितियों में कष्ट सहते हैं। नायक के लक्ष्य की सिद्धि इनका कमात्र उद्देश्य होता है इनका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है इसलिए इन्को पता^{का}नायक भी कहा जा सकता है। नायक के विवाह के बाद अर्थात् उनकी साधनापूर्ण होने पर नायक अंत में इनका भी विवाह किसी न किसी स्त्री से सम्पन्न करवा देते हैं।

"कवारतनावती" में मंत्री जगदीवन का पुत्र उत्तम राजकुमार महि-मोहन के साथ पैदा होता है और प्रारम्भ से उसके साथ रहता है। राजा जगतराज जब महिमोहन को "मुद्रिका" देता है तो उसको भी "सरपात्र" देता है^२। महिमोहन के हृदय में रतनावती के प्रति अंकुरित प्रेम का संदेश पती जगत-राज को देता है^३। कुंवर के प्रेम-साधना में साथ चलने बातों में सबसे प्रिय है^४। चीन देश से दूधनगर चलते समय नाव फट जाने पर महिमोहन से अलग हो जाता है और जंगल में रावास, भूत, प्रेत, अप्सराओं के बीच अनेक कष्ट सहता हुआ

१- परशुराम चतुर्वेदी: हिन्दी के सुष्ण प्रेमाख्यान- पृ० १०८, १९६२ ई० ।

२- वी०- १९ ।

३- वी०- २४ ।

४- वी०- ३० ।

पद्मिनी के यहाँ पहुँचाता है जहाँ संयोगवत् पुनः महिमोहन से मिलता है^१। सिंहलद्वीप में रतनावती से पाणिग्रहण होवाने के बाद महिमोहन रावदेन जीटते समय आग्रहपूर्वक इसकी भी शादी पद्मिनी से करा देता है^२। उसी तरह "कथा सुभटराज" में मंत्री नेगी के चार पुत्र नायक सुभटराज के साथ रहते हैं। वे अपना विवाह तब तक नहीं करना चाहते जब तक की कुंवर की शादी हो नहीं जाती^३। वे कुंवर के साथ अष्टदिशाओं की संरक्षण निश्चित हैं। उदीची की राजकुमारी से राजकुंवर की शादी होने के बाद, राजकुंवर के आग्रह वही इन चारों की भी शादियाँ सम्पन्न हो जाती हैं^४। "कथा पुष्पवर्णिता" में मित्र महानंद परीपकारी पुराणोल्लेख की मदद प्रेमपुरी जाते हुए करता है। प्रेमपुरी में सुकेसी की माँ सुकेसी तथा सुरपति की शादी के बाद, सुरपति के आग्रह से बाद में पुराणोल्लेख की निरमलदे से तथा महानंद की परमलदे से कर देती है^५। "कथा कामरानी वा पीतमदास" में नायक पीतमदास के चार मित्र-सीदा-गर पुत्र, बड़ई-पुत्र, काछी-पुत्र, तथा सुरंगियाई जो राजाराम से कामरानी को प्राप्त करने में अपने गुणों के बाजार पर कुंवर की पूरी सहायता करते हैं। बाद में पीतमदास राज्य पाने पर इन चारों को अपना मंत्री बनाता है^६। इस तरह वे मंत्री पुत्र या मित्र, अंत में नायक के सफल होने पर, कुछ न कुछ फल अवश्य पाते हैं। ऐसे ही "कथा कर्तव्य" में मित्र दुर्वेग, "कथा रूपमंजरी" में मित्र न्यानसिंह तथा "ग्रन्थलैल्यमर्तु" में मित्र सतीश, वैद्य, सुरवर्द्धताराइन आदि भी नायकों की सहायता करते हैं।

१- चौ०- ९५ से १२० तक।

२- चौ०- १६४ से १६६ तक।

३- जी ली कुंवर न करे विवाह। नेगी सुत न करे तिय बाह।

माता पिता बहुत कहि हारे। उनके बचन न हिरदै धारे ॥६॥

४- चौ०- ११।

५- चौ०- १६५।

६- चौ०- ११।

(11) सहृदय रूप में:-

सका पात्रों के प्रतिरिक्त कुछ ऐसे भी अन्य पुरुष का पात्र होते हैं जो नायक या नायिका दोनों की विभिन्न परिस्थितियों में यथावसर सहायता प्रदान करते हैं। ये स्वभावतः सरल एवं सहृदय होते हैं। इनमें बृहपुराण, मागी, परदेशी, सेवक, पयक, ब्राह्मण, चित्रकार, गुरु, ज्योतिषी, वैद्य, ऐतिहासिक या परोपकारी पुरुष, नायक या नायिका के पिता आदि हैं।

"कथा मुहुषकरिजा" में पुरुषायोग की परोपकारी भावना का चित्रण कवि का विशिष्ट प्रयोग है। इसकी परोपकारी भावना ही इस काव्य का मूल है। यह पदाी द्वारा सारी विपत्ति कहानी सुनने के बाद उसे पिपड़े में लेकर २ वर्षों में प्रेमपुरी पहुंचता है जहां उसकी माता रूपनिधि पदाी (सुकेसी) को पाकर बहुत हर्षित होता है। मंत्र द्वारा उसे पदाी से पुनः पुत्री बनाती है। पुरुषायोग के परोपकारी भाव से सुरपति एवं सुकेसी की शादी हो जाती है। बाद में पुरुषायोग की निमलदे तथा महानंद की परमलदे से भी शादियां हो जाती हैं^१। इसीलिए कवि कथा के अंत में परोपकार की महत्ता का वर्णन करते हुए कहता है-

कोऊ धिर नाहिन रहे, जो उपग्या सैसार ।

जमर रहत है जगत में, जाँन खुस ठपगार ॥

इसी तरह "कथा मधुकरमातली" में जगदाद का बादशाह हारून-रशीद मधुकर तथा मातली के प्रेम की परीक्षा लेकर दोनों का पुत्र तथा पुत्रीवत् शादी कर उन्हें स्वदेश अयोध्या पहुंचवा देता है^२। "कथा कामरानी का पीतम-दास" में एक बृह-पुरुष शिता पर अंकित चित्र की नायिका का परिचय तथा राजा राम द्वारा अपहरण करने की पूरी कहानी बताता है^३। "कथा तमीम-अंसारी" में तमीम की हाजी में एक "पुरुष" उसे मदीना पहुंचाने में सहायक हुआ है^४। "ग्रंथसैतमजनु" में एक "पुरुष" मजनु के पिता की मजनु की निकतता

१- चौ०- २४० से २४४ तक ।

२- चौ०- २१ ।

३- चौ०- १ ।

४- चौ०- १०० से १११ तक ।

कम होने की युक्ति बताता है^१।

इन पुरुषों की तरह पणिक या बंटाऊ भी सहायक रूप- में विव्रित हुए हैं। "कथा कलावती" में एक "सूयक पणिक" राजकुमारी कलावती का परिचय देकर तथा रूप-सौंदर्य वर्णन कर नायक पुरन्दर के हृदय में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न कर देता है^२। "कथा कामलता" में एक पणिक निज को पहचानकर राजा रमाल को सुन्दरपुरी की शासिका कामलता का परिचय देता है^३।

"कथा नन्दमर्बती" में एक बंटाऊ जंगल में सर्प को मारकर दमर्बती की रक्षा करता है^४। "ग्रंथलैलमज्जू" में एकपणिक ही सैना एवं मज्जू के साथ सदिश एवं पशु-वाहन का कार्य करता है^५। तथा "कथा कौतूहली" में दो बनवारीयों द्वारा राजकुमारी कौतूहली का रूप वर्णन सुनकर नायक सरबंगी उस पर मोहित होता है^६।

ज्योतिषी भी कथा के प्रारम्भ में पुत्र-विशेष में राजाजी की सहायता तथा उत्पन्न संतानों के प्रति भविष्यवाणी करते विव्रित हुये हैं। "कथा रतनावती" में एक ज्योतिषी के सलाह से राजा जगतराज अपना एक अन्य विवाह राजा रतनान की पुत्री जगरानी से करता है जिससे पुत्र महिमोहन उत्पन्न होता है^७। इसी तरह "कथा पुहुपावती" में राजा भूपाल की एक ज्योतिषी द्वारा बताए गये अनेक दान-पुण्य करने पर पुत्र उत्पन्न हुआ है^८। अन्य प्रेमाख्यान दुतहरन्दास की "पुहुपावती" तथा सभाबंदसोधी कृत "कथा काम-रूप" में ज्योतिषियों द्वारा क्रमशः राजकुंवर तथा कामरूप के लिए भविष्यवाणी की गई है। "मुगावती" को राजकुंवर, "पद्मावत" के रतनसेन, "मधुमावती" के

१- चौ०- १९ ।

२- चौ०- १२ से १८ तक ।

३- पंथी चित्रहि देछि बजान्त । याकों हम नीकें पहिबान्त ॥

सुंदरपुरी सुंदरी जाहि । कामलता भाजत हैं ताहि ॥१६॥

४- चौ०- ८३ ।

५- चौ०- ५३ से सर्वथा ५६ तक ।

६- चौ०- ६ से १३ तक ।

७- चौ०- १० से १४ तक ।

८- चौ०- १९ से २१ तक ।

मनोहर तथा "विषाद्वती" के सुमान के लिए भी व्योमिक्ती भविष्यवाणी करते हैं ।

गुरु नायिका से मिलाने में नायकों की सहायता करते हैं । "कथा कलावती" में गुरु "मुरी" देकर कुंवर की सहायता करता है जिससे वह देव की भाँगी कलावती को प्राप्त करता है^१। "कथा मधुकरनाथी" में मधुकर का वियोगावस्था देखकर गुरु उसे विवाह रूप में माती के पास भेजता है । जिससे दोनों का वियोग बढ़ता है^२।

ब्राह्मण या माती कभी भेदिता रूप में तो कभी शानीरूप में नायकों की सहायता करते हुए मिलते हैं । "कथा कलावती" में राजकुंवर परम-रूप को स्वप्न में देखे जैसे रूप के चित्र का परिचय एक ब्राह्मण देता है^३।

"कथाछीता" में एक "ब्राह्मण" पूजा के लिए जाई हुई छीता का दर्शन राजा-राम को कराता है^४। "कथा कलावती" में एक "ब्राह्मण" कलावती तथा इन्दुवदनु के प्रेम प्रसंग का रहस्योद्घाटन राजा मदन्नाह से करता है जिससे दोनों का विवाह होता है^५। "कथानन्दमर्षती" में सुदेव ब्राह्मण ही यमोष्मा के राजा उत्तुपर्ण के यहां नल के वेश बदलकर रहने का पता लगाता है और राजा भीमसेन को पुनः स्वर्णर की राय देता है जिससे नल प्राप्त होता है^६। "कथा कौतुहली" में जाग में एक माती कुंवर सरबंगी को पुत्र मानकर "कौतुहली" से मिलाने में उसकी हर तरह से सहायता करता है^७।

इनके अतिरिक्त कुछ राजाओं के मंत्री, वैद्य, तथा अधिकांश नायक-नायिकाओं के पिता सहायक रूप में प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु इनकी कोई चारित्रिक विशेषता नहीं मिलती है जिससे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इनका कोई विशेष महत्व नहीं है ।

१- चौ०- २९ ।

२- चौ०- ४ ।

३- चौ०- १३ से १५ तक ।

४-

५- विप्र राव की संग है, गयी देहुरे पाव ।

पूजा की जाई हुती, पित छीता करि पाव ।।

६- चौ०- ७२ ।

७- चौ०- ११४ से १२० तक ।

८- चौ०- २० से ३२ तक ।

नायक पुरुष का पात्र:-

सहायक पात्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पुरुष पात्र होते हैं जो नायक-नायिका के प्रेम-साधना या मिलन में बाधा या उत उत्पन्न करते हैं। "कथा छीता" में "विषकार" नायक पुरुष-पात्र है। उसके द्वारा छीता का विष देने पर ही बलावहीन मोहित होकर समहरण करता है^१। "कथा वसुधैव कुटुम्बकम्" में एक लोभी पंडित नायक वसुधैवा को जतकाकर उसे मय से विवर्णित करने के लिए सुतेया के पास ले जाता है, किन्तु उसकी मुद्रिका निकालते समय स्वयं जतकर राख हो जाता है^२। "कथा मधुकल्याणी" में वजीर तथा जयमनी सभी प्याली के रूप-सौंदर्य पर मोहित होते हैं। प्रणय-सम्बन्ध न बाधने पर वजीर उसे प्याली देकर धारता चाहता है^३। जयमनी भाकती में फाँककर जेब कूट देता है^४। "कथा अरदसेर पतिसाह" में जहमन प्रतिसाह की भावना से राजा अरदसेर को विषा का प्याला दिखाया है, किन्तु प्याला गिर जाने से शकल नहीं हो पाया^५।

इनके अतिरिक्त नायक-नायिका के पिता भी कभी-कभी नायक रूप में विवर्णित किए गये हैं। "कथा कल्कावती" में कल्कावती का पिता राजा सिंघ कल्कावती की सगाई के विरुद्ध राजा भरथ से युद्ध करता है^६ और बाद में "परमरूप" के से जाने पर वह वाङ्मय करके दोनों की पानी में बहा देता है जिससे दोनों जेब कूट लहते हैं^७। "प्रवर्ततेमवर्तु" में मवर्तु का पिता उसे लेकर मका बहा जाता है जिससे उसका विरह और बढ़ जाता है^८। लेता का

१- चौ०- १० ।

२- चौ०- ४६ से ६६ तक ।

३- चौ०- ७ ।

४- चौ०- १० से १३ तक ।

५- छूटि परबो प्याली परा, छूटि गयी तिंह नार ।

अरदसेर प्याली महा, पित में करत बिदार ॥९॥

६- चौ०- २३ तथा २४ ।

७- चौ०- ५६ ।

८- चौ०- २० तथा २१ से २४ तक ।

पिता प्रणय-सम्बन्ध नहीं स्वीकार करता^१। वह नौजवान तथा मयूनों के पिता-से युद्ध^२ करता है^३। इसी तरह "कथा मयूरमावली" में भी मयूर का पिता उसे लेकर विदेश चला जाता है जिससे उसे फिर कष्ट सहना पड़ता है^४।

नायिका:-

नायिका के भी सततपण वही लक्षणा हैं जो नायक के। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ नायक सर्वप्रधान पुरुष का पात्र होता है वहाँ नायिका सर्व-प्रथम स्त्री-पात्र। सामान्यतः प्रेमात्म्यानों में नायक की पत्नी ही नायिका होती है, पर ऐसा होना सब प्रेमात्म्यानों में आवश्यक नहीं। उदाहरणार्थ- "ग्रीष्मसैमयन" में मयूनों एवं तैला दोनों पति-पत्नी नहीं है, किन्तु नायक-नायिका हैं। प्रत्येक प्रेमात्म्यान में नायक एवं नायिका दोनों का होना अनिवार्य हो, यह भी नहीं। "कथा निरमल" में केवल नायिका विधवा निरमल है, नायक नहीं। इसी तरह "कथा बलुकिषा विरही" में केवल नायक बलुकिषा है पर नायिका नहीं। कुछ प्रेमात्म्यानों में नायक के जीवन में एक से अधिक नायिकार्थ विभित की गई हैं। यथा - "कथा जिह्वा देवशदे" में दो, "कथा सुभटराज" में तीन, तथा "कथा कर्तदर" में तीन हैं। इनमें कुछ प्रधान तथा कुछ गौण होती है। आन्कवि के ४ थोड़े से ही प्रेमात्म्यानों में यह विवक्षणाता मिलती है। हिन्दी के अन्य सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमात्म्यानों में भी ऐसी विवक्षणाता मिलती है। "डोलामारूरादूहा", "सदयधत्ससावित्रिगा", "मैनासत", "प्रेमप्रगास", "पद्मावत", "विजयवती", "बन्दावन", "मुगावती" आदि में नायक की दो-दो नायिकार्थ, "पुहुपावती" में तीन तथा "छिताईवार्ता" में ज़ेक है।

कवि के नायकों की भाँति नायिकार्यों के चरित्रों में भी प्रेमात्म्यानों की विभिन्न कोटियों के कारण एकरूपता न होकर विविधता पाई जाती है। सततपण प्रेमात्म्यानों के नायिकार्यों का आविर्भाव नायकों की अपेक्षा ज्यादा महत्व पूर्ण है। इनमें जाति-भेद नहीं मिलता। "कथा समीप अन्सारी", "कथा निरमल", "कथा सतवती", "कथा सीतवती", "कथा कुलवती" तथा "बाँदी नावा"

में सामान्य जाति की पतिव्रता, "कथा मधुकुमारिका" तथा "प्रचलितपद्म" में सामान्य जाति की कुमारियाँ, "कथा कुन्दर" में तीन बेरियाँ तथा जोधा सभी प्रेमालम्बियों की नायिकाएँ राजकुमारियाँ हैं ।

नायिका की विशेषताएँ:-

(१) नायक के जीवन में प्रेम के उदय होने के बाद ही प्रामःनायिकाओं में प्रेम का जागरण होता है । कभी यह विवाह के पूर्व तो कभी बाद में होता है, पर इन नायिकाओं में प्रेम का विकास नायक की अपेक्षा धीरे-धीरे होता है । जहाँ नायक सौन्दर्य की प्रथम अनुभूति से ही विकृत हो उठते हैं वहाँ नायिकाएँ प्रारम्भ में नायकों के प्रति कठोरता दिखाती हैं । "कथा रतनावती" में रतनावती कुँवर को देखकर मोहित तो होती हैं^१ पर एक ओर वह वहाँ पद्मिनी से मनुष्य और अप्सरा से प्रेम न होने की बात कहती है^२ वहीं दूसरी ओर कुँवर के ऊपर भूठ-भूठ झोषित होती है^३। "कथा रत्नमञ्जरी" में रत्नमन में एक बार दर्शन हो जाने पर भी रत्नमञ्जरी उपवन में मधुकुन्दन की देखकर मुग्ध होते हुए भी झोष दिखाती है^४। "कथा मोहनी" तथा "कथा छवि-सागर" में नायिकाएँ प्रारम्भ में पहेलियाँ बुझाने समय नायक के प्रति कठोरता दिखाती हैं । इसी तरह "पद्मावत" में पद्मावती प्रारम्भ में कठोरता का परिचय दिया है^५।

नायिका के इस कठोरता का परिणाम यह होता है कि इससे नायक के समक्ष क्लृप्त कठिनाई जाती है जिससे उसकी प्रेम-परीक्षा होती है । जब नायिका को यह प्रतीति हो जाती है कि नायक का प्रेम-सम्बन्ध है तब उसकी कठोरता समाप्त हो जाती है । यह कोमल हो जाती है और नायक के

१- चौ०- १३५ ।

२- काहिन बोलहि नवन बिचार । मनुष्य अप्सरा कैसी प्यार ॥

बाकों दूरि करें ठिठ करिही । पै हाँ बाकी छिट्ट न परिही ॥ १३४ ॥

३- चौ०- १३७ ।

४- चौ०- १३२ ।

५- पद्मावत - छंद १८६ ।

समस्त आत्म-समर्पण कर देती है। ये नायिकाएँ यदि जीव ही आत्म-समर्पण कर दें तो नायक के साधना की पूर्ण परीक्षा कैसे हो? इन नायिकाओं में भारतीय नारी का सहज, सुन्दर एवं उदात्त चरित्र वर्णित होता है। "कथा रतनावती" में रतनावती कोष के कुछ वाण बाद ही महिमोहन के पास जाकर आत्म-समर्पण कर देती है और संभोग तक का उत्तर दे देती है^१। "रतनमंजरी" भी उपवन से घर जाकर स्वप्न में दमे हुए विज के समान कुंवर को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठती है और सखियों द्वारा माता-पिता से खबर करवाती है^२। मोहनी तथा छवितागर भी व्रत में आत्म-समर्पण कर देती हैं। इसी तरह पद्मावती भी कठोरता के बाद कोमल होकर अपना प्राण तक बलाने के लिए तैयार हो जाती है^३ और व्रत में रतनेन की मृन्मू पर गती हो जाती है।

(२) ये नायिकाएँ अतीव सुन्दरी हैं। कवि ने समस्त काव्यों में उनके रूप-सौन्दर्य या नख-शिव का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उनके इसी सौन्दर्य से प्रभावित होकर नायक जीव आकर्षित हुए हैं। "कथा रतनावती" में नायक महिमोहन पद्मिनी द्वारा रतनावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनते ही, मूर्छित हो जाता है^४। "कथा मधुकरमालती" में मालती के अत्यन्त सौन्दर्यवती होने से कुंवर मधुकर पाठाशाता में प्रथम-दर्शन से मुग्ध हो जाता है^५। अधिक रूप-वती होने से ही अनेक राजा कैसे देखते ही प्रभावित होकर लरी-दते हैं। "कथा छीता" में अलाउद्दीन छीता के रूप-सौन्दर्य से ही प्रभावित हुआ है। सत्यपरक प्रेमाख्यान की सभी नायिकाएँ रूप की अपार निधि हैं। इसी तरह हिन्दी के

१- चौ०- १२९।

२- चौ०- १४२।

३- पद्मावत-छंद- ४०१।

४- चौ०- ८७।

५- जिससे हैं कुच बोरे-बोरे। कंक मबूला गोरे गोरे ॥

भयौ उवारी छाती तिया। मनहुं जराड धरे दै दीया ॥

मधुकर देखात मूर्छित भयौ। मावति बास मगन हवे गयौ ॥

प्रियेनी तियु देखाति भाई। पर्यौ भीम मानौ प्रियी जाई ॥१॥

सूफ़ी तथा असूफ़ी अन्य प्रेमात्मानों की नायिकाएँ भी अत्यन्त सुन्दरी विव्रित की गई हैं, किन्तु सूफ़ी प्रेमात्मानों की नायिकाएँ वहाँ परमात्मा के प्रतीक रूप में विव्रित हुई हैं वहाँ असूफ़ी नायिकाओं के विना यह संकेत नहीं मिलता । "पद्मिनावती", "मृगावती", "मधुमावती" आदि सभी नायिकाएँ सामान्य नायिकाएँ नहीं हैं । इनके सौन्दर्य का विवर्ण करते-करते कवि इन्हें आनन्दजन बनाकर परम-सौन्दर्य के रूप में अपनी एक विशिष्ट साधना-पद्धति को प्रकट करने का प्रयास करते हैं । जिससे उनके चरित्रों का स्वाभाविक विकास नहीं मिलता, किन्तु असूफ़ी कवियों ने नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में ऐसा नहीं किया है ।

(३) जानकवि की नायिकाएँ असूफ़ी प्रेमात्मानों की नायिकाओं की भाँति तथा सूफ़ी प्रेमात्मानों की नायिकाओं की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक विव्रित की गई हैं । वे अपने नामों की अपेक्षा अधिक भाव-प्रज्ञ, कोमल, अनुभूति-प्रवण, संवेदनशील और समर्पणाशील हैं । वे प्रेम की सजीव प्रतिमाएँ हैं । इनमें विरह-प्रेम की तीव्रता है । विरहजन्य-वेदना, करुणा, प्रेमोर्ष तथा अनु-राग ही इनका नित्य है । "कथानन्दमर्षती" में यकी द्वारा पत्र पाने पर नल की अपेक्षा दमर्षती का विरह-प्रेम अधिक तीव्र हो जाता है^१। वह नल द्वारा जंगल में छोड़ देने पर अनेक कष्ट और चिन्ता में भी नल से पुनः मिलने की आशा से जीवित रहती है^२। "कथा विहङ्गा देवतदे" में माता कदला द्वारा दोनों के अलग कर देने पर देवतदे का विरह विहङ्गा की अपेक्षा बहुत बढ़ जाता है । वह आजीवन विरह में तड़पती रहती है^३। "कथा मधुकरमालती" में मालती

१- जी०- ४३ से ५२ तक ।

२- हौं नाहिन जरि जात हौं, चिन्ता की हुतास ।

मोकौ मरन न देत है, नल मिलिबे की आस ॥८४॥

३- (१) देवतदे जति हो दुष्णिज, छीन भयौ तिय गात ।

पवन बीच मैकी लगै, बहरत जैसे पात ॥

(२) विरह तपति देवत बरी, पुनि बैरी कहि लागि ।

जाय जरी जरी सबनि, कहत जानि ज्यों लागि ॥

जगह के जनेक कष्ट पाने पर भी उसके प्रेम की तीव्रता कम नहीं होती । वह मछुकर के लिए विरह में विदग्ध रहकर किसी अन्य को मुह नहीं लगाती जिससे दास-प्रेमा की तरह कई जगह तरीदी तथा बेबी है । "कथा रतनमंजरी" की रतन-मंजरी, "कथा कलावंती" की कलावंती, "कथा कनकावती" की कनकावती, "कथा कर्तदर" की तीन बेरियाँ, "कथा कामरानी वा पीतमदास" की कामरानी आदि सभी भी अपने नायकों के प्रति अधिक संवेदनशील और अनुकूल हैं । कवि इन्हीं की वियोगावस्था को लेकर अपने समाप्त बारहपासे का वर्णन किया है । इसी तरह मछुकी अन्य प्रेमाख्याओं की नायिकाएँ जैसे -राजमती, छितार्द, मारणगी, कामकंदला, रत्नियणी आदि भी नायकों की अपेक्षा अधिक विरही, संवेदनशील एवं समर्पणाशील हैं । मछुकी प्रेमाख्याओं में नायिकाओं के प्रेम की तीव्रता नायकों की अपेक्षा कम है । इन्हीं से प्रभावित वाङ्मय ने केवल अपने "प्रियतैमयनू" में मजनु की विरहावस्था, संवेदनशीलता तथा प्रेम की प्रखरता, लैला की अपेक्षा अधिक प्रदर्शित किया है ।

(४) संवेदनशील, विरह की तीव्रता तथा अनुभूति अधिक होते हुए भी ये नायिकाएँ निरचेष्ट तथा गतिहीन वैसे लगती हैं । इनमें गतिशीलता नहीं है, सक्रियता नहीं है, साहस नहीं है। ये नायकों की भाँति विकट परिस्थितियों एवं व्यवहार के उन्मुख जगत में नहीं उतरती । इनके चरित्र में जीवन सम्बन्धी उत्थाव-पतन तथा संघर्ष कुछ भी नहीं मिलता । इनके चरित्र का बहु-मुखी विकास नहीं देखा जाता । इनमें एकांगीपन मिलता है । "वह अपने प्रेम-पात्र को पाने के लिए दोनों प्रकार की रचनाओं में प्राप्त एक समान ही कोई विकट पतन करती नहीं देखी जाती और इसके सभी उदाहरण हमें अधिकतर नायकों की संकटपूर्ण वेष्टाओं में ही मिलता करते हैं । परन्तु यह बात कदाचित् इस कारण भी सम्भव है कि स्त्रियों में स्वभावतः उतनी गतिशीलता नहीं देखी जाती जहाँ पुरुष अपनी कार्य-सिद्धि के लिए जिधनों से लड़ते हुए भी पाने जाते हैं।" "कथा रतनमंजरी" में नायक मछुसूदन को पकाने के उड़ा ले जाने

पर रतनमंजरी-विरह में तड़पती है, पर होउने नहीं चिन्की । "क्या कामरानी का पीतमदास" में राजाराम के ठठा ले जाने पर कामरानी मर्यं कुछ प्रयत्न नहीं करती, सारा प्रयत्न तो पीतमदास ही करता है । "क्या छोटा" में अनाउहीन के ठठा ले जाने पर राजाराम को ही सारा प्रयास करना पड़ा है । वही तरह हिन्दी के सुफूँ तथा बसुफूँ प्रेमाख्याओं में भी तापकों को ही सारा प्रयत्न करना पड़ता है । वे बहुत करती हैं तो प्रेमियों के पास कभी विरह-संदेश भेज देती हैं या सज्जियों के साथ उपवन या मंदिर में जाकर प्रेमी से भेट कर जाती हैं या घर में बैठे सदा विरह में गुता करती हैं जबका कनिष्प विरह की मुक्तिर्पा सोचा करती हैं । मुझे लगता है कि उन समय ईरानी और भारतीय प्रेमाख्याकारों ने सम्भवतः नारी को ^{अवतार} जगत में इसलिये नहीं चित्रित किया है कि प्रारम्भ से ही इन्का कार्य बीच गूढ़ रहा है, वे बाह्य जगत की प्राप्ति नहीं सम्पन्नी जाती रहीं हैं इसलिए भारतीय-साहित्य में उन्हें अधिक सहनशील, कोमल, कुलवती, शैलवती, सत्यवती एवं भावप्रव चित्रित किया गया है । इसीकारण भारतीय समाज के भीतर वे इससे अधिक करने में असमर्थ रहीं हैं ।

(५) इनके प्रणय में दुढ़ता है, एकनिष्ठता है, पातिव्रता है, शीलता है, कर्तव्यपरायणता है, सहिष्णुता है, सहृदयता है, सहनशीलता है, निःस्वार्थता है, आदर्शवादिता है तथा स्वच्छन्दता है । इन्का प्रेमी के प्रति एकनिष्ठता एवं दुढ़ता का कारण सक्म सम्भवतः यही हो सकता है कि भारतीय समाज में वे सदा पुरुषों की सहचरिणी एवं अनुयायिनी होने से पुरुषों की अपेक्षा इन्का स्थान गौण रहा है जिससे वे पति को सदा अपने से बेछूत स्तर पर प्रतिष्ठित करने का भाव रखती रहीं हैं । "क्या मधुकरमासती" में मासती मधुकर से बिछुड़ते समय प्रेम की एकनिष्ठता का दुढ़ संकल्प करती है^१ । बड़ीर द्वारा खरीदकर ले जाते समय गुरु से प्रेम के एकनिष्ठता का संदेश कहल-जाती है^२ । अनेक जगह खरीदी तथा बेची जाने और अनेक राजाओं के मोहित

१- मासती मधुकर आपु मैं, की करता की जान ।

दोऊ का सैतार मैं, मित करे ना जान ॥

२- वी० - ५ ।

होकर कष्ट एवं प्रलोभन देने पर भी वह मधुकान के प्रेम में दृढ़ रहती है^१। वह दृढ़तापूर्वक बरमनी को डाँटती है^२। "कथा कामराजी" का पीतपदाम" में कामराजी का प्रेम पीतम दास के प्रति इतना दृढ़ है कि कामराजी के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह उससे प्रेम नहीं करती है^३। "कथा छीता" में जताउहीन के प्रेम करने पर तथा अनेक प्रलोभन देने पर छीता राम के प्रति तथा "कथा कपलावती" में एक देव के उड़ना से जाकर अनेक प्रलोभन देने पर कपलावती इन्दुवदनु के प्रति-प्रेम में दृढ़ है। छीता इस दृढ़ता के पूर्व जताउहीन को गड़ में पहनाकर तथा उसे वहाँ से भगाकर अपनी कोमलता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया है^४।

कभी-कभी माता-पिता के ज्ञान वादने पर भी ये नायिकाएँ प्रेम में स्वच्छन्द-भाव से दृढ़ दिखाई देती हैं। "प्रियतिलमयनू" में जैता इचनसनाम से विवाह की बात सुनते ही माता-पिता की इच्छा के प्रतिकूल मयनू के प्रति प्रेम की एकनिष्ठता प्रकट करती है^५। विवाह के बाद भी वह इचनसनाम से प्रेम नहीं करती और मयनू के प्रति पत्र द्वारा प्रेम-संदेश भेजती है^६। "कथा कीतुहती" में राजा जगरूप के परिचय दिना के राजा के साथ सगाई निश्चित करने पर कीतुहती उसका विरोध कर नायक सरबंगीके प्रति अपने प्रेम की एकनिष्ठता प्रकट करती है^७। "कथानलदमवती" में दमवती नल के प्रेम में इतना दृढ़ है कि पिता

१- चौ०- ७ से ९ तक ।

२- कहिषीं छेरी कथा मयात । मोहि भर्यो चाहत अकमात ॥९३॥

३- चौ०- ५ ।

४- मैं तुहि दीनीं दानियो, हौं बहुमांगत जाहि ।

जब तू छेरी छाड़ि कै, बेगी डीली जाहि ॥९३॥

५- हौ मयनू विन करी न और । मन मैं नाहिं जानि की और ।

जो कोऊ मुहि डारे पार । दुजौं नाहिं करी भरतार ॥

येक पुराण के नाहि अनेक । है पुराणिन के तिया न येक ॥९४॥

६- चौ०- ४० ।

७- चौ०- ५९ ।

भी मोहन के बाहने पर भी वह नम्र किसी से विवाह नहीं करना चाहती^१। "कथा कल्पावली" में राजा सिंघ के विरोध करने पर कल्पावली नामक परमरूप के प्रति तथा "कथा विग्रहा देवदे" में माता का विरोध करने पर भी देवदे विग्रहा के प्रति प्रेम में दृढ़ है। उसी तरह हिन्दी के सुफली तथा समुफली प्रेमाख्यानों की नायिकाएँ भी प्रेमी के प्रति के एकनिष्ठता और दृढ़ता दिखाती हैं। पद्मावती रतनसेन के शूरी की आज्ञा सुनकर उसके पास किनासा दृढ़ संलग्न भवती है-

काढ़ि मान बैठी लेह हाया । मरि तौ मरौं जियौं येक साथी ॥

प्राकृत के "वासुदेवहिंडी" में गणिका वसंतविरता, धम्मिल के प्रति प्रेम में इतना दृढ़ है कि अपनी माँ तक की बात नहीं मानती। गंध, पुष्प तथा जलधार छोड़कर विरहिणी का व्रत धारण करती है।

सतपरक तथा अन्य कुछ प्रेमाख्यानों की नायिकाएँ जनेक कष्ट सहने पर भी अपने पातिव्रत-धर्म की रक्षा करती हैं। "कथा सीतवंती" में बाबदार द्वारा भेजी हुई दो कुटिनियों, "कथासतवंती" में एक शूर्प द्वारा भेजी हुई बार कुटिनियों तथा "कथाकुसवंती" में कुसुमहीन द्वारा भेजी गई पाँच कुटिनियों की अच्छी पराम्परा करवाके ये सभी नायिकाएँ अपने पातिव्रत-धर्म की रक्षा करती हैं। उसी तरह "छिताईवार्ता" में छिताई तथा मैनासत में मैना कुटिनियों से अपनी रक्षा करती है। "कथा निरमल" में विधवा निरमल अपने सत्य के बचाव के लिए एक पतिव्रत के मोहित होने पर अपनी दोनों बहिन तक निकालकर दे देती है जिससे बाद में अवैधित बहुत लज्जित होता है^२। "कथा बन्धुसेन राजा सीतनिधान" में राजा के तीन बेटियों पर मोहित होकर प्रेम करने पर भी सीत निधान एकनिष्ठ भाव से पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करती है। इसके उस कर्तव्य-परायणता से व्रत में राजा बन्धुसेन परवाताप करते हुए उसके शील की प्रशंसा करते हैं और नतमस्तक होते हैं^३। "कथानन्दमपंती" में दमपंती नल के बहुत बाहने पर भी जंगल में साथ नहीं छोड़ना चाहती^४। जनेक कष्ट सहती है और

१- बी०- १० ।

२- बी०- १२ ।

३- बी०-१५ ।

४- तुम तौ मोकी छाडि ही, हाँ तुम छाडति नाहि ।

साथि विहारी होति ही, ज्यों पट के संग छाहि ॥७३॥

जंत में नल के मृत्यु पर सती हो जाती है^१। उसी तरह छीता, कक्कावती, मानती, कक्कावती; कामरानी आदि भी यथाक्रम अपने पतिव्रत-धर्म का बजाव करती हैं। "पतिव्रत-धर्म की रक्षा के लिए ऐसी पत्नियों में ठीक वैसे ही कष्ट सहन किए हैं जैसे कष्टकर प्रेमियों को भोगने पड़े हैं। इनकी पति-निष्ठा का प्रमाण कभी-कभी इनके अपने पति के साथ सती हो जाने तक में मिला है^२।"

उस तरह हम यह सकते हैं कि इनको अपने सतीत्व पर अमिट विश्वास है। वे भारतीय सती नारी की प्रतिभाषित हैं इनमें युवतियों की उदात्त कामवासना नहीं। लौकिक रूप में आदर्श प्रेयसी हैं। इनके चरित्र, रूप तथा शील में अलौकिक संकेत है। वे नारीत्व की शारवत् एवं उदात्त प्रवृत्तियों की प्रतीक हैं। हिन्दी के अछूती प्रेमास्थानों में भी इस तरह की नायिकाओं का चित्रण मिलता है पर अछूती प्रेमास्थान की नायिकाएँ ऐसी कम ही हुना करती हैं।

(६) ये नायिकाएँ प्रायः पहले से दुराचारिणी नहीं हैं। वे प्रारम्भ में अविवाहित हैं और इनका विवाह प्रायः कथानायकों से हुआ है। वे विवाह के पूर्व वासनात्मक प्रेम नहीं करती। "कथा कामरानी वा पीतम-दास" में पीतमदास के सुरंग द्वारा मिलने पर तथा उसे कामासक्त देखकर काम-रानी उसे समझाती है^३। "कथाकक्कावती" में बिना विवाह के नायक परमरूप के बहुत चाहने पर भी वह संभोग की अवसर नहीं देती^४। उसे लोक-तन्त्रा है इस-लिए बोगी द्वारा विवाह की रीति-भांति कराकर ही संभोग का अवसर देती

१- छीता - १४५।

२- परशुराम चतुर्वेदी: भारतीय प्रेमास्थान की परम्परा-पृ० १३६, १९५६ ई०।

३- वही कहे जो घर है जाहि। पिता मोहि है तोहि विवाहि॥

तब पाछे जो कहे सुकरिही। अबहीं नहीं पाप मैं परिही॥९॥

४- बिनु ज्यादा बिनु बेठिहू, कहा कई करतार।

कुलनि कलंक कलंक हूँ, गुर की लागे गार॥

है^१। "कथामधुकरमालती" में मालती भी वनेक जगह राक्षसों वा अन्य पुरुषों के कामासक्त होने पर किसी को संयोग का अवसर नहीं देती। इसी तरह संभवतः "मधुमालती" में भी पाणिग्रहण के पूर्व मनोहर को कामासक्त देखकर मधुमालती उसे सम्भगती है^२।

इन नायिकाओं में संयोग की प्रक्रिया प्रायः विवाह के बाद ही मिलती है। यद्यपि "कथा रतनावली", "कथा रतनमंजरी" तथा "कथापुटुप-वरिष्ठा" में नायिकाएं विवाह के पूर्व ही कभी स्वप्न-मिलन में तो कभी उपवन में संयोग रूप में विवश हुई हैं, पर फिर भी कवि सर्वाद का ध्यान रखता है। "कथा पुटुपवरिष्ठा" में सुकेसी एवं सुरपति का उपवन में संयोगन-वस्था में देखकर सुकेसी की माता उसे लोकतन्त्रा के भय से पलायन करवा देती है। तैला इत्यन्तताम से विवाह होने पर न उन्हें संयोग का अवसर देती है और न अपने प्रेमी मयन को ही।

(७) वे समस्त नायिकाएं अंत में पतिपरायणा-गृहिणी के रूप में दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करती विवश हुई हैं।

प्रतिनायिका:-

नायिका के मार्ग में सबसे अधिक प्रतिकूल उत्पन्न करने वाली स्त्री-पात्र की प्रतिनायिका कहते हैं। वे कभी काव्य में एक, कभी एक से ज्यादा, तो कभी एक भी नहीं होतीं। वे सभी नायिकाओं की भांति सुन्दर होती हैं। वे नायिकाओं से कभी सद्व्यवहार रखती हैं तो कभी लड़ती-भगड़ती हैं। नायिका के अधिकार गुण इनमें विद्यमान मिलते हैं। इनमें केवल त्याग तथा सकल आत्म-समर्पण ही नहीं, बल्कि पति की उपेक्षा तथा कठोरता सहने की शक्ति होती है।

१- चौ०- ४२।

२- एक निमित्त सुख कारण, जापहु सरबस कौन नसाउ।

तिरिया बोरैहि नाकरन, जग अपकीरत पाउ ॥

जैसा की पूर्व ही संक्षिप्त किया जा चुका है कि जानकवि ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रतिनायिकाओं का प्रयोग बहुत कम किया है। "कथा बन्दसेन राजा सीतनिषान" में तीन चेरियाँ, "बाँदी नावा" में एक चेरि तथा "कथा विग्रहा देवलदे" में रानी कनका की पुत्री ही प्रतिनायिकाएँ हैं। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रेमाख्यान में कवि ने प्रतिनायिका का प्रयोग नहीं किया है। पूर्व दो ग्रंथों में क्रमशः राजा बन्दसेन तथा पिमाँ चेरियों के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर अपने विवाहिता की उपेक्षा कर उन्हें अपने घटनी रूप में रखते हैं किन्तु बाद में लोकतन्त्रा के भय से उन्हें निकालकर पुनः जाने विवाहिता में अनुरक्त होते हैं। "कथा विग्रहा देवलदे" में नायक विग्रहा देवलदे की उपेक्षा दूसरी घटनी को बहुत कम चाहता है। वह प्रतिनायिका होते हुए भी देवलदे से ईर्ष्या तथा डाह नहीं रखती, बल्कि सद्भावना दिखाने है। पर उपर्युक्त चेरियाँ नायिकाओं के साथ सद्भावबहार नहीं रखतीं। असूफ़ी प्रेमाख्यानों की प्रतिनायिकाओं यथा- "कोलामादूरादुहा" में मानवणी, "प्रेम प्रगास" में जानमती, "रसरतन" में कल्पलता, "लक्ष्मसेन पदमावती" में बन्दावती, "पुहुपावती" में रंगीली तथा रूपावती आदि की भाँति इन्का भी व्यक्तित्व दबा-सा रहता है। ये केवल पति की सेविका बनकर रहने में गर्व का अनुभव करती हैं। सूफ़ी प्रतिनायिकाओं यथा-"पद्मावती" में नागमती, "विजावती" में कीलावती, "मुगावती" में रत्नकिमन आदि की भाँति इनमें नारी हृदय की सहज अनुभूतिवाँ गुणा, ईर्ष्या, त्याग आदि परिलक्षित नहीं होता। इस तरह जानकवि ने राजस्थानी प्रभाव से अपने प्रेमाख्यानों में प्रतिनायिकाओं की योजना बहुत कम किया है जोकि नहीं के बराबर है। राजस्थानी प्रेमाख्यानों में प्रतिनायिकाओं की अवतारणा बहुत कम हुई है। ईरान के सूफ़ी व कवियों ने तो अपने प्रेमाख्यानों में प्रतिनायिकाओं का बिल्कुल उपयोग ही नहीं किया है।

सहायक-स्त्री-पात्र:-

सहायक स्त्री-पात्रों में नायक-नायिका की सखी, चेरि, दाई, सेविक मालिनि, बूढ़ा, तथा माता आदि हैं जो नायक-नायिका के विरहावस्था में

कभी सहायुक्ति दिलाती है तो कभी दोनों को भिन्नाने में सहायक होती है । "कथा रत्नमंजरी" में सखियां, सहेलियां तथा बैरिया ही उपवन में मधुसूदन को लाकर रत्नमंजरी से भिजाती हैं^१ और रत्नमंजरी के माता के पास दोनों का प्रेम-संदेश पहुंचाती हैं । "कथानन्दमंजरी" में दमयंती नल का साथ छोड़ देने पर एक बूढ़ा ब्राह्मणी के यहां पहुंचती है जहां सभी सुन्दरा तथा अनेक बैरियां उसकी मदद करती हैं^२ । और दुबारा स्वयंवर में केसरी शेरिका नल के गुप्त-वेश में रहने का संदेश देकर दमयंती का विरह कम करती है^३ । "कथाचित्रां देवदे" में नायक तथा नायिका की बार-बार बैरियां क्रमशः करना, कूना, चंपा तथा गुलाब और नरगिस, कस्तूरी, बूही एवं कपूरी माता द्वारा विलग करने पर विरहावस्था में दोनों के बीच संदेश-वाहन का कार्य करती हैं^४ । "कथा कौतूहली" में अनेक बैरियां कौतूहली के साथ उपवन में नाचती गाती और सरबंगी से मिलाने में सहायता करती हैं^५ । बाग में जाने से माता-पिता द्वारा प्रतिबंध लगने पर एक दाई सरबंगी का पता लगाकर दोनों के विरहावस्था में संदेश-वाहन का कार्य करती है^६ । "कथा कुलवंती" में कुलवंती की अनेक बैरियां उसके सत्य की रक्षा के लिए राधा कुतुबुद्दीन को जान से मार डालती हैं^७ । इसी तरह अन्य प्रेमाख्यान रचना की "मधुमालती" में सभी प्रेमा मनोहर को मधु-मालती से मिलाने, शेखनवी कृत "शान्दीपक" में सभी सुरजानी शान्दीपक और देवमानी के प्रेम को दृढ़ कराने तथा चतुर्भुवदास की "मधुमालती" में सभी वैतमाल नायक-नायिका के बीच संदेश-वाहन का कार्य करने में प्रयत्नशील हैं ।

मातलिनि भी सहायक रूप में चित्रित हुई हैं । "कथादूपमंजरी" में एक मातलिनि द्रव्य के लोभ से भेदा बदलकर योगी-वेश धारी कुंवर शानसिंघ का रहस्य रूपमंजरी को बताकर दोनों के मिलाने में सहायता करती हैं^८ । "कथा-

१- चौ०- १३१ ।

२- चौ०- ९१ से ९३ तक ।

३- चौ०- १२० ।

४- चौ०- २५ ।

५- चौ०- २६ से २९ तक ।

६- चौ०- ६३ से ६६ तक ।

७- चौ०- ४२ तथा ४३ ।

८- चौ०- २० से २९ तक ।

कामरानी वा पीतमदास" में भी एक माहिनि राजाराम के वहाँ राज्य के लोभ से कुंवर पीतमदास का विष छिपाकर महल में कामरानी को देती है^१। इसी तरह दुलहरनदास की "पुहुपावती" में भी एक माहिनि नायक-नायिका के बीच प्रेम-घटक का कार्य करती है। जैसे बरिच-विषण की दृष्टि से इन समस्त मरा-
यक स्त्री-पात्रों का कोई विशेष महत्व नहीं है पर प्रेमाख्यानों में नायक-
नायिका के बीच प्रेम-मार्ग की बाधाएँ हटाकर प्रेम-साधना को पूर्णता तक पहुँ-
चाने में इनकी उपादेयता कम मान्य नहीं है।

बाधक स्त्री पात्र:-

इसके अन्तर्गत बान्कवि ने दूती या कुटनी, बेरी, धाड़, जंगिनि, नायिका की माता आदि को विधित किया है। ये नायक-नायिका के प्रेममार्ग में बाधा पहुँचाती हैं, पर सफल नहीं हो पातीं। कुटनियाँ या दूतियाँ प्रायः प्रतिनायकों की ओर से बहुत बुरा एवं अव्यवहार से नायिकाओं के साथ की छिगाने का प्रयास करती हैं। सतपरक प्रेमाख्यान "कथाकुलवती" में प्रतिनायक कुतुबुद्दीन की पाँच कुटनियाँ- नाइनि, बुरिबाइनि, ज्योतिनि, बितेरिनि, माहिनि तथा जोगिनि तथा "कथासीलवती" में बाबदार की दो दूतियाँ- सुनारिनि, तथा रंगैरिनि नायिकाओं को साथ से छिगाने के लिए बने उपाय करती हैं, किन्तु सफल नहीं हो पातीं। "कथानिरमल" में एक बदमाश द्वारा प्रेषित धाड़ भी ऐसे ही प्रयास करती है। इसी तरह अन्य असूफी प्रेमाख्यान "छितार्डवार्ता", "बीसनदेवरास", "मैनासत" आदि में भी कुटनियाँ बाधक रूप में विधित की गई हैं। सूफी प्रेमाख्यानों में इनका प्रसंग नहीं मिलता।

"कथा रतनावती" में एक जंगिनि वन में कुंवर के प्रणय न बाहने पर उससे बुरात पिसवाती, जंगल से लकड़ी तोड़वाती तथा अन्य बनेक कष्ट देती है^२। "कथामकुंदमासती" तथा "गुंयतैमवतू" में माताएँ मातृता तथा सैला को बटसार पड़ने नहीं जाने देती जिससे दोनों की विरह-विषोग होता है। "कथाविजय" देवतदे" में एक खानी बेरी के शिकायत से सौतेली माता रानी कदना दोनों को बलग-बलग कर देती हैं जिससे दोनों की विरह होता है^३। "कथा पुहुपवरिणा"

१- बी०- ६६ से ८८ तक।

२- बी०- ३९ से ४४ तक।

३- बी०- २१ से २७ तक।

में ती माता "रूपनिधि" सुकेली पर कूट होकर उसे अभिषेक द्वारा पद्मी बना देती है । ऐसे ही संभन की मधुमातली में भी माता ^{कूट} होकर मातली की अभि-
षेक द्वारा पद्मी बनाया है ।

यद्यपि चरित्र-विवरण की दृष्टि से इन नायक-पत्नी-चरित्रों का कोई महत्व नहीं है फिर भी कथानक के विकास की दृष्टि से इनका महत्व है । ये प्रेम की तीव्र एवं सशक्त करती हैं बिना नायक-नायिका की प्रेम-परीक्षा होती है । इस दृष्टि से प्रेमाख्यानों में इनका महत्व है ।

मानवीय प्राकृतिक-पात्र:-

मानवीय पात्रों के साथ कुछ मानवीय प्राकृतिक एवं दार्शनिक पात्र भी इन नायक-नायिकाओं की प्रेम साधना में कभी सहायता करते हुए तो कभी मार्ग में बाधा पहुँचाते विभित हुए हैं । प्राकृतिक पात्रों के अन्तर्गत तोता, तुलसी या जन्म पद्मी जीर हाथी, घोड़ा, ऊँट, बाघ, मगर, सर्प आदि वंगली पशु तथा अन्य जानवर हैं । पक्षियों का विशेष उल्लेख अपिकांतः कम-सम्बद्ध कहानियों में हुआ है^१। वे अपिकांत सहायक रूप में प्रयुक्त हुए हैं । कभी-कभी ये मानवीय जागरण करते हुए कभी देखे जाते हैं । "कथाकवलावली" में एक तोता नायक-नायिका के बीच प्रेम-पटक का कार्य करता है । दोनों के बीच एक दूसरे की रूप-प्राप्ति, संदेश, पत्र- या विप्र-वाहन का कार्य करता है^२। नाय से मिलने होने पर यही पुनः दोनों की जोड़ करता है^३। "कथा नन्दमयती" में एक पद्मी नायक-नायिका के विरहावस्था में दोनों के बीच संदेश एवं पत्र-वाहन का कार्य करता है^४। कभी-कभी में पद्मी नायक की एक रवान से दूसरे रवान पर उड़ा ले जाकर उनके अभीष्ट की प्राप्ति में सहायता प्रदान करते हैं । "कथारतनावली" में एक पद्मी नायक की सिंहलद्वीप उड़ा ले जाता है जहाँ उसे पद्मिनी रतनावली

१- डा० सत्येन्द्र - प्रबलोक साहित्य का अध्ययन, पृ०-५००, १९४९ ई० ।

२- चौ०- २९ से ७० तक ।

३- चौ०- १८० से १९६ तक ।

४- चौ०- ३० से ४९ तक ।

मे भेट करती^१। उसी तरह "कवारतनमंजरी" में नायक मधुसूदन को पत्नी उड़ा-कर रतनमंजरी के उपवन, "कवानकुशिया विरही" में कुशिया को "केकुण्ठ" तथा "कवातमीमंजरी" में एक गतुर्मर्ग नायक लमीम को दोरगूर पत्थर में पहुँचा देता है। इस तरह वे सम्मत् पत्नी किसी न किसी रूप में नायक की मदद करते देहे जाते हैं। केवल "कवासीलवंती" में प्रतिनायक बाबदार द्वारा भेजा गया तोता भेदिया रूप में है। वह संस्कृत में जोकर सतवंती को बुराई करता है^२।

इसी तरह हिन्दी के अन्य सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमात्मानों में भी पक्षियों का प्रयोग हुआ है। "पद्मावत" में हीरामन सुगुगा जाध्यामिक-गुरुन के रूप में जाना है। वह रतनसेन को पद्मावती की ओर आकर्षित करता है, उसे सिंहलदीप का मार्ग दिखाता है तथा निवास होने पर डाँड़स बंधाता है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा पत्नी नागमती का संदेश सिंहलदीप ले जाकर रतनसेन से कहता है। तीसरा एक अन्य राजपत्नी, समुद्र से राजास को लेकर उड़ जाता है जिससे रतनसेन तथा पद्मावती की रक्षा होती है। इस तरह पद्मावत में पक्षियों का बड़ा महत्व रहा है। "सरतन" में विष्णुपति नामक तोता, "बोलामारूरादूहा" में एक तोता, "विजावती" में परेवा, "मुहुपावती" तथा "प्रियप्रगास" में मैना पत्नी नायक - नायिका के बीच प्रेम-वटक का कार्य करते हैं। पंचतंत्र की कहानियों में पक्षु-पक्षियों का बड़ा महत्व है।

प्रश्न: भारतीय-प्रेमात्मानों में वह प्रेम-संदेश इन मनुष्येतर प्राणि-यों द्वारा ही भेजवाया जाता है? सम्भवतः इसका कारण यही हो सकता है कि वे पत्नी विरह के संदेश ले जाने में अपना कोई व्यक्तित्व नहीं मिलाते और स्वयं प्रेम की उस विशेष भावना के प्रतीक होने के कारण प्रेमी के भावों को प्रिय के सम्मुख पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देते हैं। यदि मनुष्य द्वारा वह संदेश भेजा जाय तो संदेश-वाहक का व्यक्तित्व उसमें हस्तक्षेप करके संदेश को उसीरूप में नहीं दे पाता।

तथा-

इन पवित्रों के अतिरिक्त पशु-वन्य जंगली जानवर तथा-
हाथी, घोड़ा, ऊँट, सर्प, जखर, जादि "कथा राजनावती" ^१ में महिमोहन
को, "कथारतनमंजरी" ^२ में मधुसूदन को, "कथा कृष्णावती" ^३ में इन्दुवदनु को,
"कथानन्दमंजरी" ^४ में दमंती को तथा "कथा सुभट्टराज" ^५ में उदीची, प्रतीची,
तथा जवाची की राजकुमारियों को जंगल में अनेक कष्ट देते हैं। "कथा बभ्रुकिष्का
विरही" ^६ में वे नवी के भय से नायक बभ्रुकिष्का की सहायता करते हैं ^७। "कथा
नन्दमंजरी" ^८ में एक सर्प नल की सहायता करता है और उसका बेग-बदल
देता है जिससे जयोष्वा के राजा वसुपर्ण के यहाँ जाकर गुप्तसेन में रहने लगता
है ^९। "ग्रंथलैलामयन" ^{१०} में मयन के साथ जंगल में तथा उसकी मृत्यु पर पशु रोते तथा
सहानुभूति प्रकट करते हैं ^{११}। चरित्र-विवरण की दृष्टि से प्रेमाख्यानों में इनका
कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

मानकेतर काल्पनिक -पात्र:-

इसके अन्तर्गत दानव-रावास, भूत-प्रेत, ठग, पिशाच, अप्सराएँ
या परिमाँ जादि की कल्पना की गई है। वे भी प्राकृतिक प्राणियों की भाँति
कभी नायक को कष्ट देते तो कभी सहायता प्रदान करते हैं। "कथारतनावती" ^१
में दानव, भूत, प्रेत, ठग जादि सभी नायक महिमोहन को मित्र उत्पन्न से विचुड़ने
पर जंगल में, "कथा पुहुपवरिणा" ^२ में दानव निरमलदे को अपने यहाँ बंदी बनाकर,
"कथाकृष्णावती" ^३ में दानव, पिशाच, भूत-प्रेत, ठग जादि नायक-नायिका को-
जंगल में, "कथारतनमंजरी" ^४ में भी कुंवर मधुसूदन को रावास जंगल में तथा "कथा
सुभट्टराज" ^५ में जवाची दिशा की राजकुमारी को रावास अपने यहाँ ले जाकर

१- चौ०- ६३ तथा ९२।

२- चौ०- २१५ से २१८ तक।

३- चौ०- १०९ से १११ तक।

४- चौ०- १० तथा १६।

५- चौ०- १४ से ३० तक।

६- चौ०- ९५ से ९९ तक।

७- चौ०- ५२ तथा ६०।

८- चौ०- ५८ से ६२ तक।

९- चौ०- ७३।

१०- चौ०- ११५ से ११८ तक।

११- चौ०- २२० तथा २२१।

१२- चौ०- २० से २४ तक।

बनेक कष्ट देते हैं । "कवा तमीम बंसारो " में तो भूत-प्रेतों का बाण ही है वे कभी नायक को कष्ट देते हैं तो कभी मदद करते हैं ।

अप्सरारों तथा परियों की कल्पना प्रायः नायकों की मदद देने के लिए ही हुई है । "कवाक रतनावती " में यदिपनी महिमोहन को सिंहलद्वीप ले जाती है और उपवन में रतनावती से मिलती है^१। "कवापुहुपवरिणा " में अप्सराएं त्रिमलदे तथा परमलदे दोनों वहाँ प्रेमपुणी तक पहुंचाने में पुरुषाणोत्तम की सहायता करती हैं^२। "तमीम बंसारो "^३, "कवा मधुकरमावती " तथा "कवा बलुकिमा विरही "^४ में भी अप्सराएं और गाहपरियां नायकों की सहायता करती हैं । इन सब के विपरीत "कवाकबलावती " में परियां जंगल में नायक को बनेक कष्ट देती हैं तथा उड़ा ले जाकर खोह में गिरा देती हैं^५। उसी तरह हिन्दी के अन्य सूफ़ी - असूफ़ी प्रेमास्वानों में भी अप्सराओं एवं परियों की कल्पना की गई है । बलभुजदास की "मधुमावती " में अप्सराएं ही मनोहर को चित्रसारी में मधुमावती से मिलती हैं । इन समस्त काल्पनिक पात्रों का प्राकृतिक-पात्रों की भांति चरित्र-चित्रण की दृष्टि से बैसे कोई महत्त्व नहीं है, पर कथानक के विकास में इनकी उपादेयता कम नहीं कही जा सकती ।

निष्कर्ष:-

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अन्य सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमास्वानों के पात्रों की भांति जानकवि के पात्र भी एकरस तथा सपाट हैं । इनमें चरित्रगत कोई नवीनता नहीं परिलक्षित होती । कवि ने इन्हीं कवियों की भांति अपने समस्त प्रेमास्वानों में अलौकिक तथा लौकिक दोनों तरह के पात्रों का उपयोग किया है । अलौकिक पात्रों में केवल देवी-देवता तथा सिद्ध-पुरुषा हैं जो कभी नायक की मदद करते हैं तो कभी उनके मार्ग में बाधा पहुंचाते

१- वी०- ७२ से ९३ तक तथा १२४ से १३१ तक ।

२- वी०- ९७ से ९९ तक । ३- वी०- ६७ ।

४- वी०- ८० ।

५- वी०- १५८ से १६२ तक ।

॥ उठते तबहीं परिन उड़ाया । बहुत गिरन में जानि गिराया ॥

हैं । लौकिक पात्रों में मानवीय तथा मानवोत्तर दोनों तरह के पात्र हैं । मानवीय पात्रों में प्रधान पात्र नायक, प्रतियोगक, सहायक, नायिका, प्रतियोगिकों तथा अन्य गौण पात्रों में सत्ता, सती, दुष्टियाँ, या दुष्टियाँ आदि का प्रयोग किया है । इनके नायक तथा नायिकाएँ प्रायः राजकुमार और राजकुमारियाँ हैं । इन्होंने सब सहायिका का उपयोग बिल्कुल नहीं किया है । कदाचित् ऐसा * राजस्थानी प्रभाव के कारण है राजस्थानी प्रेमालम्बियों में सहायिकाओं का उपयोग प्रायः नहीं के बराबर है । मानवोत्तर पात्रों में प्राकृतिक पशु-पक्षी तथा काल्पनिक दानव-राक्षस, अप्सराएँ या परियों की कल्पना की है । ये पात्र कभी नायक या नायिका को उनके निकट परिचितवर्तियों में सहायता प्रदान करते हैं तो कभी कष्ट देते हैं, पर उनका कोई चारित्रिक महत्त्व नहीं है । वे तो एक विशेष घटना के साथ आते और पुनः विहीन हो जाते हैं । समग्रता की दृष्टि में रत्नकर अंत में कहा जा सकता है कि इनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ सुविषयों की अपेक्षा वसुधैवकुटुम्बके अधिक निकट है । इनके सभी पात्र, एक भाष को छोड़कर जैसे सैना, मन्त्र आदि, वसुधैवकुटुम्बके जैसे व्यवहार करते दीखते हैं । संक्षेप में यही इनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ हैं ।

अध्याय - ७

अभिव्यक्ति- सौन्दर्य, वर्णन वैविध्य तथा भाषा-शैली

क - छंद योजना

ख - अलंकार और प्रतीक विधान

ग - प्रकृति - चित्रण

घ - भाषा-शैली की विशेषताएँ

(क) छंद बोधना

अन्य प्रेमाख्यात्मक कवियों की भांति वाल्मीकि ने भी अपने सभी प्रेमाख्यानों में दोहा और चौपाई या चौपद छंदों का प्रयोग किया है। वे सुगुप्त छंद कथा प्रधान वर्णनात्मक प्रबंध काव्यों की शोभितात गति एवं प्रवाह देने में पूर्ण समर्थ रहे हैं। इनके अतिरिक्त "कथाकामवती", "कथाकव्तावती", "कथाकनकावती", "कथानन्दवती", "प्रवर्तनैवमर्तु", "कथासतवती", "कथाकुतवती" तथा "कथामधुकरमावती" में वर्णनों के अनुसार दोहे के स्थान पर या दोहे के साथ सौरठा, सवैया, या प्लवंगम छंदों का भी प्रयोग मिलता है। अपनी छंद प्रयोग की बहुलता प्रदर्शित करने के लिए कवि ने "कथा कौतुहली" में उक्त सभी छंदों के अतिरिक्त ११ अन्य छंदों का प्रयोग किया है। यथा - कविका-छरण्य, रिक्त, गैणद (मैन्द या गौराद), गोटक, छारी, बीरुमावा, भुवंगप्रवात, भामका, भुवंगी, नराड, पवानी, कवला, तारोपधिठिया, जिभंगी, बंदाणा, ताण्णी, विजोहा, रासा, रोड्डक, छल, अरिभ, मरिभ, गंवाणा, जंगल, नावर, सीमाणा, सीलाशिरणा, पडरी, बंदामावा, पाडक, मीतक, कथा तथा बाराड। इस रचना में संगीत की प्रधानता होने के कारण से कवि ने उक्त विविध छंदों का प्रयोग किया है और इनमें एक छंद का प्रागः एक ही उदाहरण दिया है। प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में इन छंदों के बलावा बरवा, पोटक, पारसीमति, कुर्निंग तथा जुद्धल छंद भी प्रयुक्त मिलते हैं। "कथा मधुकरमावती", "कथा कामरानी वा वीतमदाव", "कथा मोहनी", "कथा - सुभट्टराड" तथा "प्रवर्तनैवमर्तु" में प्रर्थों का प्रारम्भ दोहे से तथा तथा सभी का चौपाइयों वा चौपद्यों से किया गया है। वे सभी छंद गेय हैं। इनमें अन्तः सक्ते अधिक समस्तुच्छदी वर्ग के छंद हैं।

छंदों का वाधार:-

वर्णना के पूर्व संस्कृत तथा पालि के वर्णिक छंदों का ही प्रयोग होता था। प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवियों ने वर्ण वृत्तों के साथ अपनी रचनाओं के अनुसार पालिक छंदों का प्रयोग किया और छंदों को तुकांत रूप दिया।

जागे बलकर हिन्दी साहित्य पर इन्का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा¹। हिन्दी के अन्य सुप्रसिद्ध कवियों की भांति वात्सल ने भी ज़ारंगी बहरों को न अपनाकर जपभांग के वरित-काव्यों, धर्म-कथाओं तथा सहज-सी शिष्टों- सरहपाद एवं कृष्णाचार्य के ग्रंथों में उपलब्ध दोहा-बोपाई को ही अपने लिए उपयुक्त समझा। जपभांग के वरित-काव्य कदम्ब-बद्ध हैं। पदार्द्धिमा, पञ्चमूर्तिमा या वरित्स के बाद एक नया जोड़कर कदम्ब पुरा होता है। कदम्ब के समूह को 'संघि' कहते हैं। ये वरित्स ही बोपाई के पूर्व रूप हैं। दोनों पारिषद छंद हैं। दोनों में १६ मात्राओं के बार वरण हैं। अन्तर केवल इतना है कि बोपाई के अंत में दो गुण (SS) और वरित्स के अंत में दो ऋषु (II) होते हैं। कथा-साहित्य में इन्का सुव प्रयोग हुआ है। यद्यपि जपभांग में ध्रुवक के रूप में नया के स्थान पर दोहा का व्यवहार नहीं के बराबर था फिर भी कुछ इने-गिने नयानों पर इन्का प्रयोग मिलता है इसलिए ध्रुवक के रूप में दोहे का प्रयोग जपभांग कवियों के लिए अपरिचित नहीं था। जपभांग भाषा में पूर्वी प्रदेश के कवियों में दोहा-बोपाई से बने कदम्बों का प्रयोग शुरू हो गया था²। दोहे में रचित कुछ स्वतंत्र काव्य भी मिलते हैं³। इस तरह हम देखते हैं कि दोहा और बोपाई के माध्यम से काव्य के लिखने की शैली का मूल स्रोत जपभांग साहित्य ही है। सम्भव है कि जपभांग में इन्का प्रयोग लोक-साहित्य के वाजार पर हुआ हो⁴। जागे बलकर सम्पन्न संत, भक्त तथा प्रेमाख्यात कवियों ने संस्कृत के छंदशास्त्र का

1- डा० रामसिंह तोमर- "प्राकृत और जपभांग साहित्य"-पृ० २४५, १९६४ ई०।

२- तथा-

डा० नामवरसिंह-"हिन्दी के विकास में जपभांग का योग"-पृ० २९९, १९५४ ई०।

३- प्रो० शिव सहाय पाठक- पद्मावत का काव्य सौन्दर्य-पृ० १६०, १९५६ ई०।

४- डा० हरिवंश कोष्ठ- "जपभांग-साहित्य"-पृ० ४०६, सं० २०१३।

५- डा० रवीन्द्र प्रसाद - "पद्मावत में लोकतत्त्व"-पृ० - १४३, १९६२ ई०।

वस्तुस्थिति न कर अपभ्रंश काव्य की ही परम्परा का अनुगमन किया¹ है अपभ्रंश कवियों की भांति वात्कवि ने भी समस्तुच्छदी छंदों का प्रयोग हिप्पदी के समान किया। जिस तरह मुष्पदंत की कृतियों, "कुमारपाल प्रतिकोध", लघुसिद्धि के "सुदर्शन चरित" तथा लघु के "दिनदत्त चरित" में कवियों ने कुशलता प्रकट करते के लिए विविध छंदों के प्रयोग किए हैं उसी प्रकार वात्कवि ने भी अपने "कदा कौतुहली" में अनेक छंदों का प्रयोग किया है। अपभ्रंश के छन्दपद, रहस्य, कुण्डलिक, काव्य आदि मिश्रित छंदों की भांति वात्कवि ने भी गतिक, गंगाणा, तारी-पण्डित्या आदि नवीन मिश्रित छंदों की सृष्टि की है।

चारण चारा के कवियों ने अपभ्रंश के मात्रिक छंदों का सबसे अधिक प्रयोग किया है। "पुद्गीराचरासो" तथा "सुजाचरित" में छंदों की विविधता मिलती है। रास रवनाओं में देशी छंद भी मिलते हैं। वात्कवि ने बहुत कुछ इन कवियों के छंदों की भांति मात्राओं आदि के प्रयोग की स्वतंत्रता जती है।

वर्णिक कुलों का प्रयोग अपभ्रंश के चरित काव्यों की श्रेयदा हिंदी के संत, भक्त और प्रमात्यान्क कवियों ने कम दिया है। वात्कवि में भी इसकी संख्या कम है फिर भी उनकी रचनाओं में अपभ्रंश की प्रमुख कुलों का प्रयोग मिलता है।

इस तरह वात्कवि के प्रयुक्त छंदों का आधार अपभ्रंश तथा चारण कवियों के छंद हैं। कवि ने इनके प्रयोग में पूरी स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता दिखाई है। इन्होंने न केवल छंदों में परिवर्तन एवं परिवर्धन करके अपनी मौलिक उद्भावना प्रदर्शित की है, बल्कि मात्राओं, वर्णों, गणों आदि के नियमों का अतिक्रमण भी किया है। "वर्ति-भंग" तो साधारण सी बात है और यह दोष तो सभी कवियों में पाया जाता है इसलिए शास्त्रीय दृष्टि से वात्कवि के छंद हिन्दी व चारण आदि कवियों की तुलना में पूरे खरे नहीं उतरते।

छंदों का वर्गीकरण

कानकवि ने अपने समस्त प्रेमाख्यानों में सबसे अधिक मात्रिक तथा कुछ वणिर्क वृत्त प्रयुक्त किये हैं। फ़ारसी तथा तुर्क के छंदों का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया है। जैसे एक आध छंद में फ़ारसी छंद से साम्य अवश्य मिला जाता है, पर इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया है। इनके समस्त प्रयुक्त छंदों को हम निम्न-लिखित दो वर्गों में रखकर व्यवहन कर सकते हैं :-

१- मात्रिक छंद ।

२- वणिर्क वृत्त ।

मात्रिक छंद:-

कवि ने इसके अन्तर्गत समवतुच्छदी, अर्द्ध समवतुच्छदी तथा मिश्रित और विकर्णाधार नवीन छंदों का प्रयोग किया है। समद्विपदी तथा विषाम द्विपदी वा चतुच्छदी छंदों का प्रयोग नहीं किया है। विषाम चतुच्छदी प्रायः अणुस्त वपुर्गुण और हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। इनके प्रयुक्त समस्त मात्रिक छंदों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं:-

(क) समवतुच्छदी छंद ।

(ख) अर्द्धसम चतुच्छदी छंद ।

(ग) मिश्रित छंद । तथा -

(घ) नवविकर्णाधार छंद ।

(क) समवतुच्छदी छंद:-

छाँदा छंद:- इसके प्रत्येक चरण में ८ मात्रार्ध तथा अंत में राणा (SIS) होता है। आचार्य केशवदास के "शशिर्वचना" नामक छंद से इसका तब एवं मात्रा साम्य है, किन्तु अंत में राणा के स्थान पर वगणा (ISS) मिलता है^१। छवि, अलण्ड

१- सम्पा० तालाभगवान्दीन - केशवकीर्तुदी (भाग-१)-पृ० ४१, सं० २०११ ।

मुनि मुक्तिदाई । वग मुक्तिदाई ।

कहि अब सोई । बेहि मत होई ॥

मुक्ति आदि अन्य आठ मात्राओं के छंद भी मिलते हैं । मुरलीधर कवि भूषण कृत "छंदोहृदयप्रकाश"¹ तथा "छंदप्रभाकर"² में वर्णार्द्धम छंदों के अन्तर्गत बांजा या खंजा छंद है, किन्तु यह इससे बिल्कुल भिन्न है । ज्ञानकवि ने इसका प्रयोग "कथाकौतूहली" में बारहमासा के अन्तर्गत पसमाह के वर्णान में कुंवर सरबंगी, के वियोग में किया है ।

कुंवर रोड है । हाथ थोड है ॥

नाहि सौड है । दुष्टित जोड है ॥

विग्रोहा:- इसके अंत में रचना (३।०) से प्रत्येक वरणा में १० मात्राएं होती हैं, पर ज्ञानकवि में सगणा (१।०) मिलता है । सुमानवरित में इसका प्रयोग हुआ है । "अप्रभंत के कवियों ने इस बहुव्ययी का प्रयोग प्रायः नहीं किया है । छंद ग्रंथों में एक "अवतन्त्रक" छंद है जो विग्रोहा के ही समान है³ । ज्ञानकवि ने "कथा कौतूहली" में बारहमासा के अन्तर्गत भादीमास में कुंवर के वियोग में इसको प्रयुक्त किया है ।

बनावन बरसिहै । । कुंवर ज्यो सरसि है ॥

जबहि मुखा परसि है ॥ तबहि जा सरसि है ॥

बंदामाला:- प्रत्येक वरणा में १० मात्राएं तथा अंत में गुरु (९) होता है । बाबाब केशवदास द्वारा दशरथ की मृत्यु पर जयोत्थापुरी की गौकावस्था में प्रयुक्त "सोभाराजी" तथा "कुमारविलिता" छंद बिल्कुल ऐसे ही हैं⁴ । दीप, ज्योति, नवन आदि छंद भी १० मात्राओं के हैं । ज्ञानकवि ने इसका प्रयोग कौतूहली के वियोग में किया है ।

१- सम्पा०- डा० विरवनाथ प्रसाद-"छंदोहृदय प्रकाश"- पृ० ७१, १९५९ ई० ।

२- जगन्नाथ प्रसाद भाजु- छंदप्रभाकर- पृ० २२५, सन् १९२२ ई० ।

३- डा० रामचंद्र तोमर-"प्राकृत और अपभ्रंश-साहित्य"-पृ० २५१, १९५४ ई० ।

४- सम्पा० ताताभगवान्दीन-केशव कौमुदी (भाग-१), पृ० १६९, सं० २०१३ ।

बिरह बरी दहे ॥ कहीं की ली सहे ॥

जब उपावन लहे ॥ जीब तन ना रहे ॥

सीमाणा:- इसके प्रत्येक वर्ण में ११ मात्राएँ तथा अंत में गुरु (३) होता है ।

११ मात्राओं के "समानिका" तथा "अव" छंद से इसका सम्बन्ध है । इनके भी अंत में गुरु होता है । "शिव", "प्रात" तथा "अहीर" भी ११ मात्राओं के छंद हैं । इसका प्रयोग "कथा कौतूहली" में कुंवर सरबंगी के वियोग में बारहमासा के अन्तर्गत माघ मास के वर्णन में किया है ।

बिहाइ कुंवर अंत में ॥ प्रात रहे अंत में ॥

नीद रैन ना परे । घोर हूँ दुखी टरे ॥

फारसी मति:- यह विधाता छंद है । इसके प्रत्येक वर्ण में १४ मात्राएँ होती हैं । पहली तथा आठवीं मात्रा लघु (१) होती है । इसका प्रयोग गीतों के लिए ज्यादा होता है । ज्ञानकवि ने इस छंद का प्रयोग प्रेमालाप्यों में न करके "सिकाग्रंथ" "वैतननामा" तथा "सुधासिका" में किया है । ये पूरे ग्रंथ इसी छंद में लिखे गये हैं ।

सुमिर निर दिन निरंजन की । कहा तुम जणहु नवन की ॥

कलणु लज कोट भवन रे । निरंजन रु रे निरंजन रे ॥

(सिकाग्रंथ)

धवल:- यह १५ मात्राओं का छंद है । "अपभ्रंश" का कवि किसी छंद का प्रयोग जब किसी कीर्ति आदि वर्णन के लिए करता है तब उसका नाम धवल हो जाता है । कीर्ति वर्णन में कीर्ति धवल, उत्साहवर्णन में उत्साह धवल तथा जब किसी छंद का प्रयोग वंगत वर्णन के लिए होता है तो उसका नाम

१- डा० पुरुषोत्तम शुक्ल ने अपने प्रबन्ध - "आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना"

(पृ० २५६, सं० २०-१४) में इसको आधुनिक युग का मैथिलीकरण गुप्त तथा रामनरेशविद्याजी द्वारा प्रयुक्त नवीन प्रयोग माना है, किन्तु इसका प्रयोग ज्ञानकवि से मानना चाहिए । सम्भव है कि इनके पूर्व भी प्रयुक्त होता रहा हो ।

संगत वर्णन हो जाता है। छंदशास्त्रियों ने इसका ठीक ठीक उल्लेख किया है। पुष्प-
दंतादि बड़े कवियों ने भी प्रकारान्तर से इसका उल्लेख किया है^१। "मुनीश्वर
कवि भूषाणा कृत "छंदोद्भवप्रकाश" में ध्वन २० मात्राओं का छंद बताया गया
है^२, पर वह इससे भिन्न है। ज्ञानकवि ने इसका प्रयोग "कथा कौतुहली" में
मारहमासा के अन्तर्गत कार्तिकमास के वर्णन में किया है।

दुष्प्राप्यत है सरसंग नू ।

अंग अंगहि दहे अंग नू ॥

मन नाहिन रही अंग नू ।

बिन कौतिल देखे संग नू ॥

बीपई या बीपाई:- ये हिन्दी के सर्वाधिक प्रचलित छंद हैं। इनका प्रयोग अप-
भ्रंश युग से ही मिलता है। अपभ्रंश के विनयबन्ध तथा नेमिनाथ की "बीपई" कही
बीपई छंद के पूर्व रूप हैं। बीपई के प्रत्येक वरणा में १५ मात्राएं तथा बीपाई
में १६ मात्राएं होती हैं। बीपई में बीपाई की ही भांति समयाधिक प्रवाह
होती है। बीपाई की अंतिममात्रा गुरु (S) को लघु (I) कर देने से बीपई
छंद बनता है। कई जगहों भागु ने इसके अंत में । रखने का नियम माना है^३।

ज्ञानकवि ने "कथा मोहनी" को छोड़कर अपने समस्त प्रेमाख्यानों
में इस छंद का प्रयोग किया है, पर कवि ने बीपई और बीपाई में कदाचित्
कोई भेद नहीं समझा है। बीपई और बीपाई दोनों मिलजुलकर व्यवहृत हुए
हैं। कहीं बीपई की कई अर्द्धालियों के समूह के बाद बीपाई की अर्द्धालियों का
समूह, तो कहीं बीपई की एक अर्द्धाली के बाद दूसरी अर्द्धाली बीपाई की, तो
कहीं एक ही अर्द्धाली में एक वरणा बीपई का तो दूसरा बीपाई का मिलता है।

१- डा० रामसिंह तोमर- प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य- पृ० २४४, १९६४ ई० ।

२- "छंदोद्भवप्रकाश"-सम्पा० विरचनाथ प्रसाद-पृ० ४६, १९५९ ई० ।

३- छंद प्रभाकर- पृ० ४०, १९२२ ई० ।

इसी तरह कवि ने इनके प्रयोग के क्रम का कोई खान नहीं रखा है। इसी तरह "सुरसागर" में भी चौपद और चौपाई मिलकर व्यवहृत हुए हैं^१। कवि ने इनके मात्रा के नियमों का भी पूरा खान नहीं रखा है। कहीं-कहीं १६ मात्रा के स्थान पर १७ या १८ तक मिलते हैं^२, पर ऐसे दोष उभरे-गिने हो हैं। मात्रा-यों के नियम का अधिकतम जायसी तथा तुलसी जैसे महाकविओं ने भी किया है।

"कथाकलावती", "कथाकीर्तुहती" तथा "प्रपञ्चसौम्य" में अर्द्धांतियों का कोई क्रम नहीं है। संख्या घटती-बढ़ती हुई है, किन्तु शेष अन्य सभी प्रेमा-स्थानों में प्रायः अर्द्धांतियों का एक निश्चित क्रम कमितता है। यद्यपि सभी प्रेमास्थानों में इनका एक ऐसा क्रम नहीं है। "कथारूपमंजरी", "कथापुष्पविरचा", "कथारत्नमंजरी", "कथासीतवती", "कथास्तवती", "कथाकुलवती", "कथाकाम-लता" और "कथा कलावती" में ५, "कथाकलावती", तथा "कथानिमल" में ६, "कथाविजया देवतदे", "कथा अरदसेरमतिगाह" तथा "कथानन्दमंजरी" में ८, "कथाछीता", "कथाछवितागर", "कथामुष्टराह", "कथारत्ननावती" तथा "कथा कन्दर" में १०, "कथा चन्द्रसेन राजा सीतनिधान" में १२, "कथा कामराजी वा पीतमदास" में २०, "कथामधुरमातृती" में २२, अर्द्धांतियों के समूह हैं। "कथा तमीम अन्तारी", "कथा बलूकिया विरही" तथा "बाँदी नावा" में पूरा गीत ही चौपाई या चौपद में लिखा गया है।

इसी तरह अन्य सूफ़ी प्रेमास्थानक कवियों में दाऊद, कुतबन, मकान बादि ने ५-५, शेखहीम ने अपने "भाषा प्रेमरस" में ६-६, जायसी, उस-मान, शेखनवी, कासिमगाह और नसीर ने ७-७ तथा शेरु निसार ने ९-९ अर्द्धा-ंतियों का क्रम रखा है^३। तुलसीदास ने मानस में ८ अर्द्धांतियों का क्रम रखा है।

१- डा० ज़वेरवर वर्मा-सूरदास-पृ० ५७२, १९५९ ई०।

२- दुबे नाम मुहम्मद लोबे। दुबे अमर सुषा मानी पीबे ॥२॥

(१६+१८ मात्राएँ) (कथाकुलवती)।

३- विस्तार के लिए देखिए- हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)-पं० परशुराम चतुर्वेदी - "सूफ़ी प्रेमास्थानक साहित्य"- लेख, पृ० २८७, १९५९ ई०।

वरितः:- छंद ग्रंथों में इसका नाम "वरित्त", "वरित्त" वा "वरिता" भी मिलता है। यह बीपार्थ का ही पूर्व रूप है। दोनों में १६ मात्राएँ होती हैं, किन्तु अन्तर यह है कि वरित के अंत में दो लघु () तथा बीपार्थ के अंत में दो गुरु (S) मिलते हैं। वरित के किसी बीज में अगण (1-1) नहीं होना चाहिए। यह छंद वाच-साहित्य के अत्युत्तम है। "पुष्पवीराजरासों" में इसका ब्रह्म प्रयोग हुआ है। "कयाकौतुहली" में कवि ने वारहमासा के अन्तर्गत अगहन मास में नायिका कौतुहली के विवोग वर्णन में इसको प्रयुक्त किया है।

बाइ लक्ष्मी है जग में अगहन ।
तुम जानत पाकी गति अगहन ॥
मोहि गहत प्यारे ही अगहन ।
अजहि जात है सीतर अगहन ॥

मरितः:- १६ मात्राओं का यह छंद कदाचित् अपभ्रंश वा छंद ग्रंथों के "वरित्त" का वह विस्तृत रूप है। वारणा कवियों वा "पुष्पवीराजरासों" (११२०७, १३४) में "मुरित्त" नाम से इसका प्रयोग हुआ है। ज्ञानकवि ने इसी "मुरित्त" का नाम "मरित" किया है। इसका प्रयोग "कयाकौतुहली" में वारहमासा के अन्तर्गत अगहन माह में कुंवर सरबंगी की विरहावस्था के वर्णन में किया है।

पावक नेह देह की दाह । मानहुं लता बराई दाह ॥
विरह करोत होइ उर कीरी । नामे मीत न पछई कीरी ॥

पदरी:- १६ मात्राओं के इस छंद को ज्ञानकवि ने १५ मात्राओं के रूप में प्रयुक्त किया है। "पुष्पवीराजरासों" तथा "हम्म्वीररासों" में इस छंद का बहुत प्रयोग हुआ है। "पुष्पवीराजरासों" में भी १५ मात्राएँ मिलती हैं^{ही}। सम्भवतः ज्ञानकवि ने इसी से प्रभावित होकर यह स्वतंत्रता दिखाई है। "कयाकौतुहली" में वारहमासा के अन्तर्गत वैशाख माह में कौतुहली के विरह विवोग में इसका प्रयोग किया है।

बैसाखा लगे तरु लागकर । भई किञ्चन नी तन दुपहर ॥

मेरी मन भावन नाहि परि । छविषा रतिषा दिन रही करि ॥

विजुमाता:- यह १६ मात्राओं का "चतुष्पदा" छंद है । संस्कृत में १६ मात्रा-
ओं (SSSSSSSS) के चतुर्मासिक वर्ग के अन्तर्गत यह छंद विख्यात है^१ । आचार्य
मानु ने इसे चौपाई का एक भेद बताया है^२ । "पृथ्वीराजरासो" तथा "सुमान
चरित" में इसका प्रयोग हुआ है । ज्ञानकवि ने भी ८ गुरु (SSSSSSSSSS)
से यह छंद बना है । "कथा कौतुहली" में कवि ने दो छंद प्रयुक्त किये हैं । एक
तो उपवन में नायक सरबंगी की संगति कुश्रता में तथा दूसरा बाराहमासा के
अन्तर्गत फागुन मास के वर्णन में ।

गुणाता मेरा है सोईता । नीकी रूपा ही मोईता ॥

सावै भाषी है को गुंयानी । देखी नाही जैसी जानी ॥

वधा:- यह "वाधा" या "वन्धु" छंद है । इसमें तीन भगणा तथा ऋत में
दो गुरु (SI, SI, SI, SS) से १६ मात्राएं होती हैं । "पृथ्वीराजरासो"
में इसका प्रयोग हुआ है । इसके पूर्व अपभ्रंश कृतियों में इसका उल्लेख नहीं मिलता ।
ज्ञानकवि ने "कथाकौतुहली" में नायक सरबंगी तथा परिव्रज दिशा के रात्रि
के युद्ध के समय इसका प्रयोग किया है ।

काठि लई करवार प्रबंगी । पाइक जूव रगुपी रतरंगी ॥

देखात राइ कह्यो सुनि संगी । है यहू ती ऊहि मातिक रंगी ॥

पाइक:- १६ मात्राओं का यह छंद है । "प्राकृत के पद्यात्मिक से अपभ्रंश में
"पाइक" या "पायक" बनता है । पुरातन प्रबन्ध-संग्रह के रासों वाले छप्पयों में

१- डा० पुस्तान्त गुप्त:- वायुतिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना-पृ० १५०,
सं० २०१४ ।

२- छंदप्रभाकर- पृ०-५०, १९२२ ई० ।

३- डा० रामसिंह तोमर - "प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य"- पृ० -२५५,
१९९४ ई० ।

से एक में इसे पायक कहा गया है। "पृथ्वीराजरासों" तथा अन्य वारण
काव्यों में इसका प्रयोग "पायक" नाम से मिलता है। डा० राममिह लोम
परिनन्दित का से इसका साम्य मानते हैं। "कथाकौतुहली" में कौतुहली
के विरह वर्णन में यह प्रयुक्त हुआ है।

गिरता बंदी कि दिन जारै । मेक परी मुखा नाहि हमारै ॥
बन मोकी जो मास बतावहि । हाट न लपट मास न पावहि ॥

वृंदाणा:- इसका "वान्द्रायणा" या "बन्द्रायान" नाम मिलता है। इसमें
२१ मात्राएँ तथा व्रंत में (1) होता है। पृथ्वीराजरासों में इसका प्रयोग
"वान्द्रायणा" नाम से ही मिलता है और २१ मात्राओं के स्थान पर २० या
१८ मात्राएँ भी मिलती हैं। इसी का अनुगमन कर ज्ञानकवि ने भी मात्राओं में
स्वच्छंदता दिखाई है। "कथाकौतुहली" में वारहमासा के अन्तर्गत सावन माह
के वर्णन में मिलता है।

धूमरे धूमरे धीधरे धामरे ।
जसित जौ सेत पीरे हरे सावरे ॥
जिना कौतुहली नाहि मन की पगे ।
सिणि पिह जातिक बैन तरसे लगे ॥

पर्वगम:- यह प्लवगम छंद है। ११ और १० पर मति के साथ २१ मात्राओं
के इस छंद में जादि में गुरु (S) तथा व्रंत में जगण + गुरु (1S1, S) होता
है। जावार्ध भानु ने ८, ११ के विराम से २१ मात्राएँ मानी हैं। ज्ञानकवि में
मति का कोई क्रम नहीं मिलता है। कवि ने "कथाकलावती" में वारहमासा
के अन्तर्गत १३, "कथाकौतुहली" में ३ तथा "कथामपुकरमावती" में दोहा के साथ
बीच-बीच में १५ पर्वगम छंदों का प्रयोग किया है।

मास जसाइ लक्ष्मी जग में बन गावि है ॥
नौ बन दासिन बिहग नयी सब सावि है ॥
बूंद कुवर तन सगत सु पवन सुकाव है ।
बेम बसुली नीर नीर छपि जाइ है ॥ (कथाकलावती)

रासा:- इसके प्रत्येक वरुण में ८, ८, ६ की शक्ति से २२ मात्राएं तथा अंत में सगुण (115) होता है। वपभ्रं में २१ मात्रा का "रासा" या "रास" छंद प्रचलित था। रासो ग्रंथों में इसका कुछ प्रयोग हुआ है। वाङ्मय युग में पंत ने "युगवाणी" तथा भगवतीवचना वर्ण में "कथाकोतुहली" में इसके प्रयोग किए हैं। वाङ्मय ने "कथाकोतुहली" में बारहमासा के अन्तर्गत कुंवर महा में कुंवर सरबंगी के चिरह में विव्रित किया है।

मुक्ति जातिग, बंधा बिंता, दूर भई ।
रजात बूदि कै, पाये ठपजी, बौप नई ॥
कुंवर कहै पर, सावहु, मोकी प्राण छई ।
भैरौ तौ कौतुहल ही है, रजात दर्ई ॥

बारस:- छंद ग्रंथों में इस नाम का कोई छंद नहीं मिलता। दो-दो के तुकान्त से इसके प्रत्येक वरुण में २४ मात्राएं तथा अंत में गुरु (5) होता है। "बारस" छंद से इसका विकृत साम्य है इसमें भी २४ मात्राएं तथा अंत में 5 होता है। "कथाकोतुहली" में नायक सरबंगी तथा परिव्रम दिना के राजा के युद्ध की वीरता के वर्णन में इसका प्रयोग किया है।

भयां सुवार सर्व जंग कहत मार मारही ।
सहै न भीर भीर कौ बुझार सी बुझरही ॥
बनेक रुग्नि माल दर्ई लाल लाल ईस कौ ।
कितकिताहिं बुगुनी बगीस दै बासीस कौ ॥

गैणद:- इसके लिए "गौराद" तथा "गैन्द" जैसे अन्य नामों का प्रयोग भी कवि ने किया है। यह "रूपमाला" छंद है। इसके प्रत्येक वरुण में २४ मात्राएं तथा अंत में गुरु लघु (51) होता है। यह छंद गुंगार और करुण रस के लिए अधिक उपयुक्त है। "कथा कोतुहली" में उपर्युक्त तीनों विभिन्न नामों से इसके तीन उदाहरण मिलते हैं, पर छंद एक ही है।

तगुनी सावन भूति है, घर घर हिडोरा तान ।
मोहि दूभर जाइ ना, सुख बिना पोषन प्राण ॥

डरे कारे तरफ न रिपरे, जवद फिरहु निधान ।

मोर जंघुप कोकिला दे, तनहि पावुव गानि ॥

रोट्टक:- यह रोजा छंद है । ११, १२ की पंक्ति से २४ मात्रा होती हैं ।
जाचार्य भानु ने मात्राओं के विचाम पद में ४+४+१ या ३+३+३+३ का नमूना
में ३+३+४+४ या ३+३+३+३+३ का रूप माना है^१। रोजा रोजा के चारों पदों
में ११वीं मात्रा लघु हो उसे काव्य छंद कहते हैं । जाचार्य भित्तारीदास ने १२
मात्राओं पर भी पंक्ति मानी है । नाट्यक युग में छंद ने अपना छादपदी रूप
में प्रयोग किया है । जाकवि ने "कथाकौतुहली" में बारहमासा नाम परिव्रम
रिज्ञा के राजा की बड़ाई के लिये इसका प्रयोग किया है ।

बापी कातिग मार, भई है रैन ठग्यारी ।

भयौ कपोदिनि बैन, रही है निजनि के भारी ॥

जंद सुधा सब कहिये, ये बरिषी विषाधारी ।

कौतुहल बिन पीयु बुझाई जगि जंघारी ॥

ताण्डी:- यह "ताटंक" छंद है । उसमें १६, १४ की पंक्ति से ३० मात्रा
होती हैं । प्राचीन जाचार्यों ने इसके अंत में मगण (SSS) माना है, किन्तु बाद
में अंत में SS, IIS, SII समात्मक वर्णक्रम प्रचलित होने लगे हैं । जाकवि
ने इसी का अनुगमन किया है । "तीस मात्राओं वाली लावनी प्रसिद्ध "ताटंक" ।
ही है^२। "कथाकौतुहली" में जाकवि ने बारहमासा के अन्तर्गत भाद्रीमाह के
वर्णन में इसका प्रयोग किया है ।

भयौ भादुवा निरु अघियारी, म्याम घटक्क नारी डरपे ।

तैसी के पिक कोकिल बोले तैसी ये कौषा तरपे ॥

तै छोई गहरी बन बहरी सुनि कौतुहल बहराये ।

सरबंगी बिन नाहि ठामंगी जनींग जंग जंगिया लाये ॥

१- जाचार्य भानु - छन्द प्रभाकर- पृ० ६१, १९२२ ई० ।

२- डा० मोहन अवस्थी- नाट्यक हिन्दी-काव्य-शिल्प, पृ० १६९,

यह छंद चौपाई के समान समप्रमाण है । वाचस्पतिक युग में "पंचवटी" "माकेत", "कामायनी" आदि में भी इसका प्रयोग हुआ है ।

त्रिभंगी :- १०, ८, ८ तथा ६ मात्राओं की पंक्ति से ३२ मात्राएं और अंत में गुरु (S) होता है । इसमें कहीं भी जगण (101) नहीं पड़ता । इसे को "गुदध्वनि" भी कहते हैं । "कणाकौतुहली" में इसके दो उदाहरण मिलते हैं ।

बहु कुंजर माते, योरा ताते, पोरे राते, सहुरंगी ।
कोठा हथियारे, कोठा कारे, कोठा पुवारे, छवि बंगी ॥
त्रै बाधे सोई, बडे विमोहै, बघन विमोहै, गुन संगी ।
ते मता उमंगी, रूप बनींगी, तीन तरंगी, तिरभंगी ॥

(क) बड़े समवतुष्पदी छंद

वरवा :- इसके विनाम चरणों में १२ तथा समचरणों में ७ मात्राओं से प्रत्येक चरण में १९ मात्राएं तथा अंत में गुरु लघु (S1) होता है । यह वरधी बोली का अपना छंद होते हुए भी अन्य बोलियों में प्रयुक्त हुआ है । तुरमोहम्पद ने अपनी "अनुताग बांसुरी" में इसका प्रयोग किया है । जानकवि ने इसका प्रयोग प्रेमास्थानों में न करके "अदरितु वरवा बंध" तथा "वरवा" ग्रंथों में क्रमशः २१ और ७० छंदों में किया है ।

पिय बिनु सावन भादों, लागे जाइ ।
वन बरसे अरु दामिनि, चमक छाड ॥

(अदरितुवरवाबंध)

सोरण :- इसके समचरणों में १३ तथा विनाम चरणों में १९ मात्राएं होती हैं । यह दोहे का ठीक उलटा होता है । समचरणों में जगण का निषेध है । "परमात्मप्रकाश" आदि अपभ्रंश कृतियों में सोरठे का प्रयोग मिलता है । अपभ्रंश के छंद ग्रंथों में अबदोहक या सोरठठ दोनों नाम मिलते हैं ।" जानकवि ने

"कथासुतवती" में चौपाई की अर्द्धालियों के बाद सोरठे, "कथाकनकावती" तथा "कथाकलावती" में बीच-बीच में दोहे के स्थान पर सोरठे तथा "कथाकौतुहली" "प्रणयलैलमजनुं" और "कथाकुलवती" में कहीं-कहीं सोरठे का प्रयोग किया है। कहीं कहीं १३ मात्राओं के स्थान पर १४ या १२ भी मिल जाती हैं, पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं।

हारिहार समरारि, पारदावार अपार कहुँ ॥११+१४ मात्राएँ।

कैसे करै विचार, जानकवि एक रसन सौ ॥११+१२ मात्राएँ।

दोहा:- इसके विषम चरणों में १३(६,४,३) तथा समचरणों में ११ (६,४,१) मात्राएँ होती हैं। विषमचरण के अंत में IS या नगण(।।।) और समचरण के अंत में SI होते हैं। विषम चरण के अंत में जगण(।S।) नहीं पड़ता चाहिए।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "विक्रमोर्वशीय में उसका सबसे पुराना रूप प्राप्त होता है, जैसे इलोक, लौकिक संस्कृत का, गाथा, प्राकृत का प्रतीक हो गया है। उसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का^१।" इस तरह यह अपभ्रंश का सबसे अधिक प्रिय, प्रचलित और प्राचीन छंद है। "जैन अपभ्रंश की कुछ चफुट रचनाओं, परमात्मप्रकाशादि कथाओं में, सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं, कीर्तितता, संदेशरासक आदि अपभ्रंश के सभी वर्गों की रचनाओं में दोहे का प्रयोग मिलता है^२।" पर अपभ्रंश के चरित काव्यों में बहुत कम और प्रवृत्तात्मक कृतियों में दोहे का बिल्कुल प्रयोग नहीं मिलता। आगे चलकर सृष्टि निर्गुण संत, सगुण कवि और रीतिकांत के गुंगारी एवं नीति कवियों में प्रचुर मात्रा में इसका प्रयोग मिलता है। यथा - जायसी, कबीर, तुलसी, बिहारी राहीम, मतिराम आदि।

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल - पृ० ९८, १९५० ई०।

२- डा० रामसिंह तोमर- "प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य"- पृ० २५८,

कवि ने "कथा तमीम अन्सारी" तथा "कथा बलुकिया विरही" को छोड़कर अपने समस्त प्रेमाख्यानों में दोहे का प्रयोग किया है। "कथा मोहनी" में तो पूरा ग्रंथ ही १२३ दोहों में लिखा है। "कथाकलावती", "कथा कवचावती", "कथाकौतुहली", "कथा सुभट्टराज", "कथामधुकरमालती", "कथा कन्कावती", "कथा सतवती", तथा "ग्रंथलैल्यमनु" में बीणार्द की अर्द्धांशों के समूह के बाद दोहा के प्रयोग का कोई एक निश्चित क्रम नहीं मिलता, किन्तु इनके अतिरिक्त शेष सभी प्रेमाख्यानों में बीणार्द की अर्द्धांशों के समूह के बाद एक दोहे के प्रयोग का निश्चित क्रम मिलता है। "बांदी नावा" में केवल ग्रंथ के अंत में एक दोहा मिलता है। कवि ने १३ के स्थान पर १४ या ११ के स्थान पर १२ मात्राओं की स्वतंत्रता भी जायसी आदि कवियों की भांति कही-कही बर्ती है, पर ऐसे स्थल न बहुत कम हैं।

परधम सोई सुमिरिये, दिन सीरज्यो सैसार । १४+१२ मात्राएँ ।

पलक माहि सब कछु भयौ, होत न लागी बार । १३+११ मात्राएँ ।

(कथा कामरानी का पीतमदास)

इत्यादि ।

(ग) मिश्रित छंद

तारी पद्यिझा:- लगता है कि यह छंद प्रारम्भ के १४ मात्राओं के "सरी" छंद के दो चरण तथा बाद के दो चरण १६ मात्राओं "पञ्चटिका" या "पद्यिझा" के योग से बना है। "सरी" के अंत में मगण (SSS) और पद्यिझा के अंत में S होता है। पद्यिझा अपभ्रंश का प्रसिद्ध छंद है। स्वयंभू ने चरमसुह या चतुर्मुख को पद्यिझा का राजा बताया था। "कथा कौतुहली" में नायिका कौतुहली का सरहंगी के प्रति प्रेम की एकनिष्ठता में इस छंद का प्रयोग हुआ है। यह कवि की नवीन प्रयोग कात होता है।

जाके रंग राते नैना । अंतर पट तासीं सैना ॥

दिग बापेई डीठि जाई । कोऊ और न देख्यौ माई ॥

गंधाका :- प्रथम २२ मात्राओं के "गुणदा" के दो चरण तथा बाद के २४ मात्राओं के "लीला" के दो चरण रखकर कवि ने यह छंद बनाया है। दोनों के अंत में गुरु (S) होता है। "कथाकौतुहली" में बारहमासा के अन्तर्गत नायिका कौतुहली के वियोग वर्णन में इसका प्रयोग किया है। यह भी कवि ही नवीन प्रयोग सात होता है।

माह पूर जब लाग्यो है सीतर सजिता ।
करी चिंत हौं पीरी नाहि रही कसिता ॥
मलिन भये अंग अंग रही नाही ऊज्ज्वलित ।
कौतुहल दे छती नेह सब छल बल छलित ॥

कवित छप्पम :- रोसा (२४ मात्राएँ) के साथ त्रितीय उल्लास (२८ मात्राएँ) के योग से यह षट्पदी छंद है। परवर्ती अपभ्रंश साहित्य तथा रासों ग्रंथों में इसका प्रयोग बहुत हुआ है^१। पृथ्वीराजरासो तथा वीरगाथाकाल में इसका कवि नाम प्रचलित था। सम्भवतः जाकवि ने इसी के आधार पर दोनों नाम एक साथ रखे हैं। नाभादास के "भक्तमाल" में इसका प्रयोग हुआ है। जायुक्त युग के कवियों ने भी इसका बड़ा प्रयोग किया है^२। जाकवि ने "कथाकौतुहली" में ग्रंथ के प्रारम्भ में ही मुहम्मद की स्तुति में इसका प्रयोग किया है।

जछि चारि बिचारि विधि रज्यो मुहम्मद दुष्म हरन ।
ममो मुहर ऊहि मिहर भाग कागर जिहि सोधन ॥
हह हेत जल ऊनहि सीविमो सोऊ सह्यो बन ।
मामे मेदनी मन सबे नबियन को मरुन ॥
दद दुरवान अपराध नाम ताकी तिहू अंडान ।
कहि जान दुहु जग दूसरी उन बिन और न को सरन ॥

१- डा० रामसिंह तोमर-"प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य" पृ० २६१, १९६४ ई० ।

२- विस्तार के लिए देखिए:- डा० पुष्पांत शुक्ल-जायुक्त काव्य में छंदयोजना-

गीतक:- इसमें "हरिगीतिका" के साथ "संयुक्ता" छंद का योग किया है ।
क्रम हरिगीतिका में १६, १२ के वृत्ति से २८ मात्राएं तथा वृत्त में रगण (SIS)
और "संयुक्ता" में प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं तथा वृत्त में रगण होता है ।
जायकवि का यह नवीन मिश्रित प्रयोग है । "कथाकौतुहली" में नायक सरबंगी
तथा परिव्रज दिशा के राधा के मुह में दो छंदों का प्रयोग किया है ।

बडि दोइ दत ठाड़े भये पाणर संजोग सुहावने ।
जोषा विरोधे कोष में तनमुखा भये छरपावने ॥
जाते बंदूके फूटि हैं । दहू बोर सीरण फूटि हैं ।
कर धूर सूरज छाईया । जग मंथकार जनाईया ॥

(घ) समविकर्णाधार छंद

इसमें एक विशेष प्रकार से पंक्तियों का क्रमायोगन होता है । ये
हैं तो पुरानी लय के ही छंद, पर इनका अन्त्यक्रम परिसंख्यान और मात्रा क्रम
नवीन होता है । इसमें कवि को पूर्ण स्वतंत्रता होती है । इसके समविकर्णा-
धार तथा विषम विकर्णाधार दो भेद हैं ।

समविकर्णाधार:- इसमें समान मात्रा के छंद प्रयुक्त होते हैं, और इनकी संख्या
चार चरणों से अधिक होती है । जायकवि का "फुर्निंग" ऐसा ही छंद है ।
यह "विजात" छंद के आधार पर अन्त्यक्रम से विकृत किया गया है । इसमें तीन
तथा दो के तुल्यता से पांच चरण और प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं हैं । कवि ने
इसका प्रयोग प्रेमास्थानों में नहीं किया है, बल्कि "बारहमासा" ग्रंथ के अनुसर्गति
ऐसे १५ छंद लिखे हैं । जैसे यह सरनी तथा फारसी के हज़ज़ (Haza))
छंद के "मफ़ाईनुश मफ़ाईनुश" (U—U—) की लय पर चलता है ।

१- नाचार्थ केशवदास ने रामचन्द्रिका में इसका प्रयोग किया है ।

संख्या० ताता भगवान्दीन - "केशव कौमुदी" (भाग-१), पृ०- २५४,

धुमिरिहौ जादि करतारा ॥

रह्यौ जिननबी उतियारा ॥

मिदयौ सब जगत अधियारा ॥

बड़ाई ताहि जगु मानी ॥

पर कत नाहि बिनु जानी ॥

विषय विकर्षाधार:- इस वर्ग के छंदों में विभिन्न परिसंख्यान के वर्णों का संयोग होता है। ये मिला वर्ग के छंदों से भिन्न हैं। उनके समान वर्णों में भी तब मैत्री होती है। जानकवि का "छुट्टल" ऐसा ही छंद है। उसमें प्रारम्भ में चौपाई के तीन वर्ण तथा बाद में चौपाई के दो वर्ण रहकर लय कम मिलाना गया है। कवि ने "ग्रंथदरसनावा" तथा "ग्रंथालकनावा" में इसका प्रयोग किया है। उदा०-

मेक बार छवि कांति दिखार्ई ॥ - १६ मात्राएं ।

तबते मन कौ डौरी ताई ॥ - १६ " ।

बिन देखी जब रह्यौ न जाई ॥ - १६ " ।

दयावंत हवे ईद पुजाइ ॥ " १५ " ।

घुंघट जालि दरस परसाव ॥ " १५ " ।

(दरसनावा)

इस तरह के छंदों का प्रयोग जानकवि के पूर्व प्रायः नहीं मिलता। ये कवि के नवीन प्रयोग हैं। यद्यपि इनका प्रयोग आधुनिक युग में कवि पंत, निराला, गुप्त, प्रसाद, बच्चन आदि ने किया है।

वर्णिक वृत्त:-

इसमें वर्णों और गणों के प्रयोग में कवि ने पूरी स्वच्छंदता का परिचय दिया है। छंदशास्त्र की दृष्टि से इनके सभी वर्णिक वृत्त खरे नहीं उतरते। जैसे मात्राओं की गणना ठीक पड़ती है। "पृथ्वीराजरासो" तथा अन्य गारण काव्यों में भी यही स्थिति मिलती है। "मोदक" वृत्त को छोड़कर शेष सभी समवतुष्यदी हैं।

भ्रमिका:- इसमें नगण तथा त्रु गुरु (III, 15) का योग होता है । इसका "कृता" वर्ण वृत्त से विलकुल साम्य है । "कथा कौतुहली" में नायक सरजंगी के वाग में संगीत प्रदर्शन तथा बारहमासे के अन्तर्गत कवि ने दो छंदों का प्रयोग किया है ।

जगतपति ॥ सरस सति ॥ विमल जति ॥ सुंदर जति ॥

धारी:- इसमें वर्णों और गणों दोनों की स्थिति ठीक नहीं है "धारा" वर्णिक वृत्त से इसका साम्य है क्योंकि दोनों के मात्राओं की संख्या एक-सी है । "धारी" वृत्त भी मिलता है, पर इसमें ६ ही मात्राएँ होती हैं । "कथा कौतुहली" में राजावगुरु के वाग में टहनते समय तथा बारहमासा के अन्तर्गत कवि ने दो छंदों का प्रयोग किया है ।

सैल करि है ॥ तावतरिहैं ॥ पुहण पैहैं ॥ गूढ लैहैं ॥

रिक्त:- यह दो सगण (115, 115) से बनता है । "रिक्त" वृत्त भी दो सगण से ही बनता है । "कथा कौतुहली" में कुंवर तथा दो परदेशियों के वाता वाग में इसका प्रयोग किया है ।

मुष्ण रंजन लै । लुन्कै कर दे ॥

पुनि आपुन लै ॥ मन आनन्द मै ॥

कमला:- यह "कमला" वर्ण वृत्त है । इसमें दो नगण तथा सगण (111, 111, 115) होता है, किन्तु वाक्कवि में गणों और वर्णों की स्थिति ठीक नहीं है । प्रत्येक पद में ७-७ वर्ण हैं यद्यपि मात्राएँ समान हैं । "कथाकौतुहली" में नायिका कौतुहली के वाग से लौटते समय उसके वियोग के वर्णन में इसका प्रयोग किया है ।

रहवी मन बाग मै ॥ विरहु बैराग मै ॥

बरवी दुष्ण दाग मै ॥ नाहि बजुराग मै ॥

पुबानी:- यह जगण, रगण तथा त्रु गुरु (151, 815, 15) से बनता है । आचार्य क वैशवदास का "नागवर्णिका" छंद विलकुल ऐसा ही है । कवि

ने "कथाकौतूहली" में कुंवर को राजमहल में जाने की आज्ञा के समय इस छंद का प्रयोग किया है ।

बुझाइ पाइ काछिया ॥ गुनाइ घाट जाछिया ॥

कहा कहे प्रबंणिया ॥ करै महा तरंगिया ॥

टिप्पणी:- यह चार सगण (11S, 11S, 11S, 11S) से बनता है । ज्ञानकवि में गणों की नियति ठीक नहीं है, पर १२ वर्ण तथा १६ मात्राएं ठीक हैं । "पृथ्वीराजरासो" में भी इसी तरह गणों की नियति ठीक नहीं मिलती । कवि ने "कथा कौतूहली" में दो पंक्तियों द्वारा कौतूहली के सौन्दर्यवर्णन से नायक के आकर्षित होने में इसका प्रयोग किया है ।

जिलचान लंक घघणासुतिका, रास्यपन कंठी विरसित जरा ।

चातुर फिर जोरी जरय करा, कहि जान विवारहु जंगदरा ॥

मोदक:- चार भगण (S11) से यह छंद बनता है, पर ज्ञानकवि ने चार सगण (11S) रक्ता है और चार पद न रखकर चार और दो के तुकान्त से छः पद रक्ते हैं । यह इसका नवीन प्रयोग है कवि ने अपने प्रेमाख्यानों में इसका प्रयोग नहीं किया है, केवल "ग्रंथ बुद्धिदायक" में १० छंदों का प्रयोग किया है ।

जिहि नाम लये सब काज सरै ॥

जप तेज काटै कौ डोल करै ॥

घन से जु निरंजन नाम ररै ॥

पल में अच कोटक होहि परै ॥

सुख कौ भरता दुख कौ हरता ॥

जपि रे जपि रे जपि रे करता ॥

भुजंग प्रवात:- इसमें भगण (1SS) की चार आवृत्तियां होती हैं, किन्तु ज्ञानकवि में गणों तथा गणों^{का} कोई निश्चित क्रम नहीं है । केवल मात्राओं का साम्य है । इसी तरह "पृथ्वीराज रासो" में प्रयुक्त भुजंग प्रवात छंदों में भी गणों और गणों का कोई नियम नहीं मिलता । "भुजंगप्रवाता" २० मात्राओं का एक मात्रिक छंद भी है^१ । जैसे यह उर्दू की बहर "फ़ऊलुल फ़ऊलुल, फ़ऊलुन, फ़ऊ-

सुन्" की गति पर आधारित है । कवि ने इसका प्रयोग "कथाकौतुहली" में नायक सरबंगी द्वारा संगीत प्रदर्शन में राजा जगद्वय की प्रशंसा में किया है ।

चिरंजीव जग रूप राजा सुरंगा ।
सदसयस उजागर त्रिमै नीर मंगा ॥
रसन पैक वषीं होइ बखान बैगा ।
रहै पकि करै जीव असतुति भुजंगा ॥

भुजंगी:- इसमें तीन यगण (155) और त्रय गुरु (15) का योग होता है। "पद्मवीराजरासो" में प्रयुक्त भुजंगी छंदों की भांति जानकवि में भी गणों, वर्णों एवं मात्राओं का कोई क्रम नहीं मिलता है । "कथाकौतुहली" में कवि ने कई छंदों का प्रयोग किया है ।

बजाये सभे साजये सब गंगी ।
तंबूरेर बाजैं गंग्रिती प्रदंगी ॥
दुरकनीन कठतारकिन्नर रूपंगी ।
दुंदभ डोल कुंभ बांजर सारंग सुरंगी ॥

जीजासिरजा:- यह पाँच भगण (511) तथा गुरु (5) से बनता है । नाबार्प केशवदास के "विशेषक" छंद से इसका विलकुल साम्य है¹। कवि ने "कथाकौतुहली" में बारहमासा के अन्तर्गत फागुन माह के वर्णन में इसका प्रयोग किया है ।

फागनि नागनि पीन छैं तन रैन दिना ॥
जोलत डोलहिं जाल न भावहिं जाल बिना ॥
बदन केसर केसूर नाहिन जात गिना ॥
बैन परै नहिं पी बिन कीतिग पैक ठिना ॥

नगाह:- यह "नगाव" छंद है । यह ज र व र ज तथा एक गुरु अर्थात् १६ वर्णों से बनता है । "पद्मवीराजरासो" में प्रयुक्त इस छंद की भांति जानकवि ने

1- सम्पा० लाला भगवानदीन - केशव कौमुदी (भाग-१), पृ० १२२, सं० २०१३ ।

भी गणों और वर्णों का पूरा ध्यान नहीं रक्खा है, किन्तु सभी वर्णों में मात्राएँ बराबर अर्थात् २४ ही हैं। "कथाकौतुहली" में भाग में नायक-नायिका के मिलन में तथा बारहमासा में असाढ़ के वर्णन में कवि ने इसका प्रयोग किया है।

लग्गुमी असाढ़ जाइ छाड़ गाढ़ सौ चना गज्ज्या ।
सुनंत मोर सोर ठौर ठौर अंग सुषा भज्ज्या ॥
भयौ बिक्रोग रोग चिंत हूँ अन्त मित बिना ।
परै न नीद भावती दुष्णि रहै जिंसा दिना ॥

चातुरः:- यह "चामर" छंद है। इसमें र+अ+र+अ+र अर्थात् १५ वर्ण होते हैं। ज्ञानकवि के कुछ चरणों में गण और वर्ण ठीक मिलते हैं और कुछ में नहीं। आचार्य केशवदास जैसे कवि में भी गणों का दोषा मिलता है^१। संस्कृत में "पंच चामर" नाम का एक त्रिमात्रिक वर्ग का छंद मिलता है जिसमें २४ मात्राएँ होती हैं। "कथाकौतुहली" में बारहमासा के अन्तर्गत माघ मास के वर्णन में कवि ने इसको प्रयुक्त किया है।

माघ मास जाइयौ बु सीत कौ संपद है ।
नेह देह दाहि है बिक्रोग कौ कर्मदि है ॥
परै न चैन कौतिगी सुमार माहि मारि है ।
पहार हार चिंत है तुसार जारि जारि है ॥

सवैया:- कवि ने अधिकतर २३, २४, २५ या ३१ वर्णों के सवैया का प्रयोग किया है। जिसमें ३१ वर्ण की सवैया तो वर्णिक दण्डक है। "कथाकवलावती" में दोहा तथा सोरठा के स्थान पर बीच-बीच में २३ तथा ३१ वर्णों के सब ७ सवैया, "कथामत्तदम्वती" में बीच-बीच में दोहों के साथ २३, २५ तथा ३१ वर्णों के सब ५८ सवैया, "प्रयत्नैलमवतुं" में २५ तथा ३१ वर्णों के सब ५५ सवैया, "कथाकौतुहली" में सब १८ सवैया जिसमें प्रथम १ से १३ संख्या तक ३ वर्ण के दण्डक

तथा शेष १४ से १८ तक २३ वर्णों के तथा "कथाकलावन्ती" में बारहमासा के बाद २३ वर्ण के एक सर्वथा का प्रयोग किया है। इनके सभी वर्णों में वर्ण एवं मात्राएँ पूरी ठीक नहीं उतरती। वर्णों का तो बिल्कुल ध्यान ही नहीं रखा है। वाचार्थ श्रुत भाव के अनुसार २३ वर्णों के अन्तर्गत बागी-वरी (ब०+ग), बकोर-(भ०+गल), सर्वगासी (त०+ग ग), सुमुली (ब०+ल ग), फलगवन्द (भ०+गग) आदि, २४ वर्ण के अन्तर्गत गंगोदक (र०), दुर्मिल(स०), गाभार (त०), फुलतहरा (ज०), वाम (ब०+य), वरसात (भ०+र), किररीट(भ०) आदि तथा २५ वर्णों के अन्तर्गत सुन्दरी (स०+ग), वरचिन्द (स०+न), लवंगलता (ज०+ल) आदि आते हैं। २६ वर्ण का सर्वथा वर्णिक दण्डक है। अनवरण (र,र,र,र,र,र,र,र,र,र,ग) तथा जगमोहन (२६ वर्ण, अंत में गुरु) ऐसे ही दण्डक हैं।

छंदों का नवीन नामकरण तथा प्रयोग:-

नामकरण की दृष्टि से जानकवि के छंदों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (१) पहले के छंद हैं जिनमें कवि ने पूर्व प्रचलित नामों को कुछ बदलकर रक्खा है। यथा- सीमाणा, वंदाणा, वषा, रोड्डक, ताण्णी-नराह, वावर आदि। सम्भवतः ऐसा परिवर्तन भाषा-भेद और लिपि-भेद के कारण हो सकता है। (२) दूसरे के हैं जो बिल्कुल नवीन नाम हैं जिनका न तो किसी छंद शास्त्रीय ग्रंथ में पूरा नाम मिलता है और न नाम-साम्य, यद्यपि इस वर्ण वा मात्रा के कुछ छंद मिलते हैं, यथा-फारसीमति, बाराह, गणद, लीलासिरणा, भमका, रिल, पवानी आदि। (३) तीसरे के छंद हैं जिनका कवि ने बिल्कुल नवीन प्रयोग किया है। इनके पूर्व इस तरह के प्रयोग नहीं मिलते, यथा - तारीपधिझिवा, गंधाणा, गीतक जैसे मिश्रित छंद, षट्-पदी रूप में मोदक का प्रयोग तथा फुनिंग और षुद्धल जैसे विकर्णाधार छंदों का प्रयोग। इनका बिल्कुल विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

निष्कर्ष:-

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि कवि ने अन्य प्रेमाख्यात्मक कवियों की भांति अपने समस्त प्रेमाख्यातों में सबसे अधिक दोहा, चौपाई या

बाँपई छंदों का ही प्रयोग किया है । छंदों का समन्वय दिखाने के लिए अपने ग्रंथ "कथा कौतुहली" में विविध छंद प्रयुक्त किए हैं । इनके अधिकांश छंदों के स्रोत अपभ्रंश-साहित्य या वाद के चारण कवियों के प्रयुक्त छंद हैं । जिन्होंने उन्हीं की भाँति स्वतंत्रता तथा स्वच्छंदता का विशेष परिचय दिया है । नवीन छंदों का प्रयोग इनकी अपनी मौलिकता ज्ञात होती है । उन्होंने सबसे अधिक मात्रिक और समवतुष्यदी छंदों का प्रयोग किया है

- - -

(ख) वर्तकार और प्रतीक विधान

वर्तकार

काव्यगत भाव एवं वस्तु में सौंदर्य की प्रतिष्ठा के निमित्त वर्तकारों की योजना की जाती है। ये काव्य के गुंजार होते हैं। अधिकांश वर्तकारों का विधान सादृश्य के आधार पर होता है। ज्ञानकवि ने भी अधिकतर साधर्म्य या सादृश्य मूलक वर्तकारों का सहारा लिया है। सादृश्य मूलक वर्तकारों में सादृश्य का बोध कराने तथा भावों का उत्कर्ष प्रकट करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। यह सादृश्य मुख्यतः रूप, गुण और धर्म का होता है। कवि लोग सादृश्य वस्तुएं अधिकतर भाव तीव्र करने के लिए ही लाया करते हैं। अन्य प्रेमाख्यात्मक कवियों की भांति ज्ञानकवि ने भी सादृश्य मूलक वर्तकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति का अधिक व्यवहार किया है। इनके सहारे उन्होंने अपनी कल्पना का बुरा निस्तार किया है। रूप-वर्णन में ऐसे वर्तकारों की भद्रमार मिलती है। ऐतिहासिक कवियों की भांति यादवैदग्ध्य तथा जपलकार के लिए उन्होंने वर्तकारों की जनावायक शैली और जबरदस्ती ठूस-ठास नहीं की है। काव्य रस के स्वाभाविक प्रवाह में जो वर्तकार जा गये हैं सो जा गये हैं। उनकी योजना के लिए कवि की ओर से कोई जाग्रद नहीं है।

उपमानों का प्रयोग:-

हिन्दी के अन्य प्रेमाख्यात्मक कवियों की भांति ज्ञानकवि ने भी फारसी साहित्य के उपमान न प्रयोग करके भारतीय क्षेत्रों से ही उपमानादि ग्रहण किए हैं और इनके प्रयोग भी वहीं की पद्धति के अनुसार किये हैं। विज्ञान की दृष्टि से इनके द्वारा प्रयुक्त उपमानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

(१) साहित्यिक परम्परा के दृष्टिगत उपमान ।

(२) लोक जीवन से लिए गये मौलिक या नवीन उपमान ।

ये दोनों तरह के उपमान प्रयोग की दृष्टि से अनपेक्षाओं में दो रूपों में प्राप्त होते हैं-

(क) नव-शिल्प वर्णन से सम्बन्धित उपमान ।

(ख) अन्य विषय के वर्णनों से सम्बन्धित उपमान ।

इन उपमानों का भी दो आधार होता है -

(क) प्रकृति से लिए हुए उपमान ।

(ख) अन्य सांसारिक वस्तुओं के उपमान ।

साहित्यिक परम्परा के दृष्टिगत उपमान:-

जायकवि के अंशकारों में प्रयुक्त उपमान अधिकतर परम्परा से चिसे-घिसाये या कवि-सम्प सिद्ध ही हैं । उन्होंने अपनी ओर से कोई मौलिकता लाने का प्रयत्न नहीं किया है । परम्परागत नव-शिल्प या रूप-सौंदर्य वर्णन से सम्बन्धित उपमान रूप-साम्य, वर्ण-साम्य तथा गुण-साम्य पर आधारित हैं और अधिकांश प्रकृति से लिए गए हैं । अन्य सांसारिक वस्तुओं से संबंधित उपमानों की संख्या बहुत कम है ।

लोक जीवन से लिए हुए मौलिक या नवीन उपमान:-

अंशकार वर्णन में लोक उपमानों की योजना की दृष्टि से जायकवि प्रायः असफल रहे हैं । जिस तरह उन्होंने नव-शिल्प वर्णन द्वारा कवि कर्तव्य निभाया है ठीक उसी प्रकार उपमानों के चुनाव में परम्परा-प्रथित उपमानों का सहारा लेकर अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है । उनका सारा वर्णन काव्यात्मक है सौक्य नहीं ।

अन्य विषयों के वर्णन से सम्बन्धित उपमानों के वर्णन में कवि ने अपने सादृश्य-पूतक अंशकारों के लिए जिन उपादानों को चुना है, चाहे वे प्रकृति के उपमान हों, चाहे अन्य सांसारिक वस्तुओं के, वे अधिकांश लोक परिवित हैं । ऐसे उपमान दो रूपों में मिलते हैं -(क) भाव-वर्णन के उपमान तथा (ख) वस्तु-वर्णन के उपमान ।

भाव-वर्णन के उपमानों द्वारा कवि ने मानवीय भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि के माध्यम से इन्होंने मानव हृदय की विविध रागात्मक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अंकन किया है। संयोग की अपेक्षा नायिकाओं के निरह वर्णन में कवि ने ऐसे उपमानों का प्रयोग अधिक किया है।

वस्तु-वर्णन के उपमानों में कवि ने बहुत से लोक उपमानों की सहायता से अपने विनों की गाढ़ अनुभूति कराने का प्रयत्न किया है। राजकुमारों के पैदा होने पर उनकी वात्स्यावस्था के समय, समुद्र में चली हुए नाव की तेज और मंद गति पर, नाव से सागर में डूबने के पश्चात् कभी राजकुमार तथा उनके मित्र या राजकुमारी के किनारे बहकर लगे हुए बेहोशी की अवस्था में, कभी नायक-नायिका के विवाह के पूर्व, कभी वारहमासा के अन्तर्गत आदि विभिन्न प्रसंगों में ऐसे उपमान दीखते हैं। उदाहरण के लिए "कथा कल्कावती" में नायिका कल्कावती को नदी से बहते हुए निकालने पर कवि की उपमा देखिए:-

कल्कावत हूँ सलिला परी । ईदपुरी तैं अछिरा डरी ॥
बूझ लई नदी कै मांहि । पाइ मलाहन पकरी बांहि ॥
बल तैं काडि करी जौं ऊढ़ी । बहुबा अनित अवि मनौ काढी ॥
॥१५६॥

"कथा कामरानी वा पीतमदास", "कथा चन्द्रसेन राजा सील-निधान", "कथाकामलता", "कथापुहुपहरिजा" आदि कई प्रेमाल्यानों में प्रसिद्ध लोकोपितयों का व्यवहार भी उपमान रूप में किया है।

उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक:-

वर्णनकारों में इन तीनों सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग जायसी आदि अन्य प्रेमाल्यान्क कवियों की भाँति जानकवि ने भी अपने प्रेमाल्यानों में सबसे अधिक किया है। इनके सहारे ही इन्होंने अपनी कल्पना का विस्तार बहुत दूर तक बढ़ाया है। इन अलंकारों का प्रयोग कवि ने नायिकाओं के नल-गिर वर्णन में, नायकों के पैदा होने पर उनकी वात्स्यावस्था के रूप-सौन्दर्य वर्णन में, नायक-नायिका की संयोगावस्था तथा उनकी वियोगावस्था के निरूपण में

गीर युद्ध-वर्णन प्रसंगों में ब्रुत किया है। "कथाकलावती" ^१, "कथारतनमंजरी" ^२, "कथारतनावती" ^३, "कथानन्दमयंती" ^४ आदि में नायिकाओं के नव-शिव वर्णन में इन अलंकारों की भरमार है। इस प्रसंग में कवि को अलंकार भरने का ब्रुत मौका मिला है। "कथारतनमंजरी" ^५, "कथाकलावती" ^६, "कथानन्दमयंती" ^७, "कथारतनावती" ^८ तथा "कथाकलावती" ^९ में नायक-नायिका के संयोग वर्णन में तथा वैवाहिक संबंध के स्वरूप तिरस्कृत करने पर "कथाछीता", "कथाकामरानी वा पीतमदास", "कथाविज्ज्वां देवदत्ते", "कथा वरदत्तेरपतिसाह", तथा "कथा-कलावती" में नायक-नायिका के माता-पिता या नायक - नायिका के पिता के युद्ध में इन अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। "कथाकलावती", "कथाकलावती", "कथाकलावती", "कथाकलावती", "कथापुष्पविरिञ्चा" तथा "कथारतनमंजरी" में त्रियोग पूर्ण बारह मासा के वर्णन में भी उनकी पर्याप्त मात्रा मिली है। घटना-वर्णन, दृश्य, अवस्था, अवस्था परिस्थिति आदि वस्तु-विषयों में उत्प्रेक्षा का प्रयोग विशेष दृष्टिगोचर होता है। इन सभी विभिन्न रूपों में अलंकारों के लिए उपमानों के प्रयोग में कवि ने कोई नवीनता नहीं दिखाई है। सभी उपमान परम्परानुगत और भारतीय काव्य-पद्धति पर होने से जाहे उदासीन भले हो, पर भाव के विरोधी नहीं दीखते। रूपक में सांग, निरंग तथा परम्परित सभी प्रयुक्त दीखते हैं। उत्प्रेक्षा में कवि को वस्तु-त्प्रेक्षा तथा हेतुत्प्रेक्षा अधिक प्रिय रहे हैं। ये अलंकार उत्कर्ष की व्यञ्जना के लिए बड़े शक्तिशाली होते हैं। एक साथ उदाहरण इनके देखे जा सकते हैं -

१- चौ०- ४१ से ५९ तक।

२- चौ०- ५० से ५९ तक।

३- चौ०- ८३ से ९० तक।

४- चौ०- ९२ से ९७ तक।

५- चौ०- १५२ से १६३ तक।

६- चौ०- ८३ से ८५ तक।

७- सबैया - ३९।

८- चौ०- १४, १२०, १५० तथा १५७।

९- चौ०- ४२, ४३ तथा ७६।

उत्प्रेक्षा- नासिक अधिक विराजत नारी । अञ्जित कुंकुम शानि रिकारी ॥

तापर मुक्ता बने जदोस । बंफली पर मानहु जोस ॥४३॥

(कथा रतनमंजरी)

जभेद-रूपक- रजनी से तीप्त बारही, और बदन रजनीस ।

रुडिगन मुक्ता मंग के, सुभग विराजत सीस ॥

(ग्रंथलैलमज्जू)

अतिशयोक्ति:-

दण्डी ने इसकी समस्त अलंकारों का मूल बताया है । प्रेम-भाव को अधिक तीव्र और बलत्कार सर्वन की दृष्टि से जात्कवि ने इस अलंकार का प्रयोग किया है । रूपकातिशयोक्ति कवि को अधिक प्रिय रही है । नामक तथा नायिकाओं के रूप-सौंदर्य वर्णन, उनके प्रेम के उदय तथा विछुड़ने पर वियोगा-वस्था में, "कथाकन्कावती"^१, "कथाकलावती"^२, "कथापुहुपवरिष्ठा"^३, "कथा सुभटराव"^४ आदि में राजाओं के राज्य-वैभव के वर्णन में तथा कथा के प्रारम्भ में रसुति में कवि ने इस अलंकार को आश्रय दिया है । वियोगावस्था में "कथा कन्कावती"^५, "ग्रंथलैलमज्जू"^६ आदि काव्यों में नायिकाओं के पत्रोत्तर में कवि ने इसका अच्छा चित्रण किया है । रीतिकातीन कवियों की भाँति कवि ने भी उसके उपमान प्रयुक्त किए हैं । "कथारतनावती" में राजकुंवर महिमोहन के सोकर जागते ही रतनावती के प्राप्त करने की इच्छा का एक चित्र देखिए-

दोहा- बितवत ही रीभर्या कुंवर, गयो मगन अति होइ ।

वे बसतर हैं गात में, बंसुर्वनि डारे पाइ ॥

अन्य अलंकार:-

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों में दृष्टान्त, प्रतीप

१- जी०- ५ तथा ६ ।

२- जी०- ३ से १९ तक ।

३- जी०- १२ से १७ तक ।

४- जी०- ९ ।

५- जी०- १७ ।

६- जी०- ४७ ।

विभावना, भ्रम, संदेह, निर्दर्शना, मायावीकृत, उदाहरण, विनोदित, अनुकृत, परिकरांकुर, प्रहेलिका, लोकोक्ति, विरोधाभास, व्यतिक्रम, व्यति-
रेक आदि अलंकारों के प्रयोग भी ^{यत्र-} विभिन्न प्रसंगों में मिलते मिलते हैं ।
ये अलंकार इन काव्यों में समत्कार - प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं जाय हैं, बल्कि
काव्य रचना के साथ अपने जाय जा गये हैं जिससे इनके अप्रयुक्त विधानों में कोई
विशेष समत्कार नहीं जा सका है । यहां विभिन्न प्रेमाख्यातक काव्यों से
कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण दिये जा रहे हैं, जो ये हैं-

दृष्टान्त- बौ अनौत राजा करे, ताहीं कछु न बसाइ ।

हाथी हरिहा होइ ती, राख्यो कैसे जाइ ॥

(कथाकुलवती)

प्रतीप(चौथा)- अधिक कांति तिय अंगकी, देखात जुगम लजाहि ।

संघा बादुर मैं दुरी, जरु संघा बन माहि ॥

(कथा मोहनी)

विभावना- कजरारी काजर बिना, तापर काजर देत ।

दूनी बान्हि बाढ़ि है, बितवत चित हरलेत ॥

(कथारतनमंजरी)

भ्रम- कवल सदा तरसत रहै, कबहुं बंद लहत ।

मैन कवल तिय जान कहि, मुखासहि माहि रहत ॥

(प्रयत्नमंजरी)

विनोदित- कौन काज मनु पैसु बिनु, कहा दीप बिनु ग्रह ।

बैसी घरनी मेहु बिजुं, मेह बिना ज्यों देह ॥

(कथा पुहुपवरिजा)

परिकरांकुर- असुवा डारत बसत हैं, रहत न काई ठांव ।

काहे नाहिन बरति है, सुरपति बाकी नाव ॥

(कथापुहुपवरिजा)

उसमें द्रिष्ट परिकरांकुर है ।

वर्णान्तरन्यास- रामचंद्र की विपत्ति में, लंघामन संगी होई ।

भयन सौ या जगत में, दूसर नाही कोइ ॥

(कथारतनमंजरी)

वस्तुवृत्ति- जैसी ठाढ़ियारों भयों, कहत न कोऊ रैन ।

जायों या विधि चौप सौ, मोहन मूरति मैंने ॥

(कथारतनमंजरी)

व्यतिक्रम- मांग धार नागिन अलिक, कैसै होत बनाव ।

कै नै डसि है पेरि कै, कै बहु करि हैं पाव ॥

(कथाकामलता)

लोकोपित- बुरा न कीजै जानकहि, भली करहु सब कोइ ।

जैसी बड़ि बोज जगु, तैसी ही फलु होइ ॥

(कथाकामरानी वा पीतमदास)

प्रहेलिका- ना बहु उपवन ना बहु सदन । ना बहु जनिता मूरति मदन ॥

ना बहु कीला ना नै केल । ना नै जलिया ना वह छोल ॥

ना वह हंसियां जंकवारन भरिबौ । ना बहुमैन तपति कौ हरिबौ ।

ना बहु तरवर ना नै फूल । ना नै मपुकर रहे जु भूलि ॥

ना नै पीतक नाहि पपीहा । ना नै कोकिल अंजत जीहा ॥६४॥

(कथारतनमंजरी)

शब्दालंकार :-

अन्य प्रमाख्याक काव्यों की भांति जानकवि ने भी वर्णालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों का प्रयोग कम किया है । इसमें इन्होंने पुनरुक्ति-प्रकाश, यमक, अनुप्रास, वीप्सा आदि का ही अधिक प्रयोग किया है । कहीं कहीं रत्नेष का भी प्रसंग मिलता है । "पुनरुक्तिप्रकाश" इनका सबसे अधिक प्रिय जलंकार रहा है । इसके उदाहरण इनके सम्पन्न प्रमाख्यानों के विभिन्न प्रसंगों में बिखरे पड़े हैं । अनुप्रास में छेकानुप्रास तथा वृत्तानुप्रास का प्रयोग खूब किया है । वे कथा के प्रारम्भ में स्तुति-प्रसंग में अधिक प्रयुक्त हुए हैं । वीप्सा का प्रयोग प्रेम के आविर्भाव के बाद नायक के विकलता, अमुद के समय तथा अन्य अनेक विधनवाधाओं के प्रसंगों में किया है । इन जलंकारों के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य

हैं-

पुनरुक्तिप्रकाश-

(१) छुरी छुरी मुदगर रयी मुदगर । जंज जंज प्रस्तर रयी प्रस्तर ॥

हलबल दुसफोटहि, दुसफोट । मूर मूर करिहैं जोट ॥३३॥

(कथाकलावती)

(२) दुरि दुरि बीन बजावै रोवै । असुबनि सौं कर मलिमलि पोवै ॥३४॥

(कथनलक्ष्मणी)

छैकानुप्रास- अरदुसेर सन्मुषा बह्यौ, दम बल सावि अपार ।

दहूं बोर हुंदभ बजे, जानै जूझार ॥

(कथाअरदसेर पतिसाह)

बुध्नुप्रास- ज्यो तरवर ते बिछुर्यो पात । त्यो इत उत डोलत भरमात ॥३५॥

(कथाअरदसेर पतिसाह)

बीप्सा- हाड हाड करि रोड पुकारै । कबहुं अपने बसतर फारै ॥

सुनी रोर तब उत्तिम जाग्यो । जाड कुंवर के पाडन जाग्यो ॥

हा, हा कुंवर बात मो कहिये । कौन अगिन तेरो उर दहिये ॥३६॥

(कथारतनावती)

यमक- छवि रणवारी सीस है, पर रणवारी भूप ।

फिरै बसीला जावती, निन्सत निन्सत रूप ॥

(कथाकुलवती)

इसमें श्रंग पद यमक है ।

रसेका- असुवा ठारत बलत है, रडत न काहुं ठांव ।

काहे नाहिन बरसि है, सुरपति जाकौं नांव ॥

(कथापुहुपबरिछा)

निष्कर्ष:-

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि जानकवि में अपने समस्त प्रेमात्मानों में प्रेमानुभूति को तीव्रतर बनाने, प्रेम के मानसिक पक्ष को विवृत

करने तथा भावानुभूति को तीव्र करने के लिए अधिकतर सादृश्य-मूलक वर्णनकारों का ही प्रयोग किया है। शब्दार्थकारों के प्रयोग की संख्या कम है, पर उन वर्णनकारों में कहीं भी सम्यक्कार या बहुवचन प्रदर्शन नहीं दीसता, न तो रीतिव्यापीन कवियों की भांति ये अवर्द्धनी लाग ही गये हैं। वे तो स्वाभाविक रूप से अपने साधु काव्य रचना में आ गये हैं। इनमें भारतीय उपमानों का प्रयोग किया है जो परम्पराभूत होने से इतने उत्कृष्ट एवं सजग नहीं हैं। केवल भाव और वस्तु-वर्णन से सम्बन्धित कुछ उपमान लोक-जीवन से लिए गये हैं।

प्रतीक विधान

प्रतीक का स्वरूप:-

प्रतीक एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे मनुष्य अपने भावों की यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए बहुत दिनों से प्रयोग में लाता आया है। साहित्य तथा संस्कृति के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्टतया होता है कि प्रतीक निर्माण में परम्परागत संस्कारों का हाथ होते हुए भी वे देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप सदा एक से नहीं होते, फिर भी प्रारम्भ से इनका संबंध किसी न किसी भाव से अवश्य होता है। मध्ययुग में प्रतीकों की प्रधानता सर्वमान्य है। आधुनिक युग में मानव की कल्पनाओं का भुकाव प्रत्यक्ष ज्ञान की ओर अधिक होने से प्रतीकों का महत्व अत्यन्त कम हो गया।

प्रेमात्मक विशेष रूप से सृष्टी काव्यों के अन्तर्गत प्रतीकों का स्वरूप कुछ और है। ईश्वर विराट् है अतः उसकी अनुभूति और सौन्दर्यरूप को साधारण शब्दों द्वारा सरसतापूर्वक प्रकट नहीं किया जा सकता। जब शब्दों की शक्ति या हमारी भाषा पंगु और अशक्त-सी बनकर उसकी विलक्षणता और अनुभूति को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हो पाती तो उसकी अभिव्यक्ति के लिए असमर्थ होकर सकेतों तथा प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करना अनिवार्य-सा हो जाता है। प्रतीकों में अभिव्यञ्जना शक्ति अधिक होती है। इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्यापक से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरसतापूर्वक

उपगत करने का पूरा अवसर मिल जाता करता है^१।" उससे गृह्य विद्या की सहायता मिली रहती है और लोगों को सुगमता से परमात्मतत्त्व का बोध हो जाता है। फ़ारिज महोदय ने स्पष्ट इन प्रतीकों के प्रयोग से दोलायन बताया है- एक तो प्रतीकों की जोड़ देने से धर्म-बाधा टल जाती है दूसरे उनके उपयोग से उन बातों की अभिव्यक्ति भी बूझ हो जाती है जिन्हें दिगुद्गति से वाणी असमर्थ ब्रह्मा प्रकट होती है^२। इसीलिए इन प्रतीकों की भाँट में सूक्तियों ने इन्द्राय के कर्मकाण्ड का शिकार किया फिर भी उन पर किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं हुआ। वही प्रवृत्ति संतों में भी प्राप्त होती है उन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक ग्रंथ विश्वासों तथा रूढ़ियों के प्रति इन्हीं प्रतीकों के द्वारा विद्रोह व्यक्त किया।

प्रतीक सांकेतिक वस्तु के तात्त्विक स्वरूप को उपरिधत्त नहीं करना, बल्कि केवल उसका आभास मात्र को ही उपरिधत्त करता है। यह सकेत पूर्ण तथ्य नहीं है। कवि अपने काव्य के द्वारा उद्भूत को सांकेतिक करता है और संकेतों को ऐसा रखता है जो साधारणतः पाठक को प्रेक्षणीय हो। प्रतीक-पद्धति का सम्बन्ध सांकेतिक से नहीं, प्रत्युत सारूप्य और प्रभाव-साम्य से है। वस्तु जिसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है तथा प्रतीक जिसके द्वारा वह अभिव्यक्ति होती है उसमें प्रभाव साम्य के कारण सारूप्य और सादृश्य भावना जागती है^३। रहस्यवाद और प्रतीक विधान का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, किन्तु दोनों एक दूसरे के समानार्थी नहीं। प्रतीक केवल जीवन की अन्तर्भूत चेतना का आभास मात्र देने का प्रयास करता है जबकि रहस्यवाद उसकी उपरिधत्त करना चाहता है।

प्रतीक की स्थिति:-

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रतीकों का सबसे अधिक

१- परशुराम चतुर्वेदी - कबीर साहित्य की परब - पृ०-१४२, सं० २०११।

२- चन्द्रबती पाण्डेय - तत्त्वपूर्ण ब्रह्मा सूक्तियों-पृ०-९७-९८, १९४८ ई०।

३- डा० सरला शुक्ल - हिन्दी सूक्ती कवि और काव्य - पृ० २१४,

प्रयोग मध्ययुग के संत तथा सूफ़ी कवियों ने किया । संतों ने अपने काव्यों में रुढ़ि एवं परम्परा से प्राप्त सिद्धों, नाशों वार्दिक के प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग किया है । इनके योग-परक प्रतीकों में बौद्ध धर्म से निकसित बुद्ध कर्मकाण्डों के निष्पत्ति की प्रवृत्ति लिए हुए ब्रह्मान की प्रकृति से उत्पन्न नाथ सम्प्रदाय की आत्मानुभव और योग की परम्परा का एक सशुद्ध रूप प्राप्त होता है । इनके भावात्मक रहस्यवादी प्रतीकों के अन्तर्गत मानवेतर प्रकृति के प्रतीक जैसे ज्ञातक, हंस, पतंग, चीन आदि दास्य तथा वात्सल्य सम्बन्धी प्रतीक, दास्यत्व के प्रतीक, विवाह और अन्तर्दृष्टि के प्रतीक, एकात्मभाव और आध्यात्मिक मिलन के प्रतीक, आध्यात्मिक आनन्द एवं विवाह के प्रतीक, वेदान्त-दर्शन के अस्तित्ववादी प्रतीक आदि तात्त्विक एवं नीति परक प्रतीकों के अन्तर्गत ब्रह्म अर्थ के बोधक प्रतीक, माया सम्बन्धी प्रतीक, वायुजि-मूलक प्रतीक, नारी रूपों के प्रतीक, संसार बोधक प्रतीक, हाटनगर, जहेरी, प्रल मृग, बगुना, भंवर-भंवर प्रतीक आदि, साधनात्मक रहस्यवादी प्रतीकों के अन्तर्गत हयोग के प्रतीक यथा-त्रिकुटी, गगनमण्डल, जनाहद, निर्जन, सुरति-निरति, शून्य, सत्यसमाधि, परमतत्त्व, मुद्रा, डाइन, ब्रह्मरूप, कुंडलिनी, जोगिनि, लीलातत्त्व तथा उलटपलटियों की अनेक योजनाएँ मिलती हैं^१। इस तरह संतों ने संख्यावादी प्रतीकों का पर्वत ही उड़ा कर दिया^२।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रतीकों के जिन अर्थों की सूफ़ी परम्परा को हृदयगम करते हुए भारतीय वेदान्त-दर्शन एवं योग परक साधना प्रणालियों का सुन्दर समन्वय किया जिसमें अस्ताह की धारणा तथा प्रतिबिम्बवादी प्रतीकों में शून्यतत्त्व, ब्रह्म, शिफत, नदी, समुद्र, बुक्तचित् और अचित् आदि संख्यावादी प्रतीकों में साधक की बार अवस्थाएँ-

१- विस्तार के लिए देखिए- डा० बीरेन्द्रसिंह - "हिन्दी-काव्य में प्रतीक-वाद का विकास"- पृ० १६९ से २६५ तक, १९६० ई०, अप्रकाशित प्रबंध, प्रयाग विश्वविद्यालय ।

२- विस्तार के लिए देखिए- अध्याय -४ "प्रेम-निरूपण" में "आध्यात्मिक-संकेत" ।

गरीयत, तरीकत, हकीकत, तथा मारिकत, सात मुकाम्मात- अदिमा, रुक, बुहद, मारिक, बन्द, हकीक, वरु, वा फना, सात वन, सात बढाव या सात खण्ड (तनीवर, बृहस्पति, मंगल, अदिति, रुक, बुह तथा सोम), बार नगर- भोगपुर, गोरखपुर, न नेहनगर, तथा रूपनगर, बार-लोक-नासूत, मरुत, बुरत तथा लाहूत । नी ताका, बारहमंदिर, पांच हरकारा, जनाहद, बक जादि तथा प्रेम भाव के प्रतीकों में साकी, गराब(मदिरा) जादि का विकसृत विवेचन उस्मान की "विजायती", कासिम के "हंसवाहर", "सुरमोहम्मद के "इन्दावती" तथा "अनुरागवासुरी", जायसी के "पद्मावत" जादि में मिलते हैं ।

जानकवि के प्रेमाख्यानों में संतों तथा सुफियों के इन संख्यावाची या सांकेतिक प्रतीकों का अभाव है । केवल कुछ प्रेमाख्यानों में नगरों के नाम दिए हैं जिन्हें सौन्दर्य की कुछ प्रतीकात्मकता की भाँति मिलती है । यथा - "कथा-जवनावती" में अमृतपुरी, "कथारतनमंजरी" में बंदपुरी, "कथा कवलावती" में रूपपुरी तथा मदननगर, "कथाकलावती" में विजासपुर तथा भोगपुर, "कथा पुहुप-वरिजा" में प्रेमपुरी, "कथाकौतूहली" में हुनासपुरी, "कथाकामलता" में हंसपुरी जादि हैं । कथा के प्रारम्भ में जल, निर्जन, हज़रत, रसूल, बारम्बार जादि के बंदना में परमात्मतत्व का, नायकों के योगी-वेश धारण करने में योग्यरक तथा कहीं कहीं अद्वैत एवं प्रतिबिम्बवाद के प्रतीकों का केवल संकेत मात्र मिल जाता है^१। बाद के क्षेत्र में जो प्रतिबिम्बवाद है भावना के क्षेत्र में वही प्रतीक है । असूफी प्रेमाख्यान्क कवियों की भाँति इनके दाम्पत्य, खच्छंद(काम) तथा अध्यात्मपरक प्रेमाख्यानों में नायिकाओं के रूप-सौंदर्य वर्णन में, नायकों के प्रयत्न में उनके अनेक प्रेम-मार्ग की बाधाओं तथा नायक-नायिका के मिलन एवं जानेंदानु-भूति में, उनके काम तथा रति रूप में, सिंहलद्वीप तथा प्रकृति के सौंदर्य में और विविध पात्रों तथा अनेक प्रासंगिक कथाओं में प्रतीकों की कल्पना की जा सकती है ।

१- विस्तार के लिए देखिए - अध्याय ४ "प्रेम-निरूपण" में "अध्यात्मिक - संकेत" ।

रूप-सौन्दर्य के प्रतीक:-

सामान्यतः प्रेमासक्ति और रूपासक्ति का चिर और अन्योन्य संबंध रहा है। जहाँ प्रेम है वहाँ सौन्दर्य है और जहाँ सौन्दर्य है वहाँ प्रेम। समस्त प्रेमात्मानक कवियों ने अपने नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य के माध्यम से ईश्वरीय ज्योति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। जान कवि की भी नायिकाएं परमसौन्दर्य की प्रतीक हैं इसीलिए कवि ने रतनावती^१, कवलावती^२, नलदमयंती^३, सुकेसी^४, मोहनी^५, रतनमंजरी^६ व आदि नायिकाओं के नल-गिल का बड़ा विषाद वर्णन किया है^७। उसके अन्तर्गत कहीं-कहीं चन्द, चकोर, संजन, भ्रमर, चकवा-चकई, मीन आदि प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। कवि को जीवन सौन्दर्य के क्रमिक विकास एवं हास का भी पूर्ण ध्यान रहा है जिससे कहीं-कहीं वरमैं भी प्रतीक के रूप दृष्टिगोचर होते हैं। नायिकाओं के साथ नायक के सौंदर्य का चित्रण भी कवि ने कहीं-कहीं किया है। प्रतीक के ये सभी प्रयोग परम्परायुक्त हैं।

नायक-नायिकाओं के रूप-सौंदर्य के अतिरिक्त उनके नगरों को भी कवि ने सुफुी कवियों की भांति अतीव सुन्दर विवृत किया है जोकि सौन्दर्य के प्रतीक हैं। जैसे -सिंहलद्वीप, अमृतपुरी, हंसपुरी, चंदपुरी, रूपपुरी, विलास-पुरी, प्रेमपुरी आदि। कुछ नायिकाओं के नाम यथा - चन्द्रावती, रूपनिधि, पद्मिनी, छवितागर, मोहनी, रूपरभा आदि भी सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में हैं। जिस तरह जायसी ने "पद्मावत" में सिंहलद्वीप में पद्मिनी नायिका के रहने का

१- कथा रतनावती - चौ०- ८३ से ८६ तक।

२- कथा कवलावती - चौ०- २५ से २८ तक। ४९ से ५४ तक।

३- कथा नलदमयंती - चौ०- १३ से सबैया १६ तक।

४- कथा पुहुपवरिष्ठा - चौ०- ४० से ४३ तक।

५- कथा मोहनी - दोहा - १२ से २० तक।

६- कथारतनमंजरी - चौ०- ५० से ५८ तक।

७- विस्तार के लिए देखिए - अध्याय - ४ "प्रेम-निरूपण"में "प्रेम और सौन्दर्य"।

उल्लेख किया है उसी तरह जानकवि ने "कथा रतनमंजरी" में सिंहासदीप में पद्मिनी के रहने का विवर्ण किया है ।

योगपरक प्रतीक:-

जानकवि के प्रेमाख्यानों में योगपरक प्रतीक संत और सूफी कवियों की भाँति संस्थावाचक रूप में नहीं मिलते । केवल दाम्पत्यपरक प्रेमाख्यानों में नायकों के योगी-वेश में कंधा, छाता, वीणा, गुदड़ी, तम्पर, भस्म आदि धारण करके घर से निकलने में इसका विवर्ण हुआ है । "कथा कतावली" में नायक पुरन्दर^१, "कथा रतनमंजरी" में नायक मधुसूदन^२, "कथाचीता" में नायक राजाराम^३ तथा "कथारूपमंजरी" में नायक जानसिंह^४ योगी का वेश धारण कर यात्रा में अग्रसर होते हैं । ये नायक योगी का वेश इसलिए धारण करते हैं कि ताकि तप और योग के लिए वे तत्पर रह सकें और विध्वन्-बाधाओं से प्रताड़ित होने पर भी बीच में बगड़ाकर बैठ न जाय । भस्म, कंधा तथा गुदड़ी धारण करना इनके त्याग, तपस्या, हृदय की पवित्रता, ईश्वरीय अनुग्रह आदि के प्रतीक हैं । दक्खिनी तथा फारसी कवियों के नायक प्रायः गुदड़ी धारण नहीं करते । भस्म तो इसलिए धारण करते हैं कि उसके क जानाग्नि से दग्ध होकर अपनी कठोरता आदि को छोड़ दें और उसके संयोग से अपने कृत्यों को भस्म सात् कर दें^५ ।

प्रेम-पथ की विध्वन्-बाधाओं के प्रतीक:-

प्रेम-मार्ग अत्यन्त दुरूह है । उस पर यात्रा करने वाले नायकों को अनेक प्रकार की कठिनायियों का सामना करना पड़ता है । असूफी प्रेमाख्यानों की भाँति जानकवि के प्रेमाख्यानों में नायकों की तरह प्रायः नायिकाएँ भी अनेक कष्ट

१- बी०- १९ ।

२- बी०- १८३ तथा १८४ ।

३- बी०- ३१ तथा ३२ ।

४- बी०- ४१ से ४३ तक ।

५- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- "साधु संप्रदाय"- पृ० नं० १८, १७५० ई०-संस्करण ।

सहते हुए देती जाती हैं। इन विघ्न-बाधाओं में समुद्र, पर्वत, लोह-हवन, अनेक जंगली जानवर, दैत्य, भूत-प्रेत, अप्सराएँ या परियाँ, रेगिस्तान आदि प्रतीक रूप में हैं। समुद्र सदैव "प्रेम" का प्रतीक बना है। उस प्रेम-समुद्र में साधक तभी डूबता और पय-भ्रष्ट होता है जब वह शरीरगत के नियमों का पालन नहीं करता। सांसारिक मोह एवं ऐश्वर्य को न छोड़कर जब वह अपने माय हाथी, पीढ़े, सेना, शक्ति, विलास आदि प्रसाधनों को लेकर चलता है तो ऐसी अवस्था में डूबना या नौका दुर्घटना में पड़ना आवश्यक हो जाता है। इसलिए "कथा कलामती"^१, "कथामण्डलमालती"^२, "कथारत्नमालती"^३, तथा "कथापुष्पपरिष्कारा"^४ में नायकों को समुद्र में नाव दुर्घटना से अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अवरोधक प्रतीकों का विस्तृत विवेचन अध्याय-३ में अभिज्ञानों के साथ किया गया है। कभी-कभी इनके अलावा काम, क्रोध, मोह, लुब्धता, माया आदि प्रलोभन भी प्रतीक रूप में आते हैं^५। चित्तों पारकर ही साधक अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं। इन प्रतीकों के मध्य तपकर साधक पूर्ण निश्चर जाता है और उसकी पूर्ण-प्रेम-परीक्षा हो जाती है। इस तरह के प्रतीकों की संख्या सुफणी प्रेमाख्यानों में असुफणी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा अधिक मिलती है।

मिलनावस्था तथा आनन्दानुभूति के प्रतीक:-

अनेक बाधाओं को भेदने के पश्चात् मिलनावस्था में आकर साधक की एकात्म-दृष्टि पूर्णरूपेण साध्यतत्त्व में एकमेव हो जाती है। यह प्रसंग प्रती-कार्थ की दृष्टि से आत्मा का अपनी समस्त शक्तियों के सहित परमात्मा से मिलनेका सावर्भौम रूप है। इस एकात्मभाव में शारीरिक अभिवार का

१- जी०- १५२ ।

२- जी०- १५ ।

३- जी०- १५ ।

४- जी०- १५ ।

५- काम क्रोध तिसरा लुब्ध, माया मोह रितान ।

बलत न है यति बंध की, यह विष्णु कहि जान ॥

(कथा पुष्पपरिष्कार)।

महत्व कम नहीं होता इसलिए हिन्दी के अन्य प्रेमाख्यात्मक कवियों की भांति जाँकवि ने भी "कयारतनावती" ^१, "कयारतनमंगरी" ^२, "कयाकवलावती" ^३, "कयाककावती" ^४ आदि में "केलि-झीड़ा" का विशद वर्णन किया है जिनमें अनेक प्रकार के हाव-भावों का, रति-केलि का तथा प्रेम-झीड़ानों के संकेत प्राप्त होते हैं जो ईश्वरीय उल्लास के प्रतीक ही कहे जा सकते हैं। इस मिलन सुख का अंतिम पर्यवसान आनन्दानुभूति में होता है जिसमें साधक पूर्णरूपेण "फूना" की अवस्था में पहुँच जाता है। जाँकवि के प्रेमाख्यानों में नायकों का स्वदेश लौटना इसी अवस्था की ओर संकेत करता है। इस समय स्वदेश के नर-नारियों तथा प्रकृति आदि के उल्लास में प्रतीक की योजनाएँ हुई हैं।

प्रतीकात्मक समासोक्तियाँ तथा प्रासंगिक कथाएँ:-

जहाँ समान भाव वाले विशेषणों से अप्रमत्त का कथन किया जाये और उसमें उक्ति-वाचुर्ष या समास प्रकट हो वहाँ समासोक्ति होती है। समासोक्ति अलंकार है। इसका सम्पूर्ण सौन्दर्य विशेषणों के प्रयोग पर निर्भर करता है। इसे काव्यशास्त्र विदों ने विशेषा विच्छिन्नमूलक अलंकार की संज्ञा दी है। प्रेमाख्यान काव्यों में इसकी एक सबसे परम्परा मिलती है जिसमें लौकिकता का तिरोभाव और ज्वलना तथा लवाणा से प्राप्त किसी तात्त्विक अर्थ की निष्पत्ति होती है। इस रूप में इसमें रहस्यभावना का भी स्वरूप लक्षित होता है। जाँकवि के प्रेमाख्यानों में सूफ़ी प्रेमाख्यानों की भांति प्रतीक रूप में समासोक्तियों का उतना प्रयोग नहीं मिलता है फिर भी प्रतिविम्बवादी तात्त्विक, प्रेमपरक तथा रूपपरक समासोक्तियों का समावेश विभिन्न प्रसंगों में यत्र-तत्र हुआ है।

प्रतिविम्बवाद में अव्यक्त सत्य को एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति

१- चौ०- १४, १२०, १५० तथा १५१।

२- चौ०- १५१ से १६१ तक।

३- चौ०- ८३ से ८५ तक।

४- चौ०- ४२, ४३ तथा ७६।

होती है । "यह प्रकृति क्या प्रसंग में ऐसे स्थलों की उद्भासना में प्राप्त होती है जहाँ सत्य को व्यवस्त माध्यमों के द्वारा प्रकट किया जाता है" । वात्कवि ने दर्पण में रूप का प्रतिबिम्ब दिखाकर जीव के लिए प्रेम का महत्व बताया है^१। ऐसी प्रतिबिम्बवादी समासोक्तियाँ इनके प्रेमाख्यानों में बहुत कम हैं। रूप तथा सौन्दर्य वर्णन में कहीं-कहीं ऐसे प्रसंग मिल जाते हैं । तार्किक समासोक्तियाँ मुख्यतः भारतीय तत्त्व-चिंतन पर आधारित हैं ये कवि के प्रेमाख्यानों में विभिन्न प्रसंगों में प्राप्त होती हैं । प्रेमपरक समासोक्तियाँ दाम्पत्य-परक प्रेमाख्यानों में व्यहृत हुई हैं इनमें अन्योन्य संबंध का एक रहस्यमय संकेत लविता होता है । रूप-सौन्दर्य परक समासोक्तियों का संकेत नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य या नल-गिरि वर्णन में हुआ है । लौकिक रूपासक्ति की अर्थगर्भित व्यंजना का विस्तार इन समासोक्तियों का गुण है । इस तरह इन समस्त समासोक्तियों में निश्चयात्मक तत्त्व ही अधिक हैं निष्ठात्मक तत्वों का प्रायः अभाव है । कवि का समासोक्ति-छल स्वतः प्रायः सर्वत्र काव्यात्मक है ।

समासोक्तियों के अतिरिक्त इन प्रेमाख्यानों में अनेक प्रख्यापनाएँ भी प्रतीकात्मक हैं जिनका प्रत्येक शब्द प्रतीकार्य में योग देता है और उनके तार्किक संबंध पर अर्थ की निष्पत्ति होती है । कभी-कभी पूरा का पूरा प्रसंग या कथानक का चयन भी प्रतीकात्मक हो जाता है और उसमें अन्तर्भूत अनेक प्रासंगिक कथाएँ मूल प्रतीकध्वनि में योग प्रदान करती हैं । वात्कवि के प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत "कथादूषमंजरी", "कथाकौतुहली", "कथारतनमंजरी" आदि में उपवन-प्रसंग, "कथाकवलावती", "कथारतनावती", "कथापुहुपकरिष्ठा" आदि में नौका दुर्घटना-प्रसंग, "कथासीलवती" तथा "कथाकवलावती" में सुवा-प्रसंग, "कथाकल्पावती" में "कच्छपनिधि" विद्या प्रसंग, "कथाकवलावती" में कई दम्पति को लीते हुए "इन्द्रसभा" में जाने का प्रसंग, "कथारतनावती" तथा "कथारतनमंजरी" आदि

१- डा० बीरेन्द्रसिंह-हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास= पृ० ३२८, १९६० ई०

अप्रकाशित -प्रबन्ध, प्रयाग विश्वविद्यालय ।

२- निर्मल दर्पन पैगु की, जामैं सुभूत पीड़ ।

नाह भेह तें पाईये, कहत जाँन हुनि जीपु ।।

(ग्रंथसौमित्र) ।

में अनेक कौतूहल पूर्ण दृश्यों के प्रसंग तथा अनेक काव्यों में नायक के साथ उनके मित्रों के जाने और उनके वियोग तथा विवाह आदि के प्रसंग घुल कण के प्रतीकार्य में सहायक होते हैं और उसकी व्यापकता का निर्देश करते हैं ।

पात्रों का प्रतीकार्य:-

समस्त प्रेमाख्यात काव्यों में प्रतीकात्मक पात्रों का एक विशिष्ट स्थान है । ये अपने व्यक्तित्व के अनुसार कथा-क्रम को एक तार्किक भाव-भूमि पर लाते तथा कथा-रूप की एक प्रतीकात्मक अवतारणा करते हैं । उनके कार्य-कलाप किसी न किसी लक्ष्य की व्यवस्था करते प्रतीत होते हैं । इस दृष्टि से उनके कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं । सामान्यतः समस्त लौकिक (मानवीय तथा मानवैतर) तथा अलौकिक (देवी देवता तथा सिद्ध पुरुषा) पात्र शुभ तथा अशुभ वृत्तियों के प्रतीक रूप में विभक्त हुए हैं । इनमें प्रतीकात्मक दृष्टि से कल्पना, बुद्धि एवं अनुभूति तीनों का समन्वय प्राप्त होता है । लौकिक मानवीय पात्रों में नायक-नायिका तथा उनके सहायक सखा, सखी, दाई, मामलिन, मासी, बृद्धपुरुषा, पणिक, ब्राह्मण, डाही, गुरू आदि शुभ वृत्तियों के प्रतीक रूप में तथा प्रति एवं उस नायक, प्रतिनायिकाएँ, बाधक पुरुषा एवं स्त्री पात्र जैसे- अलाउद्दीन, राघव-वैतन, दूतिमाँ या कुटुम्बियाँ, पाइयाँ, जंगलिन आदि अशुभ वृत्तियों के प्रतीक रूप में विभक्त हैं^१। जहाँ प्रथम वर्ग के पात्रों का लक्ष्य शुभ गन्तव्य की प्रेरणा है जहाँ दूसरे वर्ग के पात्रों का ध्येय उस प्रेरणा के मार्ग में अवरोधात्मक परिस्थितियों का निर्वारण करना । "कथागीता" में अलाउद्दीन माया तथा राघववैतन शैतान के प्रतीक हैं । जहाँ शैतान रूप शास्त्री परम्परा से गृहीत प्रतीकात्मक रूप में सन्निहित है । शास्त्री परम्परा में शैतान ईश्वर का अंश है जो आदम और होवा को स्वर्ग से ज्युत करता है । शैतान को भारतीय परम्परा में "असुर" कहा जा सकता है जो देवों की शक्ति के विरुद्ध सदैव उत्पन्न रहते थे ।

१- विस्तार के लिए देखिए- अध्याय -६ "चरित्र- तथा स्वभाव-चित्रण" में समस्त पात्रों के भेद-प्रभेदों का अध्ययन ।

मानवैतर प्राकृतिक पात्रों में तोता तथा अन्य पक्षी चोड़ा, ऊँट, बाघ, सर्प, तथा अन्य अनेक जंगली जानवर और कान्पनिक पात्रों में दानव, राक्षस, भूत-प्रेत, ठग, बप्सुराज या परिषां आदि कभी गुप्त तो कभी प्रगुप्त वृत्तियों के प्रतीक के रूप में विवक्षित हुए हैं^१। "कथाकल्याणवती" में तोता गुरु तथा "कथासीतवती" में भेदिता का प्रतीक है। इसी तरह "पद्मावत" में हीरामन सुभा, "विद्यावती" में परेवा, "प्रेमप्रगास" में मैना पक्षी भी गुरु के प्रतीक हैं। इनमें सतिषां तथा माजिनि प्रायः प्रेमघटक का कार्य करती हैं।

वर्गीकृत पात्रों में देवी-देवता जिनमें सुरपति, गरुड़, लज्जावति, शिव-पार्वती आदि तथा सिद्ध-गुरुआजिनमें योगी, तपस्वी, सिद्ध आदि उपर्युक्त दोनों वर्गों के मध्य में आते हैं। ये गुप्त पात्रों के मार्ग-दर्शक तो होते ही हैं, पर कभी-कभी इनकी परीक्षा भी लेते हैं। यह तथ्य अधिकतर नायकों के साथ विस्तार पाता है^२।

इन पात्रों के नाम भी प्रायः उनके गुण एवं सौन्दर्य आदि के प्रतीक रूप के होते हैं। जैसे -नायिका पात्रों में सतवती, सीतवती, कुलवती, सीतनिधान आदि सत्य की प्रतीक, मोहनी, छत्रिणागर, रूपनिधि, चन्द्रावती, रूपसंबरी, आदि सौन्दर्य की प्रतीक तथा नायक पात्रों में मधुसूदन, परमरूप, रूपराज, मदकराज, गुणनागर आदि विभिन्न गुणों एवं सुन्दरता के प्रतीक का उल्लेख करते हैं।

निष्कर्ष:-

जानकवि के उपर्युक्त समस्त प्रतीक-योजना की भावभूमि को ध्यान में रखकर हम यह कह सकते हैं कि कवि ने सूफ़ी तथा संत कवियों की भाँति सांकेतिक प्रतीकों का विस्तृत प्रयोग नहीं किया है। इनकी सूफ़ी कवियों की

१- विस्तार के लिए देखिए:- अध्याय-६, "चरित्र तथा स्वभाव-विवरण" में मानवैतर पात्र।

२- विस्तार के लिए देखिए- अध्याय -६, "चरित्र तथा स्वभाव-विवरण" में वर्गीकृत - पात्र।

की तरह अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना नहीं वा जिससे इनके लिए साम्प्र-
दायिक गुह्य एवं संख्यावाची प्रतीकों का प्रयोग न करना स्वाभाविक है ।
अतएव इनके रचनाओं में बीच-बीच में सूफ़ी काव्यों की भाँति अलौकिकता का
संकेत बहुत कम मिलता है । असूफ़ी कवियों की भाँति नामिकानों की तरह क
इनके नायक भी परम ज्योति के प्रतीक हैं जबकि सूफ़ी कवियों में केवल
नायिकार्प ही परम-सौन्दर्य के प्रतीक रूप में चित्रित की गई हैं । नायक के प्रेम-
पथ में संकटों के प्रतीक उठने नहीं दीखते जितने की सूफ़ी प्रेमाख्यानों में नायकों
के सम्मुख आते हैं । असूफ़ी कवियों की भाँति इनके कामपरक प्रेमाख्यानों में
नायक कामदेव तथा नायिकार्प रति की प्रतीक हैं । दोनों में अपूर्व सौन्दर्य
है । इस तरह सूफ़ी कवियों की भाँति इनके प्रेमाख्यानों का क्लेशर वित्तुल
प्रतीकात्मक न होकर असूफ़ी प्रेमाख्यानों की तरह ही है जिनमें सामान्य
प्रतीकों की योजना हुई है ।

(ग) प्रकृति-चित्रण

प्रकृति सृष्टि के आदिकाल से ही मानव की सहचरी रही है। दोनों जन्म से ही एक दूसरे पर मुग़ल रहे हैं। प्रकृति के विशाल कोड़ तथा साहचर्य में रहकर मानव हृदय की सौन्दर्यानुभूति एवं मस्तिष्क की भावनापूर्ण चिंतन का विस्तार मिलता है। ऐसी दशा में, जीवन का व्योम जो हृदय और मस्तिष्क की समन्वित अभिव्यक्ति है, प्रकृति से पूर्णतया विरत नहीं हो सकता।

प्रकृति-चित्रण के रूप:-

वैदिक से वर्तमानकाल तक उपलब्ध हिन्दी साहित्य में किसी न किसी रूप में प्रकृति-चित्रण होता रहा है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य इस प्रकृति देवी के सम्मुख बड़ा, आश्चर्य तथा भय से क्रमशः नतमस्तक, विस्मित एवं विनम्र रहा है। संस्कृत-साहित्य में तो प्रकृति एक अनन्य सुन्दरी के रूप में अवतरित हुई है। हिन्दी में संस्कृत साहित्य की शास्त्रीय दृष्टियों तथा अपभ्रंश-साहित्य की कुछ नवीन स्वच्छंद प्रवृत्तियों एवं लोकगीतों की उन्मुख भावनाओं का सामंजस्य और उनका अच्छा विकास हुआ। समस्त प्रेमाख्यात्मक साहित्य ऐसे ही विशाल प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी परम्परागत दृष्टियों के साथ लोक-भावना की उन्मुख भूमि पर आधारित है। जानकवि ने अपने समस्त प्रेमाख्यानों में अधिकतर रीति-कालीन पद्धति पर प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी दृष्टिगत परम्परा का अनुगमन किया। अलंकार के लोक गीतों, लोक उपमाओं एवं लोक-दृष्ट जीवन से सम्बन्धित प्रकृति-चित्रण के रूपों का प्रायः अभाव है। एक मात्र जगह इनके रूप यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

देश और काल से प्रभावित होकर सभी कवियों ने प्रकृति सम्बन्धी विविध चित्रों को आलंबन, उद्दीपन, मानवीकरण, रहस्यात्मक संकेत, अलंकारिक रूप, भावात्मक, नीति या उपदेश ग्रहण आदि कई रूपों में निहारना है। जानकवि ने अपने प्रेमाख्यानों में मुख्य रूप से आलंबन, उद्दीपन, अलंकरण, अध्यात्मिक संकेत तथा मानवीकरण रूपों में प्रकृति - चित्रण किया है जिसका पुनः-पुनः यहाँ विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

शालम्बन रूप में:-

शालम्बन रूप में चित्रित होने पर प्रकृति कवि के लिए साधन के स्थान पर साध्य हो जाती है। कवि ऐसे स्थलों पर प्रकृति के चित्रों का शुद्ध रूप में चित्रण करता है। वह प्रकृति का निरीक्षण करता है और तत्पत्नीयता के साथ उसके सुव्यक्त तत्वों की ओर आकर्षित होता है। प्रकृति का शालम्बन रूप में वर्णनसंस्कृतकाव्यकारों ने प्रचुर मात्रा में किया है। हिन्दी में सबसे ज्यादा वाष्पुनिक युग के कवियों ने इस रूप का चित्रण किया है। जानकवि के प्रेमाख्यानों में शालम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण बहुत कम हुआ है जो बीड़ा-बहुत मिलता है वह परम्परानुगत और दृढिबद्ध है। स्वतंत्र या मौलिक लोकभावना के रूप में प्रकृति के ऐसे चित्रणों का अभाव है। "कथानन्ददमयंती" में दमयंती के नक्षत्र-वर्णन^१ तथा नक्षत्र और दमयंती को बन में ह भटकते हुए अनेक प्राकृतिक दृश्यों^२, "कथाकवलावती"^३ में राजा दूषराड तथा "कथापुहुण्डरिष्ठा"^४ में राजा भीमाल के बाग के सौन्दर्य वर्णनों, "कथारतनावती" में नौका दुर्घटना के समय समुद्र वर्णन^५, सिंहलद्वीप में अनेक पक्षी, सरोवर, फल आदि के चित्रण^६ तथा राजकुंवर महिमोहन और मित्र उत्तम के जंगल में भटकते समय अनेक अद्भुत पक्षी, युवा जंगली-जानवर, उड़ती मीन आदि कौतुहल पूर्ण दृश्यों के अवलोकन^७, "कथारतन-मंजरी" में राजकुंवर मधुसूदन के प्रारम्भिक के वियोग^८ आदि विविध प्रसंगों में शालम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति का यह चित्रण प्रायः घटना-वर्णन, वस्तु-परिगणन, एवं कविप्रसिद्धि के रूप में हुआ है। कवि समय में चकवा-चकवी, चकोर, मयूर, चातक, प्रमर, कोकिल, कमल, पतंगा, मीन

१- चौ०- १२ से सवेरा १५ तक । २- चौ०- ८१ से ९० तक ।

३- चौ०- १५ से १६ तक । ४- चौ०- १४ से १८ तक ।

५- चौ०- १५ । ६- चौ०- ७२ से ९३ तक । +

+ बड़ी नम्र तपस्यो फुलवारी । जामें सब सुन्दर नर नारी ।।

अनगन बाग सरोवर निर्मल । पानी गंगाजल से उज्ज्वल ।।८९।।

७- चौ०- ४४ से ७१ तथा ९९ से ११५ तक ।

८- चौ०- ६४ तथा ६५ ।

उपम आदि का प्रयोग किया है। "कथाविग्रहा देवतदे" में माता-पिता द्वारा जलम कर देने पर रात्रि में बकवा-बकवी तुल्य नायक-नायिका के वियोग का एक न विमल देखिए:-

तरफत जैसे जन बिन मोन । इत मे ऊत देवत जाघीन ॥

भोर भयी जैसे बिललात । ज्यों बकवा बकई कौं जात ॥३९॥

ऐसे ही संत कबीर में भी रात की बकवाक-दम्पति के वियुक्त होने की बात आई है।

"कथा नतदम्यती" में दम्यती के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि समयों का कैसा दूरय कवि ने अंकित किया है-

बैठे हैं बिहंग जाके देखी बढ़त उमंग तरनवर तो मगी तरन नारी
तरवर है ।

सेत मंग बग केस कला पर मोर नावे, जब बिभुरावे सुन्दरी
लागतवर है ॥

मैन मन रंजन जावन दोऊ हैं बपल, नाक सुकको किला कपोत
बासी गर है ।

कुब बकवाक बारबाक है मरात बात, भंवर गुंजारत सु पाइन
जुपुर है ॥४०॥

उहीपन रूप में:-

काव्य में गुंगार रस के उहीपन स्वरूप प्रकृति वर्णन की एक विरा-
वरित परम्परा है इसमें प्रकृति अनुराग का विषय न होकर नायक और नायिका
के अनेक भावों को उहीपत करने का साधन मात्र है। जानकवि ने अपने प्रेमा-
ख्यानों में प्रकृति के इसी रूप को सर्वाधिक महत्व दिया है। प्रकृति के इस
उहीपक रूप में इन्होंने संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का विवर्णन किया है।

पर इसमें विशेषा-कृत उहीपन का विवर्णन ही प्रधान है। इस उहीपन रूप के

1- बकवी बिछुटी रेणि की, बाइ मिली परभाति ।

वे जन बिछुटे राम सुं, ते दिन मिले न राति ॥

वर्णन में संस्कृत साहित्य से अतिच्छिन्न भार से बनी गई कादम्बुतु वर्णन की प्रणाली तथा हिन्दी के लोक गीतों के आनुमानिकी की लोक-प्रणाली के समन्वित रूप के दर्शन होते हैं। अतः रूप से प्रकृति के उदीपन रूप का चित्रण नायिकाओं के विरह एवं संयोग की अन्य अवस्थाओं के वर्णन में करी करी हुआ है, पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं। "कथानन्दमयंती" में दमयंती के प्रातः हेतु नल के वियोग^१ तथा वन में नल से बिछुड़ने पर दमयंती के विरहासक्तता के चित्रण में भारी प्रकृति ही दुःख दाईं लगती है^२। बुलबुल की बोल, पक्षियों का कलरव, भ्रमों का गुंवार, कोकिल की कूक आदि इसके वियोग की और अधिक उदीपन कर देते हैं^३ और अंत में नल के पुनः मिल जाने पर प्रकृति के सभी दुःख उसकी आनन्द, सुख तथा उत्साह से पूर्ण प्रतीत होते हैं^४। "कथाकांतुहली" में नायक सरबंगी को बिना कांतुहली के सुधातुल्य चन्द्र बिम्बा की भांति और नांदनी रात अधिरो लगती है^५। "कथा रूपमंजरी" में उपवन में प्रकृति के दुःख नायक-नायिका के संयोग के समय पारस्परिक आकर्षण की वृद्धि करते हैं^६।

१- बी०- १४ से १९ तक ।

२- बी०- १११ तथा ११२ ।

३- देखात देखात बाग की, अधिक बढ़ियाँ बेराग ।

बोलत बुलबुल, गुलमगन, देत दाग में दाग ॥

अनुराग ही करी गई बाग वियोगनि देखा बेराग बढ़ियाँ तन भारी ।

फूल हुरेफ गुंवारत है अंबुवा पर कूकति कोकिल कारी ॥

रूखनि के लपटी लकि बेलि करी तियु याद पियु अकबारी ।

हूल उठी तिय भूतिग गयो जिय भी गिरगी मिरगी मनी मारी ॥१९॥

४- बी०- १११ तथा ११४ ।

५- आयी कातिग मास भई है दिन ऊज्वारी ।

भयो कमोदिनि चैन रही है जालि कै भारी ॥

चंद सुधा सब कहिये मैं करिषी बिषा घारी ।

कांतुहल बिनपीयु बुन्हाई लगी अंधारी ॥

६- बी०- १० से १२ तक ।

छादस्तु वर्णन:-

हिन्दी साहित्य में छादस्तु वर्णन की परम्परा संस्कृत साहित्य से आई है। लोकीतीतों में छादस्तु वर्णन की कोई प्रथा नहीं मिलती। संस्कृत-साहित्य में छादस्तु वर्णन की परम्परा नादिक कवि वाल्मीकि तथा मेघाकवि कालिदास के "वसुसंहार" से ही प्राप्त होने लगती है। इसी परम्परा पर आनन्दकवि ने भी अपने प्रेमाख्यानों में छादस्तु वर्णन की योजना की है। इन्होंने छादस्तु वर्णन केवल दो प्रेमाख्यान्क काव्य "कथासुभट्टराज" तथा "कथारतनावती" में ही किया है जिसमें "कथा सुभट्टराज" में उदीची देश के रानी के विषोभावस्था^१ में तथा "कथारतनावती" में उत्तम तथा पद्मिनी के संयोग^२ में विव्रित है। विषोग के समय शीत, हेमन्त, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म तथा पावस ऋतुओं में विरहिणियों को जो प्रकृति के दुखदाई दृश्य उनके विरह को तिगुणित करते हैं वही संयोग के समय सरसता, माधुर्य एवं उल्लास का संवार करते हैं। वसंतस्तु के संयोगावस्था में प्रकृति के उदीयन रूप का एक दृश्य देखा-

जबहि भई रित जगत वसंत । बहुत चैन बाढ़यो तिम कंत ॥
वन उपवन फूले अति सोहैं । गुंवारत मधुकर मन मोहैं ॥
गौरि ब्रंजवा राजत भारी । मोहन सुर बोलैं पिककारी ॥
ज्यों ज्यों जावे त्रिविध समीर । बहु विधि दंपति चैन तरीर ॥
दंपति निस दिनु करत सिंगार । छवि मैं छविजु बढि अपार ॥ १५७ ॥

इसी तरह कवि के छादस्तु वर्णन में अपेक्षात काव्यात्मकता के साथ लोक तत्वों का भी समावेश हुआ है। इनमें रीतिकातीन कवियों जैसी उपमानों की बेमेल ठूँस ठाँस नहीं दी जाती। जायसी के पद्मावत में छादस्तु वर्णन में इससे भी अधिक लोक जीवन के चित्रों और लोकीतीतों का समावेश हुआ है।

१- चौ०- ३२ से ३७ तक ।

२- चौ०- १५४ से १५९ तक ।

बारहमासा वर्णन:-

बारहमासा की परम्परा संस्कृत साहित्य में नहीं मिलती । यह हिन्दी साहित्य की अपनी निजी वस्तु है । इसकी परम्परा का मूल उत्सव-वस्तुतः जन-गीतियों का उन्मुक्त क्षेत्र है^१। हमारे यहाँ बारहमासा प्रादि काल से ही मिलने लगते हैं^२। अनेक काव्यों में व्यक्त एवं समाहित होने से यह परम्परा भी साहित्य में दृढ़ हो गई है । उसमें नायिका प्रत्येक मास की प्रमुख निश्चित रूपरेखा के आधार पर अपने प्रिय को याद कर लेती और उसके लिए चिन्तन हो उठती है ।

जानकवि ने बारहमासा का वर्णन ११ नायिकाओं के विरहोद्दिष्ट की दृष्टि से किया है । "कथाकलावती"^३, "कथाकलावती"^४, "कथाकलावती"^५, "कथापुष्पवर्षा"^६ में नायिकाओं के वियोग में, "कथाकौतुहली"^७ में नायक सरसंगी के वियोग में तथा "कथारतनमंजरी" में नायिका रतनमंजरी के वियोग^८ तथा नायक मधुसूदन एवं रतनमंजरी के संयोग^९ में बारहमासे का वर्णन हुआ है । इस तरह संयोग रूप में बारहमासा का वर्णन पूरे प्रेमाख्यानों में केवल एक ही है शेष सभी बारहमासे वियोगावस्था को उद्घोषित करने के लिए किए गये हैं । बारहमासा वर्णन में पुरुष पात्र का विरह केवल "कथाकौतुहली" में ही वर्णित है शेष सभी बारहमासे नायिकाओं के विरह से सम्बन्धित हैं जिनमें नायिकाओं के विरहजन्य वेदना का अत्यन्त निरौह, मार्मिक, गंभीर एवं हृदयपरी रूप देखने

१- डा० रघुवंश- प्रकृति और काव्य (मध्ययुग)-पृ० ४०६, प्र० सं० ।

२- डा० किरणकुमारीगुप्त- हिन्दीकाव्य में प्रकृति-चित्रण-पृ० ८३, सं० २००६ ।

३- बी०- १८ तथा १९ के मध्य १२ पञ्चम छंदों में ।

४- बी०- १६८ से १७९ तक ।

५- बी०- ५९ से ७० तक ।

६- बी०- १२६ से १३७ तक ।

७- बी०- ६२ तथा ६३ के बीच विविध छंदों में ।

८- बी०- १८६ से १९७ तक ।

९- बी०- २३५ से २४६ तक ।

को मिलता है। यहाँ कवि ने प्रकृति को दो रूपों में चित्रित किया है + एक तो नायिकाओं के दशा के प्रतिकूल तथा दूसरे उनके दशा के अनुकूल। पर ये विरहावस्था के दोनों रूप नायिकाओं के विरह को उद्दीप्त करते हैं। इनमें परम्परा प्रचलित प्रकृति के रूढ़ उपमानों के साथ एक साथ जगह मौलिक उक्तियों एवं लोक उपमानों के प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं फिर भी जायसी जैसे लोकगीतों के तत्वों का संश्लिष्ट चित्रण नहीं है। तब भी फागुन माह का एक दृश्य देखिए:-

संजोगिन जोतत है होरी । छिरकत छोलहिं बाहा जोरी ॥
 पंचम गावहि दै दै तारी । भरि कुंकम छीछहि पिबकारी ॥
 मुरती डफ मिरदंग बजावहि । अगर बबीर गुलाल उड़ावहि ॥१९४॥
 (कथारतनमंगरी)

कवि ने इन वारहमासों में शैलीगत रेखाचित्रों का भी उत्कृष्ट विधान किया है। जैसे - जेठ में साया संसार तू से जल उठता है, बवंछर उठते हैं, चारों तरफ जंगल बरसते हैं आदि। इस तरह कवि प्रकृति के जीवन्त चित्रों में रेखाओं को खूब उभारा है। इनके सभी वारहमासे जसाड़ से प्रारम्भ होकर जेठ में पूर्ण हुए हैं। इसी तरह "पद्मावत", "मृगावती", "विजयावती", "जानकीप", "बीसलदेवरास" आदि में भी वारहमासे जसाड़ से प्रारम्भ होकर जेठ में समाप्त हुए हैं। मंगलन कृत "मधुमासती" में वारहमासा जसाड़ से प्रारम्भ न होकर सावन से प्रारम्भ हुआ है इसी तरह अपभ्रंश-साहित्य में विनयचन्द्रसूरि के "नेमि-नाथचउपद" में भी वारहमासा सावन से प्रारम्भ हुआ है।

अलंकार रूप में:-

अनादि काल से ही प्रायः सभी कवियों ने अपनी भावा^{ले} व्यक्तित्व के उत्कर्ष के लिए प्रकृति के विविध उपादानों को अलंकार रूप में ग्रहण किया है। इस प्रकृति-गुहीत उपमानों की पुष्टिका पर अपनी सौन्दर्यानुभूति की बड़ी गाढ़ एवं मार्मिक अभिव्यक्ति की है। काव्य-साहित्य में जहाँ इस प्रकार का

प्रवास किया गया है वहाँ जड़प्रकृति चेतन या जीवन्त रूप में उभर गई है । प्रकृति क्षेत्र से लिए गये ये उपमान साहित्य में विभिन्न रूपों में व्यवहृत मिलते हैं । जानकवि ने अपने प्रेमास्थानों में अलंकार रूप में प्रकृति के उपमानों का विवर्णना नायिका नख-शिशु या रूप-सौन्दर्य वर्णन और उसके विमोह तथा संयोग की अवस्थाओं के प्रसंग में किया है जिनमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों के उपमान अधिकतर परम्परागत एवं दृढ़िबद्ध हैं । लोक-गृहीत एवं मौलिक उपमानों की संख्या बहुत कम है । "कयारतनायती" ^१, "कयानन्दमयती" ^२, "कयारतनमयती" ^३, "कयाकनलायती" ^४, "कयाकीतूहली" ^५, "कयाछीता" ^६, "कया पुहुपहरिणा" ^७ आदि में नायिकाओं के नख-शिशु वर्णन में अनेक प्राकृतिक उपमान भरे पड़े हैं । मांग के वर्णन में कवि के उपमान प्रयोग के जम्बूकार देखिए:-

मांग सेत मुक्ताहत भरी । मयि कालिंदी के सुरसरी ॥४०॥

(कयापुहुपहरिणा)

ऊँति मांग ऊँतिम जति पायी । मनहु देख ससि जनि बनायी ॥

तामयि बूंद प्रसेद वु जाई । कनकमाहि मुक्ता भिलकाई ॥

मयामपटी में मुष्ठा ऊँजियारी । देखि ससि मै ससि मेक निहाई ॥४१॥

(कयाकनलायती)

मेवक कवनि विराजत मंग । जुग वमुना में मानी मंग ॥

मयाम निस्ता मै लयी प्रकास । ऊँडिगन केसी लोक अकास ॥

कव दुरेफ ती जानन कमल । केसनि सातौ मुष्ठा ससि जमल ॥४२॥

(कया सुभटराई)

१- चौ०- ८४ से ८६ तक ।

२- चौ०- १२ से १७ तक ।

३- चौ०- ५० से ६० तक ।

४- चौ०- ४१ से ५४ तक ।

५- चौ०- ११ से चोटक छंद ३ तक । ६- चौ० ९ तथा १० तक ।

७- चौ०- ४० से ४३ तक ।

इसी तरह नैन, कपोल, भुजा, कटि, आंख आदि के वर्णन में भी कवि ने प्रकृति के उपमानों के प्रयोग किये हैं जोकि अधिकतर परम्पराभूत हैं। जैसे - नयन की उपमा के लिए कुछ गिनेगिनाये उपमान- खंजन, मीन, मृग, कमल, आदि हैं जो बहुत जगहों में परम्परा द्वारा बंधकर निरर्थक हो गये हैं। रूप-सौंदर्य के अतिरिक्त मानवी संयोग और वियोग भावों के उपमान भी यत्र-तत्र विभिन्न प्रसंगों में दृष्टिगत होते हैं, पर अन्य वस्तुओं एवं कार्यों से सम्बन्धित प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमानों के वर्णन प्रायः नहीं हैं। एक जाय बगइ उनकी भूलक अवश्य मिल जाती है जैसे "कवारततावती" में राजा जगतराज के राज्य की व्यवस्था के वर्णन में इसका एक दृश्य देखिए:-

मतिवारे हाथी बहुत, भारे मनुहु पहार।

भरना ज्यों मद सहत है, दंत नदी आकार ॥

जाग मांहि डोलत यी कुंवर । फुलनि मांहि फिरत ज्यों भंवर ॥४८॥

जाय्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में:-

जान्कवि ने प्रकृति को रहस्यात्मक संकेत के रूप में बहुत कम अपनाया है। इन्होंने प्रकृति के कण-कण में उस परम प्रियतम के अनन्त सौन्दर्य का सर्वत्र आभास नहीं प्राप्त किया है वंसा कि जामसी जैसे अन्य सुफी कवियों ने पाने का प्रयत्न किये हैं। जान्कवि के काव्यों के प्रारम्भ में स्तुति में ईश्वरीय वैभव के प्रदर्शन हेतु प्रकृति-चित्रण का रूप देखिए:-

(१) नभिपर, ससि, रवि, उडिन, गिर, पवन नीर वन भेद ।

रवे जकेलै जापही, रंचक भयी न जोद ॥३॥

(कथा कामरानी का पीतमदास)

(२) नभ में रवि ससि उडिन बनाये । अति सरूप करि जगत दिखाये ॥

रूपवंत कीने न नार । छनी की छवि भई अपार ॥

रवि ससि बाहै कवत बकोर । सम जगत्के रूप की जोर ॥१॥

(कथा विजुतां देवतदे)

कवि ईश्वर के एकरूपवाद के रूप को प्रदर्शित करने के लिए भी प्रकृति को समावृत्त किया है -

- (१) पैसु निर्जन में नबी, जैसे रहनी समाइ ।
जैसे घन जल ऊदधिते, न्यारी कर्मा न बाइ ॥

(कथाकर्तृदर)

- (२) मुहमद नबी रसूल, बंधे निर्जन नाव सौ ।
जैसे मपुकर फूल, भूलि कबहु बिछुरे नहीं ॥

(कथाकुलवती)

प्रकृति के माध्यम से प्रेम की अभिव्यंजना द्वारा अध्यात्मिक सत्य की ओर
कैसा संकेत कवि ने किया है-

मीन मरे जो बिछुरे नीर । जल की नाहि मीन की पीर ॥
दीप देखा जरि मरे पतंग । पीर न होइ दीप के अंग ॥१६॥

(कथा बन्दरसेन राजा सीलनिधान)

सिंहलदीप को कुछ विद्वानों ने स्वर्ग का प्रतीक माना है । जानकवि
ने "कथारतनावती" में सिंहलदीप तथा फुलवारी नगर के वर्णन में प्रकृति के चित्रों
द्वारा लौकिक वातावरण के साथ अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करते हुए परमसत्ता
के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का प्रयत्न किया है^१। इसी तरह जायसी ने भी पदमावत
में सिंहलदीप का वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त कवि प्रकृति के अन्य उल्लेखित
और क्रिया रूप का चित्रण भी किया है जिसमेंसमस्त प्रकृति ईश्वर की ओर
प्रेमोन्मुख लगती है । नायक के यात्रा के समय मार्ग की अनेक कठिनाइयों में समुद्र,
सर्प, बाघ, जंगल आदि भी प्रकृति के प्रतीक रूप में चित्रित हुए हैं जिनमें अध्यात्मिक
अभिव्यक्ति की प्रतीति होती है ।

मानवीकरण रूप में:-

प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है । जानकवि ने
मानवीय -मनोभावों के हर्ष-विकारों की अभिव्यंजना के प्रधान स्वरूप प्रकृति की
संवेदनशील रूप में चित्रित किया है । अधिकतर नायक-नायिकाओं के विषयों की

अवस्था के चित्रण में ऐसे प्रसंग देखने को मिलते हैं जिनमें प्रयुक्त सभी प्रकृति के उपमान प्रायः सूक्ष्म हैं । देखिए "कथासिंहासनां देवतदे" में विरहिणी के दुःख सुख की निगूढ़ अभिव्यक्ति के लिए कवि कमल एवं सूर्य के उदयान देकर भाव-व्यंजना को कितना सूक्ष्म बना दिया है-

विरही फुलत मीत की, बिछुरे सुकति गात ।

कवल छिन्तै ज्यौं देखि रति, अन देखी कुमिलात ॥

"कथारतनमंजरी" में विरहिणी नायिका रतनमंजरी अपने दुःखों को प्रकृति में कैसा आरोपित करती है-

बंद भाँहि छाई परी, देखि हमारी दुष्णु ।

जरत देखि सुरज जरत, कबहुं न पावत दुष्णु ॥

"कथा पुहुपहरिका" में बन्द के उदय होने पर नायिका सुकेशी के संयोग-वियोग की स्थिति का चित्र देखिए:-

बंद बाँदनी देखि कै, संजोगिन होत दुलास ।

विरहनि पाये जरि उठै, परनी गौर अकास ॥

इस तरह के उदाहरण अन्य प्रेमाख्यानों में भी भरे पड़े हैं जिनमें प्रकृति और मानवी भावों का पूर्ण सामंजस्य और सहज-संबंध स्थापित हुआ है । मानवी सौन्दर्य चित्रण के अतिरिक्त भी कवि ने अन्य प्रसंगों में प्रकृति के ऐसे अनेक सुन्दर उपमानों के प्रयोग किये हैं । जिनमें प्रकृति अपने जीवन्त रूप में आई है ।

निष्कर्ष:-

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि जातकवि के प्रकृति-चित्रण में विविध रूपों का समावेश अवश्य है, किन्तु उनमें प्रकृति का वह स्वतंत्र, भाव्य और सौन्दर्य-शास्त्री रूप नहीं उद्घाटित हो सका है जैसा कि जायसी जैसे अन्य प्रेमाख्यात्मक कवियों में । प्रकृति के विशाल सौन्दर्य को अपनी कल्पना से आत्मसात् करने में कवि पूर्ण समर्थ नहीं हो सका । उसने मानवी उल्लास तथा दुःख के रंग में रंगी हुई प्रकृति को ही देखा है जिससे उनके काव्य में प्रकृति वर्णन में वह मनोहरता और मधुरता न आ सकी । जो प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण से जाती । आवश्यक तो

यह है कि बाग तथा अन्य अनुकूल जैसे प्रसंग के जाने पर भी कवि प्रेम दशा को ही चित्रित करने में इतना मग्न रहता है कि उसे प्रकृति की पृष्ठभूमि की याद तक नहीं जाती । उदाहरण के लिए "कथाकौतुहली" में नायिका कौतुहली के बाग में सैर के लिए जाने पर भी कवि केवल "बैठी जाइ बाग ढिग ताल । करहिं कलोल संग बहु बात ।" ही कहकर छोड़ देता है । ऐसे प्रसंग अन्य प्रेमाख्यानों में भी प्राप्त हैं । इस तरह इनका सारा प्रकृति वर्णन उद्दीपन रूप में ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिनमें प्रकृति के परम्परागत उपादानों के ही प्रयोग हैं । लोक एवं मौलिक उपमानों की संख्या नहीं के बराबर है । फिर भी हम यह कह सकते हैं कि कवि जो कुछ प्रकृति-चित्रण किया है वह प्रेम और प्रकृति को एक रंग में रंग कर काव्यों में नया ही आकर्षण उत्पन्न किया है और यही उनके प्रकृति-चित्रण की शैली की अपनी विशेषता है ।।

(घ) भाषा-शैली की विशेषताएँ

भाषा

भाषा विचाराभिव्यक्ति का माध्यम है। हिन्दी प्रेम-गाथाओं के रचयिताओं की भाषा प्रायः अवधी है, किन्तु जानकवि ही इन समस्त प्रेमगाथाओं के रचयिताओं में ऐसा है जिसकी भाषा विगुड ब्रजभाषा है। यद्यपि कई विद्वानों ने जानकवि की भाषा- को "अवधी" या "ब्रज" से अधिक प्रभावित आदि कहा है^१। किन्तु विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी भाषा "गुवालिपर" की भाषा है^२। "गुवालिपरी" या "गुवारेरी" भाषा ब्रज भाषा को ही कहते थे^३। पन्द्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक ब्रज भाषा केवल ब्रज क्षेत्र में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत में काव्य की भाषा मानी जाती थी। महाराष्ट्र के नाम-देव की हिन्दी रचना गुजरात के नरसी मेहता और भातण की रचनाएँ, बनारस के चण्डीदास के भक्ति भरे पद और पंजाब के गुरु नानक की वाणी आदि इसके प्रमाण हैं। वास्तव में काव्य के क्षेत्र में १७वीं १८वीं शताब्दी में जो स्थान योरप में फ्रेंच भाषा को प्राप्त या वही स्थान भारत में ब्रज भाषा को। गुवालिपर के आस-पास तथा राज-स्थान तक फैले हुए प्रान्तों में मूलतः ब्रजभाषा ही है, किन्तु वहाँ के कवि और लेखकों की भाषा "गुवालिपरी" भाषा के नाम से प्रसिद्ध थी।

१- डा० सरला शुक्ल:- जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और

काव्य- पृ० २८३, सं० २०१३।

२- "भाषा आनी जो मुण आई। गुवारेरी हूँ मनसा धाई॥४॥

सम्पा०- (कथाकल्पावली)

३- डा० सत्येन्द्र-पोद्दार अभिनन्दन-ग्रंथ "पृ० ८७। सं० २०१०, में डा० चन्द्रबली

पाण्डेय ने "भाषा मणि ब्रजभाषा" में ब्रजभाषा और गुवालिपरी की अभिन्नता प्रतिपादित की है :-

दोहा-बोन प्रयोगीसत कविन, भाषा कांची जान।

मयुरा मंडल गुवालिपर, की परिपक्व बचान ॥

१६वीं - १७वीं शताब्दी में संतों की रचनाओं को भी कहीं-कहीं गुवा-
लियरी भाषा की संज्ञा दी गई है । जात्कवि का निवास-स्थान
जयपुर राज्य के पश्चिमी भाग में था जो अब भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत ही
जाता है अतः जात्कवि का प्रभाषा में रचना करना पूर्णतः स्वा-
भाविक है ।

जिन विद्वानों ने जात्कवि की भाषा को अवधी या अन्य कोई
भाषा जो अब से प्रभावित हो रहने का प्रयत्न किया है उनके इस कथन
के मुख्य-कारण दो हो सकते हैं । एक तो यह कि हिन्दी के मूलतः प्रेमा-
ख्याओं की भाषा अवधी है इसलिए जात्कवि के प्रेमाख्यान अवधी में ही
होने चाहिए । संभवतः किसी ने भाषा का पूर्ण परिजीवन करने का
प्रयास नहीं किया । और अन्य प्रेमाख्याओं की भाँति ही जात्कवि की
रचनाओं की भाषा को भी अवधी घोषित कर दिया । दूसरा कारण-
यह है कि जात्कवि की रचनाओं में भाषा के कुछ प्रयोग मिलते हैं जो
अवधी के बहुत निकट के हैं और बहुत आसानी से वे अवधी के प्रयोग कहे
जा सकते हैं । क्रिया बोधक संज्ञाओं के रूप में जात्कवि की रचनाओं में
रहिबे, हनिबे, सुनिबे, मितिबो, जरिबे, मरिबे, परिबे, हंसिबो,
मरिबो, हरिबो, भरिबो, करिबो, जैबो, पीबो, तथा आवन, देवान,
मितन आदि रूप मिलते हैं । "बे" और "बो" से गत होने वाली इन
क्रियार्थक संज्ञाओं का संबंध क्रमशः अवधी की क्रियार्थक संज्ञाओं रहब, इनब,
सुनब, मितब, जरब, मरब, बलब, हंसब, परब, हरब, भरब, करब,
ताब, पियब से जोड़ दिया गया है और उन्हें अवधी का ही विकृत रूप
माना गया है । इसके संबंध में दो बातें हैं प्रथम तो यह है कि प्रभाषा
में क्रियार्थक संज्ञाएँ साधारण धातुओं में "बो" और "नो" लगाकर बनाई
जाती हैं । विकृत रूप में "बे" "बो" लगता है, अतः "बे" और "बो" से गत
होने वाली क्रियार्थक संज्ञाएँ, प्रभाषा की हैं, नकि अवधी की । अवधी

में ऐसे प्रयोग बिल्कुल नहीं मिलते । द्वितीय यह कि वक्ता में वाचन, देवन, मिलन, चलन, कहन, पूछन, गावन, पढ़न, बूढ़न जैसे रूप ही नहीं प्राप्त होते, किन्तु ब्रजभाषा में ये बहुतायत से मिलते हैं ।

जानकवि की रचनाओं में ब्रजभाषा का वह रूप हम नहीं प्राप्त कर सकते जो कृष्ण-भक्त कवियों की भाषा है । इसका प्रमुख कारण यह है कि जानकवि अत्यन्त सहज और स्वाभाविक भाषा में ~~रचना~~ ^{रचना} करना पसन्द करते थे। इन्होंने स्वयं लिखा है -

(क) लिखात हाय नाहिन अकुलाई । पढ़त नहीं रसना नरसाई ॥४॥

(कथाकलावती)

(ख) भाषा जो आई सो जानी । सज्जा मिली जो ऊलट न जानी ॥५॥

सोरठा: रहबो बागर मांझ, किम भाषा आई भली ।

यै दिन दिग ज्यों सांझ, तैसी भाषा ऊकति दिग ॥

संस्कृत गुजारेरी मिलायी । मध मिलाय कै साज बजायी ॥

महु कूल नामे कठिनाई । ताते कहियहु सुगति जनार्ड ॥

नयी न कहु गायी ही गायी । सज्ज वहै सुर फेरि चढ़ायी ॥

फिरि फिरि कैसई कोऊ गाई । वाचन अछिछर जाड न पावै ॥

यह बिरवा कूल अति जाई । बोट बिना दाही उई दाई ॥१॥

(कथाकलावती)

इस तरह संस्कृत को कठिन तथा गुजारेरी या ब्रज को कोमल समझते थे । यद्यपि दोनों के मिलाने की बात भी कही है, पर संस्कृत के शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में बहुत कम मिलता है । कुछ होने लिये प्रचलित तत्सम शब्द ही मिलते हैं जिनकी संख्या बहुत कम है । इससे स्पष्ट है कि जानकवि प्रयत्न करके किसी कृत्रिम भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहते थे । जो भाषा उनकी मातृ-भाषा है रही जिसका वे वैदिक जीवन में व्यवहार करते रहे उसी भाषा में इन्होंने अपने प्रेमास्थानों की रचना ^{भी} की । चाहे उसमें बिल्कुल ठेठ देशी शब्द जायें, चाहे अरबी, फ़ारसी के शब्द जायें, चाहे संस्कृत के तत्सम शब्द, किन्तु सभी प्रकार के शब्द सहज स्वाभाविक रूप में ही प्रयुक्त

हुए हैं। उनकी भाषा व्यवस्थित है और विज्ञापानुकूल भी। मूल तो वह इतनी है कि उसे सम्भक्ते में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। साधारण पढ़ा लिखा पाठक भी उसे आसानी से समझ लेता है।" अथर्व-व्यास पर भाषाजुक्त भाषा की सफरता और कोमलता भी मिलती है। ब्रजभाषा का माधुर्य तो वैसे ही सुविदित है। आगामी पृष्ठों में आन्तरिक की भाषा का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे उनकी भाषा का स्वरूप ठीक-ठीक स्पष्ट हो जाय।

क्रिया

वर्तमान - काल

(क) उत्तम-पुरुषः - आन्तरिक की भाषा में वर्तमान काल की उत्तम पुरुष की क्रियाओं के दो और कहीं-कहीं तीन रूप प्राप्त होते हैं। ब्रज भाषा के प्राचीन रूप जिनके अंत में हों, गीं तथा ऊं, हूं आदि मिलते हैं - उनकी भाषा में प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त वही जोती की तरह "त" से अंत होने वाली क्रियाओं के रूप भी मिलते हैं जिनमें स्त-क सहायक क्रिया "हूं", "थाई" भी साथ हैं। उदाहरणार्थ - करिहीं, मरिहीं, फिरि-हीं, तिरिहीं, धरिहीं, जरिहीं, सुमिरां, हेरां, ऊजियारां, दौराऊं, गारूं, पाऊं, लेऊं, गाऊं, गवाऊं, जाऊं, रोऊं, कहूं, जानतहूं, करहूं इत्यादि।

(ख) मध्यमपुरुषः - मध्यम पुरुष की क्रियाओं के दो रूप मिलते हैं। एक साधारण अथवा आचार्यक तथा दूसरा सम्मान-सूचक। साधारण क्रियाओं के अंत में सर्वथा "हुं" प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है।

सामान्य सूचकः - चलहु, लेहु, देहु, सुनहु, पावहु, करहु, जानहु, मानहु आदि।

सामान्य सूचक:- धरिये, कहिये, गनहिये, पडिये (पायै), कीजै, दीजै, लीजै, गवाइयै, रहिये, लहिये, हेरिये, छुटिये, जीजै, इत्यादि ।

मध्यम पुरुष की क्रियाओं में एक रूप विशेषा उत्प्रेक्षनीय है जो वाचार्थक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है । जैसे - सुना (सुं अब अपनी क्या सुनाइ^१) । ब्रजभाषा में यद्यपि उसका रूप सुनाउ या सुनाव (सुनावों) होना है, किन्तु जानकवि ने इसे स्वनि परिवर्तित करके इस रूप में प्रयुक्त किया है।

(ग) अन्य पुरुष:- अन्य पुरुष की क्रियाओं में तीन प्रकार के रूप प्राप्त होते हैं (१) प्रथम रूप में करिहैं, बढे, लहरावै, विमोहै, बिहावै, सोहै, विरावै, दाहै, लागै, होतै, जैहै, पैहै, बढे, पावै, लावै, पावै, जहै, बाहै, विरावै, धरै, जारै, जावै, दैहै, छावै, पूजै, निरखै, गावै, भावै, जाहै, पावै, रावै, बीतै, निरभवावै, ठारै, गवावै, लठावै, छै, रोवै, समावै, बावै इत्यादि ।

(२) द्वितीय प्रकार के रूप हैं- पावहि, नितारहि, रहसावहि, सुनावहि, बिततावहि, लगानहि, भगानहि, इत्यादि ।

(३) तीसरे प्रकार के रूप - बड़ी बोली की तरह हैं जिनमें कहीं सहायक क्रिया का प्रयोग हुआ है तो कहीं नहीं । यथा -

(अ) फिरत, होलत, नलत, बावत, फूलत, कहत, चाहत, करत, लागत, जानत, पीटत, निरसत, रहत, पावत, दैत, जावत, जात, डूबत, पीवत, सोवत, जात, रुकत, बिछुरत, उहरात, रोवत, जावत, जानत इत्यादि ।

(ब) जात है, कहत है, तजत है, सुमिरत है, चाहत है, पावत है, सोवत है, गावत है, बिछुरत है, जानत है, गुंजारत है, सोभित है, दैत है इत्यादि ।

भूतकाल

भूतकाल की क्रियाओं में ब्रजभाषा के चारों रूप प्राप्त होते हैं -

(क) पहले प्रकार के रूप हैं - उधारे, सहारे, उतरे, जोड़े, छपाये, निहाये, मिथारे, गवाये, पकाये, हरजाये, धोये, रोये, बुताये, बजाये, पाँढाये, लाये, जाये, पाये, ल्याये, हेरिये, डारे, जोड़े, टेरे, लाये, छाये इत्यादि ।

(ख) दूसरे प्रकार के रूप हैं - राख्वाँ, पढ़्वाँ, गवाँ, रीझ्वाँ, जान्वाँ, भर्वाँ, दीवाँ, कीवाँ, लीवाँ, निहाव्वाँ, हरजाव्वाँ, निकाव्वाँ, राख्वाँ, पढ़्वाँ, भेदवाँ, सरसावाँ, सिरावाँ, पिन्वाँ, मिठावाँ, बुतावाँ, पावाँ, छावाँ, जावाँ, ठान्वाँ, बीरवाँ, मान्वाँ, किये, उतव्वाँ, सूदवाँ, रनाव्वाँ, बनाव्वाँ, पेंव्वाँ, फेरवाँ, टेव्वाँ, पितावाँ, रखावाँ, भभक्कावाँ, दीरावाँ, डरावाँ, पर्ववाँ, निछुर्ववाँ, फिरावाँ, उढावाँ, नड़ावाँ, गिरावाँ इत्यादि ।

इसके साथ कुछ रूप ऐसे भी मिलते हैं जिनका अंत "वाँ" से न होकर केवल "वाँ" से होता है - पया - दीनाँ, कीनाँ, जानाँ, लीनाँ, पहराणाँ, गाढाँ, ठाढाँ, लगानाँ, बिचाराँ, पतिमानाँ, प्रगटानाँ, दुहेलाँ, बीरानाँ इत्यादि ।

(ग) तीसरे प्रकार के रूप हैं - निहारी, उपजी, घरी, परी, ज्वापी, गौनी, लीनी, दीनी, कीनी, जानी, मानी, मुरभानाँ, सुकानी, लीनी, लेटी, निवाही, डरी इत्यादि ।

पूर्ण भूत बनाने के लिए इन्हीं रूपों के अंत में सहायक क्रिया "है" लगा दिया जाता है । इसका भी रूप मिलता है जैसे -

(घ) चौथे प्रकार के रूप हैं - कीने, दीन, लीन, जाने, बिचाने, मुरभाने इत्यादि । यद्यपि ये रूप ब्रजभाषा में कीन्हे, दीन्हे, लीन्हे, आदि होते हैं, किन्तु आकाश ने इसका महाप्राणात्वं निकालकर उपर्युक्त रूपों में प्रयोग किया है ।

भूतकात के इन सभी रूपों पर पुरखा का कोई प्रभाव नहीं है । अतः तीनों पुरखा के लिए प्रायः एक ही रूप प्रयुक्त हुआ है ।

भविष्यकाल

भविष्य काल की क्रियाये पुरुष के अनुसार हैं । प्रथमपुरुष की क्रियायें - बड़हीं, बड़हीं, दड़ही, धरिहीं, जरिहीं, करिहीं, देहीं, लेहीं, आदि हैं । मध्यमपुरुष तथा तृतीय पुरुष की क्रियायें- करि है, जरि है, आइ है, मरिहै, बलिहै, छोड़ है, छोड़ है, छाड़ है, राखि है, बड़ि है, डरि है, टरि है, हंसि है, गहि है, गरि है, पाड़है, आड़है इत्यादि ।

प्रेरणार्थक क्रियायें:-

इन्के रूप ये हैं - पुहवावहुं, दिखावहुं, फिलावहुं, मलावहुं, पठावहुं, समुभावावहुं, मिलावहुं, धिलावावहुं, पुंइवाव इत्यादि ।

पूर्वकालिक कृदन्तः:-

इसमें व्यंजनान्त धातुओं में कभी "व" तथा "य" जोड़कर, कभी बिना परसर्ग के "कै" जोड़कर तथा कभी आकारान्त धातुओं में "इ" लगाकर बने हुए रूप मिलते हैं । यथा - उठि, देछि, जाय, जाय, डरिकै, करिकै, सुनिकै, धरिकै, उठिकै, रीभिकै तथा बुलाइ, बनाइ, देणाइ, इत्यादि ।

जातकवि की भाषा में एक वचन और बहु वचन के क्रिया रूपों में अन्तर कहीं भी स्पष्ट नहीं हुआ है । एक ही रूप दोनों वचनों में सर्वत्र प्रयुक्त हुआ है ।

संज्ञा

जातकवि की रचनाओं में संज्ञाएँ अधिकतर बिना कारक चिन्हों के ही प्रयुक्त हुई हैं, किन्तु प्रत्येक कारकों का प्रयोग करके कारक का अर्थ निकाला गया है । नीचे के उदाहरण ऐसे हैं जिनमें बिना कारक चिन्हों के ही संज्ञाएँ प्रयुक्त हुई हैं -

- १- मुद्रिका (को) जंगुरिनि(में)दी नी^१। (कर्म तथा अधिकरण)
- २-जंसुवनि (से)छरती छिरकत जाइ^२। (करण)
- ३- जंघियनि (से) असुवां बने उदाम^३। (प्रपादान)
- ४- जान वन(में) जइहै^४। (अधिकरण)
- ५- विरह और (में) सुख नाव दुरात्रै^५। (अधिकरण)
- ६- तिनकै कर(में)नागी करवार^६। (")
- ७- जो तुं रहत मदीनै(के)पार^७। (सम्बन्ध)

इन्के अतिरिक्त नीचे संज्ञाओं के वे रूप हैं जिनमें कारक प्रत्यय लगे हुए हैं -

- (१) रानी देखि राव को रोत्रै^८। (कर्म)
- (२) सुखन सेती फोरहि माय^९। (करण)
- (३) जंसुवन सौं धोवै^{१०}। (")
- (४) चित सौं भिंत मिलाइ^{११}। (")
- (५) वन सै जानहु^{१२}। (प्रपादान)
- (६) प्रीतम के पारग^{१३}। (सम्बन्ध)
- (७) जंग को छाहि^{१४}। (")

१-कथा रतनावती- जी०-४१ । २- कथा बसुकिमा विरही- दोहा-३३ ।

३- कथा नतदमर्वती- जी०- ७६ । ४- कथा कवलावती- जी०- १०७

५- वही- जी०- १०४ ।

६- कथा तमीम जसारी-दोहा-६० । ७- वही- दोहा - ४८ ।

८- कथा रतनमर्वरी-जी०-११५ । ९- वही, जी०- ११४ ।

१०- वही, जी०- ११५ । ११- वही, जी०- ११६ ।

१२- कथारतनावती- जी०-४४ । १३- वही, जी०- ४३ ।

१४- कथा नतदमर्वती- सबैया ४३ ।

- (८) बन मै^१। (अधिकरण)
 (९) तद्वर पर जाइ^२। (अधिकरण)
 (१०) होइ रह्यो गिर ऊपर नुर^३। (") इत्यादि ।

इनमें निम्नलिखित कारक प्रत्ययों का प्रयोग बहुलता से पाया जाता है ।

यथा - की, के, की, तै, मै, पे, पी, पर, ऊपर, हैं, सी, सेती, माहि आदि ।

संज्ञाओं को बहुवचन बनाने के लिए प्रायः संज्ञा के मूल रूप में "नग" और "नी" जोड़ दिया गया है । जैसे -पंछिनि, बंझारन, काननि, फूलन आदि ।

सर्वनाम

जानकवि द्वारा प्रयुक्त सर्वनामों में रूपों की बहुलता है । ये सर्वनाम कहीं तो शुद्ध अव्यय के हैं और कहीं राजस्थानी से प्रभावित हैं । कुछ सर्वनामों में वचनी के रूपों की छाया भी देखी जा सकती है । निम्नलिखित पुरुषवाचक सर्वनामों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है:-

	<u>एकवचन</u>	<u>बहुवचन</u>
उत्तम पुरुषवा -	मै, मैही, हो, हूं, हम ।	हम, हम्ह ।
मध्यमपुरुषवा -	तु, तु, तुम, तुन्ह, तुव, तै। तुम, तुन्ह ।	
अन्य पुरुषवा -	वह, बहु, उहि, व्हि, वै ।	उहि, ते ।

कारक प्रत्यय युक्त सर्वनाम निम्नलिखित प्रकार के प्रयुक्त हैं -मीहि

- १- कथारतनावती - चौ० - ४४ ।
 २- कथारतनर्मवरी - चौ० - ११२ ।
 ३- कथावसूकिया विरही - दोहा - ५८ ।

(कर्मकारक), मोकी(सम्प्रदान वा कर्म), मोते(कृपा), मेरी, मेरा, मेरे, मेरी (संबंध), हमारे (सम्बन्ध बहुवचन), म्हारा(संबंध), हमारी(संबंध बहुवचन), म्हारी (सम्बन्ध बहुवचन), तोहि तोकी (कर्म, सम्प्रदाय), तेरी, तेरे, तेरे, तेरी, तू, तिह, तिहि, तिहारी, तिहारी, ताकी, तौ, तुम्हरे, तोमें (संबंध), उनि(कर्म), उनह(संबंध) इत्यादि ।

मेरे, मेरी, तेरे, तेरी आदि प्रयोगों पर परिचामी हिन्दी का प्रभाव है । कर्ता के लिए "मैं" और "हैं" दोनों का प्रयोग हुआ है । म्हारा, म्हारे पर स्पष्ट रूप से राजस्थानी का प्रभाव है । अन्य पुरुष एक वचन सर्वनाम पर जोर देने के लिए "वही" का प्रयोग किया गया है । अनिश्चयवाचक सर्वनामों में याकी, याकी(संबंधकारक) तथा काहूँ, कोऊँ, कोई, कौन का प्रयोग मिलता है ।

विशेषण

प्रयुक्त विशेषणों के रूपों में कोई नवीनता नहीं है । भाषा के अनुसार विशेषण विशेष के लिंग और वचन के अनुसार प्रयुक्त हुए हैं । उदाहरणार्थ - लाली (नासिका), पीत(वदन), बाली(बलियाँ), बटक (रूप), सेत (अंगी), मधुरे (बैन), कैसी (ठाँव), जरून (बसन), रतनारी (घरा), नीकी (बात), अपनी (नगरी), अपने (घर), तीछन(बान), खाम(बसन), पापनि (फिक), सीतल(नीर), सेत(रंग), कितनौ(दिन), इत्यादि ।

संख्यावाचक विशेषणों में दो प्रकार के रूप मिलते हैं । एक सामान्य तथा दूसरा क्रमिक । सामान्य रूपों में भी एक शब्द के कई रूप मिलते हैं । यथा- एक, जेक, डक; दै, जुगत, दहुँ, दुह, दोड; तीन, तीनि; चार, चहुँ; पाँच; सात, सपत, सप्त; आठ, अष्ट; बारह, द्वादस इत्यादि । इनके साथ ही अवभाषा की प्रचलित संख्यायें - एक, चार, सात, आठ, बारह, चौदह, बीस, इक्कीस, बाईस, बीबीस, तीस, चालीस, उनवास, बीरसी, लाछा आदि भी मिलती हैं ।

क्रमिक रूपों में परबम (प्रथम), पहलै, पहली, दुवै, दूजी, दूसरा, तीजै,

तीजी, तीसर, तीनै आदि मिलते हैं। इनके अतिरिक्त साँ के "सै" तथा "सौं" दोनों, हजार के लिए "सहस" और "हजार" दोनों तथा करोड़ के लिए "कोटि" रूप प्राप्त होता है। भिन्न वर्णों के लिए पा, सवाई, डेढ़, बड़ाई, दूने या दूनों आदि रूप प्रयुक्त हुए हैं। विशिष्ट संख्याओं पर जोर देने के लिए कवि ने शब्दांत में "ऊ" न अथवा "भी" का प्रयोग किया है। जैसे -दोऊ, दूनों, दुहुन, दुहुन, तीनों, चारों, पाँचों, छहों, सातों, आठों इत्यादि। समूह का निर्देश करने के लिए सर्व, सकल, सब, सबै, सर्ध, सबही, सगरी, सगरी, आदि शब्द मिलते हैं। वाक्कवि ने कहीं-कहीं भाषा को समृद्ध और सुन्दर बनाने के लिए अनुप्रासयुक्त विशेषणों का प्रयोग किया है। यथा - जरून, जरूर, जमोल, कपोल, जरून, जरूणा, मनोज-उरोज, भीरी-गौरी (स्त्री), उज्जल-जल इत्यादि।

क्रिया-विशेषण तथा अव्यय:-

ब्रजभाषा के क्रिया-विशेषण और अव्यय वाक्कवि की रचनाओं में उसी रूप में प्राप्त होते हैं। जैसे - ज्यों-ज्यों, जैसी, जैसे, जैसा, जैसी, जै, ज्यों, जिमि, जौ, त्यों-त्यों, तैसा, तैसी, तैसा, त्यों, तौ, तै, बुरन्त, जैसी, जैसी, जैसी, कैसी, कैसी, कछु, जज, जज, तज, कज, कबहुँ, जागे, जागै, जाज, जाजु, जल्दी, निज, सदा, जहाँ, तहाँ, कहाँ, सामने, नीचे, पीछे, ऊपर, धीरे, यों, लौ, दै, नहीं, नाहि, बिन, बार-बार इत्यादि।

अन्य अव्यय:- जरून, बिन, जौरी, फुनि, पुनि, फिर, फिरि, फिरिके, फिरू, बहुरी आदि।

शब्द - भांडार

इसके अन्तर्गत तत्सम, तद्भव तथा विदेशी शब्दों पर विचार किया गया है। तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द ही वाक्कवि की रचनाओं में अधिक प्रयुक्त हुए हैं। तत्सम शब्दों का प्रयोग केवल रूप-वर्णन तथा नाम आदि के लिए किया है। विदेशी शब्दों में केवल जरबी एवं फ़ारसी के ही शब्द की विशेषता मिलते हैं। देशी शब्दों का प्रयोग कवि की रचनाओं में नहीं के बराबर है।

तत्समः:-

रसना, जावक, मुद्रिका, बर, प्राची, प्रतीची, रसान, मधुकर,
उपवार, कन्क, मानस, कूप, मंदिर, कदली, मेघ, दम्पति, समुद्र, अभिराम,
पञ्चन, पीन, पनुषा, नासिक, कपोल, कंचन, मनोज, उपवन, पतंग(सूर्य),
मयूर, गर्पद, अजरोह, रासभ, कुंजर, सुरपति, नादश, अभिराम, तुरंग,
मंजन, लक्ष्मि, सुरा, मुक्ता, मयुष, जनन, अंक, सुगंध, दीप, विजय, बंदन,
दर्प, सिंह, पंडित, गज, देवता, फल, फूल, बलक, उदीची, परिवार,
निर्मल, बल, सहित, नभ, पवन, जाकाश, जापान, इच्छा, पीतांबर, अद्भुत,
पृथ्वी, अगोचर, सम्बन्ध, नीलाम्बर, विबुध, नितंब, कटि, प्रतिविम्ब,
दृष्टि, प्रथम, कंचुकी, अनुराग, विरह, उर, अति, चकोर, डोल, अमला,
अन्यादि ।

तदुभयः:-

अंजत, सिंध, चांद, पूनी, बदरा, पाती, सुमिरा, भूषा, प्यास,
गुप्ता, कुंजर, ग्राहस(जाश), हनवत, अग्नि, सलिला(सरिता), बादुर(बादल),
अंजी(अंज), बणि(बहु), व्याह, सपुनी, अन्वारी, अशिमी, रात, अफ
छरा(अप्सरा), बासुर, आंसू, मुछार, ज्योनार, सांभ, बिधा, पेठी,
बिरवा, अंकवार, भुवपति, सिंगार, मिहदी, लकरी, सीडी, काजर, भंजर,
कवत, मुरछा, मुक्ता, घंटा, निक्काई, भोक्त, लदाईन, जरत, भरमत, भररो-
णा, मुहारे, चातिग, ठांव, बरिणा, लकरी, छोलत, सिरजनवार, गुसाई,
पाती, पाह, जीभ, नांव, अभाग, सिंवासन, मेहु, हाथ, बावरै, जौद,
पूछतई, बसतर, छपायी, बिबोग, बिर्छ, पीरि, सोपत, पुर्नवासी, पहि-
वान्त, गज, भिजारी, तमावा, सीस, केस, अंगुरी, बरीस, संतत(संतति),
ईछ्या, पलिका, जरथ, गरभ, अंकवार, अछिर, मूरति, पडुप, विपरा, लांबी,
रिसाइ, रोबहि, हुलास, रूण, सुरत, सांभ, जोवन, चारी, उजिपारे,
अकास, तिवा, पीठि, बिस्तराम, सूरज, कपरे(कपड़े), मतिवारे, फूकर,
छाड़त, रजावारी, सीजा, भूष्या, ब्यामी, भाष्या, सुवास, अंबुवा, कनि-
स्ट, लरिकार्ड, मुये, विजय, गाते, भादौ, छिन, काजर, पूत, मूरति, अंगुरी,

सीस, ठौर, अरुन, जुद, पिय, घोस, दीठि, जोति, पछीनि, दस, बधु, छुरी, मुदगर, ज्योनार, अतन, हरनंजी इत्यादि ।

विदेशी :

(क) अरबी-शब्द:-

उमराह, मुलितान, ताकत, नबी, हमाम, कुर, ग़ादम, हज़रत, बलह, इर, सजदा, सिफ़त, ज़ाहिद, क़ादिर, रसूल, संदूक, मज़ात, बदन (शरीर), मुहम्मद, अब्बास, ऊमर, ऊसमान, अलीसिंघ, सेना, बली, फ़ौज़, ख़लीफ़ा, हवा, हामी, गुस्ता, हाज़िर, सहो, साहिब आदि ।

(ख) फ़ारसी-शब्द:-

बौगान, पातसाह, ग़ार, बिन्दार, परदा, बाग, मरदान, कमान, फ़रमायी, तषात, उस्ताद, पीर, चिस्ती, फिस्ती, जंगी, प्याज़, दरिया, हिंदसतान, अफ़सोस, मेवा, काग़द (काग़ज़) आदि ।

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ:-

लोक प्रचलित भाषा में लोक के अनेक अनुभव वाक्यों या वाक्यांशों के रूप में संक्षिप्त होते रहते हैं जिन्हें लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों की संज्ञा दी जाती है । इन दोनों के बीच बहुत गहरी सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती फिर भी दोनों में सामान्य अन्तर होता है । जब लोक-संक्षिप्त शब्द-समूह पूर्ण वाक्यों का रूप धारण करके सामान्य अनुभव के रूप में प्रकट होते हैं तब उन्हें लोकोक्ति या कहावत कहलाते हैं और जब विशेष प्रसंग के साथ वाक्यों में प्रकट होते हैं तब मुहावरे । "लोकोक्तियाँ और मुहावरों में प्रायः किसी न किसी रूप में वाक्यार्थ का बाध होकर लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ से तात्पर्य पूर्ण किया जाता है अथवा किसी अलंकार का प्रयोग होता है । लोकोक्ति स्वयं एक अलंकार माना गया है । पर अलंकार विधान के अन्तर्गत उसका उल्लेख न करने का प्रयोजन यह है कि लोकोक्ति में कल्पना के चमत्कार की अपेक्षा

कदाचित् भाषा का समतकार प्रायः अधिक होता है।" शान्कवि में लोको-
वित्पां और मुहावरे प्रायः समान अनुपात में व्यवहृत हुए हैं। इनके प्रयोग से
भाषा में अधिक प्रवाह, भाव-व्यंगना, वैविध्य, मार्मिकता, गहराई एवं चुरती
जा गई है। नीचे कवि द्वारा प्रयुक्त कतिपय कुछ मुहावरे और लोकोवित्पां
दी जाती हैं-

मुहावरे :- १- प्रेम की जो बीज पाके हिरदै में से गई ।

२- पाइत करिके देति है तीन ।

३- निकसि गई बुधि दरकी छाती ।

४- हाथ बिकाई ।

५- बधर रह्यो जिम्मा बाइ ॥

६- ली तूं रक्त हमारी बाणी ।

७- ज्यो बट पाउँ छाँहि ।

८- भली भी ते होत है ।

९- ज्यो जानी ही त्यों ही गई ।

१०- रक्त हमारी बाणी ।

११- निरास की आस पुजाई ।

१२- पूजी मन की आस ।

१३- सौना सुगंध कहाँ ।

१४- दीनी बाँह ।

१५- सिर धरि लीनी ।

१६- भई है बात छुन्दर नाग । आदि ।

लोकोवित्पां :-

१- येक हाथ से बजति न ताली ।

२- वैसे करे सुपावे तैसी ।

३- वैसे बढे बीज जगु तैसी ही फलु होइ ।

४- सीत बिना कवि जान कहि घर-घर दूध बिकाइ ।

- ५- कंटिक भये सेज के फूल ।
- ६- कहा भोज कहा तेरी गंगा ।
- ७- भली भली ते होत है । इत्यादि ।

विशिष्ट-प्रयोग:-

जाकवि ने भाषा के कुछ विशिष्ट प्रयोग किए हैं । इनकी भाषा में अवभाषा की सभी ध्वनियाँ मिलती हैं । उन्होंने सर्वत्र "स", के लिए "सा" (पूर्वन्व) वर्ण, स, श, ण, के लिए "स", छ ऐ के लिए "ये" तथा "यै", ज के लिए "युप", "वृ" के लिए "र", "वृ" के लिए "व्र", अर्द्धवर्ण के लिए सर्वत्र बिन्दी "०" आदि का प्रयोग किया है । इनके अतिरिक्त तुक, मात्रा आदि ठीक करने के लिए शब्दों के प्रयोग मात्रा, लिंग, संज्ञा, क्रिया आदि के बदलने में उन्होंने संकोच नहीं किया है । इस कारण कदाचित् कहीं-कहीं कुछ दोषों का आ जाना अवकाश अपरिपक्वता एवं जियिलता का मिलना स्वाभाविक है । जैसे -"रूप की सागर" (रूप का सागर), मंग (मांग), अभि-साजी (अभिलाषा), दुबन (दुर्वन), पातिया (पतियाँ), भाँछत (भाँकत), रहसायी (हरसायी), तरिकटा (तरिकहा या लड़के), मननमिन, मनवा), कीपी (किपी), आदि । "चिंता" तथा "चित्त" दोनों के लिए "चित्त" शब्द का प्रयोग किया है । इन सामान्य दोषों का बहुत कुछ कारण ग्रंथों का हस्त-लिखित रूप में मिलना भी है क्योंकि साधारण प्रतिलिपिकारों के द्वारा इस तरह की भूलें होना भी स्वाभाविक हैं ।

निष्कर्ष:-

संक्षेप में, भाषा के क्रिया, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, आदि सभी दृष्टियों से विरलेक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि जाकवि की भाषा विषुद अवभाषा है जबकि हिन्दी के अन्य प्रेमाख्याकारों के रचनाओं की भाषा प्रायः अवधी रही है । केवल हुसेन जली की रचना, नारायणदास की "छितार्थवार्ता" तथा मुरमुहम्मद की "इन्द्रावती" की भाषा अवभाषा,

"परशुराम बाँसुरी" में संस्कृत के उत्तम शब्द तथा "कथा कामरूप" की भाषा बड़ी जोती का प्रारम्भिक रूप है। जान्कवि ने अन्य रचनाओं की भाँति उत्तम शब्दों की अपेक्षा तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। विदेशी शब्दों में फ़ारसी तथा अरबी के थोड़े ही शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं पर अन्य भाषाओं के विदेशी शब्द नहीं। बीच-बीच में यथास्थान लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का उपयोग भी कवि ने किया है। इन्होंने भाषा का सरल और स्वाभाविक रूप ही अपनाया है। इजभाषा होने से भाषा में मधुरता तथा साहित्य का जाना स्वाभाविक है। जायसी, उसमान, नूरमुहम्मद आदि की भाँति भाषा पर इनका भी पूरा अधिकार रहा है। परशुराम वसुवैदी के शब्दों में - "जान्कवि की भाषा पर इन सबसे अधिक अधिकार दी गई पड़ता है और उनकी रचनाओं की पढ़ते समय प्रतीत होता है कि वे सिद्धहस्त कवि हैं।"

शैली

जान्कवि के समस्त प्रेमाख्यान मसनवी शैली से प्रभावित हैं जिसमें सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमाख्यानों की शैलियों का सामंजस्य है। असूफ़ी प्रेमाख्यान ज्ञानमकवि कृत "साधवानत कामकंदला" मसनवी शैली से प्रभावित एक उत्कृष्ट काव्य है। मसनवी अपने व्यापक अर्थ में आख्यानात्मक काव्य है^१। ये काव्य महाकाव्यों की भाँति सर्गबद्ध शैली पर नहीं लिखे गये हैं। कदाचित् ऐसा इसलिए भी सम्भव है कि प्राकृत और अपभ्रंश में वाक्पति-राजकृत प्राकृत महाकाव्य "गठबहो" हरिभट्ट कृत अपभ्रंश रचना "जोमिणाह बरिउ" आदि बरित-काव्य सम्बन्धी कुछ ऐसी रचनाएँ मिलती हैं जो सर्गबद्ध नहीं हैं। सम्भवतः इन्हीं का प्रभाव रहा है। ये सभी प्रेमाख्यान महाकाव्य न होकर खण्ड काव्य जैसे हैं। इनमें ऐतिहासिक तत्वों का अभाव है। कहीं-कहीं इति-

१- सम्पा० परशुराम वसुवैदी: "सूफ़ी काव्य-संग्रह"-पृ० १०, सं० २०१५।

२- प्रो० शिव सहाय पाठक- पद्मावत का काव्य-सौंदर्य-पृ० १७२, १९५६ई०।

हास की छोक अवश्य दी हुई मिलती है । इनमें अध्यात्म एवं रहस्यवाद की अपेक्षा गुह्य प्रेम - व्यंजना अधिक मुखरित हुई है । मसनवी की रचना किसी एक छंद या बहर से होती है । अनेक छंदों का प्रयोग वर्जित है किन्तु जान-कवि ने मसनवी शैली से प्रभावित होते हुए भी अपभ्रंश कालीन चरित-काव्यों की पद्धति पर अपने रचनाओं में विभिन्न प्रकार के छंदों का चयन किया है जबकि अवधी - भोजपुरी क्षेत्रों के कवि प्रायः दोहा-चाँपाई तक ही सीमित रहे हैं । इसका विस्तृत विवेचन छंदों के साथ किया गया है ।

रचनाएं मसनवी शैली पर आधारित होने से कथा के प्रारम्भ में नबी, रसूल, मुहम्मद, हज़रत, चार मार आदि की वंदना तथा इनका गुण-गान किया गया है । कुछ प्रेमाख्यानों में कवि ने शाहेज्जत या सम्तामयिक राजा शाहजहाँ, जहाँगीर या औरंगजेब की प्रशंसा, अपने पीर शैख मुहम्मद बिश्वी का नामोल्लेख और महत्व, रचना का प्राचीन आधार, कथा के संबंध में विनय-प्रदर्शन आदि का निर्देश किया है । रचनाओं के प्रारम्भ में मंगला-चरणा आदि की बात का एक रूप जैन चरित-काव्यों में दीख पड़ता है । यहाँ पर हमें पैगम्बरों और कवियों की रतुति की जगह तीर्थंकरों की वंदना, शाहेज्जत की प्रशंसा की जगह आश्रयदाता के लिए कहे गये देव-भक्ति सूचक शब्द दीख पड़ते हैं और विनय-प्रदर्शन की बात संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्रचल्य काव्यों में मिलती है । मंगलाचरणा तथा परिचयात्मक उल्लेखों के बाद प्रेमाख्यानों की विभिन्न कोटियों - दाम्पत्य, स्वच्छंद, सत तथा अध्यात्म के कथानकों में विभिन्नता होते हुए भी उनके रचना शैली में एक रूपता मिलती है । चूंकि कवि को प्रेमाख्यानों की अभिव्यक्ति देनी है इसलिए उसके काव्यों में सारा का सारा कथानक इसी (प्रेम) केन्द्र बिन्दु पर अपनी परिधि बनाता है । इस तरह प्रेम के झोड़ में ही कथानक का विकास होता है । सम्पूर्ण प्रेमाख्यान साहित्य में कथानकों का एक चक्र चलता है । कथा में वही नायक-नायिका के माता-पिता का परिचय, वही उनका निरसंतान होना, वही संतान प्राप्ति के अनेक प्रयत्न, वही प्रेमी-प्रेमिका का चित्र, स्वप्न, प्रत्यक्षा या गुण-वर्णन द्वारा आकर्षित होना, वही नायक का परिवार आदि छोड़कर योगी या सख्त वेश में घर से निकलना, वही एक ही तरह की विधन-बाधार्थ, वही अंत में एक वैसा नायक-नायिका का मिलन, और वही विवाहो-

परान्त उपदेश जाकर कालपापन करना ही इनका मुख्य विषय है । सम्पूर्ण कथानक की शैली में एकरूपता होते हुए भी उनमें एकरसता नहीं मिलती । बीच-बीच में नवीन प्रसंगों से कवि कुतूहल की सृष्टि करता गया है । इनके प्रेमाख्यानों में बीच-बीच में नीति या आदर्श के उपदेश देने की प्रवृत्ति प्रायः नहीं मिलती, जिससे कथानक में पूर्ण प्रवाह है । कवि सीधे एवं सरल ढंग से कहानी कहने की शैली में कथा कहता जाता है ।

इस तरह कवि के कथा कहने की शैली बिल्कुल वर्णनात्मक है । शीघ्रता के कारण अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं कतिपय घटनाओं को संकुचित कर दिया है जिससे विरह वर्णन जैसे एक जाय प्रसंगों को छोड़कर इनकी रचनाओं में प्रायः भावात्मक एवं गंभीर स्थलों का अभाव है । फिर भी उनमें सरलता, स्पष्टता, सुबोधता, स्वच्छंदता एवं प्रभावोत्पादकता है । कहीं भी शिथिलता नहीं देखती । अवभाषा में रचनाएँ होने से इनमें मार्मिक है, गीतात्मकता है तथा रसाभाविकता है । कहीं भी शिथिलता नहीं मिलती । रूप-वर्णन में शैली कहीं-कहीं अनुरजित, मनोहर एवं असंस्कृत भी होती देखी जाती है । इनकी शैली व्यक्तिप्रधान न होकर विषय प्रधान है । इसमें विषय वर्णन ही प्रधान होता है । कवि की स्वकीय वैयक्तिकता प्रयत्न लक्षित नहीं होती । कथारसनावृत्ति, कथा कथलावृत्ति, कथा रसनमवृत्ति, जैसे कुछ काव्यों में नायकों के विभिन्न कुतूहल पूर्ण दूरियों के अवलोकन में व्याख्यान शैली दृष्टिगोचर होती है । कथा मोहनी तथा कथा छविसागर में पहेलियाँ बुझाने में वार्तालाप शैली स्पष्ट लक्षित होती है । इन प्रेमाख्यानों का विषय- मुद प्रेम-व्यवसाय तक ही सीमित होने से शैली की विविधता, शक्तिमत्ता, व्यापकता तथा विशालता नहीं मिलती है।+ सीमित क्षेत्र के अनुरूप केवल प्रेम के विवर्णन में पर्याप्त गहराई और तीव्रता है फिर भी कथा कहने का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन होने से शैली में रोचकता एवं आकर्षण है ।

उपसंहार
समाप्त

उपसंहार

गत सात अध्यायों में मैंने जानकवि के जीवन-कृत, सम्पन्न कृतियों का परिचय तथा उनके प्रेमाख्यानों का सविस्तार आलोचनात्मक विवेचन किया है। इनके स्वरूप के सर्वांग-दर्शन के लिए इसका विश्लेषण स्वरूप में एकत्र कर रख देना उचित प्रतीत होता है।

जानकवि का वास्तविक नाम न्यामसर्ला था। इनके वंश के लोग पहले बीहान राजपूत थे, किन्तु बाद में सं० १४४० में दिल्ली के बादशाह फिरोज-शाह तुगलक के आहूतदार सैयदनासीर ने इनके पूर्वज करमसी को मुसलमान बनाया और उनका नाम बदलकर न्यामसर्ला रखवा। इन्हीं के नाम पर जानकवि ने अपना "न्यामसर्लारासा" ग्रंथ लिखकर उसमें अपने वंश का पूरा परिचय दिया है और अपने पिता अलफर्ला की वीरता का वर्णन किया है। वे १७वीं तथा १८वीं शताब्दी के बीच दीर्घकाल तक जीवित रहकर हिन्दी में रचनाएँ करते रहे। इनके गुरु हांसी निवासी शैख मुहम्मद चिरती थे। इनकी अपनी शिक्षा तथा काव्य-रचना के गुण बहुत कुछ पारिवारिक संस्कार द्वारा प्राप्त हुए थे।

जानकवि आशु कवि थे। इनकी कुल ७८ रचनाओं में २८ प्रेमाख्यान हैं। शेष नीति या उपदेश, इतिहास, काव्यशास्त्र, वार्ता, संगीत, रत्नपदार्थ या वैद्यक आदि विषयों से सम्बद्ध हैं। इनके मौलिक तथा अनूदित दोनों तरह के ग्रंथ हैं। केवल "न्यामसर्लारासा" को छोड़कर शेष सभी अभी हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं। ये सं० १६६९ से १७२१ वि० के बीच रचे गये हैं। इनका सबसे बड़ा ग्रंथ "बुद्धिसागर" तथा सबसे छोटा "सर्वेया या भूलनाह" है। इन समस्त ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ १७वीं से लेकर १९वीं शताब्दी तक होती रही हैं। इतने अधिक ग्रंथों की रचना एक कवि के लिए गौरव की बात है।

सम्पन्न प्रेमाख्यान्क साहित्य की एक लम्बी परम्परा मिलती है। जानकवि के प्रेमाख्यानों के कथानक प्रायः अपने पूर्व की किसी न किसी कथा पर आधारित रहे हैं। इस दृष्टि से कवि ने हिन्दी, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी - लोक साहित्य आदि सभी के कथा - झोंतों का पूरा-पूरा उपयोग किया है। हिन्दी के प्रेमाख्यानों में सूफ़ी तथा असूफ़ी दोनों की कथाओं का झोंत

(3)

लिमा है। इनकी "कथापुहुपवरिष्ठा" संस्कृत "मधुमातली", "कथा मधुकरमातली" बसुर्नुवदास की "मधुमातली" और "कथाछीता" नारायण दास की "छिताईवार्ता" पर आधारित हैं। "कथा नन्दमयंती" संस्कृत में महाभारत की प्रसिद्ध कथा रही है। "कथा कवलावली", "कथा तमीम अनसारी" और "कथा बलूकियाविरली" क्रमशः अरबी की प्रसिद्ध कथाएँ "बहारे-दानिश" (Bahar-e- Danish), "तमीमदारिमी" तथा बसुफतैला की "बलूकिया विरही" कथा पर, "कथा अरदसेर पतिलाह", "ग्रंथतैमयनूं" और "कथा खिद्दाई देवले" अपने इसी नाम से फ़ारसी कथाओं पर, "कथा कामरानी वा पीतमदास" उर्दू की प्रसिद्ध कथा "बाग़ो बहार" या फ़ारसी के "किस्से बहार दर्वेश" में पहले दर्वेश की कथा पर, "कथा कामतता" और "कथारतनावली" दक्खिनी के प्रेमाख्यान क्रमशः "कुतुबमुरतरी" तथा "सैफुलमुलूक व बदी उलजुमात" पर तथा "कथा कर्तदर" लोक - साहित्य की प्रसिद्ध कथा "कर्तदर" पर आधारित हैं। इनके अतिरिक्त "कथा कौतूहली", "कथा मोहनी", "कथा सतवती", आदि के अल्प झोठ असूफ़ी प्रेमाख्यान ही रहे हैं। "कथा कतावती", "कथा कन्का वली", "कथा रतनमंजरी" तथा "कथारूपमंजरी" जैसे कथाओं का पूर्व आधार न मिलने से ये कवि कल्पित जात होती है या सम्भव है कि भविष्य में इनके आधार मिलें। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कवि की कथाओं का आधार चाहे जिस धारा के ग्रंथ हो, पर उनके कथानकों का चयन कवि ने भारतीय भावधारा पर की है इसीलिए असूफ़ी कवियों का आदर्श तक्षित होता है।

"ग्रंथतैमयनूं" जैसे एक आध ग्रंथों को छोड़कर कवि ने अपने समस्त प्रेमाख्यानो में कथानकों का गठन भारतीय वातावरण में किया है। नायक नायिकाओं में प्रेम का उदय, उनके प्रयत्न में मार्ग की विघ्न-बाधाएँ और अंत में मिलन से कथा की परिणति हुई है जोकि असूफ़ी प्रेमाख्यानो की भांति है। कवि ने नायक - नायिका दोनों के विरह तथा संयोग का समान रूप से चित्रण किया है। सूफ़ियों की भांति इनमें न किसी

(ग)

संवेदनार्थ हैं न एकरूपता ही । उनके कथानकों का विकास प्रेम की झोड़ में होने से सारा कथानक इसी पर अपनी परिधि बनाता है ।

समस्त कथा या प्रेमाख्यात्मक साहित्य में परम्परागत एकरूपता होने से उनमें कथा या साहित्य - सम्बन्धी अनेक अभिप्राय (Motifs) मिलते हैं । ज्ञानकवि में भी ऐसे अभिप्रायों की कमी नहीं है । इनके अभिप्राय अधिकांश भारतीय वातावरण से लिए गये हैं । इनमें अधिकांश दृढ़िगत होते हुए भी कुछ मौलिक हैं जिनका उत्पत्ति पूर्व किसी अभिप्राय ग्रंथों में नहीं मिलता ।

प्रेमाख्यानों में प्रेम ही सर्वस्व होता है । ज्ञानकवि स्वच्छंद प्रवृत्ति के कवि होने के नाते प्रेम की किसी एक विशेष पद्धति का अनुसरण करते नहीं जात होते । इन्होंने सूफ़ी तथा असूफ़ी दोनों की प्रेम-पद्धतियों का अनुसरण करते हुए अपने समस्त प्रेमाख्यानों की रचना की है । फिर भी इनके प्रेम का स्वरूप बहुत कुछ भारतीय पद्धति के निकट लोक-सम्बद्ध एवं व्यावहारिक है । इनके प्रेम में सौन्दर्य और विरह की गहनता असूफ़ी कवियों के ढंग पर है । प्रेम में नायकों की अपेक्षा नायिकाएँ अधिक एकनिष्ठ और सर्वात्मसमर्पण शील दीखती हैं । इनका प्रेम आदर्शवादी होने से इसमें भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक -सामंजस्य (Social and Cultural synthesis) की प्रवृत्ति दीखती है । इनमें सूफ़ियों जैसा आध्यात्मिक संकेत नहीं मिलता ।

भावनाभिन्नरस रस रूप में सहृदयों का आस्वाद्य होती है । ये सभी

१- 'मान कवि जैसे कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने अपने रूपक निर्वारि में उतनी सबगता ही नहीं प्रदर्शित की है और उनकी रचनाएँ कोरी प्रेम कहानी - सी बन गयी हैं, जिस कारण उनसे सूफ़ियों का अंतिम उद्देश्य उचित प्रकार से सिद्ध नहीं हो पाता ।"

- परशुराम बहुबेदी - सूफ़ी काव्य-संग्रह-पृ० ९२, तृतीय संस्करण ।

(घ)

प्रेमास्थान चरित्र प्रधान होते हुए भी शृंगार रस प्रधान प्रेम-काव्य हैं । जानकवि ने असूफ़ी कवियों की भांति शृंगार के संयोग तथा विप्रनय्य दोनों पक्षों को महत्व देते हुए गीण रूप से अन्य रसों का भी समावेश किया है ।

प्रेमास्थानों में प्रेमियों तथा अन्य सभी पात्रों के चरित्रों का विकास प्रेम की पद्धति पर होने से उनमें चरित्रगत कोई नवीनता और मौलिकता नहीं लक्षित होती । ये प्रेम की एक ही केन्द्र - बिन्दु पर अपनी परिधि बनाते और एक स्तर पर व्यवहार करते दीखते हैं । जानकवि के पात्रों में असूफ़ी कवियों की भांति उतनी एकरूपता नहीं मिलती । इनके नायक तथा नायिकाओं में विरह की विकलता भी उतनी नहीं दीखती । ये सामान्य लौकिक स्त्री-पुरुषों की भांति हैं । कवि ने राज-रम्यानी प्रभाव से उल्लनायिकाओं का बिल्कुल उपयोग नहीं किया है । प्रति-नायिकाएँ भी नाम-मात्र की आई हैं । शेष अलौकिक तथा लौकिक (मानवीय और मानवैतर) पात्रों की स्थिति अन्य प्रेमास्थानक कवियों की भांति है ।

समस्त प्रेमास्थानों में मुख्य छंद दोहा- चौपाई ही प्रयुक्त होते रहे हैं । जानकवि ने इनके प्रयोग के साथ-साथ चमत्कार-प्रदर्शन की दृष्टि से अन्य अनेक विध छंदों का प्रयोग किया है । पुर्नित्त, षुद्धत, जैसे कुछ नवीन नवविकर्णाधार छंदों का प्रयोग भी किया है जो इनके पूर्व हिन्दी में प्रयुक्त नहीं मिल सके हैं । ये छंद अधिकतर वपभ्रंश तथा चारण कवियों में प्रयुक्त होते रहे हैं । इनके मात्रा, वर्ण आदि में इन्हीं की तरह स्वतंत्रता बर्ती है । इनके द्वारा प्रयुक्त छंद सबसे अधिक मात्रिक तथा समवतुष्यदी हैं ।

अलंकारों में उपमानों की संख्या अधिकतर भारतीय और रूढ़िगत है । नवीन तथा लोक-जीवन से लिए गए उपमान बहुत कम हैं । अन्य प्रेमास्थानक कवियों की भांति सादृश्य-मूलक अलंकारों की ही इन्होंने विशेष प्रयोग किया है ।

माधुग में प्रतीकों की प्रधानता सर्वमान्य है। सुफ़ी तथा संत कवियों ने अपनी रचनाओं में सांकेतिक प्रतीकों का पर्यंत लड़ा कर दिया है। इन कवियों की भांति ज्ञानकवि ने न तो सांकेतिक प्रतीकों का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया है। न इनकी रचनाओं में सुफ़ियों जैसा अलौकिक संकेत ही मिलता है।

मानव आदि कास से ही प्रकृति के साहचर्य में रह कर अपने भाव पूर्ण चिंतन का विस्तार करता रहा है। ज्ञानकवि के प्रेमाख्यानों में प्रकृति का वह मनोहर और मधुर रूप नहीं प्राप्त होता जैसा कि जामली जैसे कुछ अन्य प्रेमाख्यान्क कवियों ने किया है। इनके बारहमासे के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण उद्दीपन के रूप में हुआ है। मार्तण्ड या स्वर्तन रूप में प्रकृति का चित्रण नहीं के बराबर है।

अन्य हिन्दी के प्रेम गाथाओं की भांति ज्ञानकवि के प्रेमाख्यानों की भाषा अवधी न होकर ब्रज है। इनमें अनेक शब्दों के विशिष्ट प्रयोग मिलते हैं। इनकी भाषा बहुत सरल तथा प्रांजल है, दुबूढ़ता कहीं भी नहीं दीखती। रचनाओं के प्रारम्भ में मसनवी शैली का अनुसरण करते हुए भी इनकी रचना-शैली पूर्ण भारतीय और वर्णनात्मक है। ब्रज-भाषा में होने से उसमें माधुर्य और गीतात्मकता जाना स्वाभाविक है।

हिन्दी साहित्य जगत ने अभी तक इतने बड़े प्रेमाख्यान्कार की ओर अपेक्षात ध्यान न देकर कर्तव्य पातन नहीं किया है। एक कवि द्वारा इतने अधिक प्रेमाख्यानों की रचना हमारे प्रेमाख्यान - साहित्य के लिए गौरव की बात है। संस्था की दृष्टि से इनकी प्रेमाख्यान साहित्य का सबसे बड़ा रचयिता कह सकते हैं। इतने बड़े कवि के अभाव में इतना विशाल प्रेमाख्यान बाह्यमय अथुरा ही कहा जायेगा। जागे जैसे जैसे इन पर अन्वेषण तथा मूल्यांकन होता जायेगा जैसे जैसे नवीनताएं निखरती जायेगी। अतः इनके हस्तलिखित ग्रंथों के शीघ्र प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता है।

अनुबंध

ग्रंथ - सूची

आधार ग्रंथ : जानकी (हस्तलिखित) :

- | | |
|----------------------------|-------------------------------|
| १- कथा अरदसेर पतिसाह | २- कथा कताबती |
| ३- कथा कबलावती | ४- कथा कन्कावती |
| ५- कथा कलंदर | ६- कथा कामलता |
| ७- कथा कामरानी वा पीतम दास | ८- कथा कुलबती |
| १०- कथा विजया देवलदे | ११- कथा बन्दरेन राजा सीतलियान |
| १२- कथा छविसागर | १३- कथा छीता |
| १४- कथा तमीम अनसारी | १५- कथा नलदमयती |
| १६- कथा निरमत | १७- कथा मुहुपवरिणा |
| १८- कथा बसुकिवा विरही | १९- कथा मधुकरमालनी |
| २०- कथा मोहनी | २१- कथा रतनावती |
| २२- कथा रतनमवरी | २३- कथा रूपमवरी |
| २४- कथा सतबती | २५- कथा सीतबती |
| २६- कथा सुभटराह | २७- ग्रंथ बांदी नावा |
| २८- ग्रंथ तैलमजनु | |

सहायक - ग्रंथ

हस्तलिखित (जानकी) :

- | | |
|---------------------|----------------------|
| २९- अतक नावा फुदुलत | ३०- अलिफ खां की पैडी |
| ३१- उत्तम सबद | ३२- कंदपकलोल |
| ३३- कबुतर नामा | ३४- कयामतां रासा |
| ३५- कवि बल्लभ | ३६- गुरुग्रंथ |
| ३७- पूषटनावा | ३८- चैतन नामा |
| ३९- बफर नामा | ४०- दरसनावा |

(३)

- | | |
|---------------------|---------------------------|
| ४१- दरसनावा जुद्धत | ४२- देसावली |
| ४३- नाममाता जनेकाशी | ४४- पंदनामा |
| ४५- पाहन परीवा | ४६- प्रेम सागर |
| ४७- पैमु नामा | ४८- बरवा |
| ४९- बावनामा | ५०- बारहमासा |
| ५१- बांदी नावा | ५२- बारहमासा फुर्निंग छंद |
| ५३- गिरही को मनोरथ | ५४- बुधि दाउक |
| ५५- बुधिदीप | ५६- बुद्ध सागर |
| ५७- भावसति | ५८- भावकलोत |
| ५९- मदनविनोद | ६०- मानविनोद |
| ६१- रसतरंगिनी | ६२- रसमंजरी |
| ६३- रिरहसत | ६४- विवोग सागर |
| ६५- रसमंजरी | ६६- वैदकसत पंदनावा |
| ६७- सबैवा या भूलनाह | ६८- सतनावा |
| ६९- सबैवा | ७०- संगीत गुनदीप |
| ७१- सिंगार सति | ७२- सिंगार तिलक भाषा |
| ७३- सिङा ग्रंथ | ७४- सुधासिङा |
| ७५- णदरितु बरवा बंध | ७६- णदरितु पर्वगम |
| ७७- शिवा सागर | ७८- शान्दीप |

सहायक ग्रंथ : अन्य (हस्तलिखित):

- ७९- कवामोहनी : शेष मुहम्मद - हि०.प०, प्रयाग ।
 ८०- मधुमासती : वंगराज - दिगम्बर जैन भण्डार, जयपुर ।
 ८१- सीता मवनु की बात : आत्माराम- अभयजैन ग्रंथालय तथा अनूप संस्कृत
 लाइब्रेरी, बीकानेर ।

८२- विवोग सागर: शेष मुहम्मद - हि०.प०, प्रयाग ।

सहायक ग्रंथ: -

- ८३- अथर्वा साहित्य: डा० हरिवंश कोष्ठ - भारतीय साहित्य मंदिर फव्वारा
 दिल्ली, सं० २०१३ ।

(३)

- ८४- अनुराग बासुरी : मुहम्मदनूर, हि०सा०स०, प्रयाग, सं० २००२ ।
- ८५- अकबरी दरबार : रामचन्द्र वर्मा- ना०प्र०सभा, काशी - सं० १९९३ वि० ।
- ८६- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि: सरयू प्रसाद जगन्नाथ, लखनऊ विश्व-
विद्यालय, सं० २००७ ।
- ८७- अलंकार - मर्वुणा- लाला भगवान्दीन - रामनारायणलाल प्रेस,
इलाहाबाद, सं० १९९३ ।
- ८८- अक्षिप पैला(अर्थात्) हजार दास्तां वा सहस्रवर्णी विज्ञापः हेमराज श्री
कृष्णादास, "श्री वैकुण्ठेश्वर" एटीम् प्रेस, बम्बई-सं०
१९८१ ।
- ८९- अनुराग बासुरी : सम्पा० रामचन्द्र शुक्ल- हि०सा०स०, प्रयाग, सं० २००२ ।
- ९०- आधुनिक हिन्दीकविता में प्रेम और सौन्दर्य: डा० रामेश्वर लाल शण्डेलवाल,
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सं० २०१५ ।
- ९१- आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना: डा० पुस्तुलाल शुक्ल, लखनऊ विश्व-
विद्यालय, सं० २०१४ ।
- ९२- आधुनिक हिन्दीकथा-शिल्प: डा० मोहन अवस्थी- हिन्दी परिषद्, प्रयाग
विश्वविद्यालय, १९६२ ई० ।
- ९३- आज़ाद कथा (रसननाथ सरस्वार): अनु० प्रेमचंद- सरस्वती प्रेस, बनारस,
१९५४ ई० ।
- ९४- इतिहास और आलोचना : डा० नामवर सिंह, नया साहित्य प्रकाशन,
इलाहाबाद, १९६२ ई० ।
- ९५- इस्लाम के सूफ़ी साधक(निकलसन): अनु० नमिदरवर चतुर्वेदी- मित्र प्रकाशन,
प्रा०ति०, इलाहाबाद, प्र०संस्क० ।
- ९६- इस्लाम धर्म की रूपरेखा: राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद
१९४६ ई० ।
- ९७- उत्तरी भारत की संत परम्परा: अरशुराम चतुर्वेदी- भारती भण्डार लीडर
प्रेस, इलाहाबाद, द्वि०संस्क०, सं० २०२१ ।
- ९८- कबीर ग्रंथावली: सम्पा० रवाम सुन्दर दास - ना०प्र०सभा, काशी ।
- ९९- कथा सारित्सागर: रूपा० गोपाल कृष्ण कौल, सस्ता साहित्य मंडल, नई
दिल्ली, १९५९ ई० ।

(४)

- १००- कथा सरित्सागर-(भाग १): अनु० केदारनाथ शर्मा सारस्वत- विहार
राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९६० ई० ।
- १०१- कथा सरित्सागर-(भाग २): अनु० केदारनाथ शर्मा सारस्वत- विहार
राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९६१ ई० ।
- १०२- केशव कौमुदी : सम्पा० लाला भगवान्दीन, रामनारायणजील,
इलाहाबाद सं० २०१३ ।
- १०३- कबीर साहित्य की परब: परशुराम बतुर्वेदी- भारती भण्डार, इलाहाबाद
सं० २०११ ।
- १०४- कबीर - ग्रंथावली: डा० पारसनाथ तिवारी- हिन्दी परिषद् प्रयाग
विश्वविद्यालय, १९६१ ई० ।
- १०५- काव्य दर्पण: रामदत्तन मिश्र - प्रियमाला कार्यालय, काँकीपुर, १९४७ ई० ।
- १०६- काव्य कल्पद्रुम(प्रथम भाग): कन्हैयाल पोद्दार-बूढ़ीवाला का मकान,
मथुरा, सं० २००४ ।
- १०७- काव्यालोक (द्वितीय उद्योत): रामदत्तन मिश्र, प्रियमाला कार्यालय,
काँकीपुर, सं० २००७ ।
- १०८- काव्य-प्रदीप: रामबहोरी शुक्ल- हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५८ ई० ।
- १०९- किष्का बहार दर्वेश(भीरु अम्मन): भाषा०- डा० सैयद एजाज हुसैन,
मिश्र प्रकाशन, प्र० संस्करण ।
- ११०- कुरान तारीफ: अहमद बसौर, प्रभाकर साहित्य लोक, लखनऊ, प्र० संस्करण ।
- १११- कुतुब मुरतरी: सम्पा० विमला वात्रे और नसीरुद्दीन हासमी, दक्खिनी
प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५४ ई० ।
- ११२- कुतबी कासीन भारत: अनु० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी - इतिहास विभा।
अलीगढ़ विश्वविद्यालय, १९५५ ई० ।
- ११३- गुजराती और अवभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन: डा०
जगदीश गुप्त- हिन्दी परिषद्-विश्वविद्यालय प्रयाग,
१९५८ ई० ।
- ११४- गुलसनोवर: पी० कृष्णाविहारी शुक्ल- जी बैंकटेश्वर स्टोम्-प्रेस, बम्बई, सं०-
१९९३ ।
- ११५- गुलकावली-(फारसी): अनु० टीकाराम शर्मा- रयामकाशी प्रेस-मथुरा,
प्र० संस्करण ।

(५)

- ११६- विन्तामणि-(भाग-१): रामचन्द्र गुप्त- इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९५९ ई० ।
- ११७- विद्यावती: सम्पा० जगन्मोहन वर्मा - ना० प्र० सभा, काशी, १९१२ ई० ।
- ११८- छंद प्रभाकर : जगन्नाथ प्रसाद भानु- जगन्नाथ प्रेस, विन्तासपुर, १९२३ ई० ।
- ११९- छंदोमंजरी: रामकृष्णवर्मा- काशी, १९०३ ई० ।
- १२०- छंदोहृदय प्रकाश: सम्पा० डा० विरवनाथ प्रसाद- क० मु० हिन्दी विद्यापीठ-
आगरा विश्वविद्यालय, १९५९ ई० ।
- १२१- छिताईवार्ता: सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त- ना० प्र० सभा, काशी,
सं० २०१५ ।
- १२२- जातक (प्रथम खण्ड): भदन्त ज्ञानन्द कौस्तुभायन, हि० सा० सं०, प्रयाग-
१९४१ ई० ।
- १२३- जातक (द्वितीय खण्ड): " " " " " " १९४२ ई० ।
- १२४- जातक (तृतीय खण्ड): " " " " " " १९४६ ई० ।
- १२५- जातक (चतुर्थ खण्ड): " " " " " " १९५१ ई० ।
- १२६- जातककाशीन भारतीय संस्कृति: मोहन लाल महतो "विद्योगी" बिहार
राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९५८ ई० ।
- १२७- जायसी-ग्रंथावली: सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त, हि० ए०, प्रयाग -
१९५२ ई० ।
- १२८- जायसी-ग्रंथावली: रामचन्द्र गुप्त- ना० प्र० सभा- काशी, सं० २००८ ।
- १२९- जायसी-ग्रंथावली:- राजनाथ शर्मा- विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-
१९६२ ई० ।
- १३०- जायसी-ग्रंथावली: डा० मनमोहन गौतम, रीगल बुकडिपो नई सड़क,
दिल्ली, सं० २०१६ ।
- १३१- जायसी के परवर्ती: हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य: डा० सरला गुप्त,
सबनरु विश्वविद्यालय, सं० २०१३ ।
- १३२- जायसी और उनका पद्मावत- प्रो० दानबहादुर पाठक- हिन्दी साहित्य
संसार, दिल्ली-६, १९५९ ई० ।
- १३३- जायसी का पद्मावत: काव्य और दर्शन: डा० गोविन्द त्रिगुणावत,
अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६, १९६३ ई० ।

(६)

- १३४- जायसी की काव्य साधना - प्रो० दानवहादुर पाठक- हिन्दी साहित्य संसार, पटना, १९६१ ई० ।
- १३५- जायसी साहित्य और सिद्धान्तः यशदत्त शर्मा- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५ ई० ।
- १३६- डोला मारू रा दूहा : सम्पा० रामसिंह जादि - ना० प्र० सभा, काशी, सं० २०१७ ।
- १३७- तससुफ जयवा सुफीमतः बन्धुवती पाण्डेय, सरस्वती मंदिर बतनगर, वाराणसी, १९४८ ई० ।
- १३८- बेरी गाथाएँ - भरतसिंह उपाध्यायः सत्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५० ई० ।
- १३९- दमरुती : तारार्चद हरित, आत्माराम, दिल्ली, १९५७ ई० ।
- १४०- दमरुती कथाः महाकवि त्रिविक्रम भट्ट, बम्बई, सं० १८६७ वि० ।
- १४१- दक्षिणी हिन्दी काव्य धारा- राहुल सांकृत्यायन, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५९ ई० ।
- १४२- नवरत्न - बाबू गुलाब राय- जारा ना० प्र० सभा, जारा (बिहार), १९३४ ई० ।
- १४३- नखदमन(सूरदास लखनऊ)-प्रधान सम्पा० डा० बिरबनाथ प्रसाद- बिरब-विद्यालय, जगरा, १९६१ ई० ।
- १४४- नाट्यशास्त्रः (भरत) सम्पा० डा० रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९६३ ई० ।
- १४५- नाव-संप्रदायः डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- हि० ए०, प्रयाग, १९५० ई० ।
- १४६- नैषाध-परिशीलन : डा० बण्डूका प्रसाद गुप्त- हि० ए० प्रयाग, १९६० ई० ।
- १४७- पद्मनाभ का काव्य सौन्दर्यः प्रो० शिवसहाय पाठक, हिन्दी ग्रंथवत्ताकर प्रा० लि०, बम्बई, १९५६ ई० ।
- १४८- पद्मनाभ में लोक तत्वः डा० रवीन्द्र भूषण- मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६२ ई० ।
- १४९- पद्मनाभ - सारः बन्धु बन्धु नारंग- हिन्दी भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद- १९५७ ई० ।

(७)

- १५०- परमाकराही : सम्पा० रघुमकुन्दर दास- ना० प्र० सभा, काशी, सं० १९०६।
- १५१- पंचतंत्र : बन्धु डा० मोतीचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६१ ई० ।
- १५२- प्रतापतहरी : (प्रतापनारायणशक्ति) : सम्पा० नारायण प्रसाद बरौड़ा,
पटकापुर, कानपुर, १९४९ ई० ।
- १५३- पुरुषोत्तमरासी : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- साहित्य भवन प्रा० लि०,
इलाहाबाद, १९५२ ई० ।
- १५४- प्रकृति और काव्य(मध्ययुग) : डा० रघुवीर- नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
९६ दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं० क० ।
- १५५- पुरुषोत्तमरासी की भाषा : डा० नामवरसिंह- सरस्वती प्रेम, बनारस,
१९५६ ई० ।
- १५६- पुरुषोत्तमरासी- मैं क्या कहूँ दुनिया : ब्रजविलास श्रीवास्तव- राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली, १९५५ ई० ।
- १५७- प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य : डा० रामसिंह तोमर, हिन्दी परिषद्,
प्रयाग विश्वविद्यालय, १९६४ ई० ।
- १५८- प्राकृत साहित्य का इतिहास : डा० जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्बा किताब
भवन, वाराणसी, १९६६ ई० ।
- १५९- पाठ-सम्पादन के सिद्धान्त : कन्हैयालालसिंह- महामना प्रकाशन मंदिर,
इलाहाबाद, १९६२ ई० ।
- १६०- प्राचीन प्रेम और नीति की कहानियाँ : डा० रागिण रायन, किताबमहल,
इलाहाबाद, १९५९ ई० ।
- १६१- पिंगल प्रकाश : रघुवर दयाल मिश्र, रत्ननाथ, जागरा, १९३३ ई० ।
- १६२- पौदार अभिनंदन - ग्रंथ : सम्पा०- डा० सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य मंडल,
मथुरा, सं० २०१० ।
- १६३- पुराणी साहित्य की रूपरेखा : डा० अलीसागर हिक्मत- हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, वाराणसी, १९५० ई० ।
- १६४- रंगना साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : डा० सत्येन्द्र, प्रकाशन शाखा सुबना
विभाग, उ० प्र०, १९६१ ई० ।
- १६५- रजभाषा : डा० श्रीरेन्द्र वर्मा- हि० ए० प्रयाग, १९५४ ई० ।

(C)

- १६६- ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन - डा० सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार,
जागरा, १९४९ ई० ।
- १६७- बीबी बांदी का भण्डा (कवयित्री ताव): सम्पा० अमरचंद नाहटा,
राजस्थान साहित्य समिति, जिला, प्र० सं० ६० ।
- १६८- बीसलदेवरास: सम्पा० माता प्रसाद गुप्त: हिन्दी परिषद् विाव-
विद्यालय, प्रयाग, १९५३ ई० ।
- १६९- भक्ति साहित्य में मधुरोपासना: परशुराम चतुर्वेदी, लीडर प्रेस, इलाहा-
बाद, सं० २०१८ ।
- १७०- भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा: परशुराम चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली, १९५६ ई० ।
- १७१- भारतीय प्रेमाख्यान काव्य: डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, बनारस, १९५५ ई० ।
- १७२- भारत में इलाहाबाद: आचार्य चतुरसेन- गीता प्रेस डिपो- नई दिल्ली,
१९४९ ई० ।
- १७३- मध्यकालीन प्रेम-साधना: परशुराम चतुर्वेदी- साहित्य भवन प्रा० लि०,
इलाहाबाद, प्र० १९५७ तथा १९६२ ई० ।
- १७४- मध्यकालीन धर्म-साधना: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- साहित्य भवन
प्रा० लि० इलाहाबाद, १९५६ ई० ।
- १७५- मध्ययुगीन प्रेमाख्यान: डा० राम मनोहर पाण्डेय- मित्र प्रकाशन,
इलाहाबाद १९६१ ई० ।
- १७६- मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लौक तात्विक अध्ययन: डा० सत्येन्द्र
विनोद पुस्तक मंदिर, जागरा, १९६० ई० ।
- १७७- मधुमासती: सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त- मित्र प्रकाशन- इलाहाबाद,
१९६१ ई० ।
- १७८- महाभारत (७ठां भाग): इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद - प्र० सं० ६० ।
- १७९- मधुमासती: सम्पा० शिवगीपाल मिश्र, हिन्दी प्रचारक, वाराणसी,
१९५७ ई० ।
- १८०- मध्ययुगीन काव्य-साधना: डा० रामचन्द्र तिवारी, गोरखपुर, सितम्बर
१९६२ ई० ।

(९)

- १८१- मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तिः परशुराम चतुर्वेदी- साहित्य भवन प्रा०
लि०, इलाहाबाद, १९६१ ई० ।
- १८२- महाभारत की कथा: उमादत्त शर्मा, कलकत्ता, सं० १९९० ।
- १८३- युगावती: सम्पा० शिवगीपात्र मिश्र, लि० सा० सं०, प्रयाग, प्र०संक० ।
- १८४- मध्यकालीन भारत: परमात्मा शरणा, लक्ष्मी नारायण प्रेस, वाराणसी,
१९३५ ई० ।
- १८५- माधवा नल कामर्द्धला: प्रबन्ध(गणपतिकृत): सम्पा० मम० नार० मधुमदार,
बड़ोदा ।
- १८६- माजिक छंदों का विकास: शिवनंदन प्रसाद, बिहार राष्ट्र भाषा-
परिषद्, पटना, १९६४ ई० ।
- १८७- मीरा की प्रेम साधना: भुवनेश्वर नाथ मिश्र, श्री गजाना प्रेस, पटना-४,
१९५० ई० ।
- १८८- प्रेम सागर: सम्पा० ज्वरत्नदास, ना० प्र०सभा, काशी, सं० २०१० ।
- १८९- मैनासत: सम्पा० हरिहरनिवास त्रिवेदी: ना० प्र०सभा, काशी, प्र०संक०
- १९०- रहस्यवाद: परशुराम चतुर्वेदी- बिहार राष्ट्र भाषा-परिषद्, पटना,
१९६३ ई० ।
- १९१- रसरतन: सम्पा० शिवप्रसाद सिंह- ना० प्र०सभा, काशी, सं० २०२० ।
- १९२- रसिक प्रिया: केशवदास- भातृ भाषा मंदिर, प्रयाग, १९५४ ई० ।
- १९३- रस सिद्धांत: स्वरूप विश्लेषण: डा० ज्ञानन्द प्रकाश दीक्षित, राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली-६६, १९६० ई० ।
- १९४- रसनीर्माणा: रामचन्द्र मुक्त, ना० प्र०सभा, काशी, सं० २०११ ।
- १९५- राजस्थान का विंगत साहित्य: मोतीलाल मेनारिया, हितीष्णी पुस्तक
भण्डार, उदयपुर, १९५२ ई० ।
- १९६- राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज(भाग-१): मोतीलाल -
मेनारिया, साहित्य संस्थान राजकमल
विद्यापीठ, उदयपुर, १९४२ ई० ।
- १९७- " " " " " " (भाग-२): जगरबंद नाहट
" " " " १९४७ ई० ।

(10)

- १९८- राजस्थान में हिन्दी के इतिहासित ग्रंथों की शोध(भाग-३) : उदयसिंह
भटनागर, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदय-
पुर, १९५२ ई० ।
- १९९- " " " " " " " " (भाग-४) : जगज्जनन
नाहटा " " " " " " " " १९५४ ई० ।
- २००- राजस्थानी कथावर्तें: एक अध्ययन: कन्हैयालाल सहल- भारती साहित्य मंडिर,
दिल्ली, १९५८ ई० ।
- २०१- राजस्थानी भाषा: सुनीति कुमार - साहित्य शोध संस्थान, उदयपुर,
१९४९ ई० ।
- २०२- राजस्थान साहित्य प्रगति और परम्परा: डा० सरनामसिंह शर्मा, हिन्दी
साहित्य संसार, दिल्ली, १९५९ ई० ।
- २०३- राजस्थान का इतिहास: अनु० कैलाश कुमार ठाकुर, वैद्येश्वर स्टीम-प्रेस,
बम्बई, १९६२ ई० ।
- २०४- राजस्थान का इतिहास: पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, बम्बई, सं० १९६६ वि० ।
- २०५- राजस्थानी वाता(भाग-१): सम्पा० नरोत्तमदास स्वामी, साहित्य-
संस्थान राजस्थान विश्वविद्यालय, उदयपुर, प्र०संक० ।
- २०६- राजस्थानी साहित्य का महत्व: राय बहादुर सेठ रामदेव चौधरी,
ना०प्र०सभा, काशी, सं० २००० वि० ।
- २०७- राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान: कन्हैयालाल सहल, बिड़ला कालेज,
पिलानी, सं० २००६ ।
- २०८- राजस्थानी बात - संग्रह: सम्पा० नारायणसिंह भाटी, राजस्थानी शोध
संस्थान, बीबासनी, जोधपुर, प्र०संक० ।
- २०९- राजस्थान की लोक गायारें: अम्बिकेश शर्मा- बंगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता
सं० २०१६ ।
- २१०- राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा: मोतीलाल मेनारिया-हि०सा०स०प्रयाग,
१९३९ ई० ।
- २११- राजी साहित्य विमर्श: डा० माता प्रसाद गुप्त: साहित्य भवन, इलाहा-
बाद, १९६२ ई० ।

(iii)

- २१२- राजपूताने का इतिहास (पहला खण्ड): गौरी शंकर हीराचंद जोषा,
वैदिक मन्त्रालय, बजमेर, सं० १९८२ ।
- २१३- " " " (दूसरा खण्ड): " " " सं० १९८३ ।
- २१४- " " " (तीसरा खण्ड): " " " सं० १९८६ ।
- २१५- " " " (चतुर्थ खण्ड): " " " सं० १९८८ ।
- २१६- रीतिकासीन कवियों की प्रेम व्यंजना: डा० जन्मन सिंह, ना० प्र० सभा,
काशी, सं० १०१५ ।
- २१७- रीतिकासीन कविता एवं गुंगार रस का विवेचन: डा० राजेश्वर प्रसाद
चतुर्वेदी, सरस्वती पुस्तक सदन, बागदा, १९५३ ई० ।
- २१८- रेवातट: सम्पा० विपिन विहारी त्रिवेदी - हिन्दी विभाग लल्लू लखनऊ
विश्वविद्यालय, १९५३ ई० ।
- २१९- सैला और दूसरी कहानियाँ: प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, बनारस, १९४५ ई० ।
- २२०- लोक साहित्य विज्ञान - डा० सत्येन्द्र शिवलाल अग्रवाल प्रा० लि०,
बागदा, १९६२ ई० ।
- २२१- लक्ष्मसेन पद्मावती कथा - सम्पा० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी - निर्मल मुद्रणालय
कटरा, इलाहाबाद-२, १९५९ ई० ।
- २२२- वीरसिंह देव चरित : कैावदास- मातु भाष्णा मंदिर, प्रयाग, सं० २०१३ ।
- २२३- जेलिक्रिसन रत्नमणिरी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९५३ ई० ।
- २२४- वैदिक कहानियाँ: जलदेव प्रसाद उपाध्याय- शारदा मंदिर, काशी,
१९४६ ई० ।
- २२५- संविधान पृथ्वीराज रासो - सम्पा० डा० हजारि प्रसाद त्रिवेदी,
साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६१ ई० ।
- २२६- संतबाणी - संग्रह (पहला भाग): जेलिक्रिसन प्रेस, इलाहाबाद, १९३३ ई० ।
- २२७- संतकाव्य [लौकिक पृष्ठभूमि: जीम प्रकाश शर्मा: प्रयाग विश्वविद्यालय,
(अप्रकाशित), १९६१ ई० ।

(१२)

- २२८- साहित्यावलीकन : विनय मोहन शर्मा- साहित्य भवन, इलाहाबाद,
१९५२ ई० ।
- २२९- साहित्य-दर्पणः विश्वनाथ प्रसाद- चौबन्ना, वाराणसी, १९५७ ई० ।
- २३०- सिद्ध साहित्यः डा० धर्मवीर भारती- किताब महल- इलाहाबाद,
१९५५ ई० ।
- २३१- सुन्दर-प्रीयावती : (तृ०-१) : स्व० हरिनारायण पुरोहित, राजस्थान रिसर्व
सोसायटी, कलकत्ता, १९४७ ई० ।
- २३२- सूरदासः डा० प्रबोधन वर्मा : हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय,
१९५९ ई० ।
- २३३- सुफी काव्य-संग्रहः परगुराम चतुर्वेदी, हि० सा० सं० प्रयाग, सं० २०१५ ।
- २३४- सुफीमत साधना और साहित्यः रामपूजन तिवारी- ज्ञानमण्डल लि०,
बनारस, सं० २०१३ ।
- २३५- सुफीमत और हिन्दी साहित्यः डा० विमलकुमार जैन- आत्माराम
कारमीरीगेट, दिल्ली, १९५५ ई० ।
- २३६- सूरसाहित्य+ का सांस्कृतिक अध्ययनः डा० प्रेम नारायण टण्डन, हिन्दी
साहित्य भण्डार, ई लखनऊ, १९५८ ई० ।
- २३७- हजरत मुहम्मद और इस्लामः सुन्दरलाल, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहा-
बाद, १९४५ ई० ।
- २३८- तज्जाम के हिन्दी : अनु० सैयद अतहर अन्वास रिजुवी- ना० प्र० सभा, काशी,
सं० २०१४ ।
- २३९- हंसजवाहिरः कासिमशाह, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९३७ ई० ।
- २४०- हिन्दी के सुफी प्रेमाख्यान- परगुराम चतुर्वेदी, लीटर प्रेस, प्रयाग, १९६२ ई०
- २४१- हिन्दी काव्य धारा में प्रेम-प्रवाहः परगुराम चतुर्वेदी, किताब महल,
इलाहाबाद, १९५९ ई० ।
- २४२- हिन्दी साहित्य(भाग-२) : भारतीय हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग,
विश्वविद्यालय, १९५९ ई० ।
- २४३- हिन्दी साहित्यः डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- अन्तवन्द कपूर
दिल्ली, १९५५ ई० ।

(११)

- २४४- हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य: डा० कमलकुमार श्रेष्ठ, बाँधरी मानसिंह, प्रकाशन
कचहरी रोड, नवभेर, १९५१ ई० ।
- २४५- हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार
राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना-३, १९५० ई० ।
- २४६- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: डा० रामकुमार वर्मा,
रामनारायण जाल इलाहाबाद, तुलसीक० ।
- २४७- हिन्दी साहित्य का इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्रसभा० काशी,
सं० २००९ ।
- २४८- हिन्दी के विकास में अफ़स का योग: डा० नामवर सिंह, लोक भारतीय
प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५४ ई० ।
- २४९- हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास: डा० बीरेन्द्र सिंह, प्रयाग
विरवविद्यालय, (अप्रकाशित), १९६० ई०^१ ।
- २५०- हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण: डा० किरण कुमारी गुप्त, हि० सा० सं०
प्रयाग, सं० २००६ ।
- २५१- हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास: रणवीर रांग्रा, भारतीय
साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६१ ई० ।
- २५२- हिन्दी के सुसम्मान कवियों का प्रेम-काव्य: गुरुदेव प्रसाद शर्मा, हिंदी
प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५७ ई० ।
- २५३- हिन्दी प्रेम गाथा काव्य-संग्रह: गणेश प्रसाद द्विवेदी, हि० ए०, प्रयाग,
१९५३ ई० ।
- २५४- हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका: रामपूजन तिवारी, ग्रंथ वितान,
पटना-१, १९६० ई० ।
- २५५- हिन्दी साहित्य कोश: सम्पा० डा० बीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल
लिमिटेड, वाराणसी, सं० २०१५ ।

१- हिन्दी परिषद् विरवविद्यालय प्रयाग के प्रकाशन में इस समय छप रही है ।

- २५६- हिन्दी छंद प्रकाशः रघुनंदन गारगी, राजपाल एण्ड सन्स, कामीरीगेट, दिल्ली, १९५२ ई० ।
- २५७- हिन्दी काव्य में गृंगार परम्परा और महाकवि विहारीः गणपति चन्द्र गुप्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९५९ ई० ।
- २५८- हिन्दी साहित्य और उसकी सांस्कृतिक भूमिकाः डा० लक्ष्मीसागर वाङ्मय हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, १९५२ ई० ।
- २५९- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्यः सत्यदेव चौधरी, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, १९५९ ई० ।
- २६०- हिन्दी भक्ति काव्य में गृंगार रसः डा० मिथिलेश कान्ति, प्रयाग विश्व-विद्यालय (अप्रकाशित), १९६१ ई० ।
- २६१- हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभावः अमिका प्रसाद वाजपेयी, हि० सा०, प्रयाग, १९३७ ई० ।
- २६२- शान्दीपः श्रीमती श्री परिहारिन महानी मां जी-सा०जू देई देवी रीवां राज, लाल बिजयराज सिंह कामदार श्रीमती मां जी सा० रीवां-राज, १९४१ ई० ।

अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू:-

- २६३- अब्दुल सैदा - सम्पा० डब्लू० एच० मेननाटेन, वैप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, १८३९ ई० ।
- २६४- अल इन्नुतफ़रीद, भाग ६ः अब्दुल अमीन, अब्दुल्लाह हारून आदि मल्ल-अतुलजनिततालीफ़ वर्तमानः बन्जर, काहिरा, १९५० ई० ।
- २६५- किताबुल अग़ानीः अबुलफ़रख़ अरुफ़ हावी - काहिरा, १९२९ ई० ।
- २६६- किस्सा हातिमताई- नवतकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० संस्क० ।
- २६७- जमा'म्युल हिकायात- बीफ़ी, तेहरान (ईरान) ।
- २६८- नसदमन- फैजी - नवतकिशोर प्रेस, लखनऊ ।

(१५)

- २६९- निहायतुल अरब: शिहायुद्दीन- दारुल- कुतुबिल- मिस्त्रिया, काहिरा ।
२७०- बहारे दानिश (Bahar-e-Danish): इनायतुल्लाह, नवलकिशोर प्रेस,
कानपुर, १८८६ ई० ।
२७१- मसनवी रूम: जलाल उद्दीन रूमी: सम्पा० निकलसन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी,
प्रेस, १९५० ई० ।
२७२- मन्सूला: निज़ामी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
२७३- "मिहकात् और हदीस की दूसरी किताबें": इलीयुद्दीन मुहम्मद तिकरीजी,
लाहौर, १९५६ ई० ।
२७४- सैतामनू- निज़ामी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।

अंग्रेजी-

- 275- Alaf Laila- W.H. Macnaghten, Vol. II, 1939, Baptist
Mission Press, Calcutta.
276. A Literary History of Persia- E.G. Browne, Vol. I, 1951.
277. A History of Indian Literature- Winternitz,
Vol. I.
278. A Social History of Islamic India- Dr. Mohammed Yasin.
279. An Introduction to the Popular Religion and Folklore of
Northern India- A.W. Crooke, 1894.
280. Classical Sanskrit Literature- Ab. Keith, 1923.
281. Classical Persian Literature- A.J. Arberry.
282. Dictionary of the World Literature- Shiple.
283. Life & Works of Hajarat Amir Khushro- Wahid Mirza.
284. Love Against Hate- कालीकिशोर
285. Muslim Theology- D.B. Macdonald, 1903.
286. Outlines of Islamic Culture- A Shushtery, 1938.
287. Padmawati- A.G. Shirreff.
288. Philosophy of Love- Hanuman Prasad Poddar, Gita Press,
Gorakhpur, 1940.
289. Science of Emotions- Dr. Bhagawan Das.

290. Sanskrit English Dictionary- Aptey, 1922.
 291. Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson, 1921.
 292. The Legend of Ardasir- E.C. Browne, Vol. I, 1951.
 293. The Golden Bough- J.H. Frazer, Vol. IX.
 294. The Sense of Beauty- G. Santayan.
 295. The Ocean of stories- Penzer, Vol. I & II.
 296. The Mystics of Islam- R.A. Nicholson.
 297. The Thousand Nights- E. Powys Mathews, Vol. I to IX,

पत्रिकाएं

1930, New York.

- २९८- अनेकांत- सरस्वती भंडार, दिल्ली
 २९९- धूमकेतु- कलकत्ता ।
 ३००- नागरी प्रचारिणी पत्रिका- ना० प्र० सभा- काशी ।
 ३०१- परिषद् पत्रिका- बिहार राजभाषा परिषद्, पटना ।
 ३०२- प्रज्ज्वलन्ती- मथुरा ।
 ३०३- भारतीय साहित्य- जागरा
 ३०४- मरुभारती- बिड़ला ब्राह्मर्स कालेज, पिलानी ।
 ३०५- राजस्थानी- कलकत्ता ।
 ३०६- राजस्थान भारती- सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोकानेर ।
 ३०७- वरदा- राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ ।
 ३०८- विश्ववाणी- इलाहाबाद ।
 ३०९- विश्वभारती- शान्ति निकेतन ।
 ३१०- सरस्वती- इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।
 ३११- सम्मेलन पत्रिका- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
 ३१२- साधना- डॉ. रामचन्द्र गोयन्का हाई स्कूल, डूण्डोद (राजस्थान), वार्षिक ।

संविदाप्तीकरण तालिका

अनु०	-	अनुवादकार या अनुवादक
इ० प्रे०	-	इण्डियन प्रेस
ई०	-	ईस्वी ,सन्
ईर०	-	ईरतरोन्मुह
उ० प्र०	-	उत्तर प्रदेश
ची०	-	चौपाई या बीपाई
डा०	-	डाक्टर
तृ०	-	तृतीय
ति०	-	तिथीय
दे०	-	देखिए
दो०	-	दोहा
ना० प्र०	-	नागरी प्रचारिणी
प०	-	पण्डित
पु०	-	पुराण
पु०	-	पृष्ठ
प्र०	-	प्रथम
संस्क०	-	संस्करण
प्रा० ति०	-	प्राइवेट लिमिटेड
प्रिमा०	-	प्रिमास्थान
प्रो०	-	प्रोफेसर
भाषा०	-	भाषान्तरकार
भा० हि० प०	-	भारतीय हिन्दी परिषद्
मु०	-	मुक्तक
रत्न०	-	रत्नपत्र
रूपा०	-	रूपान्तरकार
ली०	-	लीजिक
स्व०	-	स्वर्गीय
स्क०	-	स्कन्ध